विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
शिवना प्रकाशन
वर्ष : 8
अंक : 32
जनवरी-मार्च 2024
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

नए साल की सुबह
दिनेश कुशवाह

अगर सिर्फ़ शुभकामनाओं से
मिल जाता मनचाहा
तो हर आदमी के पास होती
एक ख़ूबसूरत दुनिया।

आज नए साल की सुबह
मन नहीं किया कि शुभकामनाएँ दूँ
उन तमाम लोगों को
यानी कहूँ उनसे कि आप
इस साल और सफलतापूर्वक करें
वही सब वाहियात
जो करते रहे पिछले साल।

जबकि देश को दुहने की होड़
लगी है कसाइयों में
ज़िबह करने की युगलबंदी
गा रहे हैं पक्ष-विपक्ष।

स्तब्ध हूँ मैं
इस बात से कि
अपनी बेचैनी की लाज
बचाने के लिए भी
मेरे पास रास्ता नहीं है।

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

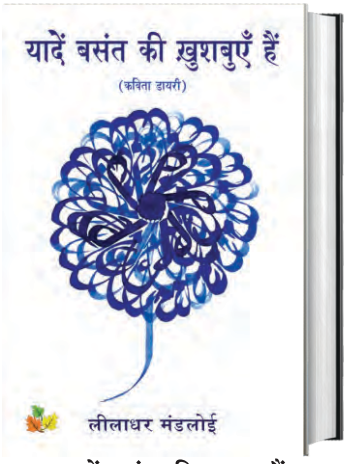

यादें बसंत की ख़ुशबू हैं
कविता डायरी
लेखक - लीलाधर मंडलोई
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

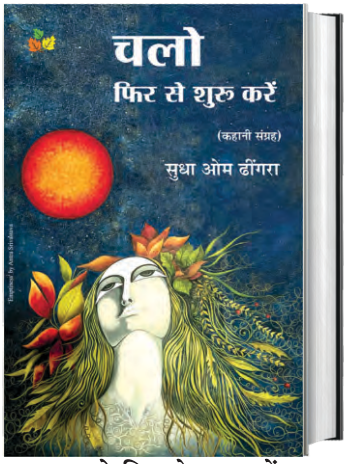

चलो फिर से शुरू करें
कहानी संग्रह
लेखक - सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

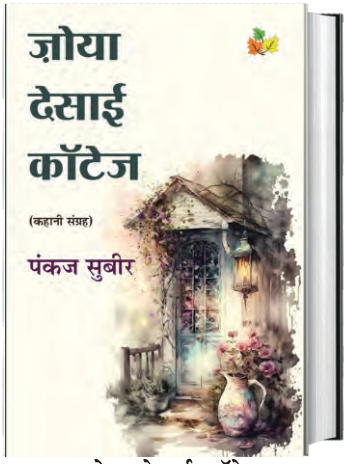

ज़ोया देसाई कॉटेज
कहानी संग्रह
लेखक - पंकज सुबीर
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

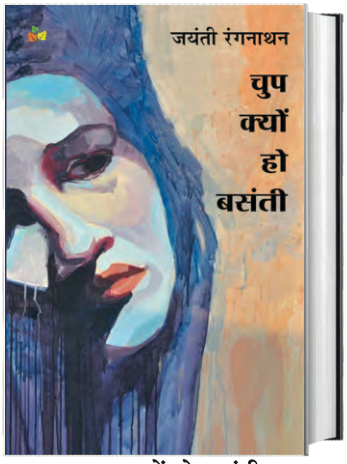

चुप क्यों हो बसंती
उपन्यास
जयंती रंगनाथन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

पंख से छूटा
उपन्यास
लेखक - प्रज्ञा पांडेय
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

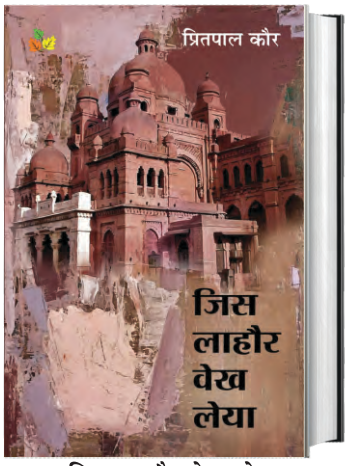

जिस लाहौर वेख लेया
यात्रा संस्मरण
लेखक - प्रितपाल कौर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

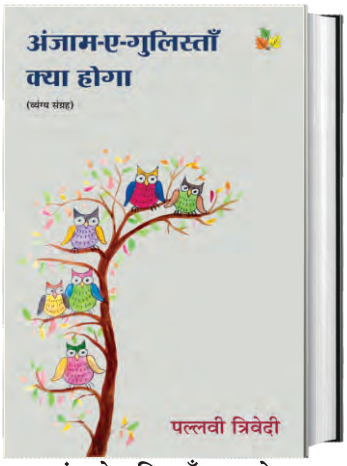

अंजामे गुलिस्ताँ क्या होगा
व्यंग्य संग्रह
लेखक - पल्लवी त्रिवेदी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

डोर अंजानी सी
कहानी संग्रह
लेखक - ममता त्यागी
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

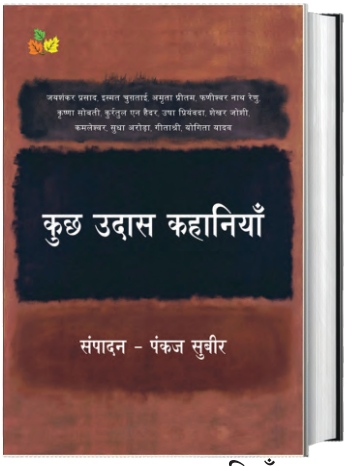

कुछ उदास कहानियाँ
कहानी संकलन
संपादक - पंकज सुबीर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

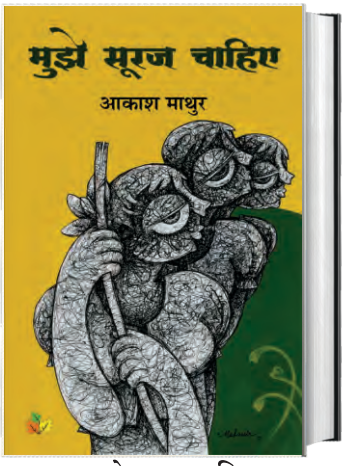

मुझे सूरज चाहिए
उपन्यास
आकाश माथुर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

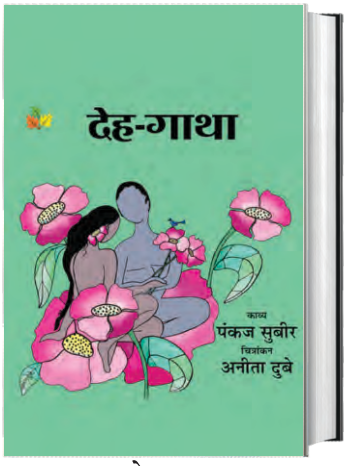

देह-गाथा
काव्य-चित्र
लेखक - पंकज सुबीर, अनीता दुबे
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

आधी दुनिया पूरा आसमान
उपन्यास
ब्रह्मदत्त शर्मा
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर
मध्य प्रदेश 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki
एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यावसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्य प्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 32, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2024
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
दिनेश कुशवाह

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

इस अंक में

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 8, अंक : 32,

त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2024

आवरण कविता / दिनेश कुशवाह

संपादकीय / शहरयार / 3

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

शोध आलोचना

जल, जंगल और जमीन

उमाशंकर सिंह परमार / प्रतिभा चौहान / 5

केंद्र में पुस्तक

रूदादे-सफ़र

भालचंद्र जोशी, रमेश शर्मा,

जसविंदर कौर बिन्द्रा / पंकज सुबीर / 8

पुस्तक समीक्षा

कुरजाँ के देश में

रणविजय राव / टीना रावल / 15

काला सोना

रेखा भाटिया / रेनू यादव / 17

प्रार्थनाएँ कुछ इस तरह से करो

निर्देश निधि / मुकेश निर्विकार / 20

मौन मुखर था

ज्योति जैन / डॉ. अंजना मिश्र / 23

नई पुस्तक

कुछ उदास कहानियाँ

संपादक : पंकज सुबीर / 34

मुझे सूरज चाहिए

लेखक : आकाश माथुर / 64

पंख से छूटा

लेखक : प्रज्ञा पांडेय / 75

डोर अंजानी सी

लेखक : ममता त्यागी / 81

चलो फिर से शुरू करें

लेखक : सुधा ओम ढींगरा / 87

ज़ोया देसाई कॉटेज

लेखक : पंकज सुबीर / 94

देह-गाथा

लेखक : पंकज सुबीर, अनीता दुबे / 103

जिस लाहौर वेख लेया

लेखक : प्रितपाल कौर / 118

चुप क्यों हो बसंती

लेखक : जयंती रंगनाथन / 124

ज़ेहन का पैरहन

लेखक : उमेश पंत / 157

नीलकंठी प्रार्थनाएँ

लेखक : रघुवीर शर्मा / 178

शोध आलेख

गिरीश चन्द्र भट्ट / 24

डॉ. फात्तिमा बीवी आर / 27

पूजा कुशवाहा, डॉ. विनोद कुमार / 29

डॉ संतोष गिरहे / 32

नीरजा. टि. के / 35

वर्षा पाल / 38

अश्विनी अजी / 41

डॉ सिन्धु जी नायर / 44

अंजु गोत्रा / 47

शशि कुमारी / 50

श्वेता रानी / 53

डॉ. गजेंद्र सिंह / 56

मिन्नु जोसेफ / 59

प्रीति खजूरिया / 62

कुमार मंगलम / 65

डॉ. सुनीता कुमारी / 68

प्रो. राखी उपाध्याय / 71

डॉ. अनिल कुमार गुप्ता / 74

डॉ. आइ. एम मेमन / 77

डॉ. रमेश कुमार / 80

डा. देवेंद्र कुमार / 82

कविता चूर / 84

पूनम पाधा / 86

डॉ. कोमल एन. आहिर / 88

डॉ. उषा कुमारी जे.बी. / 90

डॉ. रमेश कुमार / 92

मीनाक्षी / 95

अमर टैगोर / 98

प्रो. डॉ. नंदादेवी बोरसे / 101

डॉ. प्रियंका कुमारी / 104

पटेलिया हरिशभाई बी. / 107

ललिता देवी / 110

मन्नू देवी / 113

सुरजीत कौर / 116

जितेंद्र शर्मा / 119

डॉ. शीतल ए. अग्रवाल / 122

डॉ. रीटा एच. पारेख / 125

डॉ. प्रियंका श्रीवास्तव / 128

अमित कुमार चौबे / 131

किरण कटोच / 134

सपना, डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय / 137

मोनिका चौहान, डॉ. रीता सिंह / 140

दीपिका चौहान, डॉ. रीता सिंह / 143

आलिया जेसमिना / 146

बिभूति बिक्रम नाथ / 149

आलोक कुमार सिंह / 152

डॉ. अनुपमा पाण्डेय / 155

डॉ पुन्जभाष्कर / 158

वैशाली सिंघल / 161

राणा कुमार झा / 164

डॉ. अभिषित त्रिपाठी / 167

नवनीत / 170

पूजा / 173

पूजा / 176

बिनीता मल्ल / 179

देवेन्द्र कुमार / 181

विनय कुमार सिंह / 184

बिन्दु डनसेना / 187

ज्योति कुमारी / 190

चैतराम यादव / 193

नवीन चंद्र भट्ट, प्रो. गुड्डी बिष्ट पंवार / 196

मनीष कुमार / 199

डॉ. योगेन्द्र सिंह / 202

वर्षा गजानन पाटील / 205

मु ज़ाहिद रज़ा सिद्दीकी / 208

डॉ. अमित कुमार / 211

डॉ. परमजीत .एस पनेसर / 216

अंकिता द्रिवेदी /217

संपादकीय

पुस्तकें बुला रही हैं, आइए नई दिल्ली में मिलते हैं

दुनिया में पहली बार पुस्तक कब अस्तित्व में आयी होगी, किसने उसे लिखा होगा, उसके पाठक कौन रहे होंगे, अब तो इस बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, मगर यह बात तय है कि पुस्तकों ने मानव को सभ्य और विकसित बनाने में सबसे बड़ा योगदान दिया है। बुद्धि के विकास के क्रम में पुस्तकें ही मानव की साथी बनी रही हैं। इन दिनों जब हर तरफ़ यह बातें हो रही हैं कि पुस्तकों का समय अब समाप्त हो गया है, अब पुस्तकों का पढ़ा जाना बंद हो चुका है, तब यह भी देखा जाना ज़रूरी है कि दुनिया भर में आयोजित होने वाले पुस्तक मेलों में फिर आख़िर क्या बिक रहा है? क्या वहाँ पुस्तकें नहीं बिक रही हैं? नहीं बिक रही हैं, तो फिर ये आयोजन क्यों हो रहे हैं ? यक़ीनन पुस्तकें बिक रही होंगी तभी तो दुनिया भर के प्रकाशक इस प्रकार दुनिया भर के पुस्तक मेलों में घूमते फिर रहे हैं। पुस्तकों का समय कभी नहीं बीत सकता, पुस्तकें हमेशा इंसान की सबसे अच्छी दोस्त बनी रहेंगी। समय के साथ कुछ परिवर्तन होगा, मगर पुस्तकों का समय बना रहेगा। जैसे दिल्ली में आयोजित होने वाले विश्व पुस्तक मेले का सभी को इंतज़ार उसी प्रकार रहता है, जैसे हम किसी पर्व या त्यौहार का इंतज़ार करते हैं। प्रकाशकों को, लेखकों को, पाठकों को, सबको पता रहता है कि विश्व पुस्तक मेला दिल्ली में कब से कब तक होने जा रहा है। पुस्तक मेला यूँ तो दिल्ली में लगता है किन्तु वह पूरे देश के सभी भाषाओं के साहित्य को एक ऊर्जा दे जाता है। यह ऊर्जा सबको प्राप्त होती है, पाठक, प्रकाशक, लेखक सभी को। हाँ यह बात ज़रूर है कि दिल्ली के बाहर के शिवना प्रकाशन जैसे प्रकाशन संस्थानों के लिए विश्व पुस्तक मेले में भागीदारी करना एक चुनौती होता है। दूर से किताबों को दिल्ली पहुँचाना, फिर वापस भी लाना, दिल्ली आना-जाना, वहाँ ठहरना, यह सारे व्यय अतिरिक्त होते हैं, जो दिल्ली के प्रकाशकों को वहन नहीं करने पड़ते। लेकिन इसके बाद भी प्रकाशक उत्साह के साथ वहाँ जाते हैं। ज़ाहिर सी बात है कि पुस्तकों की बिक्री भी होती ही होगी, तभी तो इतनी दूर से हर वर्ष प्रकाशक आते हैं। इसलिए यह कह देना कि पुस्तकों का समय अब बीत गया है, ठीक नहीं है। हाँ यह कहा जा सकता है कि पाठकों की संख्या कम हुई है। मगर पुस्तकों के अब डिजिटल संस्करण भी आने लगे हैं, पाठक अब पाठक न रह कर श्रोता हो चुका है। लेकिन वह फिर भी जुड़ा तो है ही पुस्तकों के साथ। पुस्तक मेला आते ही प्रकाशकों में एक उत्साह का संचार हो जाता है, नयी पुस्तकों का प्रकाशन, उनका प्रचार-प्रसार तथा विमोचन, इन सबकी तैयारी में प्रकाशक लग जाता है। इस बारे में भी बहुत नकारात्मक बातें सामने आती हैं, कि पुस्तक मेले में स्टॉल पर होने वाला विमोचन भी कोई विमोचन होता है, यह ठीक तरीक़ा नहीं है, ऐसा... वैसा...., मगर यह बात भी दिमाग़ में रखना ज़रूरी है कि वह साहित्य का, पुस्तकों का उत्सव है, उत्सव वाले स्थान पर सब कुछ उत्सव के अंदाज़ में ही होता है। वहाँ नियम, क़ायदे ज़रा शिथिल किये जा सकते हैं। और फिर हर लेखक चाहता है कि पुस्तक मेले में उसकी किताब का विमोचन हो, ऐसे में हर प्रकाशन अपन स्टॉल पर पुस्तकों का विमोचन करता है। ख़ैर यह सब तो चलता ही रहेगा, मालवा में एक कहावत है- 'गालियाँ देती रेंगी, पावणा जीमता रेंगा' मतलब जब बारात के लोग खाना खाने बैठते हैं, तो लड़की पक्ष की महिलाएँ बैठ कर गालियाँ गाती हैं, महिलाएँ गाली देती रहती हैं और पावणे या मेहमान खाना खाते रहते हैं। ऐसा ही चलता रहता है। फिलहाल तो एक और विश्व पुस्तक मेला सामने है, नई दिल्ली के प्रगति मैदान पर दस से अठारह फरवरी तक एक बार फिर पुस्तकों का कुंभ आयोजित होने जा रहा है। उम्मीद है कि इस बार भी पुस्तकों के इस महापर्व का उसी तरह से स्वागत किया जायेगा जिस तरह पूर्व में किया जाता रहा है। एकबार फिर मिलने का समय आ चुका है। पुस्तकें बुला रही हैं, आइए नई दिल्ली में मिलते हैं। **आपका ही**

शहरयार

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

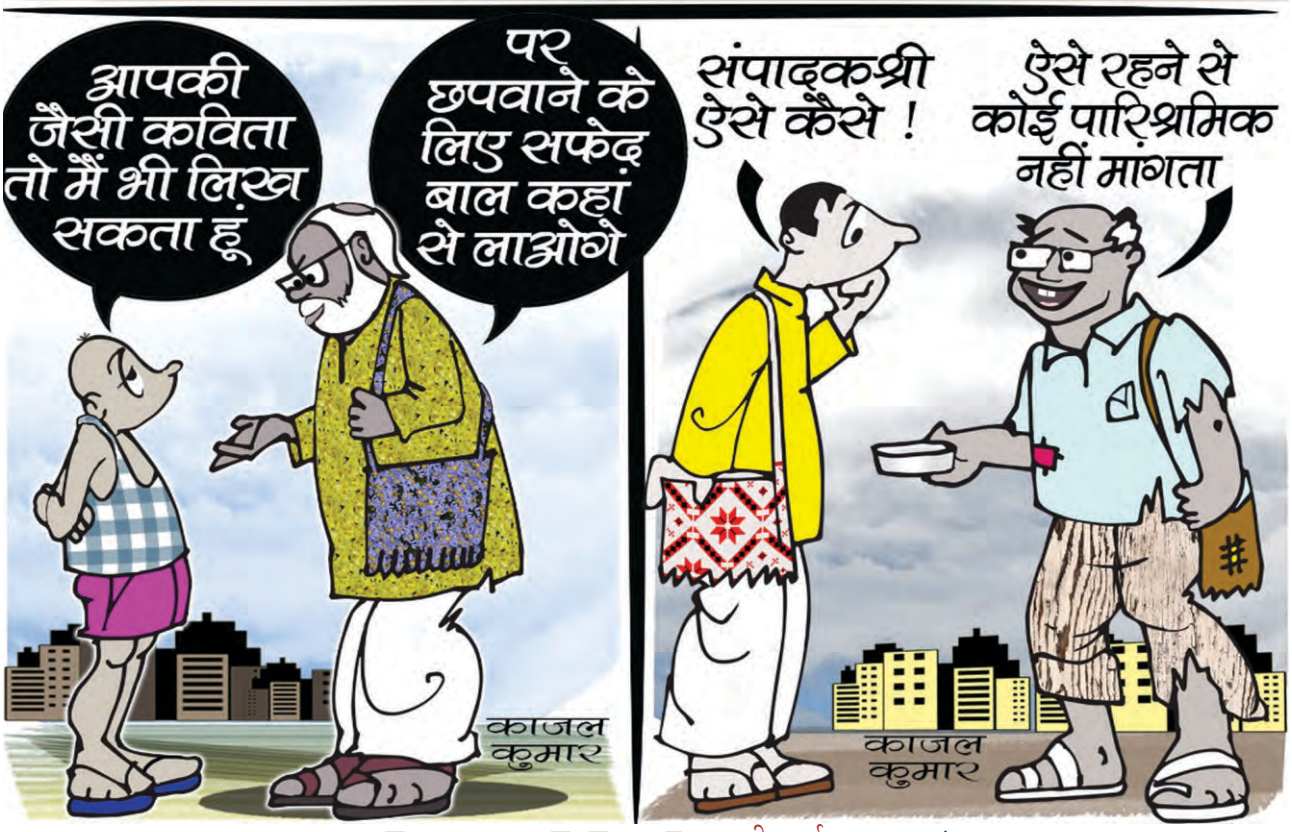

शोध-आलोचना

(कविता संग्रह)

जल, जंगल और जमीन

समीक्षक : उमाशंकर सिंह परमार
लेखक : प्रतिभा चौहान
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

उमाशंकर सिंह परमार
पोस्ट -बबेरू, ज़िला- बांदा,
उप्र 210121
मोबाइल- 9838610776
ईमेल- umashankarsinghparmar@gmail.com

जंगलों में पगडंडियाँ प्रतिभा चौहान का नया कविता संग्रह है यह 2022 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ है इसमे लगभग 80-82 कविताएँ हैं जिनका विषय जंगल आदिवासी नदी और जंगल की परिस्थितिकी है। पर्यावरण और प्रकृति को लेकर प्रतिभा का पहला कविता संग्रह नही है इसी विषय पर उनका एक और कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है वह भी जंगलों और आदिवासियों को समर्पित है उसका शीर्षक है पेड़ों पर हैं मछलियाँ। इन दो कविता संग्रहों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रतिभा का जंगलों से विशेष नाता रहा है उन्होंने जंगली जीवन को बेहद नज़दीक से देखा है अध्ययन किया है। वह जंगलों की वर्तमान हालत से परिचित हैं इसलिए वह जंगल बचाने और बचने की मुहिम लेकर हिन्दी कविता में सक्रिय हैं। अपनी कविताओं में प्रतिभा ने जंगलों के व्यक्तित्व को सिरजा है। ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है कि जिस भौतिक वस्तु का कोई व्यक्तित्व न हो उसे व्यक्तित्व दे देना और रूमानियत के साथ आत्मीयता का जुड़ाव व्यक्त करना। इसी आत्मीयता में जंगल के साथ स्व अस्तित्व की तलाश करना प्रतिभा की कविता की कुछ ऐसी बाते हैं, जो जंगलों के विरुद्ध गहराते अधंकार के खिलाफ़ खड़े होने की भास्वरता बचाने की प्रेरणा देती है।

प्रतिभा अपनी कविताओं में जल जंगल और ज़मीन के लिए हद स्तर तक भावुक हैं यह भावुकता सौन्दर्य मूलक भी है और कल्पनामूलक भी है। कल्पना मूलक भावुकता एक अपने जंगल और जंगलवासियों की आत्मीयतामूलक सहजीविता के लिए विकासशील धरती से पृथक धरती की माँग करती है। जब धरती का कोई भी देश, प्रदेश, मनुष्य जंगल को जंगल की तरह रहने के लिए परिवेश नहीं देता तब वह जंगल को ही पृथक लोक मान लेती हैं और जंगल को उन उपमानों मान्यताओं विश्वासों से युक्त कर देती हैं जिसे आध्यात्म की भाषा आलौकिक कहा जाता है। यह आलौकिकता जंगल की परिस्थितिकी के लिए ताकि उसे अक्षत और सुरक्षित किया जा सके। यह आरोपण कल्पनामूलक भावुकता का चरम है। यहाँ प्रकृति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती चली जाती है और उसका अस्तित्व आमजन के बोध से परे हो जाता है। ब्रम्ह की सत्ता का बोध वही पा सकता है जिसे ब्रम्ह पर निष्ठा हो उसी तरह जंगल के अस्तित्व से भी प्रतिभा अमानवीय तत्वों का निषेध करती है। ब्रम्ह का निरूपण ही मनुष्य की अमानवीय आदतों का निषेध है। अपनी कविता 'वह आदिवासी' में कहती हैं- जिसकी आत्मा में रचा बसा जंगल / और जंगल में रचा बसा जिसका अस्तित्व / शान्त, सुदृढ़, पूर्णत: प्राचीन / आदिम सृष्टि के पटल पर / न अस्त होने वाला अविनाशी

यहाँ आदिवासी और जंगल के आपसी साहचर्य को व्यक्त करते हुए लगभग ब्रह्म के शिवत्व अविनाशी तत्वों का विधान किया गया है। आपसी साहचर्य का वर्णन तो पूरे कविता संग्रह में भरा पड़ा है प्रतिभा बार बार यह कहने से नहीं चूकतीं कि जंगल और उसकी परिस्थितिकी आधुनिक नगरीय परिस्थितिकी से भिन्न है और अपनी भिन्न अस्तित्वमूलक विशेषताओं के कारण जंगल और उसके निवासी एक अस्मिता हैं। एक विमर्श हैं संकटग्रस्त समुदाय हैं। यह हो गई कल्पनामूलक भावुकता जिसमें प्रतिभा अपना सन्देश साधने में बेतरह सफल रही हैं। दूसरी है सौन्दर्यमूलक भावुकता जिसके अन्तर्गत प्रतिभा जंगल के सौन्दर्य का विवेचन करती हैं, जंगल के संसार का अशरीरी निरपेक्ष वर्णन उनकी सौन्दर्यमूलक कल्पना दृष्टि को बहुआयामी बना देता है। यह निश्छल हृदय से उदभाषित भाव और विचार का अदभुद सम्मेलन है। शब्द दर शब्द आत्मीयता की गहरी लम्बी बुनावट है सौन्दर्ममूलक कल्पना का एक उदाहरण देखें- रात की चाँदनी में / आद्र हुआ जंगल / सुबह की ओस से / दोपहर तक बातें करता रहा

यह कविता 'साथ' शीर्षक से छोटी कविता है। यहाँ भी साहचर्य है, प्रेम है और प्रेम की मस्ती है। जंगल ओस से गीला होता है ओस दोपहर तक सूखती है अत: सूखने की अवधि को जंगल और ओस के संवाद की संज्ञा देकर प्रतिभा ने इस साहचर्य को अभिव्यन्जना के सहारे प्रेमी और प्रेयसी की लौकिक जमीन पर प्रतिस्थापित कर देती हैं। सौन्दर्य मूलक कविताओं में प्रतिभा की

अप्रस्तुत विधान क्षमता और काव्य कला के प्रति सजगता देखी जा सकती है जहाँ मन की एकाग्रता और भाषा की विविधधर्मिता तथा कल्पना की प्रदीप्तिता देखते बनती है।

कविता संग्रह का मूल कथ्य जंगल बनाम आधुनिकता, अहिंसा बनाम युद्ध, विकास बनाम विनाश, आदिवासी बनाम सभ्य आदमी, प्रकृति बनाम मनुष्यता है। ये तमाम बहसें इस कविता संग्रह में पूरी शिद्दत के साथ मौजूद हैं। जंगल इन सब बहसों का केन्द्र है। वही हिंसा से पीड़ित है। आदिवासी उसका साहचर्य है। विकास उपभोक्तावाद नगरीकरण और हिंसा तथा आधुनिक सभ्य आदमी जंगल के सबसे बड़े खतरे हैं। आज जंगल और जंगल के साहचर्य में रहने वाले जंगल के अंग मसलन नदी, चिड़िया, तितली, आदिवासी सब खतरे में हैं। इस संग्रह में जंगल और उसके प्रतिपक्ष में कार्य कर रही शक्तियों की गहरी शिनाख्त की गई है। प्रतिभा ने पक्ष और प्रतिपक्ष के बुनियादी संघर्ष को बहुस्तरीय बहुविधि तथा बहु दृष्टिकोणों के साथ तर्क सहित दिखाया है। इस कविता संग्रह को पर्यावरण विमर्श का प्रस्तावक इसीलिए कह रहा हूँ कि यहाँ विमर्श के आवश्यक तत्व केन्द्रिकता की खोज कर ली गई है। दर असल नव उदारवाद ने दबी हुई अस्मिताओं को उभारा है। हर एक अस्मिता जो सदियों से दबी कुचली है जिन्हें सामन्ती केन्द्रिकता ने दबाया है इस दौर में उन्होंने अपनी पहचान को लेकर आवाज उठाई है। यह आवाज केन्द्रिकता के विरुद्ध है। हर अस्मिता की अपनी केन्द्रिकता है जैसे दलित अस्मिता की केन्द्रिकता ब्राम्हणवाद है। स्त्री अस्मिता की केन्द्रिकता पुरुष वर्चस्ववाद है। आदिवासी अस्मिता की केन्द्रिकता पूँजीवाद है। प्रतिभा चौहान ने प्रकृति और पर्यावरण को भी अस्मिता के रूप में स्थापित किया साथ ही इसको मुकम्मल विमर्श का रूप देते हुए केन्द्रिकता की स्थापना की है। यह केन्द्रिकता आधुनिकता है मनुष्य की सभ्यता और विकास है।

प्रतिभा की कविता जंगल के जीवन से जुड़ी है ऐसी कविता न तो जंगल से किनारा करके लिखी जा सकती है न ही बिन जंगल की पहचान किए पढ़ी जा सकती है। जंगल के संबंध में प्रतिभा की कोई राजनैतिक प्रतिबद्धता नहीं, न ही वह कविता में राजनीति करती हैं, उनकी पक्षधरता केवल जंगल है और जंगल के सभी बाशिन्दे हैं, यही कारण है वह जंगल के अंग बन चुके आदिवासियों की प्रशंसा करती हैं लेकिन जंगल को महज विकास का अवरोध मानकर उजाड़ने वालों को वह कटघरे में खड़ा करती हैं। अपनी 'स्वच्छन्द' कविता में वह आदिवासियों के प्रकृति प्रेम और साहचर्य पर लिखती हैं कि- वे जानते हैं प्रकृति में अपना हिस्सा / जंगलों से लेते हैं / दुलराते हैं / उजाड़ते नहीं ईश्वर की बनाई चीजों को / आधुनिक आदमी की तरह

आदिवासी के प्राण जंगल में बसते हैं उनके जीवन का आधार जंगल हैं, जंगल में वह अपना हिस्सा जानते हैं, वह हिस्सा लेते भी हैं दुलार, से प्यार से, लेकिन उजाड़ते नहीं है। लालच करके एक ही दिन में अपना पूरा हिस्सा नहीं लेते हैं वह जानते हैं जंगल नहीं रहेगा तो अस्तित्व भी नहीं रहेगा। जंगल से हम सब जिन्दा हैं। यह ईश्वर की रचना है। अत: उजाड़ना ईश्वर का विरोध है। प्रकृति में सृजन की शक्ति है वह विविध प्राणियों, रंगों, रेखाओं द्वारा चित्र रचती है, किन्तु मनुष्य इस सौन्दर्य का भोग नहीं कर पाता वह अपने हित में उजाड़ का पथ अख्तियार करता है। यही नहीं प्रतिभा जंगलों के विरुद्ध हो रही हिंसक साजिशों को भी समझती हैं वह जानती हैं जंगल का असली शत्रु कौन है। वह शत्रुओं को भी चिह्नित करके जंगल के अनवरत संघर्ष का विवेचन करती हैं। वे अपनी कविता 'बडे खतरों की फेरहिस्त' में लिखती हैं- चमकती संस्कृतियाँ / बढ़ता हुआ बाज़ार / उपभोग उल्लास का काकटेल / और संसाधनों की भूख / विविधता के पोषकों के विरुद्ध है / बड़े बड़े खतरों की साजिशें

बाजारवाद, उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक चरमपंथ, संसाधनों की भूख, सबका एक ही लक्ष्य है विकास। यह विकास और आधुनिकता ने जंगलों के साहचर्य के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है। जंगलों में विविधता है। उसकी छाँव में सभी पलते हैं कोई आपसी विरोध नहीं मगर मनुष्य ने विकास के नाम पर जंगलों को उजाड़ा है विविधता के इस स्रोत का विनाश किया है। इसका एकमात्र कारण है आधुनिक मनुष्य जंगल से दूर है इसलिए वह हिंसक हो चुका है। जो लोग तथाकथित रूप में विकसित कहलाते हैं वह हिंसक होते हैं। कानून पढ़ते हैं। गोला बारूद बनाते हैं। चाकू तलवारों में धार देते हैं। अपनी कविता 'जो पढ़े लिखे विकसित थे' में वह कह रही हैं- जो पढ़े लिखे विकसित थे / वो पढ़ रहे थे / बर्बरता और अपराध के कानून की किताबें / कर रहे थे / हथियारों और बारूदों की जाँच / तलवारों और चाकुओं को तेज़

यह आधुनिक विकास है जो मनुष्य को स्वाभाविक रूप से हिंसक बनाता जा रहा है क्योंकि ये लोग जंगल के साहचर्य में नहीं हैं विकास और भौतिकता से लगाव है। इसके विपरीत आदिवासी समुदाय हिंसक नहीं है वह प्रेम करते हैं प्रेम बाँटते हैं, जंगल ही उनकी छोटी सी दुनिया है जहाँ वह प्रेम के साथ जीते हैं और अपनी व जंगल की रक्षा करते हैं। वह लिखती हैं 'जंगली और अनपढ़ लोग / बिखेर रहे थे प्रेम/ एक विकसित दुनिया से दूर / एक छोटी सी दुनिया में / बाँट रहे थे आपसी सुख दुख' विकसित दुनिया हिंसक दुनिया है वहाँ से बहुत दूर अपनी दुनिया में आदिवासी समुदाय आपसी सुख दुख बाँट रहे हैं। उनकी कविता 'दुनिया के सबसे खूबसूरत लोग' में प्रतिभा ने आदिवासियों को जंगल की तरह दुनिया में सबसे खूबसूरत बताया है क्योंकि उनका आचरण उनकी मनोवृत्ति हिंसा नहीं है, प्रेम है। प्रतिभा अपनी कविताओं में हिंसा और अहिंसा। हथियार, बारूद और प्रेम, परस्पर विरोधी भाव विन्यास को अपने संग्रह में बहुत बार उल्लेख करती हैं, जीवन्तता का नहीं लेते कोई प्रशिक्षण, न दु:ख है न आसक्ति, ये जंगल क्या कहता है, रंज, जल जीवन हरियाली, सुनो सुबह आदि का कविताओं में जंगलगाथा के साथ साथ जंगलों के अस्तित्व में बाधक संस्कृति के वर्गचरित्र का भी विश्लेषण करती हैं।

प्रतिभा अपनी कविताओं के केन्द्र में

प्रकृत नैचुरल जीवन और निर्मिति पर अटूट निष्ठा रखती हैं, इस निष्ठा के कारण वह प्रकृति के पक्ष में प्रेम और आत्मीयता का पक्षकार ही नहीं बनती हैं, वह करुणामूलक संवेदना भी व्यक्त करती हैं। करुणा कविता का वह तत्व है जो कविता को समाज और मूल्यों के पक्ष खड़ा कर इस मूल्यों को नष्ट करने वाली शक्तियों का प्रतिरोध करने को प्रेरित करता है। मनुष्यता का सबसे बड़ा शत्रु है युद्ध। युद्ध न केवल मनुष्य को अमानवीय बनाता है, अपितु यह धरती और उसके जीवन के विरुद्ध भी है। प्रतिभा चौहान की करुणामूलकता भी उन्हें हिंसा और युद्ध के विरुद्ध कर देती है अपनी कविता 'उन्हे तारों का टूटना पसंद नहीं' में वह लिखती हैं- वे जिस वक्त कर रहे थे / तारों नदियों / जंगल सूर्य और धरती से प्रेम / आप कर रहे थे / बर्बर समाज से निबटने के यत्न / इंसानों के मध्य / इंसानों की सुरक्षा के प्रयत्न

यहाँ भी जंगल वासी अनपढ़ आदिवासियों के साहचर्य और प्रेम के समक्ष इंसान से इंसान की रक्षा के प्रयत्न पर चर्चा है। युद्ध इंसान का इंसान से ही होता है। यहाँ इंसान इंसान को समाप्त करना चाहता है और जंगल में इंसान जानवर को भी प्रेम करता है। फूल और पत्ती को भी प्रेम करता है। प्रेम और प्रकृति दोनों का संबंध सापेक्ष है। प्रतिभा की कविताओं में प्रकृति कभी जिज्ञासा कभी अनुभूति कभी मानवीय रूप में चेतन होकर उपस्थित होती है वह साहचर्य अहिंसा और प्रेम का प्रतीक बनकर आती है। कवियत्री की करुणामूलकता इस विमर्श को व्यापक सामाजिक सरोकार से जोड़कर भी प्रकृति की अस्मिता को मुख्य चिन्ता विषय बनाने में सफल रही है। आज के विकसित शिक्षित मनुष्य में यह अपवाद है कि वह प्रकृति को चेतन नहीं अचेतन वस्तु मानता है, वह जंगल के साहचर्य को पिछड़ापन मानकर सब कुछ बदल देना चाहता है, मगर यही बदलाव की कामना जंगल के लिए सबसे बड़ी त्रासदी बन जाती है। अपनी कविता 'सदी के सर्वश्रेष्ठ' में प्रतिभा आदमी की फितरत और आदतों का विश्लेषण करते हुए लिखती हैं- वे आगे बढ़ते गए / उन्होने रास्ते में आई हर चीज को / अपने हिसाब से बदलना चाहा / और बदल डाला / उन्होंने नदियों को अपने हिसाब से मोड़ा / पर्वतों के सिर उठाये रखने को गुस्ताखी माना / तोड़ दिये सिर और शाखाएँ / वे और आगे बढ़े / उन्होंने प्रकृति को दुत्कारा और ललकारा और / जंगलों को कर दिया आग के हवाले / पहाड़ को खाई और खाई को पहाड़ बनाने लगे।

प्रकृति पर विकसित सभ्यताओं के इस अत्याचार को त्रासदी ही कहा जा सकता है यह नजरिया है। लेकिन आलोचक कह सकते हैं यह कवियत्री का व्यक्तिगत नजरिया है। मगर यह दृष्टिकोण मात्र व्यक्तिगत नहीं है यह व्यापक परिप्रेक्ष्य को समेट रहा है। हिंसा और प्रेम में एक चुनने को कह रहा है। हथियार और बारूद की होड़ से बचने को कह रहा है। क्या यह व्यापकता नहीं है ? आज के समय समूचा विश्व बारूद के ढेर पर बैठा हुआ है। यूरोप से लेकर मध्यपूर्व, आफ्रीका किसी न किसी ओर युद्ध और हिंसा की सूचना आती रहती है। अपने देश के अन्दर ही तमाम संगठन हैं जो हिंसक आन्दोलन की बात करते हैं, ऐसे हिंसक समय में युद्ध के खिलाफ़ खड़े होना व्यापक मानवीय नजरिया ही है। और आज की प्रकृति के खिलाफ जो भी विकसित विचारधाराएँ हैं उनका नजरिया तर्क और मनुष्यता दोनों के खिलाफ है। प्रकृति के प्रति सकारात्मक विमर्शमूलक नजरिया मानवेतर जीवों के प्रति पाठकों में रचनात्मक ऊर्जा भरता है। प्रकृति की अदम्य शक्ति और उसकी जिजीविषा मनुष्य को भी अदम्य होने की सीख देती है और यह सन्देश देती है कि हजार त्रासदी हो, मृत्यु हो, विनाश हो लेकिन अमृतत्व पर विश्वास करो जैसे यह जंगल अदम्य है- कई बार तोड़ा गया / उजाड़ा गया निरन्तर / पर बार बार जंगल उग आता है / वह नही छोड़ता / अपने उगने की जिद / क्योंकी वह खड़ा होता है / अपने सम्मान के खातिर

यह कविता- बार-बार उग आता है जंगल का अंश है यह जंगल की जीवनी शक्ति है अदम्यता है। यदि गुणों के आधार पर जंगल और इंसान की तुलना हो तो जंगल एक सम्पूर्ण मनुष्य है। प्रकृति की जीवनी शक्ति का उल्लेख प्रतिभा बार-बार करती हैं- चिड़िया के गीत, रेत में तब्दील समुन्दर, बोध का बरगद, उभरता हुआ संकेत, प्रतिपल उगता हुआ गहरा हरापन आदि कविताओं में भी इसी जीवनी शक्ति का संकेत है

आज की जरूरत के हिसाब से प्रकृति के प्रति पक्षधरता और उसके अस्तित्व पर मँडरा रहे खतरों पर सामूहिक चिन्ता का अभाव है अकादमिक जगत के पास तमाम गोष्ठियाँ और शोध कर कमजोर कविताओं को महिमामंडित करने का समय है लेकिन प्रकृति के लिए न समय है और न ग्रान्ट है। प्रतिभा चौहान ने प्रकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व को लेकर पहली बार हिन्दी में एक मुकम्मल रचना पेश की है, जो यह समझाने में सफल है कि प्रकृति का यह संकट प्रकृति की देन नहीं है न ही यह नियति के कारण है, इस संकट के मूल में मनुष्य है। और मनुष्य की असीमित जरूरतें हैं जिसकी पूर्ति हेतु 'अन्धाधुन्ध' विकास है। इस विकास के कचरे से भरी हुई नदियाँ हैं और मुनाफे के लिए भूजल दोहन, खनन, खाद, कीटनाशकों का प्रयोग है। प्लास्टिक कचरे का अम्बार है। धुँआ उगलते भारी वाहन और सड़कों का भीषण जाम है। वन काटे जा चुके हैं। खेत कीटनाशकों से भरे हैं, भूगर्भ जल का स्तर हर वर्ष बदल रहा है, भूगर्भ जल में यूरेनियम और आर्सेनिक घुल चुका है। जल, जंगल, जमीन की चिन्ता राजनीति से विस्थापित है। जबकि पिछले दो दशक से यह समस्या और भी विकराल हो चुकी है, पशु और पक्षियों की हजारों प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी है और लगातार हम सबके देखते-देखते विलुप्त हो रही हैं। यह धरती अब चिड़ियों के अनुकूल नहीं रह गई। यदि यही स्थिति रही तो जीवन के भी अनुकूल नहीं रहेगी।

प्रतिभा चौहान ने अपनी कविताओं में प्रकृति के प्रति अपनी ईमानदार अनुभूतियों का प्रकटीकरण कर प्रकृति के विमर्श को कविता की भाषा में समझा दिया है।

000

केन्द्र में पुस्तक

(उपन्यास)

रूदादे-सफ़र

समीक्षक : भालचंद्र जोशी, रमेश शर्मा, जसविन्दर कौर बिन्द्रा

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

भालचंद्र जोशी
603 (ग्राउंड फ्लोर) पॉकेट- सी, सरिता विहार, नई दिल्ली-110076
मोबाइल- 8989432087
ईमेल- joshibhalchandra@yahoo.com

जसविन्दर कौर बिन्द्रा,
आर-142, प्रथम मंज़िल
ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली-48
मोबाइल- 9868182835

रमेश शर्मा,
92 श्रीकुंज, बोईरदादर,
रायगढ़ (छत्तीसगढ़)
मोबाइल- 7722975017

संवेदनाओं का ज़ख्मी होना एक नई संवेदना को जन्म देना है। उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' ऐसी ही ज़ख्मी संवेदना की यात्रा है। इस भावनात्मक यंत्रणा की निरंतर यात्रा में रिश्तों के द्वन्द्व हैं। दरअसल भूमंडलीकरण के आधुनिक समाज में रिश्तों की आत्मा का सच मनुष्य मन की गुहा में ऐसा दबा और छुपा हुआ है जहाँ से उसे बाहर निकाल कर लाना एक बड़ा श्रम और लेखकीय कौशल है। रिश्तों की समग्रता में संवेदना के केंद्रीय स्रोत को बचाने के जतन के साथ समय सापेक्षता के तर्क को निरस्त करते हुए समाज या कहें मनुष्यता की सापेक्षता को केंद्र में रखना ज़्यादा बड़ा काम है। पिता और बेटी के रिश्तों के संदर्भ में पंकज सुबीर ऐसी कोशिशों में उपन्यास के भीतर के दरवाज़े खोलते जाते हैं। पिता और पुत्री के सामान्य और प्रचलित रिश्तों के संदर्भ के साथ इस उपन्यास के दरवाज़ों के भीतर दाख़िल होना थोड़ा कठिन काम है। भूमंडलीकरण में बनती एक नई सामाजिकी में रिश्तों की संरचना-निर्मिति में इस उपन्यास के अर्थ-वृक्ष की जड़ें गहरे उतरी हुई हैं। लेकिन वृक्ष की तासीर को समझने के लिए जड़ों का उत्खनन जैसे ग़ैर-ज़रूरी है, ठीक उसी तरह इस उपन्यास के अर्थ-संदर्भ के लिए इस आधुनिक समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास के शिल्प को टटोलना होगा।

मार्खेज़ ने उपन्यास को लेकर लिखा है कि, "उपन्यास में यथार्थ की कलात्मक प्रतिकूलता घटित होती है।" ज़ाहिर है कि उपन्यास का सच या कहें उपन्यास का यथार्थ जीवन-यथार्थ से

संलग्नता के बावजूद उससे भिन्न हो सकता है। 'रूदादे-सफ़र' में अस्पताल की अव्यवस्थाएँ वहाँ के दुख-तकलीफ़, पोस्टमार्टम के यथार्थ चित्रण, अंगों का काटा जाना, रक्त-मवाद और फॉर्मलीन की तीखी गन्ध के बीच यातना का एक बड़ा घेरा बनता जाता है। एक बड़ी जगह वह यातना घेरती जाती है। वह अस्पताल के दुख-दर्द, शव, बिलखते परिजन के बीच डॉक्टर के अपने निजी सुख-दुख और एक भिन्न और आंतरिक यातना की यात्रा चलती रहती है। संवेदना और रिश्तों की ऐसी द्वन्द्वात्मकता में उपन्यास का कथा-संतुलन एक कठिन काम होता है। पंकज सुबीर का निज और लेखकीय संवेदना-संतुलन भी इन सब के बीच दम साध कर साथ चलता है।

लेकिन बात इससे आगे जाती है कि यातना-प्रवाह की अभिव्यक्ति से पंकज संतुष्ट नहीं है क्योंकि अस्पताल की दिनचर्या में शामिल दारुण-दुख और डरावने दृश्य लेखकीय अभीष्ट नहीं है बल्कि वे इस यातना-यात्रा में या कहें इस यातना प्रवाह में मनुष्यता के संदर्भ, रिश्तों की संवेदना और आधुनिक समाज की तमाम कठिनाइयों की पड़ताल करते हैं जिसमें व्यक्ति अनचाहे फँसता जा रहा है। यह पड़ताल महज दृष्टा की पड़ताल नहीं है। इसमें वे तमाम कोशिशें शामिल हैं जिसमें एक त्रासद मन:स्थिति से गुज़र कर अंत में एक क़िस्म के सुखद अंत तक पहुँचा जा सकता है। इस सुखद अंत से आशय वह नहीं है जहाँ उपन्यास में किसी निराकरण या किसी सकारात्मक स्थिति में कथानक को सुखद अंत तक पहुँचाया जाता है, बल्कि वह सुखद अंत है जिसमें लेखक की मंशा समय को संपूर्णता में प्रकट करने की होती है।

उपन्यास कम पात्रों के बावजूद ऐसी संवेदनात्मक स्थितियों में दाख़िल हो चुका था जहाँ से लेखक उसे किसी प्रचलित या परंपरागत और सरलीकृत सुखद अंत तक नहीं पहुँचा सकता था। लेखक की इसी मंशा ने उपन्यास की उस पूरी यातना-यात्रा की रक्षा की अर्थात कथा के यथार्थ के सुरक्षा-प्रबंध जुटते चले गए। यह सहजता ही इस उपन्यास का भी सुरक्षा-प्रबंध है।

इस उपन्यास में एक भली बात यह भी रही कि लेखक की मंशा के समानांतर अवचेतन में दबे सार्थक रचना के लिए वह कारक तत्व भी जगह बनाते चले गए, जिसने उपन्यास के यथार्थ और संवेदना-पक्ष के भूगोल-विस्तार में अपनी तरह से काफी श्रम किया। एक उपन्यास अपनी सर्जनात्मकता में जब सफल होता है जब वह जीवन की मार्मिकता की अभिव्यक्ति के लिए संश्लिष्ट-संवेदना को एक पाठकीय सरल-संवेदना में रूपांतरित करता है। अन्यथा तो पंकज के लिए एक अस्पताल के नारकीय जीवन के यथार्थ को प्रकट करना और विस्तारित करना कोई बहुत कठिन काम नहीं था। पंकज के लिए कठिनाई और चुनौती इसी रूपांतरण की थी जिसके पार जाना था और उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया, यह बड़ी बात है।

डॉ. अर्चना और उसके पिता, डॉक्टर भार्गव के रिश्ते आदर, ममता और वात्सल्य की उस परिधि तक पहुँचते हैं जहाँ रिश्तों के बड़े स्कूल मौजूद होते हैं; जहाँ से प्रेम, करुणा और मानवीयता के बड़े और अर्थगर्भित पाठ शुरू होते हैं। डॉक्टर अर्चना को मेडिकल की शिक्षा कॉलेज से मिलती है तो प्रेम, करुणा और मानवीयता के पाठ डॉक्टर भार्गव यानी अपने पिता से हासिल होते हैं। यह एक ऐसी पूँजी होती है जिसे हर अभिभावक को अपनी संतान या अगली पीढ़ी को देनी चाहिए लेकिन अमूमन ऐसा होता नहीं है। और यहाँ से लेखकीय मंशा के दूसरे पाठ शुरू होते हैं जिसमें उपन्यास को अर्थवान बनाने की इच्छा छुपी है। यह उपन्यास इस बात की हिमायत भी करता है कि पूँजी या विरासत का हासिल हो जाना और बात है लेकिन उस पूँजी को समृद्ध और विस्तारित करना दूसरी बात है। धन-संपदा या ज़मीन के अतिरिक्त यह पूँजी बौद्धिक हो सकती है या फिर संस्कारों की भी। लेखक की यह मंशा ज्यादा प्रभावी है कि आदर्श का हस्तांतरण जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण है, उस महत्त्व को समझ कर उसके भूगोल को विस्तारित करना।

दरअसल करुणा के प्रति आस्था का अतिरेक प्राय: रोमांटिक-मार्मिकता के प्रति आकर्षित होता है। मार्मिकता का यह रोमांटिसिज़्म रचना के यथार्थ और उसके ध्येय के साथ छेड़छाड़ करने लगता है बल्कि उसका अतिक्रमण करने लगता है। इसलिए ज़रूरी चीजों के प्रति सजगता रचना की मददगार ही होती है। चिकित्सा शिक्षा मंत्री के ससुर के शव के दृश्य में बेटी का दुख का दृश्य उस लेखकीय मोह में नहीं गिरता है जहाँ पछाड़ खाकर गिरने या छाती पीट कर रोने के दृश्य बन सकते हैं या कुछ लेखक बना देते हैं। दुख के अतिरेक के दृश्यों की कृत्रिमता रचना में उपस्थित कथा-कोमलता को धक्का पहुँचाती है। पंकज बहुत सावधानी और सजगता से लेखकीय श्रम और कथा-कौशल के युग्म में ऐसे दृश्यों का रचाव संभव करते हैं। इसी तरह रेहाना का चरित्र भी इस तरह से रचा गया है कि उसके लिए पूरी तैयारी के साथ जगह बनाई गई है वरना ऐसे प्रयास सांप्रदायिकता की पक्षधरता की औपचारिक खानापूर्ति के प्रयास हो जाते हैं। ऐसे पात्रों का रचाव बहुत अतिरिक्त सावधानी की माँग रखता है। ऐसे पात्रों की आकस्मिक उपस्थिति के लिए उसके रचाव में प्रयास पूरे श्रम और सावधानी से करना पड़ता है। जिससे कि पात्र या दृश्य गढ़ा हुआ न लगे। पंकज ऐसी बातों और स्थिति के लिए बहुत धैर्य और गंभीरता से काम करते हैं।

इस उपन्यास में एक दिलचस्प बात और है कि इसमें प्राय: स्थितियाँ खलनायक हैं पात्र खलनायक की तरह कम नज़र आते हैं बल्कि जो नज़र आते हैं वे भी परिस्थितियों की बनावट और बुनावट के भीतर हैं। हालाँकि यह भी सच के काफी हद तक निकट है कि इस ग्लोबल विलेज की ऐसी नियति से व्यक्ति जुड़ गया है कि उसके आक्रमण और हताहत करने की मंशा और इन सबसे बचाने वालों के दावों की सम्मिलित स्थिति के बीच जीना हताश और स्तब्ध व्यक्ति के लिए अभिशाप हो गया है ।

इस समय व्यक्ति के जीवन में संकट चौतरफ़ा आ गए हैं और इनका आगमन और

स्थापना इतनी चतुराई और सुनियोजित है कि वे अपनी आकस्मिकता और तात्कालिकता में प्रकट होते हैं तो ज़ाहिर है कि इनके प्रतिकार के संकेत भी सर्वाधिक सजग और संवेदनशील सृजनधर्मी-दृष्टि के साथ प्रकट होंगे। यह सजग और संवेदनशील सृजनधर्मी-दृष्टि के श्रम-प्रयास पंकज अपने लेखन में जिस तरह से प्रकट कर रहे हैं इसे उनके लेखन के प्रति एक आश्वस्ति की तरह देखा जाना चाहिए। ख़ासकर इस मूल्य-विलोम समय में साहित्य में विचार के बखान की आवाज़ें कुछ ज़्यादा मद्धिम और थकी हुई होती जा रही है। मनुष्य की पक्षधरता के दावे के उपरांत आज का मनुष्य खुद को बेहद अकेला, अपर्याप्त और छोटा महसूस कर रहा है। इस समय साहित्य में सृजन के लिए साहस और संवेदना की सबसे ज्यादा ज़रूरत है, उसी का अकाल नज़र आता है। और ऐसे में आधुनिक मनुष्य की विडंबना के प्रति पंकज के लेखक-मन में वह जरूरी झटपटाहट है तो यह भले-से संकेत हैं। यहाँ हमें पंकज की संवेदना के सर्वथा आत्मीय रूप से नहीं बल्कि उपन्यास के संदर्भ में उनके समग्र भाव-बोध से संलग्न करके भी देखना होगा। यहीं से इस उपन्यास के दूसरे अर्थ भी खुलने लगते हैं जिससे उपन्यास के अभिप्राय तक पहुँचने में आसानी होती है।

000

एक मुकम्मल कथा

रमेश शर्मा

उपन्यास पढ़ना किसी पाठक के लिए एक तरह से चुनौतियों से भरा हुआ प्रसंग होता है। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि पढ़ते पढ़ते अंत में अनुभव और विचार के स्तर पर अगर मन को कुछ हासिल न हुआ तो मेहनत ज़ाया हो जाने का भय मन में बना रहता है। पंकज सुबीर के उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' को पढ़ते हुए शुरूआत से ही जिस किस्म के अनुभवों से मैं गुज़रा और जिस किस्म का पाठकीय स्वाद इस उपन्यास को पढ़ते हुए मेरे हिस्से आया, मेरे लिए वह अनुभव बहुत मूल्यवान है और आगे चलकर उस अनुभव की अर्थवत्ता देहदान जैसे विषय को लेकर जीवन में व्यापक भी हो सकती है।

पंकज सुबीर का उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' पढ़ते हुए बतौर पाठक हमें दो तरह के अनुभवों से गुज़रना होता है। एक तो पाठक को मेडिकल साइंस के स्टूडेंट हो जाने जैसा आभास यह उपन्यास शुरू से ही देने लगता है और एक वो अनुभव जिसमें पिता-पुत्री, पति-पत्नी जैसे रिश्तों की बारीकियों को समझने के अनेक अवसर पाठक को यहाँ मिलते हैं। जहाँ तक मेरी अपनी समझ है, इस उपन्यास को पढ़ते हुए इन दोनों ही अनुभवों से गुज़रना, जीवन के बिलकुल नए-नए अनुभवों से गुज़रने जैसा रहा है मेरे लिए।

हरेक मनुष्य के पास उसकी अपनी एक देह होती है और वह जानता है कि मृत्यु के उपरांत उसकी देह एक लाश में बदल जाती है और उसे श्मशान घाट में जला देने के बाद उसकी कहानी लगभग ख़त्म हो जाती है। पंकज सुबीर अपने उपन्यास में उस मृत देह की समाप्त-सी कथा को एक नया जन्म देते हुए उसे एक नए रूप में यहाँ प्रस्तुत करते हैं। देह जब कैडेवर के रूप में मेडिकल स्टूडेंट के सामने पहुँचती है, तब दरअसल एक नयी कहानी शुरू होती है, जिससे अमूमन मैं अब तक अनभिज्ञ ही रहा। यद्यपि मैं जब बेटी के फर्स्ट ईयर के एडमिशन के सिलसिले में डेंटल कॉलेज गया था, तब वहाँ के प्रबंधन ने मुझे एनाटॉमी डिपार्टमेंट का विज़िट कराया था। तब वहाँ मैंने फॉर्मलीन में डूबी लाश को पहली बार देखा था और एक अजीब तरह के अनुभव से भर गया था। इतनी गहराई से कभी उस पर मेरा ध्यान गया नहीं कभी। ऐसी अनभिज्ञता ज़्यादातर लोगों के हिस्से है। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि यह कहानी एनाटॉमी कक्ष तक ही सीमित होकर रह जाती है। इसे एक अलहदा प्रयोग कहा जा सकता है कि गंभीरता पूर्वक, लगभग शोध करते हुए हिन्दी के किसी रचनाकार का ध्यान इस रूखे से लगने वाले अनजान और लगभग अचिह्नित विषय की तरफ़ गया और उसने हिन्दी समाज के लिए पूरी तरलता और मार्मिक संवेदना के साथ इसे औपन्यासिक कथ्य के रूप में प्रस्तुत कर पढ़ने का एक अवसर दिया।

इस उपन्यास को पढ़ने के उपरांत एक बात पर मेरा ध्यान गया कि मेडिकल स्टूडेंट को छोड़ दें तो हम सब देहधारी होते हुए भी उपन्यास में आयी, कैडेवर की इस ज्ञान और विमर्श से भरी रोमांचक कथा से जीवन में लगभग अनभिज्ञ ही रह जाते हैं। इस अर्थ में अगर इस उपन्यास का मूल्यांकन करें, तो पंकज सुबीर हिन्दी समाज के सामने मेडिकल साइंस से जुड़े इस अनोखे विषय को पूरी मानवीय संवेदना के साथ हमारे सामने लेकर आए हैं, जो कि यहाँ एक उल्लेखनीय बात कही जा सकती है।

मनुष्य के कैडेवर हो जाने के बाद की कथा बहुत रोमांचक भी है और रोचक भी, जहाँ से पाठक के मन में एक नयी बहस जन्म लेती है कि क्या वह मृत्यु के उपरांत एक कैडेवर में बदल जाना चाहेगा? क्या वह अपनी देह को मेडिकल साइंस के विद्यार्थियों के लिए किसी मेडिकल कॉलेज को दान करना चाहेगा ? यह बहस समाज के पारंपरिक और कर्मकांडी परिवारों के लिए आज भी उपेक्षा और हिचक से भरा हुआ विषय है। मृत्यु उपरांत देहदान को लेकर जिस तरह की मनोदशाएँ कर्मकांडी परिवारों की रहती आई हैं, उस पर भी ये उपन्यास एक विमर्श को जन्म देता है और हमें भविष्य के एक नए अनुभव से जोड़ना भी चाहता है।

'एम्बॉल्मिंग' मेडिकल साइंस का एक शब्द है, पर उपन्यास में इस शब्द को व्यापक अर्थ प्रदान करने के लिए जिस तरह से एक मार्मिक घटना को कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह ध्यातव्य है। मंत्री जी के ससुर की लाश को गाँव ले जाने के प्रसंग में इस शब्द से पाठक यहाँ रू-ब-रू होते हैं। सामान्य मनुष्य की नज़र में एम्बाल्मिंग कितनी जटिल, पीड़ादायक और असहज कर देने वाली प्रक्रिया है, उसे मृत पिता की बेटी की नज़र से औपन्यासिक कथा में जिस तरह से दिखाने की कोशिश हुई है, वह अत्यंत मार्मिक होते हुए भी इतनी रोचक है कि मन एकदम आगे की घटनाओं को जानने समझने के लिए बेचैन होने लगता है। मन में सवाल आता है कि क्या ऐसा हमारे साथ भी कभी हो

सकता है?

एम्बाल्मिंग की प्रक्रिया देखकर, बेटी जो मंत्री जी की पत्नी है, अपने पिता की एम्बाल्मिंग करने से डॉक्टर अर्चना को रोक देती है और उसके कंधे पर सर रखकर रोने लगती है। पिता की मृत देह को भी किसी किस्म की तकलीफ़ न पहुँचे, इस तरह की भावना किसी बेटी के भीतर ही हो सकती है। इस प्रसंग में इस रिश्ते को लेकर एक संवाद का ज़िक्र करना यहाँ लाजिमी होगा - 'पिता समूची पृथ्वी पर वह एकमात्र पुरुष, जिस पर कोई स्त्री आँखें बंद कर विश्वास कर सकती है। बेटियों के लिए पिता नहीं जाते बल्कि उनका विश्वास चला जाता है। ईश्वर ने पृथ्वी पर हर स्त्री को असुरक्षित और एकाकी ही भेजा है। पुरुष से भरे हुए इस जंगल में हर स्त्री एकदम अकेली होती है। केवल एक पिता ही तो होता है, जो इस भयानक जंगल में उसे रौशनी की तरह दिखाई देता है।'

पिता पुत्री के रिश्ते को लेकर इस उपन्यास की बुनावट, उसके संवाद जितने रोचक हैं, उतने ही विस्मयकारी भी। पिता डॉक्टर राम भार्गव और पुत्री डॉक्टर अर्चना भार्गव के बीच जिस तरह के संवाद हैं, वे सारे संवाद पिता-पुत्री के रिश्ते को परम्परागत रूप से परे जाकर समझने के लिए न केवल विमर्श योग्य हैं बल्कि बहुत आह्लादकारी ढंग से हमें चकित भी करते हैं। इन संवादों के माध्यम से इस रिश्ते को और गहराई से समझने के कई अवसर भी यहाँ मिलते हैं।

अगर आप किसी पुत्री के पिता हैं या आप किसी पिता की पुत्री हैं तो आपके भीतर यह सवाल उत्पन्न हो सकता है कि क्या मैंने इस रिश्ते को इस तरह भी कभी देखा है? क्या मैंने इतने लोकतान्त्रिक तरीकों से कभी इस रिश्ते के मर्म को जाना समझा है? निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि पंकज सुबीर ने संवादों और घटनाओं के माध्यम से इस रिश्ते को नए ढंग से यहाँ प्रस्तुत किया है।

पति-पत्नी के रिश्तों को लेकर भी यह उपन्यास एक नया नज़रिया हमें देता है। पति डॉक्टर राम भार्गव और पत्नी श्रीमती पुष्पा भार्गव के पारिवारिक जीवन प्रसंगों के माध्यम से पति-पत्नी के रिश्तों को समझने के कई-कई अवसर हमें यहाँ मिलते हैं। इस रिश्ते में अगर प्रेम के लिए जगह है, तो वह तमाम असहमतियों के बावजूद भी जीवन में बना रहेगा। वह कभी टूट नहीं सकता। जीवन के हर मोड़ पर पुष्पा भार्गव अपने पति से असंतुष्ट और असहमत नज़र आती हैं जबकि राम भार्गव इस असंतुष्टि और असहमति को सहर्ष स्वीकारते हुए उसे हँसते-हँसते टाल जाते हैं।

हर व्यक्ति के जीने का ढंग अलग अलग होता है। ज्यादातर लोग यहाँ पुष्पा भार्गव की तरह दुनियादार ही होते हैं। कोई दुनिया के ट्रेक से बिलकुल अलग-थलग चलने वाला भी हो सकता है, डॉक्टर राम भार्गव के जीने का ढंग बिलकुल इसी तरह का है। उन्हें चिकित्सा के पेशे में पैसे के पीछे भागना बिलकुल पसंद नहीं। सरकारी नौकरी के अलावा उनका कोई निजी क्लिनिक तक नहीं। कला की तरफ उनका गहरा झुकाव है। संगीत सुनना उन्हें इसलिए पसंद है कि इससे जीवन सुन्दर बनता है। एक जगह अपनी पत्नी द्वारा टोके जाने पर वे कहते भी हैं "कला समय बर्बाद करने के लिए नहीं होती, समय को बेहतर बनाने के लिए होती है।" उनकी पत्नी पुष्पा भार्गव को इन्हीं बातों से घोर असहमति है और अक्सर उन्हें चिढ़ते हुए भी उपन्यास के संवादों में दिखाया गया है।

पर इन सबके बावजूद राम भार्गव के मन में अपनी पत्नी के लिए जो प्रेम है, उस प्रेम को पिता-पुत्री के बीच हुए निम्न संवाद के माध्यम से आप महसूस कर सकते हैं- "हम वही बनते हैं जो हमें हमारी जिंदगी शुरू के बीस-पच्चीस वर्षों में बनाती है। हमारा स्वभाव, हमारी आदतें, हमारी पसंद-नापसंद सब कुछ हमारे जीवन के शुरू के पच्चीस सालों में तय हो जाता है। तुम्हारी मम्मी वही हैं जो उनको जिंदगी ने बना दिया है। वह अपनी मर्ज़ी से ऐसी नहीं हुई हैं। जब भी कोई हमें कड़वा बोलता है, तो असल में वह हमको कड़वा नहीं बोल रहा होता है, जिंदगी ने उसके साथ जो अन्याय किया है, वह उस अन्याय के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दे रहा होता है। वह अपने आप में नहीं होता है। हम यह समझ लेते हैं कि यह कड़वाहट हमारे प्रति है, जबकि हम अगर ध्यान से देखेंगे, तो पता चलेगा कि वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है।"- डॉक्टर राम भार्गव ने अर्चना के कंधे को धीमे से थपथपाते हुए कहा।

उपन्यास में मेडिकल साइंस के दो शब्द 'साइटस सॉलीटस' और 'साइटस इन्वर्सस' पर गहरा विमर्श है जो रोचक भी है और आह्लादकारी भी। थौरेक्स और एब्डोमन रीज़न के ऑर्गन्स की नॉर्मल पोजिशन को 'साइटस सॉलीटस' कहा जाता है जबकि इसके मिरर इमेज वाली बॉडी को 'साइटस इन्वर्सस' कहा जाता है। 'साइटस इन्वर्सस' की बॉडी की श्रेणी में आने वाले इंसान का दिल बाएँ तरफ ना होकर दाईं तरफ होता है। दस हज़ार में से एकाध मनुष्य की बॉडी इस तरह की हो सकती है। इस श्रेणी के लोग अनोखे इंसान होते हैं जो दुनिया को एक अलग ही नज़र से देखने की कोशिश करते हैं। डॉ. राम भार्गव, डॉ. अर्चना जैसे लोग इसी श्रेणी में आते हैं, जो चिकित्सा के पेशे में होते हुए भी पैसे के पीछे बिल्कुल नहीं भागते। ऐसे लोग अपने जीवन में कला से जुड़े घटकों को बहुत महत्त्व देते हैं, उनके लिए मानवीयता सर्वोपरि है। दुर्भाग्य है कि ऐसे लोगों को दुनिया उल्टी नज़र से देखती है और उन्हें पागल करार देती है। पुष्पा भार्गव का नज़रिया भी दुनिया के आम लोगों के नज़रिए से मेल खाता है, जो बात-बात पर अपने पति डॉक्टर राम भार्गव को पागल कहती हैं।

इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि वह उन्हें प्रेम नहीं करती। पत्नी के मन में भी राम भार्गव के लिए उतना ही प्रेम मन के किसी कोने में संचित है जितना कि डॉक्टर राम भार्गव के भीतर अपनी पत्नी के लिए है। बीमार पत्नी द्वारा अपनी बेटी अर्चना को कहे गए इस संवाद के माध्यम से इसे हम यहाँ समझ भी सकते हैं- 'सुन ले बेटा... आज मेरी बात सुन ले बेटा। अपने पापा का अब तुझे बहुत ध्यान रखना है, अभी तक तो मैं सहेजती रही उनको, सँभालती रही। लड़ती रही, झगड़ती रही उनको दुनियादार बनाने के लिए। पर अब

कोई नहीं होगा, जो उनकी दुनिया और असली दुनिया के बीच पुल बन सके। अब वे कहीं अपनी ही दुनिया में खो न जाएँ।' - पुष्पा भार्गव की आवाज़ जैसे किसी गहरे कुएँ से आ रही है, काँपती हुई-सी।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए कई प्रकार के रिश्तों की महक हमें भीतर से गुदगुदाती है। डॉक्टर अर्चना और डॉक्टर रेहाना का रिश्ता भी हमें रिश्तों के प्रति आश्वस्ति से भर देता है। जब डॉ. रेहाना डॉ. अर्चना को अप्पी कहकर संबोधित करती है तो यही भाव हमारे भीतर बार-बार ध्वनित होता है। जीवन के उतार-चढ़ाव को लेकर उनके बीच के संवाद इतने आकर्षक लगते हैं कि उन संवादों को पढ़ते हुए हम कई बार रुक कर उन पर सोचने लगते हैं। हम अपने आपको वहाँ प्रक्षेपित करने लग जाते हैं। घटनाओं को व्यक्त करने का कौशल भी कई बार संवादों को बहुत आकर्षक बना देता है। पंकज सुबीर ने इन आकर्षक संवादों के माध्यम से उसी कला कौशल का परिचय दिया है। लेखक के भीतर जीवन को देख पाने की एक गहरी समझ होनी चाहिए, इसका एहसास भी वे यहाँ हौले से अपने पाठकों को देने लगते हैं। ज़ाहिर सी बात है कि उनके भीतर जीवन को देख और समझ पाने की वह कला विद्यमान है।

पाठक थोड़ा भावुक भी होता है, पंकज सुबीर इस बात को बखूबी समझते होंगे। इसके बावजूद जीवन में डॉक्टर अर्चना के एकाकी हो जाने की जो कथा है, उस कथा को उपन्यास में लाना उन्होंने क्यों ज़रूरी समझा, यह पाठकों के मन में सवाल पैदा कर सकता है। इस सवाल का उत्तर ढूँढ़ने के लिए पाठकों को उपन्यास के कई संवादों की पड़ताल करनी होगी।

एक संवाद जिसे यहाँ परखा जाना चाहिए - 'बाहर की दुनिया समझती थी कि मैं और तेरे पापा इतना लड़ते झगड़ते हैं, हमारे बीच ज़रा सा भी प्रेम नहीं है। दुनिया को बस वही दिखता है जो बाहर होता है, अंदर क्या है यह कभी पता नहीं चलता। दुनिया को जो बाहर दिखता है, वह सच नहीं होता बेटा, वह कभी सच नहीं होता। हम दोनों बेमेल नहीं हैं, हम दोनों तो एक दूसरे के लिए ही बने हैं। बेमेल नहीं हैं हम दोनों।' पुष्पा भार्गव ने अपनी आँखें बंद कर रखी हैं। शायद वे भी अपनी बेटी के आँसू नहीं देखना चाहतीं। कई बार होता है ऐसा कि हमें पता सब होता है पर हम सामने वाले को इस बात का एहसास नहीं होने देना चाहते हैं कि हमें पता है। दर्द की कहानियों में अक्सर ऐसा होता है कि दोनों पक्ष एक दूसरे से वह सब कुछ छुपाने की कोशिश करते हैं जो उनको पता होता है।

इस उपन्यास में एक तरह से संवादों के माध्यम से हर एक पात्र को जस्टिफाई किया गया है। वह ऐसा है तो क्यों है ? वह ऐसा है अगर तो क्या वह ग़लत है?

एक जगह डॉ. अर्चना और डॉक्टर रेहाना के संवाद में डॉक्टर रेहाना की मम्मी का ज़िक्र आता है जो पिकनिक में जाने के दरमियान दो लोगों के बजाय छह लोगों का खाना बना कर उन्हें दे देती है। हँसी-ठिठोली में रेशमा अपनी मम्मी की शिकायत करने लगती है कि मम्मी की आदत ऐसी ही है, वह हमेशा दो की जगह चार-छह लोगों का खाना यह कहकर दे देती है कि क्या पता कुछ लोग और आ गए तो ! ऐसा होना सम्भव भी है। शाज़िया उसके शौहर और उनके दो बच्चे भी पिकनिक स्थल पर जब दिख जाते हैं तब वे सभी मिलकर खाना खाते हैं। रेशमा अपने मम्मी की आदत को फिर यहाँ जस्टिफाई भी करने लगती है।

डॉक्टर अर्चना जो 'साइटस इन्वर्सस' श्रेणी के इंसानों को बिलॉन्ग करती हैं और शेखर जो 'साइटस सॉलीटस' श्रेणी के इंसानों को बिलॉन्ग करते हैं, उनके बीच का प्रेम असहमतियों और आशंकाओं की वजह से ही बाधित हुआ। उपन्यास इस बात के लिए भी विमर्श की माँग करता है कि केवल असहमतियों और आशंकाओं की वजह से किसी पात्र को जीवन में पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता। डॉ. राम भार्गव और पुष्पा भार्गव के रिश्तों को उदाहरण के तौर पर हम अगर लेकर देखें, तो भी तमाम असहमतियों के बाद उनके बीच का प्रेम बरकरार ही रहता है। इस लिहाज से यह उपन्यास एक उम्मीद भी जगाता है कि आगे चलकर संभवत: डॉ. अर्चना भार्गव का घर किसी दिन किसी के साथ बढ़ती उम्र में भी बस जाए।

उपन्यास में और भी बहुत से ऐसे रोचक संवाद हैं, बहुत सी ऐसी घटनाओं का चित्रण है जिन पर चर्चा करें तो बात बहुत लंबी हो जाएगी। फिर भी इस बात का ज़िक्र करना ज़रूरी है कि गीतों और गजलों का इस उपन्यास में बखूबी प्रयोग किया गया है जो रोचक बन पड़ा है। बहरहाल पाठकों को इस उपन्यास को पढ़कर ही उपन्यास का पूरा आनंद लेना होगा।

000

न जीवन की डगर न यात्रा का पता

जसविन्दर कौर बिन्द्रा

पंकज सुबीर ऐसे लेखक हैं, जिनकी किसी भी रचना को पाठकों द्वारा हाथों-हाथ लिया जाता है। उनका नवीन उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' इसी की अगली कड़ी है। हिन्दी साहित्य में शायद पहली बार किसी ने मानव की शरीरिक-संरचना के मेडिकल पक्ष को आधार बना कर, एनाटॉमी जैसे विषय पर रचना की। बेशक उपन्यास एनाटॉमी से संबंधित है परन्तु इसमें मानवीय सोच के अलग पहलू देखने को मिलते हैं।

युगों-युगों से धरती पर एक प्रकार की मानवीय शरीरिक सरंचना के बावजूद, न कोई मानवीय स्वभाव को पूरी तरह से समझ पाने का दावा कर पाया है और न ही इस शरीर सरंचना के भीतर क्या छिपा है, उसे जान पाया है। एनाटॉमी में मेडिकल की पढ़ाई कर रहे विद्यार्थियों को कैडेवर (मृत शरीर) की चीर-फाड़ कर, मानव शरीर की संरचना को समझाया जाता है। जिससे वे भीतरी नसों, तंतुओं, हड्डियों के साथ, उसे संचालित करने वाले तंत्र को जान सकें। कैडेवर का डिसेक्शन करके, मेडिकल के विद्यार्थी शारीरिक संरचना को तो भली-भाँति समझ लेते हैं परन्तु क्या वे मानवीय मन की सूक्ष्मताओं को समझ पाते हैं....? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर विज्ञान के द्वारा नहीं ढूँढ़ा जा सकता, आज तक ढूँढ़ा भी नहीं गया। इसकी तलाश अन्य कई अनुशासनीय अध्ययनों द्वारा की जाती रही, जिनमें

आध्यात्म, फ़िलासफी, मनोविज्ञान और किसी भी भाषा का साहित्य प्रमुख रूप से उल्लेखनीय रहे।

उपन्यास भोपाल के गांधी मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग की विभागाध्यक्ष डा. अर्चना भार्गव की कर्मस्थली और जीवन यात्रा को केंद्र में रखता है। एचओडी के रूप में डा. अर्चना भार्गव को मालूम है कि पहले वर्ष के विद्यार्थियों के लिए सेशन के एकदम आरंभिक दिनों में ही कैडेवर को देखना-छूना और उनका डिसेक्शन करना बहुत कठिन होता है। ऐसे समय में अक्सर दो-तीन विद्यार्थियों का बेहोश जाना स्वाभाविक है। इसलिए उसने अपनी ओर से कोशिश की, विद्यार्थियों को आरंभ में ही डिसेक्शन-रूम में ले जाकर, हाथों में स्केलपल या सर्जिकल-ब्लेड थमा देना उचित नहीं। पहले वह दो-तीन दिन उसे देखें, छूएँ, फिर उसका निरीक्षण व परीक्षण करना आरंभ करें। इसके पहले विद्यार्थियों को एक ओथ दिलवाई जाती है, जिससे वे उस मृत शरीर के प्रति आभार व श्रद्धांजलि प्रकट करना भी शामिल है, जिसके द्वारा वे मानवीय शारीरिक संरचना से परिचित हो रहे हैं। उपन्यास ऐसे कई मेडिकल कार्यों और तौर-तरीक़ों की जानकारी कथानक के माध्यम से देता है, जो कहीं भी बोरिंग या समझने में कठिन प्रतीत नहीं होते। किसी भी मृत देह की एम्बॉल्मिंग कर, उसे कैसे कुछ घंटों के लिए या लंबे समय तक सहेज कर रखा जाता है। एम्बॉलिमंग की सारी मेडिकल प्रक्रिया को भी लेखक ने सरलता से समझाने का प्रयास किया है।

एनाटॉमी विभाग से पिछले दो दशकों से जुड़ी अर्चना के पास यहाँ की रूटीन घटनाओं, विद्यार्थियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखना, उन्हें सुविधापूर्वक समझाना, अपने विभाग के अन्य प्राध्यापकों के साथ कामकाजी संबंधों के साथ, एचओडी होने के नाते उसे अनेक बार सरकारी अधिकारियों से भी निपटना पड़ता। मंत्रियों व आला अधिकारियों को अपनी कठिनाईयों व ज़िम्मेवारियों को समझाना अक्सर बहुत मुश्किल हो जाता है। जिनमें एक मामला मंत्री के ससुर के शव को वहाँ से दूर महाराष्ट्र के उनके पैतृक गाँव में पहुँचाने के लिए एम्बॉल्मिंग करना रहा। यह प्रक्रिया अत्यन्त कठिन, लंबी और उबा देने वाली है, जिसे किसी के घर पर अन्य लोगों के सामने नहीं किया जा सकता, परन्तु उसके बार-बार समझाने के बावजूद उसे मंत्री के ससुर का मामला होने के कारण मंत्री निवास जाना ही पड़ा।

उपन्यास का मुख्य केंद्र अर्चना और उसके पापा राम भार्गव का आपसी रिश्ता है। माँ-बेटी के रिश्ते को लेकर हमेशा से बहुत कुछ लिखा जाता रहा, परन्तु बाप-बेटी का रिश्ता भी उतना ही निकटवर्ती और भावपूर्ण होता है। हर लड़की के जीवन में पिता का स्थान सुरक्षा के भाव से जुड़ा होता है। पिता का साया सिर पर होना, हमारे समाज में बच्चों के लिए, परिवार के लिए, अपने आप में एक मुकम्मल एहसास है, विशेषकर बेटियों के लिए। भले पिता क्रोधी स्वभाव का ही हो, बेटियाँ उससे डरती ही हों, फिर भी सिर पर पिता का हाथ उन्हें समाज में, ससुराल में या दुख-सुख के समय अवलंबन का एहसास देता है। विवाह के बाद भी असहाय अवस्था में आम तौर पर स्त्रियाँ यही कहती हैं, 'अब मैं कहाँ जाऊँ, मेरे तो माँ-बापू भी नहीं है।' या हर मुसीबत की घड़ी में वह अपने पिता की ओर देखती है। इसलिए बाप-बेटी का अटूट नाता है, भले इस पर लिखा कम गया हो परन्तु इस रिश्ते की निकटता की सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। शिक्षिका माँ और डाक्टर पिता की इकलौती संतान के रूप में अर्चना पर अधिक प्रभाव अपने पिता के शांत स्वभाव, कलात्मक रुचियों और ज़िंदगी को पैसे के पीछे की दौड़ का हिस्सा बनाने की बजाय, सुकून व चैन से, कम आवश्यकताओं के साथ जीने जैसी भावनाओं का पड़ा। हालाँकि उसकी माँ पुष्पा और पिता में हर समय कहा-सुनी होती रही क्योंकि माँ को पिता का व्यवहार दुनियादारी से परे, अव्यावहारिक अधिक लगता रहा। जो सरकारी डॉक्टर की नौकरी के बाद का समय गाने-बजाने, संगीत सुनने और घूमने में लगाते रहे, जबकि दूसरे डाक्टर ऐसे समय में बाज़ारवाद की दौड़ में शामिल होकर, कई स्थानों पर प्रैक्टिस करते, प्रायोजित कंपनियों की दवाएँ लिख और टेस्ट करवा कर आसानी से कमीशन ले, दिनों-दिन धनवान हो रहे हैं। वहाँ राम भार्गव अपनी सरकारी तनख्वाह से ही संतुष्ट जीवन जी रहे हैं।

मां-बाप की हर समय की इसी कहा-सुनी के कारण अर्चना ने कॉलेज में पढ़ते समय शेखर के दो वर्ष के साथ को अलविदा कह दिया क्योंकि वह और शेखर एक-दूसरे के विपरीत स्वभाव के थे। शेखर भौतिकवादी जीवन जीने का अभिलाषी और अर्चना अपने पिता समान कलात्मक रुचियों वाली। उसे लगा, उन दोनों का रिश्ता भी हमेशा उसके माँ-बाप समान लड़ते-खीझते ही बीतेगा। जब उसे इस बात का एहसास हुआ कि विपरीत स्वभाव के होने के बावजूद माँ-बाप दोनों एक-दूसरे से अत्यन्त प्यार करते रहे है, तब तक अर्चना के जीवन में एकाकीपन दाखिल हो चुका था। असाध्य बीमारी के कारण जब माँ साथ छोड़ गई तब पापा भी जैसे जीना भूल गये। वो गीत-संगीत ही भूल गये, जिसके चलते रोज़ाना दोनों में आपसी नोंक-झोंक होती थी। फिर रिटायर्ड होने के बाद पापा भी किसी अनजाने सफ़र पर निकल गये और नितांत अकेली रह गई अर्चना...। कालेज के बाद वापसी पर रात-रात भर उदास व मैलोडी गीत, नज्में व ग़ज़लें सुनते हुए अब वह उम्र के मध्य पड़ाव पर पहुँच चुकी है।

पिछले एक वर्ष से उसके विभाग में आयी असिस्टेंट प्रोफ़ेसर युवा रेहाना ने अपने चुलबुलेपन से अर्चना के अकेलेपन में सेंध लगानी शुरू कर दी। जो उसे ज़बरदस्ती अपने साथ कभी घूमने ले जाती और अक्सर माँ के हाथ का बढ़िया खाना डिब्बों में भर-भर कर लाने लगी। उसके साथ बातें करते हुए समय बिताने लगी। रेहाना के रूप में लेखक ने आज के समय की युवा लड़की को पेश किया, जो जीवन से भरपूर होने के साथ बेहद संवेदनशील व गंभीर सोच रखने वाली भी है। जो बात अर्चना को इतने लंबे समय के बाद समझ में आई, उसे रेहाना ने जल्दी ही जान

लिया कि बड़ी ख़ुशियों की प्राप्ति के लिए, हम लोग अक्सर छोटी-छोटी ख़ुशियों व रिश्तों को कम आँक लेते हैं या उनकी ओर ध्यान नहीं देते। माँ-बाप की तरह का जीवन दुहराना न पड़े, इसलिए उसने शेखर के साथ को बग़ैर आज़माये ही अलविदा कह दिया। यदि दो वर्ष का साथ, उसके भीतर प्यार की आँच को आज भी ज़िंदा रख पाया, तो थोड़ी सी कोशिश दोनों ओर से किए जाने पर वे भी सफल गृहस्थ बन ही जाते, जैसे उसके माँ-बाप रहे। इस बात को समझने में अर्चना चूक गई और उसके हिस्से में तमाम उम्र का अकेलापन आया, जो उसने स्वयं ही चुना।

उपन्यास एक और मुद्दे की ओर भी इशारा करता है कि हर समय शवों के साथ दिन-रात बिताते हुए, डाक्टरों का एहसासों व भावनाओं से रिक्त हो जाना स्वाभाविक है। धड़कन से परे, निर्जीव पड़ा कैडेवर, केवल मात्र मानवीय मशीनी तंत्र रह जाता है। इसलिए डाक्टरों के लिए कोई भी बीमारी बहुत बड़ी नहीं, मौत अचंभा नहीं और परिवार जनों का बिलखना हैरान करने वाला नहीं रह जाता। धीरे-धीरे संवेदनाओं की अनुभूति असर खोने लगती है और डाक्टर्स भी निर्जीवता की ओर बढ़ सकते हैं, जैसाकि 'ख़ामोशी' फ़िल्म में पागलों की देखभाल करने वाली नर्स वहीदा रहमान, फ़िल्म के अंत में स्वयं पागल हो जाती हैं। ऐसा डर रेहाना को अपने से अधिक अर्चना के बारे में सोचते हुए लगता है। परन्तु अर्चना गीत-संगीत से इस क़दर जुड़ी हुई है, इन्हीं कलात्मक रुचियों ने न उसे अभी तक ज़िंदा रखा है बल्कि उसे संवेदनशील भी बना रखा है। तभी जब मंत्री की पत्नी अपने पिता के शव को भी काटने की बात सुन, तकलीफ़ को महसूस कर रोने लगी, उसे दिलासा देते-देते ख़ुद अर्चना भी ज़ार-ज़ार रोने लगी। उस समय दो बेटियाँ अपने-अपने पिता का दर्द महसूस कर रो रही थीं। उसकी संवेदना तब भी नज़र आई, जब कलेक्टर प्रवीण गर्ग की बहन अपने पिता को आख़िरी बार देखने के लिए आयी और उसकी हालत देख, अर्चना प्यार से उसे सांत्वना देने लगी। इसके माध्यम से लेखक इस ओर हमारा ध्यान दिलाना चाहता है कि बाज़ारवाद और भौतिक सुखों की भागदौड़ में, अधिक प्रैक्टिकल और केवल निजी स्तर पर जीने वालों को ख़ुद को संवेदनहीन व मशीन बनने से रोकने में यही कलात्मक रुचियाँ ही हमारे काम आयेंगी। हमें इनके लिए समय निकालना चाहिये। साहित्य व कलाएँ ही अनुभूति व संवेदनाओं को बरकरार रखते हैं।

प्रवीण गर्ग के रूप में लेखक ने एक सरल, सहज व्यक्ति को चित्रित किया, जो उच्च अधिकारी से पहले एक सुहृदय इन्सान है। वह अपना सामाजिक व नैतिक कर्तव्य समझ कर 'देहदान' को प्रोत्साहित करने के लिए आगे आता है। दूसरों को उसी प्रकार सम्मान देना, उसके स्वभाव का हिस्सा है। ऐसे लोग आज भी मौजूद है, भले उनकी मात्रा बेहद कम हो गई हो। हालाँकि उच्च अधिकारी वर्ग में तो और भी कम मिलते है।

उपन्यास 'मृत देह' की मेडिकल क्षेत्र में अति आवश्यकताओं को देखते हुए, एक प्रकार से 'देहदान' के लिए प्रोत्साहित भी करता है। मानव शरीर में नित्यप्रति खोज के लिए समाज में देहदान की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना ज़रूरी है। जबकि यह कार्य अब तक केवल फार्म भरने और मीडिया पर तस्वीरें व पोस्ट डालने तक ही अधिक सीमित होकर रह गया है।

उपन्यास में भोपाल शहर की सुगंध बसी है। यहाँ पुराने व नये भोपाल का अंतर, उसकी संस्कृति, विरासत, ख़ासियत, भोपालीपन के साथ, झीलों, नदियों व पहाड़ों की ख़ूबसूरती, यहाँ का शाही अंदाज़, धर्मों में परस्पर भाईचारे व अपनत्व का भाव, जो किसी भी पुराने शहर की रूह होते हैं, लेखक ने उन सभी को कहीं न कहीं, किसी घटना या भाव के माध्यम से कथानक के साथ गूँथ कर बयान किया। इसमें भोपाल के कई पुराने-नए रास्तों की जानकारी मिलती है। आज जब हमारे यहाँ की सरकारें अपने भारतीय पुराने शहरों की संस्कृति को भुला कर, कभी उन्हें पैरिस, स्विट्ज़रलैंड या यूरोप का कोई नामचीन शहर बनाने या जगहों व शहरों के पुरानों नामों को बदल कर, उनका हिन्दूत्वकरण करने पर तुली हैं। ऐसे में इतिहास में अपनी उपस्थिति दर्ज करने वाले शहर भी कहीं खोते जा रहे हैं।

उपन्यास के अंत में अपनी यात्रा में आगे बढ़ गये राम भार्गव का पार्थिव शरीर के रूप में लौटना और गांधी मेडिकल कालेज में ही देहदान की बात लिखना भी चौंका जाता है। परन्तु उसी पत्र के साथ एकदम उपन्यास का अंत कर देना, उससे अधिक असमंजस में डाल देता है। लेखक का पाठकों को संभलने का मौक़ा दिये बिना ही उपन्यास का अंत कर देना, उसकी कला-शैली का नमूना कहा जा सकता है।

उपन्यास में एक से बढ़ कर एक ग़ज़लों, नज़्मों, गीतों के साथ, गायकों की गायकी की बारीकी, लय, ताल, उतार-चढ़ावों के साथ, उनमें पूरी तरह से उतरते-डूबते जाना, स्वर, लय और शब्दों के साथ अपने जीवन के ऐसे लम्हों को बार-बार याद करना, जिन्हें हम कभी भूलना ही नहीं चाहते, जैसे वही हमारे जीवन की वास्तविक पूँजी हों। शब्दों व संगीत में कितनी ताक़त है, वह हमें हमारे माहौल से, समय से, कहीं भी, किसी और ही दुनिया में ले जाने की ताक़त रखता है। तभी तो ओशो ने गुरु नानक के लिए कहा, 'नानक ने केवल गाकर ही परमात्मा को पा लिया।' जब बोल, स्वर और लय आपकी धड़कन के साथ एकसुर हो जायें, तो दुख-दर्द से निजात पाकर, आप स्वयं को भूल कर, इस पूरी कायनात की ताल का एक हिस्सा बन, उसी में खो जाते हैं। जब ऐसे पलों को जीना, महसूस करना व इनमें खो जाना आ जायें तो फिर 'नानक' की राह पर भी आसानी से चला जा सकता है। ज़िंदगी जीना पहले से अधिक सरल हो जाता है।

मानव शरीर संरचना एक जैसी होने के बावजूद, सभी इन्सान, मनुष्य, आदमी, बंदे या व्यक्ति के रूप में अलग-अलग हैं। इतने अलग... कि कहीं बार ताउम्र साथ रहने पर भी आदमी, आदमी को नहीं जान पाता, समझ नहीं पाता। प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-यात्रा वह नहीं होती, जैसी वह चाहता है, परिस्थितियाँ, समय व स्वभाव उसे अपने तरीक़े से अंत तक पहुँचाते हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

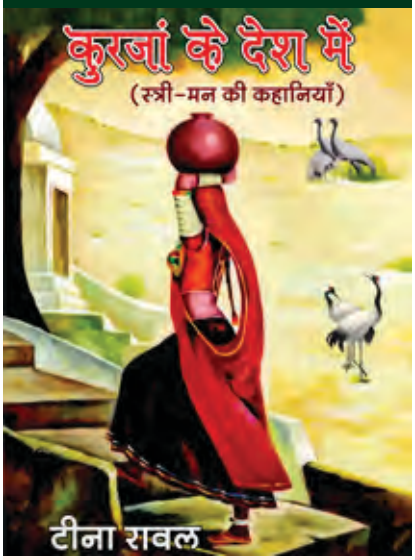

(कहानी संग्रह)

कुरजाँ के देश में

समीक्षक : रणविजय राव

लेखक : टीना रावल

प्रकाशक : साहित्यागार, जयपुर

रणविजय राव
संपादक
लोकसभा सचिवालय
106 बी, संविधान सदन,
नई दिल्ली - 110001
मोबाइल- 9891627796
ईमेल- ranrao1973@gmail.com

आज हम 21वीं सदी के तीसरे दशक में हैं। देश डिजिटल हो गया है। ऐसे में सुदूर गाँव का आदमी भी सोशल मीडिया के माध्यम से विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से आसानी से जुड़ सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्थिति इतनी बदल गई है या यूँ कहें कि हमने इतना विकास कर लिया है कि हम अब 'ग्लोबल विलेज' के वासी हो गए हैं। पर नहीं बदली है तो हमारी सोच, हमारी मानसिकता, समाज में महिलाओं की स्थिति और उनके साथ हो रहे दोयम दर्जे का व्यवहार।

युवा कथाकार टीना रावल के हालिया प्रकाशित कहानी संग्रह "कुरजाँ के देश में" ग्लोबल होते या यूँ कहें कि ग्लोबल हो चुके गाँव में, समकालीन समाज में व्याप्त महिलाओं की स्थिति, उनके जीवन की विडंबनाओं, उनकी परिस्थितियों, विवशताओं, परंपरा के नाम पर उनके साथ हो रहे शोषण, अत्याचार, अमानवीय व्यवहार, उनकी इच्छा-आकांक्षा, उनके मन की पवित्रता आदि विषयों को केंद्र में रखकर गुथी-बुनी कहानियाँ हैं। संग्रह में कुल 17 कहानियाँ हैं और प्राय: सभी स्त्री-मन की कहानियाँ हैं।

बेशक भूमंडलीकरण और बाजारवाद का बढ़ता प्रभाव हमारे समाज एवं ग्रामीण जीवन पर पड़ा है। आज लिखी जा रही कहानियों में स्त्री के जीवन संघर्ष और स्वप्न मुखर रूप से व्यक्त हो रहे हैं, उसके बदलते स्वरूप का चित्रण भी दिखता है। यह भी सच है कि आज की स्त्रियाँ पहले की तरह बेड़ियों में जकड़ी हुई नहीं रह गई हैं, पर वह अभी भी पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं हुई हैं। स्त्रियों के संघर्षों और सपनों का स्वरूप बदला हुआ भले नजर आ रहा हो, पर बात आज भी वही है जो पहले थी। यह बात टीना रावल के इस संग्रह को पढ़ने के बाद और पुख्ता हो जाती है।

टीना सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन करती अपनी कहानियों से हमें आश्वस्त करती हैं कि समाज में बदलाव हो रहा है। पढ़-लिख गई स्त्रियाँ परंपराओं को, पुरातन मान्यताओं में जकड़े सामाजिक बेड़ियों को तोड़ रही हैं। वह अपने जीवन संघर्ष और सपनों के विविध रूपों को उद्घाटित कर रही हैं। 'वृंदा का फैसला' कहानी में रूढ़िवादी परिवार में मर्दों द्वारा औरत को अपनी मिल्कियत समझने की मानसिकता उजागर हुई है। इस मानसिकता से पढ़ी-लिखी वृंदा अपने हौसले, हिम्मत एवं ज़ज़्बे के बल पर बाहर निकलती है और अपना रास्ता खुद बनाती है। वह अपने सपनों को टूटते देखना नहीं चाहती थी।

संग्रह की पहली कहानी 'माँ का बक्सा' अपने ही बेटे-बहू द्वारा प्रताड़ित की जा रही एक माँ की कहानी है। अपने ही औलाद, अपनी ही बहू किस हद तक क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार कर सकते हैं, इसका जीता-जागता उदाहरण है यह कहानी। ग्लोबल हो चुके गाँव का यह वीभत्स एवं घिनौना रूप है। इस कहानी का सकारात्मक पक्ष यह है कि उसी माँ को जब वृद्धाश्रम में भरपूर भोजन, उचित देखभाल एवं दुख-सुख साझा करने वाले लोग मिले तो वह ऊर्जा से भर गई जिसकी सक्रियता देखते ही बनती थी।

संग्रह की कहानियाँ किसी गाँव या कस्बे की कहानी होते हुए भी बड़े फलक की कहानियाँ

हैं। गाँव-कस्बों का जीवन दूर से बेशक शांत और खुशहाल दिखाई दे, पर आमतौर पर ऐसा होता नहीं। प्राय: स्त्रियाँ अपनी स्थिति को अपनी नियति समझ कर अपने विरुद्ध हो रही प्रताड़ना, अन्याय को चुपचाप सहती रहती हैं। ऐसे में अमानवीय व्यवहार को देखकर टीना जैसी एक संवेदनशील रचनाकार का तिलमिलाना स्वाभाविक है।

टीना राजस्थान की रहने वाली हैं। अपने आसपास के किसी गाँव में समाज का ताना-बाना, रस्मों-रिवाज, परंपरा का हवाला देकर अपनी बहू के यौन शोषण जैसी अमानवीय कुप्रथा से वह बेहद व्यथित हैं। संग्रह की शीर्षक कहानी 'कुरजाँ के देश में' इसी प्रथा का उल्लेख किया गया है। कहानी की मुख्य पात्र 'मूमल' नई-नवेली बहू है, जिसका पति सेना में भर्ती है। वह दूर-देश में देश की सेवा में जुटा है। अपने ससुर की कुदृष्टि से खुद को बचती-बचाती वह घर से भाग जाती है। कहानी में मूमल के संघर्ष, उसके विवेक, साहस, हिम्मत एवं जीने के उसके जज्बे का बड़ा ही सुंदर और मार्मिक वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आंचलिक बोलियों से लिपटी सौंधी मिट्टी की गंध ने अंतत: समाज को अपनी परंपरा तोड़ने को बाध्य कर दिया। इस कहानी से पता चलता है कि यदि एक व्यक्ति, एक स्त्री भी ठान ले तो सदियों से चली आ रही अमानवीय कुप्रथा एवं रूढ़ियों को बदला जा सकता है।

'गली में आज चाँद निकला' अकेली रह रही एक स्त्री की कहानी है जो प्यार को सहेजना जानती है। दरअसल प्रेम की परिभाषा रिश्तों के दरमियान बदलती रहती है। कहीं वह ममता, कहीं स्नेह तो कहीं इश्क हो जाता है। इन सबके मूल में एक जुड़ाव है जिसके नाम तो बेशक अलग हों पर उद्देश्य एक ही है -- भावनाओं का एकाकार हो जाना। और शायद यही इस कहानी का मूल है। थोड़ी-सी समझ एवं अंडरस्टैंडिंग से कैसे जिंदगी खुशियों से भर जाती है, इस कहानी को पढ़ने से यह सीख मिलती है। यह कहानी स्वप्निल के प्रति एक स्त्री के प्यार और समर्पण की कहानी है।

'संध्या का ठिकाना' कहानी भी अपने तरह की एक अलग विषय पर केंद्रित कहानी है। पति या पत्नी की मृत्यु के बाद और विशेष रूप से प्रौढ़ावस्था में आने के बाद एक अदद साथी की जरूरत महसूस होती है। सोशल मीडिया के जमाने में फेसबुक पर आभासी रूप से बने दोस्त सार्थक जीवन जीने की चाह में जुड़ तो जाते हैं, पर सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते। भावनाओं को भी खाद-पानी की जरूरत होती है। भावनाएँ सब जगह नहीं पनप सकतीं। इसी बात को इस कहानी के निष्कर्ष रूप में टीना कहती हैं, "मानव में दो तरह की भावनाएँ होती हैं- एक तो उन पौधों की तरह होती हैं... जिनकी जड़ें गहरी नहीं होती हैं। एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगा दो। दूसरी उन पौधों की तरह होती हैं जिन्हें एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाओ तो या तो फिर से नहीं पनपतीं या बड़ी मुश्किल से ही जुड़ पाती हैं। ऐसी भावनाओं की जड़ें गहरी होती हैं, उखाड़ने से टूट जाती हैं।" कंचन और सुरेश दोनों के मन की भी स्थिति यही थी।

आज का समय हमें संयुक्त परिवार से दूर ले जा रहा है और एकाकी परिवार तक सीमित करता जा रहा है। पर जहाँ पर समझ नहीं है, वहाँ एकाकी परिवार में भी दांपत्य जीवन में बिखराव देखने को मिल रहा है। कुछ-कुछ इसी बात की ओर रेखांकित करती है संग्रह की कहानी 'हमसे तो ये पंछी अच्छे'। 'कौन-सी गलती ?' कहानी में एक स्त्री की महत्वाकांक्षा और परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को न समझना पारिवारिक विघटन का कारण बन जाता है। यह कहानी पारिवारिक विघटन से उपजी त्रासदी की ओर इशारा करती है।

इसी तरह से संग्रह की कहानी 'मूड है क्या ?', 'मुई जीन्स', 'राम तेरी गंगा मैली', 'हल्दी सुवास', 'निर्मम ममता', 'रिजर्व कोटा', 'जरा-सा डांस', 'आधी रोटी और मंगलसूत्र', 'भटकाव' तथा 'कुछ तो मेरी भूल है' बिलकुल अलग और नए विषयों पर केंद्रित कहानियाँ। हैं ये कहानियाँ वस्तुस्थिति का बयान तो करती ही हैं, साथ ही एक सार्थक संदेश भी देती हैं।

निस्संदेह, समाज की जो भी विडम्बनाएँ हैं, जो रूढ़ हो चुकी को प्रथाएँ हैं और समाज में जो घोर विरोधाभास है, यह सब लेखिका को उद्वेलित करते हैं। एक संवेदनशील, पढ़े-लिखे इंसान की पहचान भी यही है। पर, समाज में कुछ अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोगों की कुटिल एवं दोयम दर्जे की मानसिकता टीना को झकझोर कर रख देती है। शायद यही वजह है कि उन्होंने अशिक्षा, गरीबी, जागरूकता के अभाव एवं अभिशप्त जीवन जीने को बाध्य उन स्त्रियों की पीड़ा, शोषण एवं उत्पीड़न को शब्द देने और पाठकों के समक्ष लाने की एक सार्थक कोशिश की है।

और यह सच भी है कि लेखन का मूलभूत तत्व है संवेदना और बेचैनी। हमारे आसपास घटती घटनाएँ, अनाचार, अत्याचार, हिंसक वारदातें, अमानवीय दंश, बेगैरत समझौते टीना जैसे संवेदनशील मन पर निरंतर आघात करते हैं और जब बेचैनी से भर जाती है तब वह एक वंचित और उत्पीड़ित स्त्री की आवाज बन जाती है।

अपने कथ्य, भाव, शिल्प एवं कहानियों में उठाए गए विषयों के दृष्टिकोण से संग्रह की कहानियाँ बेजोड़ हैं। वे अपने को पढ़वा ले जाने में समर्थ हैं क्योंकि उनकी भाषा, उनका शिल्प और कंटेंट अनूठा है। एक कहानीकार की सबसे बड़ी चुनौती एवं सफलता इसी बात में होती है कि उसका लिखा पढ़ते समय पाठक के मानसपटल पर दृश्य उभरने लगें, कहानी के पात्रों की कल्पना कर सके एवं उसका दृष्यरूपण कर सके। इस कसौटी पर टीना रावल खरी उतरती हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि किसी भी कहानी संग्रह को श्रेष्ठ बनने के लिए जो सामग्री चाहिए वह सारी सामग्रियाँ इस संग्रह में हैं। नए विषय को उठाती और नए मुहावरे गढ़ती हुई परिपक्व और मंजी हुई कलम किसी सिद्धहस्त कहानीकार का दर्शन कराती है। लचीली, प्रवाहयुक्त, सरल, सहज भाषा, कथ्य और कहन एवं कसी हुई चुस्त शैली टीना रावल को एक उम्दा कहानीकार एवं संग्रह को एक उम्दा कहानी संग्रह बनाती हैं। ये कहानियाँ व्यापक चर्चा की डिमांड करती हैं जिसका अभाव खटकता है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

काला सोना

समीक्षक : रेखा भाटिया

लेखक : रेनू यादव

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

मोबाइल - 9806162184

ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com

रेखा भाटिया
9305 Linden Tree Lane
Charlotte, NC, USA- 28277
मोबाइल- +1 -7049754898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

इन दिनों युवा कवयित्री, कहानीकार डॉ. रेनू यादव की कहानियाँ बहुत तेजी से सभी का ध्यान खींच रही हैं। हाल ही में इनकी कहानी-संग्रह 'काला सोना' पढ़ने का अवसर मिला। कह सकती हूँ इस कहानी-संग्रह की कहानियों से न सिर्फ़ बहुत प्रभावित हुई हूँ, अपितु जब से यह क़िताब पढ़ी है, इस क़िताब की प्रत्येक कहानी निरंतर मेरा पीछा कर रही है। आने वाले समय में इस उभरती युवा रचनाकार का लेखन हिन्दी साहित्य के पटल पर एक अमिट हस्ताक्षर अंकित करेगा।

आजकल के आधुनिक और उन्मुक्त परिवेश में लोगों की सोच तेज़ी से बदल रही है। सामाजिक जीवन शैली में तीव्र बदलावों के बीच समाज में वर्जित आचार-विचार को खुलेआम अपनाया जा रहा है और अनायास ही पश्चिम की हर बात को अपनाना अपनी शान समझा जाने लगा है। यह परिवर्तन शहरों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी दिखाई देने लगा है, जिसका प्रभाव रचनाकारों की लेखनी पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन युवा रचनाकार रेनू यादव की कहानी-संग्रह 'काला सोना' उस चकाचौंध भरे कृत्रिम महानगरी प्रभाव से बचाकर गाँव की मिट्टी में यथार्थ के धरातल पर विचरण के लिए बाध्य करता है। रेनू यादव ने एक-एक कहानी को जिस सुघड़ता से गढ़ा है और किस्सागोई को बुना है, गाँव के पारम्परिक परिवेश से पाठकों का परिचय करवाया है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है। जैसा कि लेखिका ने क़िताब के समर्पण में ही लिखा है "अपनी जन्मभूमि तितौली गाँव को समर्पित, जो साँसों में बसा है और छूट कर भी नहीं छूटता", लेखिका अपने लेखन से अपनी कहानियों के जरिए पाठकों को पूरी तरह से बहा कर ले गई हैं।

पहली ही कहानी 'नचनिया' में लेखिका गाँव के शुद्ध परिवेश में अपने मज़बूत और सूक्ष्म आंकलन की गहरी छाप छोड़ती हैं, जहाँ 'नाच' देखने केवल पुरुष जाते हैं। नचनिया का नाच और उस पर पुरुषों की लोलुप भरी निगाहें, फ़क्तियाँ, शहरी बाबू का नचनिया को दिल दे बैठना आदि स्टेज के आगे चलता है लेकिन स्टेज के पीछे चलने वाली घटनाओं का ज्ञान किसी को

नहीं हो पाता। उस नाटक में सोनपरी नचनिया जो पुरुषों की भावनाओं को उत्तेजित कर पैसा ऐंठ रही है दरअसल स्वयं एक पुरुष है। कहानी रोमांचित करती है, गुदगुदाती है, चौंकाती है।

"आज शहरी बाबू की नज़रें सोनपरी को भेद रही थीं, जैसे ही सोनपरी की नज़रें शहरी बाबू से टकरातीं, वह काँप उठती, उसका ध्यान नाच से हट जाता" / "का बात है सोनपरी रानी, आज हमारे अलावा दिल कहीं और लग गया है का ? हमारा फेबरेट गाना तो सुनाओ" / "सोनपरी तो पूरी की पूरी रंडी लगती है, मर्द तो लगती नहीं" / "सोनपरी उसकी बाँहों के कसाव से पूरी तरह छटपटाने लगी। जलते रेगिस्तान में आँसुओं की बारिश से मन और भी छनछना गया" आदि ऐसी कई खूबसूरत वाक्य इस कहानी को बेजोड़ बनाती हैं। मानों कोई फिल्म का दृश्य मानस-पटल पर चल रहा हो।

कहानी 'काला सोना' इस संग्रह की आत्मा है। किताब का शीर्षक भी इसी कहानी पर रखा गया है। यह कहानी जीवन में गरीबी और मजबूरी से उत्पन्न विवशता का उत्कर्ष, पेट भरने के लिए माँ-बाप को अपनी ही पुत्रियों को वेश्यावृत्ति में धकेलने और शरीर बेचने पर विवश करने की ऐसी कड़वी सच्चाई है, जिसे निगलना और उगलना दोनों आसान नहीं। शारीरिक शोषण और वेश्यावृत्ति सिर्फ भारत के ही गाँव, कस्बों या शहरों में नहीं वरन दुनियाँ के हर देश, हर गाँव, हर कस्बे में वर्षों से चली आ रही है। "भूख अपराध की जननी है। वह भूख चाहे पेट की हो, धन की हो या फिर देह की" पढ़ कर आँखें नम हो जाती हैं। यह कहानी कल्पना और यथार्थ की रेखा को मिटा देती है तथा वास्तविक सत्य से परिचित करवाती है। लेखिक ने अपनी धारदार लेखनी से एक विशेष समुदाय में रिवाजों के नाम पर चल रही वेश्यावृत्ति की परतों को उघाड़ा है - "मुझे सहेली से पता चला कि हमें 'बाछड़ समुदाय' कहा जाता है। यह यहाँ का बिजनेस है , गलत धंधा नहीं। हम भी बड़े हो जाएँगे तो हमें भी यही करना पड़ेगा"।

इस कहानी को पढ़ ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों बसंत में खिले खुशहाल वृक्ष पर अचानक पतझड़ छा गया हो। चिकन, भूने चिकन, उसके स्वाद और गंध पर पूरी कहानी में मुख्य पात्र की भावनाओं की उथल-पुथल, उसके गुज़रे कल का काला सच, भय, त्रास की भयावहता को बहुत बेहतर तरीके से वर्णित किया गया है। जहाँ एक ओर गरीबी और मजबूरी के कारण एक लड़की के माँ-बाप उसका सौदा करने को मजबूर होते हैं वहीं दूसरी ओर एक अन्जान घर के लोग उसी लड़की को शिक्षित करना चाहते हैं। लेखिका ने अंत में सकारात्मक पक्ष को बखूबी उभारा है कि दुनिया में सभी लोग बुरे नहीं होतें।

कहानी 'वसुधा' रूढ़िवादी मानसिकता को दर्शाती है जहाँ पुत्र का जन्म होना ही महत्त्व रखता है, चाहे वह धान की तरह पईया ही क्यों न हो। दूसरी तरफ शहरी चकाचौंध में खोई लड़की वसुधा को प्रेम में धोखा मिलता है, जिससे उसका जीवन फिर से सदा के लिए अँधेरे में खो जाता है।

14 फरवरी को 'पुलवामा' का बमकांड देशवासियों के दिलों पर क़हर बन टूटा था, जिस पर पूरा देश रोया था। कहानी 'मुखाग्नि' इसी पुलवामा की घटना पर आधारित है। लेखिका ने सैनिकों के पत्नियों के जीवन के दु:खों की गहराई से पड़ताल करती हुई अत्यंत मार्मिक कहानी लिखी है। यह सैनिकों की स्थिति को दर्शाते हुए दो सखियों की कहानी है, जो सी.आर.पी.एफ. के नौजवानों की पत्नियाँ हैं, जिन्हें विवाह और परिवार के पश्चात् भी अकेलेपन की पीड़ा भोगनी पड़ती है। उन्हें जीवन के सारे संघर्षों का सामना अकेले करते हुए हिम्मत के साथ जीना पड़ता है। अपने शहीद पति की मुखाग्नि बेटी के हाथों करवाने का फैसला करने के माध्यम से उनकी हिम्मत और हौसला आखिरी तक बना होता है ! कहानी बहुत ही शक्तिशाली है और अपने उद्देश्य में सफ़ल रही है।

कहानी 'छोछक' उन रस्मों व रिवाज़ों पर प्रहार करती है जो समाज में झूठी शान-ओ-शौकत के लिए इंसान की जान से ज़्यादा क़ीमती हो गए हैं। मजबूरियों और झूठी शान के दो पलड़ों के तराजू के बीच झूलता लड़की के परिवार का चित्रण बेहद संजीदगी से दर्शाया गया है। भारत के विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न रिवाज प्रचलित हैं, जो दहेज में नहीं गिना जाता किंतु दहेज से कम नहीं होता। इन रिवाजों को निभाने के लिए रूपया-पैसा, जेवरात, कपड़े-लत्ते, मेवा-मिठाई और ईज़्ज़त के नाम पर वर-पक्ष वधु-पक्ष को उकसाकर उनका इमोशनल ब्लैकमेल करता है या इस तरह उन पर दबाव बनाया जाता है कि वे स्वत: ही सब कुछ देने के लिए तैयार हो जाएँ। इसमें संदेह नहीं कि मानव सभ्यता ने हर क्षेत्र में सामाजिक विकास किया है लेकिन भारत में आज भी कई जगहों पर समाज की सोच कई मामलों में बहुत पिछड़ी हुई है।

कहानी 'कोपभवन' में लेखिका ने वर्तमान परिदृश्य में समलैंगिकता जैसे कठिन और ज्वलंत विषय को चुना है तथा कमाल की किस्सागोई रचते हुए हर पात्र को अच्छी तरह उभारने का चुनौतीपूर्ण कार्य किया है। समलैंगिक पात्रों के जटिल रिश्ते में आड़े आती सुभाष काका, उनकी पत्नी यानी काकी, गाँव का माहौल ,जात-बिरादरी के लोगों की रूढ़ीवादी सोच, गाँव में पंचों द्वारा लोगों के जीवन के फ़ैसले लेना आदि कानून और सामाजिक यथार्थ के बीच विभाजक रेखा का सजीव चित्रण किया गया है। पूरब हो या पश्चिम अभी भी समलैंगिकता को सामान्य नज़र से नहीं देखा जाता और न ही पूरी तरह से स्वीकार किया जाता है।

बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा आदि गंभीर समस्याएँ हैं। यूनिसेफ के आँकड़ों के अनुसार विश्व में भारत बाल विवाह के मामले में तीसरे स्थान पर है तथा कन्या भ्रूण हत्या के मामले में दूसरे स्थान पर। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में यह समस्याएँ बहुत ही गंभीर हैं। बाल विवाह के कारण किशोरियों का बहुत कम उम्र में माँ बन जाना, शोषण, यौन शोषण, उनके विरुद्ध हिंसा और अपराध खासकर भारत के गाँव और कस्बों में बहुत सामान्य-सी बात है। भारत में विकास और शहरीकरण के बाद भी रूढ़िवादी मानसिकता आधुनिक मानसिकता पर भारी है।

'टोनहिन' कहानी में बाल-विवाह, गर्भपात, विधवा की समस्या तथा अकेली स्त्री की पीड़ा को दर्शाया गया है। बाल-विवाह की शिकार फुलमतिया का गर्भपात होने पर भविष्य में गर्भवती होने की संभावनाएँ समाप्त हो जाती है और युवावस्था में विधवा हो जाने पर उसे सबकी अवहेलना झेलनी पड़ती है। उसे बाँझ, टोनहिन कह कर लताड़ा जाता है, अपशकुनी माना जाता है। अपनी हीनभावना के चलते वह अन्धविश्वास का सहारा लेती है तथा जिस अन्धविश्वास के नाम पर उसे प्रताड़ित किया जाता है वह उसी को हथियार बनाकर गाँवों वालों के सामने खड़ी हो जाती है। लेखिका के लेखन में बड़ी गंभीरता और पैनापन है जो समाज की विसंगतियों को साहस और सहजता से उघाड़ फेंकने में सक्षम है।

लेखिका ने लगभग सभी संभावित विडंबनाओं को, संभावित जटिल विषयों को अपनी कहानियों में जिया है और उसे प्रखर स्वर दिया है। जिसके माध्यम से समाज में चेतना जगाने की ज़ोरदार कोशिश की है। ऐसा प्रतीत होता है कि युवा लेखिका ने अपनी उम्र से कहीं अधिक अनुभवों को जिया है, यह बात काबिले तारीफ़ है।

छुआछूत, जाति-पात, ऊँच-नीच पर आधारित कहानी 'आम्रपाली' में लेखिका ने ठाकुरों और मजदूरों की ज़िंदगियों की बारीकी से टोह ली है। गरीबी से उभारने के लालच में ठाकुर ने मुख्य पात्र सोनवा को हवस का शिकार बनाया और उसे ठुकराते समय उसके बच्चों को पाप की निशानी का नाम दे दिया। पिता-पुत्र के त्रिकोणिय प्रेम में उसकी स्थिति आम्रपाली की भाँति होती है। प्रवाहात्मक शैली इस कहानी को सफल बनाती है।

कहानी 'चऊकवँ राँड़' वैधव्य की त्रासदी की कहानी है। घर की बात घर में और घर का धन घर में की चाह के कारण कहानी की नायिका नीलम के विधवा होने पर उसके परिवार वाले उसकी शादी उसकी ननद के पाँच साल के बच्चे से करने के लिए आमादा हो जाते हैं। इस कहानी में गरीबी, मज़बूरी, बेढंगे रिवाज औरत से उसकी मर्ज़ी और आज़ादी छीन लेते हैं। लेकिन अंत में नीलम उन दकियानूसी रिवाजों को दरकिनार कर अपनी हिम्मत और आत्मबल से निर्णय लेती है और गाँव, घर, रिश्तेदारों के सामने घुटने टेकने से मना कर देती है।

लेखिका की अधिकतर कहानियाँ नायिका प्रधान हैं और उन्होंने उन्हें सशक्त बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। जितनी उनकी भाषा प्रखर और मजबूत है उतनी ही उनके विचार। अंतिम कहानी 'मुँहझौसी' वास्तविकता के उस दर्द को बयाँ करती है जो कुछ समय पहले समाज में अक्सर दबा दिया जाता था। बलात्कार एक जघन्य अपराध है जिसका भय और खौफ अक्सर महिलाओं के मन में रहता है। किसी महिला का बलात्कार हो जाए तो अक्सर दोष महिला को ही दिया जाता है। महिलाओं को पूर्ण सुरक्षित और आज़ादी से जीने का अधिकार हकीकत से अभी कोसों दूर है। बड़े शहरों में आज़ादी तो है लेकिन महिलाओं के विरुद्ध बहुत-से अपराध होते हैं। छोटे-छोटे कस्बों में, गाँवों में स्थिति बहुत दुरूह है। बहुतायत अपराधों की रिपोर्ट भी दर्ज नहीं हो पाती और जिनकी रिपोर्ट दर्ज होती है उनमें से 70-80 प्रतिशत मामलों में न्याय मिलने में बरसों लग जाते हैं। सच यही है कि भारतीय कानून व्यवस्था और न्याय प्रणाली लचर है। अपने ही घरों में औरतें सबसे अधिक असुरक्षित हैं और घर की इज़्ज़त की खातिर उन घटनाओं की रिपोर्ट दर्ज नहीं होती और न ही औरतें ज़बान खोल पाती हैं। घरेलु हिंसा और बलात्कार आम अपराध हैं। परिवारों में आपसी रंजिश या दुश्मनी होने पर औरत के बदले औरत के साथ बदला लेकर आत्मतुष्टि की जाती है। इस कहानी में एक तरफ बलात्कार और दूसरी तरफ रूपा नायिका पर तेज़ाब फेंककर एक जघन्य अपराध किया जाता है। इस सशक्त कहानी की नायिका रूपा एक मजबूत किरदार है। निर्दोष होते हुए भी उसके ऊपर तेज़ाब फेंक कर उसे घायल किया जाता है, पुरुष के झूठे दंभ को तोड़ते हुए वह फिर भी उठ खड़ी होती है तथा उस गाँव में जिन औरतों के साथ अन्याय हुआ है उनकी सहायता करते हुए उनकी रोल मॉडल बन जाती है। इस कहानी में लेखिका ने मानव मनोविज्ञान की अनोखी मिसाल पेश की है।

इस संग्रह में लेखिका ने स्वाभिमान, स्वतंत्रता, आत्मविश्वास, मनोबल, आत्मसम्मान, शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रति सचेत करते हुए नारी-स्वर को बुलंद किया है। नारी को खासकर, गाँवों की नारियों को किन-किन विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है उसका बखूबी चित्रण किया है। कहानियाँ भावुक करती हैं, विचलित करती हैं, उद्विग्न करती हैं, साथ ही यह सन्देश देने में भी सफ़ल रहती हैं कि औरतों को अपने हक़ की, अपने सम्मान की और अपने वजूद की लड़ाई स्वयं लड़कर जीतनी है। वे लिखती हैं - "हमें खुद को तीसरे के नजरिये से बचाना होगा। अपनी सोच को महत्त्व देना होगा।" / "अब मेरी ज़िंदगी का एक ही मकसद है शोषण का खात्मा। मुझे मेरी ज़िंदगी को नहीं जीना ... मैं ज़िंदगी को चुनौती देती हूँ कि आ ज़िंदगी ,अब मुझे जी कर दिखा..."

इस संग्रह की अंतिम वाक्य लेखक के मकसद को चरितार्थ करती हैं। सभी कहानियाँ अत्यंत सशक्त और खरे सोना का सौदा है। किंतु इस संग्रह में एक बात कचोटती है कि काश ! कहानियों में भोजपुरी भाषा का अधिक प्रयोग के बजाय पढ़ने वाले आम पाठकों को समझ आने वाली हिन्दी भाषा का प्रयोग होता! कहानियों के विषयों में विभिन्नता है और विषय प्रभावशाली हैं, जो कि पाठक के मस्तिष्क पर प्रभाव छोड़ती हैं लेकिन लोक-भाषा की अनगिनत स्थानीय शब्दों का प्रयोग धाराप्रवाह में रुकावट पैदा करती हैं जिससे कहानियाँ आम दिलों पर प्रभाव नहीं डाल पातीं, क्योंकि उन स्थानीय शब्दों के अर्थ समझने के लिए दिमाग लगाना पड़ता है।

कुल मिलाकर लेखिका रेनू यादव की यह कोशिश बहुत सार्थक और सच्ची है, वह एक प्रभावशाली युवा लेखक हैं और उनमें असीम संभावनाएँ हैं। उन्हें इस सशक्त संग्रह के लिए अनंत बधाई और भविष्य के लिए शुभकामनाएँ!

000

पुस्तक समीक्षा

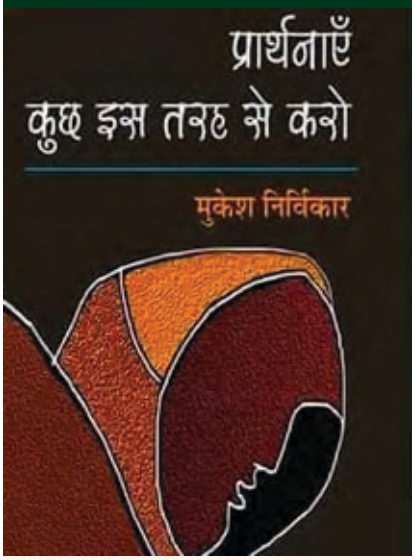

(कविता संग्रह)

'प्रार्थनाएँ कुछ इस तरह से करो

समीक्षक : निर्देश निधि
लेखक : मुकेश निर्विकार
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन प्रा.लि. ग़ाज़ियाबाद

निर्देश निधि
विद्याभवन, कचहरी रोड़,
बुलन्दशहर (उप्र)-203001
मोबाइल-9358488084
ईमेल- nirdesh.nidhi@gmail.com

संवेदनशील कवि मुकेश निर्विकार जी के अभी तक दो कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। पहला 'हत्यारी सदी में जीवन की खोज' और दूसरा 'प्रार्थनाएँ कुछ इस तरह से करो' जैसे वह बताना चाहते हैं कि हत्यारी सदी में प्रार्थनाएँ किस तरह की जानी चाहिए। इस नए संग्रह की हर कविता संवेदना से भरी है, सामयिकता के सुगढ़ता से बँटे हुए धागे से सघनता से बुनी हुई है। लगभग हर कविता पढ़ कर पाठक सोचने पर विवश हो जाता है कि ये कविताएँ, किस तरह इस 21-वी सदी का मर्म भेदती हैं! अपनी तीखी आँखों से इस सदी का एक्स-रे निकालती चलती हैं। किसी विशेषज्ञ की तरह आगाह करती हैं कि मानवीय संवेदनाएँ भूत के गर्त में समा चुकी हैं और आदमी 'मुद्रा' में तब्दील होता जा रहा है। आदमी बाज़ारवाद के एसिड में घुलता चला जा रहा है।

आधुनिक समाज किन विद्रूपताओं से भरा हुआ है या समाज में क्या हो रहा है, यह कवि की सूक्ष्म दृष्टि पकड़ती है और खूब पकड़ती है। जैसा कि इस पुस्तक की भूमिका लिखते हुए 'बुलंदप्रभा' के सम्पादक डॉ. अनूप सिंह जी ने लिखा है कि "आज मुद्रा के निहितार्थ बदल गए हैं। मुद्रा साक्षात ईश्वर का रूप ले चुकी है। मुद्रा की महत्ता पहले भी थी तभी तो यह मुहावरा लोक प्रसिद्ध हुआ कि 'बाप बड़ा ना भैया, सबसे बड़ा रुपैया'। किंतु रुपैया, रुपैया ना रहा वह मुद्रा हो गया है। मुद्रा का एक अर्थ भाव-भंगिमा भी होता है। मुद्रा के इस अर्थ के विभिन्न चरण ही हमें इस काव्य संग्रह में देखने को मिलते हैं। मुद्रा की विभिन्न मुद्राएँ साक्षात परब्रह्म का दर्शन कराने में सक्षम है। आस्थाओं के बदलते परिदृश्य का अवलोकन करते हुए कवि अपनी भाषा में सहज मुलायमियत रखता है।"

इस संग्रह की सबसे पहली कविता है, 'आत्महत्या से पहले एक क़र्जिया का बयान'। यह कविता बहुत ही मार्मिक है। इसके बहुत गूढ़ अर्थ हैं। इसमें कविता बताती है कि पृथ्वी पर जल, वायु, अग्नि, आकाश और पृथ्वी सब कुछ बिना धन खर्च किए मिलता है, इसके कोई पैसे नहीं लगते। लेकिन जो क़र्जिया है उसके लिए यह सब भी मुफ्त में नहीं रह जाता। कविता है कि- "उसके पास नहीं बचता है जीवन/उसे करनी पड़ती है आत्महत्या/जबकि धरती पर कतई नि:शुल्क हैं देह के संजीवनी तत्व हवा-पानी-धूप-आकाश-मिट्टी"

वह यह भी कहते हैं कि "यह दुनिया कितनी तंग और विकल्पहीन है, बेगानी भी/यह किसी कर्ज़दार इंसान से पूछो।" संग्रह की दूसरी कविता है 'मुद्रा के आलोक में जीवन' जिसमें वह कहते हैं कि- 'कोई बूढ़ा यूँ ही नहीं होता/ कितना बे-मन से होता है/कोई इंसान बूढ़ा!'

इस कविता में बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही गई है कि हाड़-मास की देह के अलावा भी होती है हरेक इंसान की एक मौद्रिक देह भी। किसी की मौद्रिक देह की संकल्पना, बिल्कुल नई स्थापना है। एक स्थान पर कविता कहती है कि बेहद जरूरी है इस मौद्रिक देह का स्वस्थ रहना, किंतु 'मैं मुद्रा विकलांग हो गया हूँ'। 'मुद्रा विकलांग' एक ऐसी टर्म है जो कि वाकई अंदर तक भेदती है, और सत्य भी है कि मुद्रा के अभाव में आज व्यक्ति विकलांग ही है। अगली कविता है 'उसने कहा' कि जीने के लिए जितनी भी चीजें हैं वह सब धरती पर नि:शुल्क तो हैं परंतु कोई है जो इन्हें प्रयोग करने के लिए भी इज़ाजत लेने के लिए विवश है- 'क्या मैं निहार सकता हूँ आकाश / दृष्टि

भर आकाश, वैसे तो बचा ही कितना है अब / शहर की ऊँची इमारतों के बीच ढँककर / फिर भी, यह कतई कम नहीं होगा / मेरे देखने भर से!'

कितनी कसक भरी बात है यह कि आकाश बचा ही कहाँ है! शहर की अट्टालिकाओं ने उसे अदृश्य कर दिया है। एक तरह से कहें तो हमारी दृष्टि इस आधुनिकता और विकास से लबालब भरे समाज और समय में बाधित हो कर रह गई है। अब उसमें दूर तक देख पाने की न तो क्षमता है और न ही सुविधा।

'मैं डरता हूँ' कविता आम आदमी का डर बताते हुए कहती है कि- मैं नहीं डरता हूँ बाईपास सर्जरी कराने से / मैं नहीं डरता हूँ बेटी की शादी करने से / मैं नहीं डरता हूँ मकान बनवाने से / मैं नहीं डरता हूँ अपने बच्चों को अच्छे कोर्स कराने से / मगर मैं डरता हूँ अपनी मौद्रिक अक्षमता से

बेशक एक आदमी को बेटी का ब्याह कराने या दूसरा कोई भी काम करने से डर क्यों होगा, अगर उसके पास धन होगा। धन तो स्वत: इन कार्यों से डर को दूर कर ही देगा, क्योंकि ये सभी कार्य धन के माध्यम से ही तो सम्पन्न होते हैं, किये या कराए जाते हैं।

एक कविता है-'बाज़ार में देह' जिसकी पंक्तियाँ हैं- ''पैरों ने कर दी है घोषणा/कि वे नहीं ढोएँगे अब/पेट का वजन /खामख्वाह''। कविता बड़ी निर्ममता से कहती है कि आज कोई किसी का कितना भी निकट क्यों ना हो वह उसके लिए नि:स्वार्थ होकर कुछ नहीं करेगा। यह सदी है ही कुछ ऐसी कि इसमें सबको बस अपना ही हित साधना है। अगर किसी के लिए कुछ करना भी है तो वह ख़ामख्वाह तो नहीं ही कम-से-कम। इस संसार में फैला स्वार्थ कविता की पैनी दृष्टि से छिप नहीं सका है।

'अर्थ हारे लोग'-एक कमाल की कविता है। यह कविता कहती है कि जो लोग पैसा नहीं कमा पाते हैं उनका रोग ऐसा है कि उसे सिर्फ़ कोई अर्थशास्त्री ही पकड़ सकता है कि कौन सा रोग है- ''किसी चिकित्सक ने नहीं/किसी वैद्य ने नहीं/किसी धर्मशास्त्री या समाजशास्त्री ने भी नहीं/ अंतत: एक अर्थशास्त्री ने बताया/उनका रोग/कि दरअसल ये अर्थ-हारे हैं/मुद्रा-लोक में वैद्य, चिकित्सक से इसका उपचार/नामुमकिन है/मुद्रा-लोक में जिला पायेगी इन्हें/सिर्फ मुद्रा की बूटी।''

ज़ाहिर है उस मुद्रा की बूटी को खरीदने में वे अर्थहारे लोग सक्षम नहीं हैं। वाक़ई यह सच है कि जिनके पास धन नहीं है उनका रोग किसी भी तरह ख़त्म नहीं किया जा सकता सिवाय धन उपलब्ध हो जाने के।

संग्रह की एक और महत्त्वपूर्ण कविता है- 'मुद्रा-लोक'- 'मृत्यु-लोक' नहीं, / मुद्रा-लोक कहो वत्स! / मुद्रा-लोक!

धन की कमी इन कविताओं का मुख्य स्वर है। वाकई घर में रहते हुए या घर से निकलते ही धन की आवश्यकता है ही उसके बिना कोई अपना काम कैसे चला सकता है ?

कविता 'मुद्रा में बदलना होगा' में कवि कहते हैं कि- 'सुनो बेटी, बेहद कष्ट है मुझे यह कहने में / किंतु तुम्हें भी, हाँ तुम्हें भी / तुम्हारी देह को, / तुम्हारे रूप को / विज्ञापन में ढलना होगा / मुद्रा में बदलना होगा!''

और अंत में कविता कहती है कि- 'दिमाग़ तो हम सभी के पहले से ही क़ैद हैं मुद्रा में / और छुपा लिए हैं हमने पिनकोड / अपने-अपने एटीएम्स के / अवचेतन मानस की अतल गहराईयों में'

कुछ टटकी उपमाएँ, कुछ निराले बिम्ब इन कविताओं की ताक़त हैं। इन्हें लिखते वक्त जाने वह कौन से समाज का चित्र है जो कवि के मस्तिष्क पर आच्छादित रहा होगा कि अर्थ की कमी और मौद्रिक सत्ता की निरंकुशता की भीतरी और कठोरतम तहें तक उनके सामने स्वत: खुलती चली गईं।

एक कविता है-'मुद्रा की कारा में'। इसमें जो व्यक्ति है उसे लोग ढूँढ़ रहे हैं परंतु वह कह रहा है कि मैं तो यहाँ से गायब हो चुका हूँ। और कहाँ मिला है? - ' मुद्रा की कारा में/अज़ीब-सी मुद्रा बनाये'

यह मुद्रा की कारा मुद्रा है और मुद्रा बनाए यानी भाव-भंगिमा बनाए हुए। एक ही शब्द को उन्होंने दो अर्थों में प्रयोग किया है। यह एक शानदार कविता है, आज की सच्चाई है।

'मुद्रा के आलोक में धरती' कविता में भी बता रहे हैं कि- 'सूरज ओजोन की तिरपाल फाड़कर / घुसने लगा था धरती के आँचल में / हवा फेफड़ों का दम घोंटने में मशगूल थी / पानी कहीं था ही नहीं / पानी के लिए मार-पीट / महायुद्ध में तब्दील हो चुकी थी।

'ओज़ोन की तिरपाल' एक बहुत सुंदर उपमा है।

एक अन्य कविता 'मुद्रा एक भाषा है' में कवि कहते हैं कि ''मुद्रा एक चश्मा है/इससे भी देखी जाती है दुनिया'' और कविता कहती है कि ''मुद्रा एक जिह्वा है/जिसके पास होगी यह, वह बोलेंगे फर्राटेदार/जिसके पास नहीं होगी मुद्रा/वह तुतलाएँगे, बोल नहीं पाएँगे।'' बेशक, चाहे कोई कितना भी कह ले कि पैसा ही सब कुछ नहीं होता पर सच तो यही है कि उसके बिना कुछ भी नहीं होता इस संसार में जिसमें आज का मनुष्य वास करता है।

एक बड़ी महत्त्वपूर्ण कविता है-'मुद्रा विकलांग सर्टिफिकेट' जिसमें कवि कहते हैं कि- 'मुद्रा-लोक में / ज़िन्दगी की जंग जीतते हैं / मुद्रा थी... / मगर, ताज्जुब है / मुद्रा लोक में / अभी तक नहीं है कहीं भी व्यवस्था / 'मुद्रा-विकलांग-सर्टिफिकेट' निर्गमन की'

विचित्र कल्पना है 'मुद्रा विकलांग'। बल्कि कल्पना कहना भी उचित नहीं यह तो जीवन का सत्य ही है उन निरीह लोगों का जिनके पास मुद्रा नहीं आ सकी है। एक कविता और है-'मुद्रा लोक में नई सीख' यह कहती है कि-''सुनो, गाँव में नहीं/क़स्बे में भी नहीं/मेरी बात समझो/शहर में भी नहीं/दरअसल, अब तुम रह रहे हो बाज़ार में।'' इस कविता का संसार एक सामान्य संसार नहीं लगता है। जैसे वह सारा संसार बस बाज़ार में परिवर्तित हो गया है।

पुस्तक के शीर्षक वाली कविता- 'प्रार्थनाएँ कुछ इस तरह से करो', यह कविता अपने आप में अनूठी है। वो ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए भी नहीं कहती है। वह तो एक्स्ट्रीम पर पहुँचती है और मनुष्य को निर्देशित करती हुई कहती है कि अगर प्रार्थना करनी है तो फिर 'मुद्रा' से करो, ईश्वर से नहीं, क्योंकि मुद्रा मनुष्य के लिए, हमारे समाज में,

हमारे संसार में ईश्वर के समकक्ष है या कुछ उससे भी थोड़ी ऊपर। प्रार्थनाएँ कुछ इस तरह से करो कि हमारा सब कुछ बदल जाए मुद्रा में। शायद यहाँ सजग पाठक को मिडास टच याद आना स्वाभाविक है। कविता सम्भवत: आगाह करने का या सावधान करने का भाव भी अपनी भीतरी तह में छिपाए है जिसके लिए शब्द तो नहीं लिखे गए हैं परंतु एक मूक चेतावनी अवश्य है कि अगर सब कुछ मुद्रा में बदल गया तो उस राजा को मिले वरदान को विस्मृत ना किया जाए जिसके स्पर्श मात्र से हर वस्तु स्वर्ण में परिवर्तित हो जाती थी। और उसके बाद की राजा की कठिनाइयों पर भी ध्यान ज़रूर दिया जाए, जिनसे आजिज़ आकर वह इस वरदान से छुटकारा पाने को व्याकुल हो उठा था।

संग्रह की एक बहुत सुन्दर कविता है 'एक संवाद : शहर और गाँव से'- गाँव, तुम हो मेरे लिए / मेरी दिवंगत् माँ की तरह / शहर, तुम हो मेरे जीवित पिता की तरह / अनुशासन की हनक में ऐंठे

'अनुशासन की हनक में ऐंठे' यह शानदार पंक्ति है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और उसकी बहुत बड़ी और गम्भीर समस्या है किसानों का कर्ज़ में डूब जाना, क़र्ज़ ना चुका पाने पर मर जाना, फाँसी लगाकर अपनी जान दे देना। उस पर कविता कहती है, किसान के मरने से दरअसल, फांसी के फंदे पर मात्र एक इंसान का मरना नहीं होता। बल्कि, खलिहान का मरना होता है। धरती का मरना होता है।

किसान के मरने से / हारती है बारिश / हारता है बैशाख / हारता है अन्न / हारता है श्रम / हारती है प्रकृति / हारती है नदी, / हारता है देश!

यह बहुत गहरी और बड़े घनत्व वाली कविता है। स्पष्ट है जब एक किसान की मृत्यु होती है तो ये सब चीजें हार जाती हैं, मतलब अनाथ जैसी हो जाती हैं।

'उपभोक्ताओं और विक्रेताओं के जीने का दौर' कविता में कवि कहता है- यह अनोखा बाज़ार है / यहाँ बिकती है पुस्तकें / रोटी बनाने की कला पर / किंतु धूल चाटती है / अन्न उगाने की कला पर लिखीं पुस्तकें / यह वास्तविक उत्पादक के नहीं, / बल्कि, उपभोक्ताओं और विक्रेताओं के जीने का दौर है!

एक कविता है 'मित्रों! तुम माँग करो' कविता कह रही है कि कुछ माँग करने के लिए और भी जो कि बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्या है वह? वे हैं कुछ दिन सुकून के, वे भी बैंक के चेस्ट में रखे जाने चाहिए। दिन-रात के परिश्रम से हारा-थका प्राणी और क्या माँग करे? व्यस्तता की अति के कारण यहाँ 'फ़ुरसत' शायद 'मुद्रा' से भी आगे आ खड़ी हुई है।

दिन में हर एक काउंटर पर रखीं जाएँ फ़ुर्सत की भी कुछ गड्डियाँ / एटीएम, पासबुक अपडेट या डिपॉजिट मशीनों के साथ-साथ / हर कियोस्क में रखीं हों फुर्सत के वक्त की भी कुछ मशीनें / बैंक के काउंटरों पर कुछ वक्त हो मौज-मस्ती भरा / जैसे हुआ करता था पहले कभी।

कुछ कविताएँ बिल्कुल अलग मूड की कविताएँ हैं, जिनमें यह 'प्रेम से निष्प्रेम तक' भी है- अब उनको कौन समझाए कि / ज़िंदगी की दीवार पर खोदे गए भित्ति-चित्र / सहज नहीं मिटा करते / काटकर नहीं फेंका जाता / जीवन के पर्दे से कोई भी घटना चित्र

'क्यों हुआ मुझे तुमसे/ये प्यार डेढ़ तरफा ?' ये 'डेढ़ तरफा प्यार' एक अद्भुत कल्पना है। अपनी तरफ़ का पूरा-पूरा और दूसरे की ओर से आधा-अधूरा सा।

कॉलेज के दिनों को याद करते हुए, 'कॉलेज की उसी पुरानी डेस्क पर', कविता है, जिसकी पंक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक व हृदयस्पर्शी हैं- 'सच मानो, तुम अपनी / प्यारी कोमल अंगुलियों को / वहीं छोड़ आई हो प्रिये, / कॉलेज की अपनी उसी पुरानी डेस्क पर!

ये कुछ प्रेम कविताओं के हिस्से हैं। जैसे अगली कविता है 'कब हो पाता है' प्रेम के ऊपर कहती है कि शादी-ब्याह तो हो जाते हैं। तमाम दिखावे हो जाते हैं, परंतु जो पहला प्यार है। वो कभी खत्म नहीं हो पाता- दोनों ही बस आग के चारों ओर घूमते रहे / लेकिन जला नहीं सके पहले प्यार की स्मृतियाँ / पकती रहीं आग में दोनों की प्रेम कहानियाँ / कब हो पाता है परिणयोत्सव की आग में स्वाहा / पहला प्रेम!

एक दार्शनिक वितान वाली कविता है 'ज़िन्दगी समय का थान है', इसकी अंतिम पंक्तियाँ हैं- सुख की कोरी कतरनों से / बनती नहीं पोशाक कोई / नहीं बना है आज तक / दुख के कपड़े से गर्म कोट!

'प्रार्थनाएँ कुछ इस तरह से करो' कविता संग्रह की कविताओं को पढ़ कर उनका सौंदर्य देखकर, उनका कथ्य समझकर पाठक सुखद् आश्चर्य में डूब जाता है। ये कविताएँ 21-वीं सदी का मर्म भेद कर उसे बाज़ारवाद के अंधकार भरे, गहरे कूप में लुढ़कते हुए सिर्फ़ देखती ही नहीं हैं, बल्कि, एक चेतावनी भी देती हैं। पुन: कहना होगा कि इन महत्त्वपूर्ण और निराली कविताओं की टकसाल में मनुष्य का मुद्रा में ढाल दिया जाना एक नया विचार है। नि:संदेह, ये बहुत ही मार्मिक और महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं, बहुत मज़बूत पकड़ है समाज के ऊपर कवि की। क्या-क्या हो रहा है समाज में यह कवि की सूक्ष्म दृष्टि सरलता से पकड़ लेती है।

कविता का मुख्य स्वर आधुनिक समाज में धन के लिए बढ़ता हा-हाकार है जहाँ शेश सभी विशय तिरस्कृत होते जा रहे हैं, हाशिए के भी बाहर कहीं ठेल दिए जा रहे हैं या फिर एक विशय उदात्त प्रेम है जो बरसों की धूल फाँक कर भी भुलाया, बिसराया नहीं जा सका है। मुकेश निर्विकार जी ने इस संग्रह की कविताओं को आरंभ से लेकर अंत तक पढ़ने का निवेदन पाठक से किया है जो कि एक तरह से ठीक ही दिखाई देता है। पाठक एक-एक कर कविता पढ़ता है और एक-एक कर ही सामाजिक विद्रूपताओं से साक्षात्कार करता चलता है, बल्कि कहें कि उसकी उनसे मुठभेड़ होती चलती है।

इतनी मर्म भेदी कविताओं की पुस्तक के बाद कवि से पाठक की अपेक्षाएँ स्वत: ही बढ़ती हैं। पाठक की इन बढ़ती अपेक्षाओं पर खरे उतरने का रास्ता उन्हें स्वयं ही निकलना होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

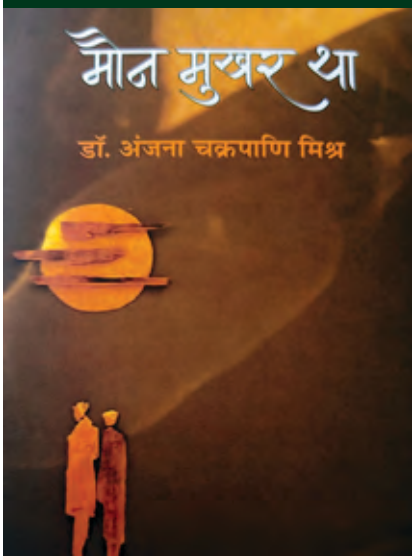

(कविता संग्रह)

मौन मुखर था

समीक्षक : ज्योति जैन

लेखक : डॉ. अंजना मिश्र

प्रकाशक : मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली

मौन जब मुखर होता है तो उसका वितान भव्य हो जाता है। और यही अंजना मिश्रा के कविता संग्रह 'मौन मुखर था' के साथ हुआ है। नारी मन की कोमल भावनाएँ बहुत मज़बूती के साथ पन्नों पर उतर आई हैं। नारी को कुदरती रूप से कोमल माना जाता रहा है। लेकिन मेरा मानना है कि जब स्त्री प्रेम करती है तो भीतर से बहुत मज़बूत हो जाती है। और यही मज़बूती नजर आती है अंजना मिश्रा की कविताओं में।

जब मैंने उनकी कविताओं को पढ़ना शुरू किया तो मैं स्पष्ट रूप से देख पा रही थी कि अधिकांश कविताएँ या तो स्त्री पर हैं या प्रेम पर। उनकी पहली कविता 'औरत हूँ मैं' की आत्मा देखिए कि बेशक स्वयं को वह साधारण या अदना सी मानती हैं.. लेकिन फिर भी बहुत बड़ी बात अपनी इस कविता में कह जाती हैं- कि मेरी हार से किसी की जीत निश्चित होती है.. और इसीलिए मैं सदा प्रसन्न हूँ..।

बहुत सुंदर भाव की यह पहली कविता है। 'जूही हँसती जूड़े में', 'सत्यम शिवम सुंदरम के भाव से भरी', 'स्वयंसिद्धा', 'स्वयं को अब मैं क्या देखूं', 'धरित्री हूँ..आखिर स्त्री हूँ', 'स्त्री हूँ और लाजवाब हूँ मैं' जैसी कविताओं में स्त्री विभिन्न रूपों में और विभिन्न भावों में नज़र आती है लेकिन बेचारगी के भाव से कहीं भी नज़र नहीं आती।

उनकी कविताओं में संस्कृति के स्वर भी मुखर हैं जब वे कहती हैं- कार्तिक माह में स्नान के लिए / गंगा घाट जाने वाली स्त्रियाँ / पाँच दिए दोने पर रखकर / हल्दी, पुष्प, कुमकुम के साथ / शुचि भाव लिए / माँ गंगा में पूरी श्रद्धा से / दीप प्रवाहित करती हैं स्त्रियाँ।

पारिवारिक मूल्यों में रंगी लेखिका अपनी नातिन नन्हीं परी अलाइना के लिए लिखी कविता में इंद्रधनुष को ही उड़ेल देती हैं। पाठक सीधे-सीधे महसूस कर लेता है कि अलायना लेखिका के जीवन में कितनी सारी खुशियाँ और रोशनी लेकर आई है।

संवेदना से भरपूर अंजना के लिए ऐसी रचनाएँ रचना बाएँ हाथ का खेल लगता है। धरित्री कविता में मुख्य भाव यही है कि आखिर स्त्री हूँ न... और स्त्री के लिए ही तमाम मुश्किलें संभव हो जाती हैं...स्त्री तो स्त्री है..। 'जब स्त्री हासिल नहीं' कविता उनकी पशु सम पुरुषों की मानसिकता की पीड़ा को उजागर करती है। ख़ामोशियाँ जब गुनगुनाने लगती हैं तब प्रेम से भीगी रचनाएँ पन्नों पर उतर आती हैं। अंजनाजी की रचनाओं के दूसरे रंग प्रेम ने भी ख़ूब रंग जमाया है। 'प्रेम अनन्य' में वे राधा के अलौकिक प्रेम की धुन सुनाती हैं, तो 'तुम्हें छू कर देख लूँ' में लजाकर भी छूने की इजाज़त मांगती हैं।

'मौन मुखर था' में अभिसारिका नायिका का चित्रण करती हैं तो 'ढाई आखर का प्यार' मे जन्म से लेकर शाश्वत मृत्यु तक ढाई आखर प्रेम का वर्णन करती हैं। 'प्रेम तत्वमय हूँ', 'तेरी आवाजों...,. 'तुम जो मेरे हुए', 'अबके होली में'..,. 'तू मेरा आकाश', 'गुलाबी उजास,' 'एक तेरी मुस्कान से'.. जैसी कविताओं में प्रेम का रंग गाढ़ा नज़र आता है। कभी ना उतरने वाला रंग नहीं, बल्कि वक्त के साथ और गहरा होने वाले प्रेम का रंग। इन सबसे इतर भी कुछ अलग रचनाएँ भी बहुत आकर्षक बन पड़ी हैं.. जिनमें 'वर्ण पिरामिड', 'टपरी पर चाय पीने को दिल करता है' जैसी रचनाएँ हैं।

ऐसी ही एक रचना है 'कागज पर कदमताल है कविता' इस कविता के माध्यम से ही बताया है कि कविता उनके लिए क्या है - वो मेरे अंतरंग की उष्मा से उठती, / धूपबत्ती सी हल्की सुवासित धूनी.. / जो हृदय से गुजर कर.. / मुझे संपूर्ण सम्मोहित किए हुए, / उस भाव के लिए, / अनहद नाद करती है। / कालांतर में वही स्वर.. / मेरी लेखनी का हाथ थामे.. / शब्दों का रूप धर काग़ज़ पर धीमे-धीमे कदमताल करते हैं.. / एक तरंगित प्रस्फुटित होता है... / जिसकी मैं जननी होती हूँ.. / और वह मेरी सुता कविता होती है।

कविता संग्रह में कविता के लिए इतने ख़ूबसूरत भाव एक कविता की पुस्तक को संपूर्ण बनाते हैं। रचनाओं की परिपक्वता से पता ही नही चलता कि यह उनका प्रथम संग्रह है।

000

ज्योति जैन
1432/24,नंदानगर
इन्दौर-452011
मोबाइल- 9300318182

शोध आलेख

(शोध आलेख)

गढ़वाल हिमालय की भोटिया जनजाति : सामाजिक, आर्थिक व संस्कृति संरचना का वर्तमान स्वरूप और आजीविका सुधार

शोध लेखक : गिरीश चन्द्र भट्ट
शोध निर्देशक : आर. के. मैखुरी
विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड

गिरीश चन्द्र भट्ट
पोस्ट-डॉक्टरल अध्येता,
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

शोध सार- गढ़वाल हिमालय की भोटिया जनजाति सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्ध संरचना के विशिष्ट जातीय समूह का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिक संस्कृति और विकास के चरण में अपनी सामाजिक गतिशीलता के परिवर्तन के दौर से गुजर रही भोटिया समुदाय का पारम्परिक रूप से पशुपालन, कृषि और व्यापार आजीविका का प्रमुख स्रोत रहा है। स्थानीय उत्पादों में आलू, राजमा, सेव, चूली, औषधी जड़ी-बूटी (चोरु, फरण, और छिपी आदि), भेड़-बकरियों का व्यापार, भेड़ की ऊन, हथकरघा व्यवसाय (भेड़ की ऊन से निर्मित कालीन, पंखी, पूजा आसन, स्वेटर आदि) से अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। वर्तमान में सरकारी नौकरी की ओर स्थानीय निवासियों का रुझान, होमस्टे और साहसिक पर्यटन, तीर्थाटन व अन्य वैकल्पिक आजीविका के स्रोत आर्थिक अवसर प्रदान कर रहे हैं। भोटिया समुदाय को सशक्त बनाने, बदलते सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देने की आवश्यक हैं। इसके अलावा, उनके पारंपरिक जीवन शैली के लिए महत्त्वपूर्ण पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए समुदाय के नेतृत्व में संरक्षण के प्रयास के साथ ही इनके बुग्यालों और वनों में पशुओं के चराने, जड़ी-बूटी व्यवसाय को प्रोत्साहन देकर आजीविका के साधन के रूप में बढ़ावा देकर आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। आधुनिकता को अपनी जीवनशैली में अपनाते हुए, उनकी विशिष्ट पहचान को संरक्षित करने और स्थानीय स्तर पर आजीविका के अवसरों को बढाने की दिशा में नियोजन और ठोस रणनीति की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: गढ़वाल हिमालय, भोटिया जनजाति, सांस्कृतिक संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, पलायन, नीती घाटी

प्रस्तावना: भोटिया जनजाति मध्य हिमालय में उत्तराखंड के कृषि-पशुपालक समुदाय के रूप में जानी जाती है। ऐतिहासिक दृष्टी से उत्तराखंड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में निवास करने वाली भोटिया जनजाति भारत एवं तिब्बत के बीच व्यापार करने के लिए भी प्रसिद्ध थी। उत्तराखंड के जिला चमोली में स्थित भोटिया समुदाय की ग्रीष्मकालीन निवास स्थान नीति-माना घाटी सीमांत कृषि और फसलों, ओषधीय उत्पादों, ऊन के व्यवसाय और पशुधन पर निर्भर है। ये समुदाय सर्दियों में अपने पशुओं के साथ नीति माना घाटी के गावों से निचले इलाकों में मौसमी प्रवास करते हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में रहने वाले मौसमी पशुचारक चरागाह क्षेत्रों की मौसमी प्रचुरता पर निर्भर रहते हैं। चरवाहे भारत की पारिस्थितिकी में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गढ़वाल हिमालय में चरवाहों सामुदायिक और राज्य के स्वामित्व वाली चरागाह भूमि पर निर्भर रहते हैं। इस लिए वर्तमान में, पारंपरिक चरागाहों और वनों का आरक्षित क्षेत्रों में परिवर्तित होने, ग्रामीण भूमि का तेजी से व्यावसायीकरण, हिमालयी क्षेत्रों में अत्यधिक जलविद्युत् परियोजनाओं का निर्माण, जलवायु परिवर्तन आदि कारणों से पशुचारकों के पारंपरिक आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगोचार हुए हैं।

नीती घाटी में मौसमी प्रवास के लिए प्रसिद्ध भोटिया जनजाति ग्रीष्मकालीन में चमोली जनपद के जोशीमठ उपखंड में स्थित भारत चीन सीमा पर स्थित उच्च हिमालयी क्षेत्र नीतीघाटी तथा शीतकाल में चमोली के निचले इलाकों चमोली जिले के छिनका, विरही, भीमताला, नैग्वाड़, मैठाणा, पुरसाड़ी, नंदप्रयाग, मंगरोली, देवली बगड़, कालेश्वर आदि गाँवों में आ जाते हैं। किन्तु वर्तमान में भोटिया समुदाय में मौसमी प्रवास कम हो रहा हैं, और ये अब जोशीमठ, छिनका, घिंगराण, नंदप्रयाग, मंगरोली, देवली बगड़, कालेश्वर (कर्णप्रयाग के निकट) स्थायी रूप से रहने लगे हैं। गढ़वाल हिमालय के भोटिया उप समूहों मारछा, तोलछा और जाड हैं, किन्तु चमोली जनपद में केवल दो ही उपजाति मारछा और तोलछा निवास करती हैं। सीमांत गाँवों के ये ग्रामीण ऊनी वस्त्रों के निर्माण के अलावा सेब, राजमा, आलू, चौलाई आदि नकदी फसलों का उत्पादन कर अपनी आजीविका चलाते हैं। शीतकाल में निचले स्थानों पर आने के बाद ये पशुपालन व ऊनी वस्त्रों का निर्माण करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय और शोध पद्धति : उत्तराखंड राज्य भारत के उत्तरी भाग में स्थित है। और उत्तर में चीन के साथ एक अंतरराष्ट्रीय सीमा साझा करता है। इसका क्षेत्रफल 53,483 किमी है।2 राज्य की भौगोलिक स्थिति 280 43' से 310 27' उत्तरी अक्षांश एवं 770 34' से 810 02' पूर्वी देश मध्य में स्थित है। वर्तमान अध्ययन नीती घाटी उत्तराखंड के चमोली जिले के जोशीमठ उप-मंडल के उत्तर में भौगोलिक निर्देशांक 30.41'04" उत्तर से 30.46'39" उत्तर तथा 79.50'28" पूर्व से 79.53'22" पूर्व में स्थित है। नीतीघाटी में भोटिया उपजाति मारछा और तोलछा निवास करती हैं। इसे धौली गंगा नदी के नाम पर 'ऊपरी धौली घाटी' के रूप में भी जाना जाता है, जो अलकनंदा नदी के जलग्रहण क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा है। धौलीगंगा इस घाटी की एक प्रमुख नदी है। प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहसिक और वर्णात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के संकलन के लिए प्राथमिक आँकड़ों के लिए नीती घाटी के गावों लाता, कोषा, मलारी, गमशाली, नीती और द्रोणागिरी में स्थानीय लोगों के साक्षात्कार और समूह चर्चा और द्वितीयक स्रोत के रूप में पुस्तकों, शोध पत्रों व इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी का प्रयोग किया गया है।

गढ़वाल हिमालय की संस्कृति और भोटिया जनजाति : उत्तराखण्ड प्राचीन काल से ऋषि मुनियों की तपस्थली और देवी देवताओं के निवास स्थल के रूप में प्रसिद्ध होने के कारण देवभूमि के नाम से जाना जाता है। गढ़वाल हिमालयी संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं, यहाँ की अधिकृत उपासना पद्धति और रीती रिवाज मानव और प्रकृति के समन्वय को दर्शाती है।

लोकगीत, लोक नृत्य और स्थानीय त्यौहार मानव समाज और उनकी जीवनशैली का एक अभिन्न अंग है।

भोटिया जनजाति की मुख्य आराध्य नंदा देवी हैं। उन्हें भगवान शिव की पत्नी गौरा के रूप में देखा जाता है। नंदा देवी स्थानीय समुदायों की मुख्य संरक्षक हैं। लाता गाव में नंदा देवी का मंदिर घाटी का प्रमुख मंदिर है, जिसके बारे में माना जाता है कि इसका निर्माण कत्यूरी काल के दौरान हुआ था। भगवती काली, फैला पंचनाग और पर्वत देवता भी इनके मुख्य आराध्य हैं। इस घाटी में पांडव नृत्य और भूमि के नायक, जीतू बगड्वाल के सामयिक प्रदर्शन, लाता गाँव में बैसाखी के अवसर पर अनुष्ठानिक मुखौटा नृत्य, बसंत पंचमी, बैसाखी, नाग पंचमी (फेला पंचनाग), नंदा अष्टमी और दशहरा (दुर्गा अष्टमी) को धूम धाम से मनाया जाता है। इस घाटी में शीतकालीन प्रवास की शुरुआत में एक विशेष उत्सव, लाप्सू या लाप्सा, भी होता है।

पशुचारक और शासकीय नीतियाँ: वन और उनकी उपज वन सीमांत क्षेत्रों के लिए पर्याप्त आजीविका के अवसर प्रदान करती है। औषधीय जड़ी-बूटी और वन आधारित संसाधनों एवं उनसे बनने वाले उत्पाद आजीविका के बेहतर अवसर सृजित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वन, कृषि, चारा, पशुचारण अधिकार और प्रवासन के संबंध में राज्य की नीतियाँ भोटिया जनजाति के पशुचारण और पारंपरिक जीवन-शैली में परिवर्तन में सहायक सिद्ध हो रही है।

गढ़वाल हिमालय के भोटिया समुदायों के अधिकांश बस्तियाँ और रहने योग्य पड़ाव भारत में ब्रिटिश शासन से पहले और उनके शासन काल में उनके अधीन थे। किन्तु आजादी के बाद यूपी जमींदारी अधिनियम का उन्मूलन इस क्षेत्र में लागू किया गया और भूमि पर खेती करने वालों को मालिकाना हक दिया गया। इस नीति के कार्यान्वयन से पशुचारक आबादी को उनकी शीतकालीन बस्तियों में भूमि के बिना छोड़ दिया गया और केवल ग्रीष्मकालीन बस्तियों में कुछ स्थायी जोत का अधिकार दिया गया। निचली घाटियों में चरवाहे आबादी के पास कोई भूमि अधिकार नहीं है, इसलिए उन्होंने पूरी सर्दी उन गाँवों में से एक में रहना शुरू कर दिया, जहाँ उन्होंने पहले केवल डेरा डाला था। इस प्रकार, मौसमी चरवाहे परिवार के साथ अब सामूहिक रूप से निचले क्षेत्र चमोली के आस-पास के गाँवों में निवास करते हैं, जहाँ वे पहले डेरा डालते थे। पशुचारण की दिशा में सरकार की अनदेखी और इनके उच्च हिमालयी पशुचारण क्षेत्रों (बुग्यालों) आरक्षित क्षेत्र घोषित होने के कारण इन क्षेत्रों से इनके अधिकार सिमित हो गए और चरवाहों को अपनी पारंपरिक जीवन शैली को छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। नीती घाटी में पशुचारण व्यवसाय के प्रभावित होने से पशुधन की संख्या में कमी आई। भोटिया समुदाय के पारंपरिक चरागाह क्षेत्र और सामुदायिक वन क्षेत्र नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र (बायोस्फीयर रिज़र्व) घोषित करने के कारण भी पारंपरिक पशुचारकों और वन्य संसाधन संबंधी आर्थिक गतिविधियाँ बाधित हो हुई। गढ़वाल हिमालय में स्थित नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र के बफर जोन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए आजीविका विकल्प के रूप में पर्वतारोहण अभियान और पर्यटन, पशुपालन और कृषि के बाद महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था। 1960 तक, नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र के बफर जोन और आसपास के क्षेत्रों में भोटिया लोगों का तिब्बत के साथ अच्छे व्यापारिक संबंध थे। किन्तु 1962 के भारत-चीन युद्ध के कारण भारत-तिब्बत व्यापार बंद हो गया। इसके बाद 1982 में नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान और 1988 में नंदा देवी बायोस्फीयर रिजर्व के निर्माण के कारण संरक्षण नीतियाँ लागू की गईं, जिससे सभी उपभोग्य उपयोग और अभियान/पर्वतारोहण प्रभावित हुए। कोर ज़ोन में प्रतिबंध लगने से न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को काफी हद तक प्रभावित किया, बल्कि स्थानीय लोगों और आरक्षित क्षेत्र में कार्यरत और सम्बन्धित अधिकारियों के बीच संघर्ष भी पैदा हो गया। पर्यटन पर प्रतिबंध स्थानीय लोगों की सबसे गंभीर चिंता थी, क्योंकि इससे उनको अधिक आय प्राप्त होती थी। कोर जोन से तात्पर्य जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र के सबसे महत्त्वपूर्ण भाग से है।

सीमावर्ती गाँवों में पलायन और उनका सामरिक महत्त्व : भारत और चीन के मध्य हिमालय की लम्बी सीमा रेखा दोनों देशों के मध्य विवाद का कारण हैं। जिसका अधिकांश हिस्सा सर्दियों में बर्फ से ढका रहता है और

तापमान शून्य से नीचे रहता है। किन्तु भारतीय सेना इस दुर्गम परिवेश में भी सीमा पर तैनात रहती है। हाल के समय में भारत और चीन लगातार सीमा विवाद व उसे सुलझाने के लिए बातचीत का दौर चल रहा है। दोनों देशों के सैनिकों की गलवान नदी घाटी में संघर्ष के बाद भारत के चीन के साथ बिगड़ते सम्बन्धों के कारण उत्तराखंड से लगती अंतरराष्ट्रीय सीमा की संवेदनशीलता बढ़ गई है। वर्तमान समय में नीती घाटी के सीमावर्ती गाँवों में तेजी से बढ़ रहा पलायन राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से गंभीर चिंता का विषय बना है।

वाइब्रेंट विलेज प्रोग्राम : भारत की केंद्र सरकार द्वारा भारत चीन सीमा पर स्थित जिले में रहने वाले लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने के उद्देश्य से "वाइब्रेंट विलेज परियोजना" का शुभारंभ भारत के उत्तर पूर्व में स्थित अरुणाचल प्रदेश राज्य के पूर्वी अंजोव जिले से किया गया। इस परियोजना का मुख्य लक्ष्य भारत-चीन सीमा के समीपवर्ती गाँवों से स्थानीय लोगों का पलायन रोकना और लोगों को अपने मूल स्थानों में बने रहने के लिए आजीविका संसाधन उपलब्ध कराना, बेहतर सड़क संपर्क, सौर और पवन ऊर्जा का विकास, 24 घंटे बिजली, मोबाइल और इंटरनेट सुविधाएँ शामिल हैं।

निष्कर्ष : विकास और संरक्षण में सामंजस्य के उद्देश्य से सरकार द्वारा नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र घोषित करने की ऐसी नीतियाँ बनाईं, जो इस क्षेत्र में स्थित स्थानीय भोटिया समुदाय की आजीविका को प्रभावित करने वाली थीं। कोर जोन जोकि जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। जिसके प्रतिबंधित होने से भोटिया समुदाय की पारम्परिक भौतिक संपदा पर असर पड़ा है। साथ ही इनकी आजीविका रणनीतियों में भी अवांछित बदलाव आया है। परिणामस्वरूप, इन्होने नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र की नीतियों का विरोध करते हैं और उन्होंने सक्रिय रूप से ऐसी नीतियों का विरोध किया। संसाधन प्रबंधकों और नीति निर्माताओं के लिए, आरक्षित क्षेत्र अपनी अद्वितीय जैव विविधता के लिए महत्त्वपूर्ण है और भोटिया लोगों के लिए, यह क्षेत्र एक पवित्र भूमि और उनकी आजीविका और संस्कृति के स्रोत के रूप में महत्त्वपूर्ण है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूमि और आजीविका के अन्य संसाधन सीमित हैं। जैसा कि वर्तमान में देखा जा रहा है, जनसंख्या कम होने से सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने और प्रबंधन में एक बड़ी चुनौती है। मानव-प्राकृतिकता को बनाए रखने के लिए प्रवासन की वर्तमान सीमा को कम करने की आवश्यकता है। संसाधन संतुलन. तेजी से घटती जनसंख्या ने राष्ट्रीय सुरक्षा, सांस्कृतिक विरासत के नुकसान को लेकर चिंताएँ बढ़ा दी हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक क्षेत्र, माध्यमिक और तृतीयक आर्थिक क्षेत्र जैसे पर्यटन, शिक्षा और अन्य सेवा क्षेत्र का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। गाँवों में प्राकृतिक संसाधनों का रखरखाव, अनियोजित तीव्र शहरीकरण, बड़े पैमाने पर प्रवासन समाज के उस वर्ग की आजीविका पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। सिमित भूमि, एक स्थिर कृषि क्षेत्र, मानव वन्यजीव संघर्ष और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव ने पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करने वाले परिवारों के लिए मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। अत: हिमालयी क्षेत्र में भौगोलिक एवं पारिस्थितिकीय आधार पर आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए मुख्यत: पशु, कृषि, प्राकृतिक सम्पदा का उचित प्रबन्धन ही सतत् विकास के लिए एक उच्च विकल्प है।

000

सन्दर्भ- Maikhuri, R. K., Nautiyal, S., Rao, K. S., & Saxena, K. G. (1998). Role of medicinal plants in the traditional health care system: a case study from Nanda Devi Biosphere Reserve. Current Science, 152-157.

Nautiyal, S, Rao, K, Maikhuri, RK & Saxena, KG 2003, 'Transhumant pastoralism inthe Nanda Devi Biosphere Reserve, India', Mountain Research and Development, vol.23, no. 3, pp. 255-62.

Debasish, Das, N. K. Jha, and R. K. Maikhuri. "Fragmentation of pastoral grazing landscape and herd migratory routes: a case study from Indian Central Himalaya." International Journal of Life Sciences 9.3 (2015): 18-23.

रावत, जय सिंह, बदलाव के दौर से गुजरती जनजातियाँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, संस्करण 2023, पेज संख्या -157

Sharma, S., Sharma, K. K., & Patel, S. (2019). Geographical analysis of internal migration and livelihood options for mountain sustainability along Indo-China border in Niti Valley of Uttarakhand, Western Himalaya. IOSR Journal of Mathematics (IOSR-JM), 15(5), 7-12.)

Misra, S., Maikhuri, R. K., Kala, C. P., Rao, K. S., & Saxena, K. G. (2008). Wild leafy vegetables: A study of their subsistence dietetic support to the inhabitants of Nanda Devi Biosphere Reserve, India. Journal of ethnobiology and ethnomedicine, 4, 1-9.

नौटियाल सुनील, राव, के.एस., मैखुरी, आर.के., पुरोहित, आदित्य., और नेगी सी. एस. मध्य हिमालयी संस्कृति में ज्ञान, विज्ञान एवं पराविज्ञान, विनसर पब्लिकेशन देहरादून संस्करण 2018, पेज-153-163।

Maikhuri, R. K., Nautiyal, S., Rao, K. S., Chandrasekhar, K., Gavali, R., & Saxena, K. G. (2000). Analysis and resolution of protected area–people conflicts in Nanda Devi Biosphere Reserve, India. Environmental Conservation, 27(1), 43-53.

Maikhuri RK, Nautiyal S, Rao KS, and Saxena KG (2001a) Conservation Policy-People Conflicts: A Case Study from Nanda Devi Biosphere Reserve (A World Heritage Site), India.Forest Policy and Economics 2: 335-365.

Nautiyal, S., Shibasaki, R., Rajan, K. S., Maikhuri, R. K., & Rao, K. S. (2005). Impacts of land use change on subsidiary occupation: a case study from Himalayas of India. Environmental Informatics Archives, 3, 14-23.

Maikhuri, R. K., Rana, U., Rao, K. S., Nautiyal, S., & Saxena, K. G. (2000). Promoting ecotourism in the buffer zone areas of Nanda Devi Biosphere Reserve: An option to resolve people—policy conflict. International Journal of Sustainable Development & World Ecology, 7(4), 333-342.

https://www.dw.com/hi/
भारत-चीन-सीमा-विवाद

क्या है वाइब्रेंट विलेज प्रोग्राम का उद्देश्य, चीन क्यों है परेशान?।

Tv9 (tv9hindi.com)

(शोध आलेख)

हिन्दी की दलित आलोचना और उसकी अर्थवत्ता

शोध लेखक : डॉ. फात्तिमा बीवी आर
पोस्ट डॉक फैलो

साहित्य यदि सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का दस्तावेज है तो आलोचना उन्हीं मूल्यों का मूल्यांकन और विश्लेषण हैं। इसी प्रक्रिया में साहित्य जहाँ सामाजिक समानता को कायम रखने का और मानवीय कल्याण पर ज़ोर देने का कार्य करता है वहीं आलोचना उस साहित्य के विश्लेषण पद्धति व प्रक्रिया के दौरान साहित्य के साथ नीति बरकरार रखने का प्रयास करती हैं। समकालीन समय और समाज विभिन्न अंतर्द्वंद्व के बीच से गुज़र रहा है,जहाँ व्यक्ति अपने मानवीय अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ने को मजबूर है वहाँ साहित्य उस लड़ाई में उसके साथ खड़ा हो रहा रहा है। समकालीन दलित साहित्य इसके उत्तम उदाहरण है। स्थापित सामाजिक मूल्य जब जड़ हो जाते है तब समयानुकूल उसमें परिवर्तन लाना ज़रूरी हो जाता है। दलित समाज के साथ युगों से की गई अमानवीय व्यवहार और सामाजिक असमानता के विरुद्ध आवाज़ उठाने और जीर्ण होते हुए सामाजिक मूल्यों पर वार करने वाला अस्मितावादी साहित्य है दलित साहित्य। जब साहित्य इतना बड़े उत्तरदायित्व को सँभाल रहा है तब आलोचना का दायित्व भी बढ़ जाता है। आलोचना रचना के अंदर घुसकर उसके सार तत्व को पाठकों तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण दायित्व उठाती है साथ ही पाठकों को रचनाकार के साथ चलने का मौका भी प्रदान करती है। समकालीन साहित्य मुख्यत: विमर्शवादी साहित्य अपनी सर्जकात्मकता के माध्यम से पुराने सड़ी गली परम्पराओं पर वार कर रहा है और आंदोलन का रूप धारण कर रहा है। वहीं आलोचना उसके साथ खड़े होकर उसके लिए रास्ता साफ कर रही है। दलित साहित्य के संदर्भ में दलित आलोचना यही कार्य करने का प्रयास कर रही है।

हिन्दी दलित साहित्य अब अपना स्वरूप का निर्माण करने में सफल हो चुका है। लेकिन हिन्दी की दलित आलोचना अब भी अपने स्वरूप निर्माण की प्रक्रिया है। पुराने आलोचनात्मक प्रतिमानों को तिरस्कृत करके साहित्य में निहित सामाजिक मूल्यों पर ज़ोर देकर वह अपने लिए नए स्वरूप और प्रतिमानों का निर्माण कर रहा है। सभी प्रकार की विमर्शवादी आलोचना साहित्य इसी दौर से गुज़र रही है। परिमाणस्वरूप साहित्यालोचना और साहित्य के मूल्यांकन हेतु प्रतिमानों का निर्माण करना आसान कार्य नहीं रहा। रत्नकुमार पाण्डेय कहते हैं कि "आलोचना अपने समय और परिवेश के संदर्भ में किसी रचना के मर्म बिन्दु तक पहुँचने की दृष्टि है।" तो इस दृष्टि को रूपायित करना आसान कार्य नहीं है। हिन्दी की दलित आलोचना की बात करें तो दलित सामाजिक जीवन और अंबेडकर के दर्शन को अपना मूल बिन्दु मानते हुए सामाजिकता के बलबूते पर नई आलोचनात्मक दृष्टि का निर्माण हो रहा है। साहित्यकार की दृष्टि काल सापेक्ष होती है। इस दृष्टि के अनुरूप आलोचना भी काल सापेक्ष होना ज़रूरी है।

हिन्दी की परंपरागत आलोचनात्मक दृष्टि का रूपायन संस्कृत के काव्य शास्त्र और कलावादी, रसवादी दृष्टि से हुई है। जिसके मुताबिक साहित्य का प्रमुख उद्देश्य आनंद प्राप्ति रही। लेकिन समकालीन दलित आलोचना इस दृष्टि को तिरस्कृत करके साहित्य में सामाजिकता के पक्ष पर बल देकर उसमें निहित मानवीय मूल्यों व सामाजिक पक्ष को बाहर खींच निकालने का प्रयास कर रही है। दलित समाज के लिए दलित साहित्य उनके अंदर से उमड़ी विद्रोह, प्रतिरोध और क्रान्ति का साहित्य है। आलोचकों को इस बात को समझना और उसके अनुरूप दलित साहित्य का विवेचन करना ज़रूरी है। समय के बदलाव के साथ साहित्य के बदलाव को अपनाने में दलित आलोचक हिचकते नहीं है। इसलिए दलित आलोचक ज़्यादातर आलोचनात्मक प्रतिमानों को किसी निश्चित दायरे में रखने को अस्वीकार करते है।

हिन्दी दलित आलोचना के केंद्र में समानता और मानवता को सबसे अधिक स्थान दिया गया है। दलित आलोचक वर्चस्व वादी आलोचना की पक्षपाती न होकर मुक्तिकामी आलोचना के पक्ष में खड़े होते हैं। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं "वर्चस्ववादी आलोचना और मुक्ति कामी आलोचना। वर्चस्व वादी आलोचना समाज और संस्कृति में वर्चस्ववादी सम्बन्धों को बनाए रखने में सहायक अर्थों, मान्यताओं, मूल्यों और विचारों की स्थापना का काम करती है। इसके विपरीत मुक्तिकामी आलोचना ऐसे अर्थों, सार्थकताओं और मूल्यों की खोज करती है जो

डॉ. फात्तिमा बीवी आर
पोस्ट डॉक फैलो
कुसाट, कोच्चि, केरला
मोबाइल- 9562739735

वर्चस्व की प्रवृत्ति को तोड़े। इस प्रक्रिया में मुक्तिकामी आलोचना एक जनोन्मुखी सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करती है।" दलित आलोचना भी सभी प्रकार के वर्चस्व वादी मूल्यों व शक्तियों का निराकार करके समता को कायम रखने पर बल देती है। क्योंकि अस्मितावादी आलोचना ने साहित्य आलोचना के फ़लक को और अधिक व्यापक और विस्तृत बना दिया है। दलित आलोचना ने मात्र वर्तमान के साहित्य का मूल्यांकन नहीं अतीत में लिखी हुई रचनाओं का मूल्यांकन करने का और उसको सामाजिक - सांस्कृतिक परिवेश में विवेचन करने का प्रयास किया है। इसी प्रयास के फलस्वरूप साहित्य का सामाजिक स्वरूप आज आलोचना का केंद्रीय बिन्दु बन गया है। साथ ही दलित आलोचकों ने अपने साहित्य के मूल्यांकन हेतु एक नए काव्यशास्त्र का निर्माण करने पर ज़ोर दिया। सम्पूर्ण आलोचना क्षेत्र में यह एक प्रकार बदलाव की हवा समान है। साहित्य की परंपरागत परिस्थितियों से भिन्न होकर नए सौन्दर्य शास्त्र का निर्माण करने का मतलब सम्पूर्ण रूप से रचना के संरचना पक्ष को भूलना भी नहीं है। बल्कि प्रत्येक साहित्य के उद्देश्य और स्वरूप के अनुरूप उसमें निहित संरचना पक्ष और उसकी गुणवत्ता पर मूल्यांकन करना है। दलित आलोचक दलित साहित्य के मर्म को पहचानकर उसके अनुरूप नए सौंदर्यशास्त्र की निर्माण प्रक्रिया में लगे हुए हैं। हिन्दी के दलित आलोचक साहित्य के आलोचनात्मक प्रतिमानों को सामंतवादी - ब्राह्मणवादी व्यवस्था से मुक्त किया है। साथ ही साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक बहस और सामाजिक बहस को भी जन्म देता है। दलित आलोचना दलित साहित्य के मूल्यांकन करने के साथ भारतीय समाज और सामाजिक व्यवस्था के ऊपर भी आलोचना करती है।

दलित आलोचना की परंपरा पर ध्यान देने तो पता चलेगा कि दलित साहित्य एक विमर्श/साहित्यिक संवाद के रूप में सत्तर अस्सी के दशक में अस्तित्व में आया। इसके बाद नब्बे के दशक में आकर दलित आलोचना अपने लिए नया रूप और एक सशक्त धारा का निर्माण करके सामने आई। तत्कालीन समय में दलित साहित्य के लिए अपनी नई आलोचना परंपरा का होना समय की माँग थी। इस समय 'अंगतुर' जैसी पत्रिका (नागपुर) में दलित लेखक एक दूसरे की रचनाओं की समीक्षा करने लगे। इसी कड़ी में दलित आलोचना के क्षेत्र में भी दो प्रकार की प्रवृत्ति पायी जाती है। एक में आलोचक हिन्दी के प्रगतिशील रचनाकार, जिन्होंने दलित जीवन का उल्लेख किया, उनकी रचनाओं की आलोचना करने लगा और अब तक मान्य सारी रूढ़िगत स्थापनाओं को चुनौती देने लगा। जैसे प्रेमचंद की रचनाएँ, 'नागार्जुन की हरिजन गाथा'(कविता), निराला की कविताएँ जिनमें दलित जीवन का ज़िक्र है,उन सारी रचनाओं की तीखी आलोचना होने लगी। अब तक बड़े कहे जाने वाले रचनाकारों को कटखरे में खड़े रखने की प्रवृत्ति वहाँ से शुरू होती हुई नज़र आती है। इन रचनाकारों की रचनाओं में दलित जीवन का ज़िक्र होने पर भी जिस प्रकार प्रामाणिक अनुभूतियों का अभाव है, इस पर गंभीर रूप से आलोचनाएँ सामने आने लगीं। कबीर ने जिस प्रकार अपनी वाणी के माध्यम से समाज की तीखी आलोचना की थी वही कार्य दलित आलोचना साहित्य और इतिहास के साथ कर रहे थे।

अस्सी के दशक तक आकर दलित समाज से शिक्षित दलित साहित्यिक क्षेत्र में आने लगे। वे कलम के माध्यम से अपनी चेतना को व्यक्त करने लगे और अब तक उन पर हुए शोषण के विरुद्ध विद्रोह ज़ाहिर करने लगे। तब उनकी प्रामाणिक अनुभूतियों के चित्रण के सामने दूसरों की सहानुभूतिपरक अनुभूतियों का चित्रण फीका पड़ने लगा। धीरे-धीरे अनेक दलित रचनाकार साहित्य जगत में आए और दलित साहित्य मुख्य धारा में स्थान पाप्त करने लगा। इस कोटि में जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि), छप्पर(जय प्रकाश कर्दम) जैसी रचनाओं के आगमन के बाद ऐसी रचनाओं का विवेचन केलिए नई आलोचना की अनिवार्यता सामने आई।1975 में कमलेश्वर ने सारिका में और महीप सिंह ने अपनी पत्रिका 'संचेतना' के दलित विशेषांक निकाले,जिससे हिन्दी साहित्य क्षेत्र में दलित आलोचना चर्चा का विषय बनने लगी। इसके उपरांत 1993 में ओमप्रकाश वाल्मीकि की अध्यक्षता में नागपुर में दलित लेखक संघ की बैठक हुई, तब से विधिवत रूप से दलित साहित्य का विकास होने लगा और इस समय से दलित आलोचना की भी शुरुआत हुई। तद्पश्चात लेखकों ने गण एक दूसरे की रचनाओं का अध्ययन करके विवेचन विश्लेषण करना शुरू किया। आलोचना की इस नई परंपरा में दलित साहित्यकारों ने खुद आलोचक बनने का दायित्व उठाया। क्योंकि वे इस बात से अवगत थे कि यदि दलित साहित्य का सही मूल्यांकन होना है तो उसके लिए पहला कदम दलित साहित्यकार को ही रखना पड़ेगा। नहीं तो जिस प्रकार दलित जीवन इतिहास के पन्नों से गायब थे उसी प्रकार दलित साहित्य भी साहित्य के पन्नों से गायब हो जाएगा। धीरे-धीरे अब दलित आलोचना साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान बनाने में सफल होने लगी। इसकी बहुत मजबूत शुरुआत धर्मवीर और उनकी वैचारिकी ने की। उनकी आलोचना के केंद्र में दलित जीवन और उनकी समस्याएँ हमेशा मौजूद थे। वे आलोचना में भी दलित जीवन और उनके अनुभूतियों को प्रथम स्थान दिया। समकालीन समय में दलित और गैर दलित आलोचक दलित साहित्य का मूल्यांकन न्याय के साथ करने लगे। दलित आलोचना के अपने अलग दृष्टिकोण, पद्धति और सौंदर्य चेतना के विकास हुए जो दलित साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दलित आलोचना के क्षेत्र में काम करने वाले प्रमुख हस्ताक्षर हैं, डॉ. जयप्रकाश कर्दम, कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. धर्मवीर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, रमणिका गुप्ता, डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन आदि।

000

संदर्भ-

डॉ रत्न कुमार पाण्डेय - आलोचक और आलोचना सिद्धान्त, भूमिका, मैनेजर पांडेय - संकलित निबंध, पृष्ट 46

शोध आलेख

(शोध आलेख)

जितेन्द्र श्रीवास्तव के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम :

(दांपत्य प्रेम के विशेष सन्दर्भ में)

शोध लेखक : पूजा कुशवाहा (शोधार्थी) लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा, पंजाब

डॉ. विनोद कुमार (सह अध्यापक) लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा, पंजाब

पूजा कुशवाहा
मकान नं. 489, राजगुरु मार्ग, कॉलेज रोड, सिविल लाइंस, लुधियाना, पंजाब 141001
मोबाइल- 9140836100
ईमेल- poojakushwaha5593@gmail.com

शोध सार

हिन्दी साहित्य जगत में प्रेम सम्बधी रचनाएँ कोई नई बात नहीं है। आदिकाल से ही अनेक रचनाओं में प्रेम का सुंदर चित्रण मिलता है। जैसे बीसलदेव रासो या अन्य रासो ग्रंथों में। रीतिकालीन रचनाओं में भी प्रेम चित्रण को प्रमुख रूप से चित्रित किया गया। आधुनिक कवियों ने भी अपनी प्रेम सम्बन्धी बहुधा रचनाएँ की और अपने मनोभावों को अनेक प्रकार से व्यक्त किया। पर हिन्दी साहित्य में व्यक्त होने वाला प्रेम अधिकतर परकीया प्रेम या प्रेमी प्रेमिका के बीच का ही है। कुछ एक कवियों को छोड़कर। आज जब हिन्दी साहित्य में प्रेम कविताओं के नाम पर जहाँ अश्लीलता परोसी जा रही है वहाँ जितेन्द्र श्रीवास्तव जैसे कवि दाम्पत्य प्रेम का एक औदात्य स्वरूप हमारे सामने रखते हैं। जो दाम्पत्य जीवन में पनने वाला प्रेम है।

जितेन्द्र श्रीवास्त की प्रेम कविताएँ उनके दाम्पत्य जीवन से जुड़ी हुई हैं जो उन्होंने अपनी पत्नी के लिए लिखी हैं। दाम्पत्य प्रेम की जितनी सहज और सुन्दर अभिव्यक्ति जितेन्द्र श्रीवास्तव के काव्य में मिलती है वैसी अभिव्यक्ति इधर हिन्दी कविताओं में विरले ही मिलती है। अपने दाम्पत्य प्रेम सम्बधी कविताओं के लिए ये केदारनाथ अग्रवाल की परंपरा के कहे जा सकते हैं। इस शोध में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त दाम्पत्य प्रेम से सम्बधित कविताओं का अध्ययन कर प्रेम के श्लील चित्रण को रखेंगे जो आज के समय की जरूरत है।

बीज शब्द – प्रेम, दाम्पत्य, स्वकीया, परकीया, स्त्री, पुरुष, समाज, नैतिकता, परम्परा, विवाह, संस्कृति, परिवार

मूल आलेख - पृथ्वी के समस्त प्राणी जगत में मानव एक चिंतनशील प्राणी है और मानव जीवन में प्रेम जीवन की सहज अनुभूति और अभिव्यक्ति है। आत्मा का सत्व गुण प्रेम का मूल उपादान है। सृष्टि के निर्माण के साथ ही प्रेम भाव का निर्माण हुआ है। ये बात अलग है कि साहित्य में वह बाद में आया प्रेम भावना मनुष्य हृदय की अमूल्य निधि है।

परशुराम चतुर्वेदी ने प्रेम को परिभाषित करते हुए कहा है -'प्रेम' शब्द का अभिप्राय साधारणत: उस मनोवृत्ति से लिया जाता आया है जो किसी व्यक्ति को, दूसरे के संबंध में, उसके रूप, गुण, स्वभाव, सान्निध्य आदि के कारण, उत्पन्न कोई सुखद अनुभूति सूचित करती हो तथा जिसमें दूसरे के हित की कामना भी बनी रहती हो।"1

भारतीय परंपरा के अनुसार दांपत्य वह है जो स्त्री और पुरुष दोनों को एक बंधन में बाँधकर एक करता है। यह बंधन "विवाह" कहलाता है एवं इसके बाद का जीवन दांपत्य जीवन कहलाता है। दंपत्ति यानि जोड़ा। स्त्री और पुरुष का जोड़ा,जिसे एक धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक कानूनी, मान्यताओं, रीति -रिवाजों के आधार पर स्वीकृति प्रदान की जाती है। आज के इस भौतिकवादी समय में मनुष्य के हृदय में जो प्रेम भावना विद्यमान है धीरे-धीरे इसका ह्रास होता जा रहा है लेकिन इस विडम्बनापूर्ण समय में भी समकालीन कवि जितेंद्र श्रीवास्तव दाम्पत्य प्रेम का सहज भाषा में सुन्दर चित्रण करने में सफल रहे हैं। विमलेश त्रिपाठी के अनुसार – "वर्तमान हिन्दी कविता का परिदृश्य और कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव के बीच का अंतर भी समझ में आता है कि इधर की कविताओं में जिस तरह देह को प्रमुखता दी गई है और ब्रेकअप पर लिखी गई कविताओं को प्रायोजित तरीके से उछाला जा रहा है, ऐसे में इस कवि के प्रेम की मासूम और ईमानदार अभिव्यक्तियाँ गौर करने लायक हैं।"2

वैवाहिक जीवन में विवाहित जोड़े के लिए उसका साथी ही प्रेम का आधार होता है दाम्पत्य जीवन की यात्रा प्रेम के अभाव में सुखकर नहीं हो सकता। सुखी दाम्पत्य जीवन आपसी सहयोग की भावना, एक दूसरे के लिए सम्मान की भावना पर निर्भर करती है। एक सच्चा साथी अपने साथी के बिना कहे ही उसके सुख दु:ख को समझ लेता है। जितेन्द्र श्रीवास्तव की एक कविता की ये पक्तियाँ इसी आपसी सहयोग और समझ को व्यक्त करती हैं- "जी, बहुत सहयोगी हैं / समझते हैं मेरी सीमा अपनी भी"3

जितेन्द्र श्रीवास्तव जी ने दाम्पत्य जीवन की पूरी यात्रा का कितना सहज चित्र अपनी कविता

'तुम जब चाहो' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है- "जीवन चार आँखों से देखा गया एक सपना / बीस उँगलियों से तराशी हुई एक तस्वीर / चार पैरों से चली हुई दूरी/ बिन बोले चार अधरों का कंपन / बिन कहे एक-दूजे के लिए बटोरा ऑक्सीजन है / जीवन एक-दूसरे में घुल जाना है"4

कवि के शब्द चुनाव पर और दाम्पत्य जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कि वैवाहिक जीवन की इतनी सुन्दर परिभाषा इतने सरल शब्दों में इतनी गहराई समेटे, इस तुरंता हो चुके समय में इसके पहले शायद ही किसी ने की हो।कवि का ये कहना कि 'जीवन एक-दूसरे में घुल जाना है।' ये दाम्पत्य में एक दूसरे के प्रति खुद को समर्पित करने का भाव व्यक्त करता है। समर्पण की यही भावना ही दाम्पत्य जीवन का आधार है। कवि अपनी पत्नी को संबोधित करते हुए कहते है 'तुम नहीं जानतीं अपने होने का अर्थ' कि तुम्हारी क्या अहमियत है मेरे जीवन में, तुम्हारे मेरे जीवन में आने से मेरा जीवन पूर्णता को प्राप्त हो गया।

"तुमने बदल दी मेरे लिए / मेरे लिए जीवन की / परिभाषा और परिभाषाओं में खोया हुआ मैं पा गया जीवन को"5

कपिल देव लिखते हैं -"जितेंद्र का 'प्रेम' दैहिक दायरे से निकलकर अपने विस्तार में पूरी कायनात को समेट लेने को उत्सुक है। न केवल उत्सुक, बल्कि कल्पना को असंभव हदों तक जाकर उस स्वप्न-संसार को संभव कर लेना चाहता है। प्रेम की एक अनोखी छटा इनकी कविताओं में हमें देखने को मिलती है कवि के यहाँ हर स्थिति में अपने प्रियतम के साथ होने का भाव है इनकी कविता "चुटकी भर मैं"की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

'तुम्हारा कहीं भी होना/मेरे साथ होना है/मेरा कहीं भी होना/तुम्हारे साथ होना है/तुम कहीं भी जाओ/कितनी भी बचकर जाओ/चुटकी भर चला ही जाऊँगा तुम्हारे साथ।"6

दाम्पत्य जीवन की एक अनोखी विशेषता है कि बिना कुछ कहे ही एक स्त्री अपने पति के सुख - दु:ख का हर रंग पहचान लेती है वो जानती है कि उसका पति कब खुश और कब उदास है। जितेन्द्र श्रीवास्तव अपनी पत्नी से कहते हैं- "मुझे याद है/जब से हम साथ-साथ हैं/ऐसा कई बार हुआ है जब/ लौटा हूँ अपनी यात्राओं से तब/मेरे कुछ कहने से पहले ही/तुमने लपक कर थाम लिया है मेरा दुख/मैं अच्छी तरह जानता हूँ/तुम पहचानती हो मेरे सुख का रंग उसकी भाषा/पर संग-साथ के इतने वर्षों बाद भी/ठीक यही बात मैं नहीं कह पाऊँगा अपने लिए"7

जितेन्द्र श्रीवास्तव की प्रेम कविताओं में देह का आकर्षक नहीं है तभी तो करने वह प्रेम करने के लिए देह का होना आवश्य नहीं मानते तभी तो यह कहते है कि - "प्रेम में होता है देह, पर देह के बिना भी होता है प्रेम।" इनके काव्य में व्यक्त प्रेम आत्मा से आत्मा के लिए है अनुभूति के स्तर का है। इनकी कविता एहसास से संपृक्त है जिसमें मांसल प्रेम को कोई तरजीह नहीं दी गई इनके यहाँ सहज प्रेम की अभियक्ति में कोई भौगोलिक सीमा अवरोध नहीं बनती। एक अन्य कविता में वो कहते हैं- 'तुम हो यहीं आस-पास / जैसे रहती हो घर में / घर से दूर / यह एक अकेला कमरा भरा है / तुम्हारे होने के अहसास से /होना / सिर्फ देह का होना कहाँ होता है।"8

कवि जानता है कि दाम्पत्य जीवन में आने वाली बाधाओं को साथ मिलकर पार किया जा सकता है एक दूसरे का साथ हो तो विपरीत परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाया जा सकता है इन बाधाओं से मुक्त हुआ जा सकता है अपने 'जीवन का गीत' शीर्षक कविता में इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहता है-

"चलो प्रिय / मिलकर छाँटें / जीवन अन्न में घुस आए / कंकड़-पत्थर /चलो साथ-साथ चलें /बीच-बीच में एक दूसरे को निहारते हुए / एक दूसरे के तलुओं से काँटे निकालते हुए/चलो सुलेखा हम बदल दें अनचाही बदरी को/ मनचाहे सुख के बादलों में"9

"जितेन्द्र श्रीवास्तव की प्रेम कविताएँ दाम्पत्य से जल, वायु और धूप ग्रहण करती हैं। यह लालसा से नहीं, साहचर्य से जनमा प्रेम है। इसमें साधारण का औदात्य है। ये जीवन के प्रति गहरी आस्था से उपजी कविताएँ हैं। इन अविताओं में अभिव्यक्त प्रेम दुनिया से कटकर सार्थकता नहीं पाना चाहता।"10

जीतेंन्द्र श्रीवास्तव दाम्पत्य जीवन के विविध रंगों की तुलना दाल से करते हुए कहतें हैं कि जैसे दाल के स्वाद में अन्य सामग्री का योगदान होता है वैसे ही वैवाहिक जीवन ने दोनों लोगों के परस्पर आपसी सहयोग, सम्मान और साहचर्य से प्रेम का परिपाक होता है - 'दाल का स्वाद अकेले दाल का स्वाद नहीं होता / कुछ हल्दी का होता है कुछ नमक का / कुछ उस पानी का जिसका स्वाद / शब्दों में समा नहीं पाया अब तक और सबसे अधिक उन हाथों का जो पकाते हैं उसे / दाल का रंग भी / अकेले दाल का रंग नहीं होता / जैसे प्रेम का रंग / अकेले किसी एक का रंग नहीं होता।'11

जितेन्द्र जी ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाले कवि हैं और भारतीय परंपरा में एक विवाहित पुरुष के जीवन में पत्नी का स्थान क्या है वे जानते हैं कि पत्नी के बिना कोई घर 'घर' नहीं होता पत्नी है तो जीवन सम्पूर्ण है, आँखों में सपने हैं, जीवन किसी संगीत की तरह और गंगोत्री की धारा के सदृश्य प्रवाहमान है- "तुम हो तो यह जीवन कितना भरा-भरा है / आँखों में छवियाँ हैं / दृष्टि में रश्मियाँ हैं /तुम हो तो हमारा होना सुगठित है किसी छन्द की तरह / कहीं कुछ भी नहीं है इस जीवन में बन्ध की तरह / तुम हो तो यह जीवन एक गीत है मुसलसल /आदि से अन्त तक / प्रवहमान गंगोत्री की तरह"12

कवि के लिए उनकी पत्नी की हँसी बहुत मायने रखती है यही मुस्कान की शक्ति उन्हें संसार की विपत्तियों से लड़ने का हौसला देती है। ये हँसी ही जीवन के घमासान में अडिग रहने की प्रेरणा देती है। जीवन के संग्राम में लड़ते रहने की शक्ति और सफल होने की आशा देती रहती है। पत्नी की हँसी को देखकर उनके जीवन के सारे दु:ख दूर हो जाते हैं। तभी तो वो कहतें हैं – "हँसो प्रिय उन्मुक्त हँसो ! / तुम्हारी हँसी में खिलते हैं स्वप्न हमारे तुम्हारी हँसी में गलते हैं दुख हमारे"13

कवि गृहस्थ जीवन का सार अपनी पत्नी की हँसी में देखते हैं। उनका मानना है कि वो हर रोग – शोक से जीत जाएँगे अगर उनकी पत्नी उनके साथ है और खुश है कवि अपनी पत्नी को हौसला रखने और को कहते हैं - "सुनो, निराश मत हो / हौसला रखो / मैं जीत जाऊँगा हर रोग-शोक से /बस हाथ पकड़ी रहो / मुस्कराती रहो /देखो, थका नहीं हूँ मैं /अभी उम्र भी नहीं थकने की मेरी /तुम पगली जाने क्यों घबराती हो /चलो अच्छा है/इसी बहाने आस-पास मँडराती हो/लेकिन छोड़ो यह सब/हँसो जरा जोर से तुमको मालूम नहीं, सचमुच/ तुम कितनी अच्छी लगती हो जब दिल से हँसती हो/सच मानो/जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर उतनी खुशी हमारे जीवन में।"14

दांपत्य जीवन में व्यक्ति के ऊपर बहुत सी जिम्मेदारियाँ होती हैं, उन जिम्मेदारियों के निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता होती है। आज के इस भौतिकवादी युग में हर व्यक्ति कहीं न कहीं आजीविका की तलाश में भटकते हुए अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करता है और कभी कभी जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं जब जीवन ही बेमायने लगने लगता है लेकिन ठीक उन्हीं क्षणों में स्मृति में कोई मुस्कुराता हुआ चेहरा कौंध जाता है ये चेहरा होता है उस पत्नी का जो घर पर प्रतीक्षा में होती है कि उसका पति एक दिन लौट के आएगा और यही स्मृति उस क्षण प्राणवायु की तरह हो जाती है - "सचमुच जीने के ढेर सारे उपाय/निरर्थक बेमानी से लगते थे/हार जाऊँगा हर पल लगता था / पर ऐसे ही पलों में/अक्सर स्मृतियों से झाँकता था एक चेहरा/बहुत उदास पर मुस्कुराता हुआ/ प्राणवायु की तरह"15

कवि जितेन्द्र दाम्पत्य जीवन की प्रत्येक स्थिति का चित्रण बहुत ही व्यवहारिक रूप में करते हैं। पारिवारिक जीवन में व्याप्त प्रेम के सन्दर्भ होने वाली क्रिया – प्रतिक्रिया को बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रित करती उनकी 'घर की उदासी' शीर्षक कविता देखी जा सकती है - "आज शाम घर बहुत उदास है / बेटियाँ चुप-चुप पत्नी बीमार / हँसी किसी / अदृश्य ताख पर / बैठ गई है जैसे।"16

महेश पुनेठा के अनुसार 'जितेंद्र श्रीवास्तव के यहाँ स्त्री के लिए पर्याप्त जगह है इसलिए प्रेम के लिए भी। प्रेम कविताओं के संदर्भ में वे केदारनाथ अग्रवाल की परंपरा का अनुसरण करते हैं। उनकी कविताओं में हमें स्वकीया प्रेम ही अधिक दिखता है और इन्हीं कविताओं में प्रेम की तासीर सबसे गहरी भी है।"17

गृहस्थ जीवन का हर कार्य की पूर्णता सहयोग की भावना पर निर्भर करती है। साथी को सम्मान और श्रेय देने से जीवन की यात्रा सहज हो जाती है। यही कारण है कि जितेन्द्र अपने हर कार्य की पूर्णता का श्रेय अपनी पत्नी को देते हुए कहते हैं- "मैंने अब तक किए हैं आधे-अधूरे ही काम / जो हो सके पूरे या दिखते हैं लोगों को पूरे / उनका सारा श्रेय तुम्हारा है।"18

दाम्पत्य प्रेम एक क्षण में नहीं पनपता वरन ये वर्षों के साहचर्य से पल्लवित होता है। भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार किसी भी प्रकार के कर्म चाहे वह यज्ञ हो, दान हो, व्रत हो या अन्य कर्म जीवन संगिनी के साथ करें तो ही फलित या पूर्ण होता है। कवि भारतीय परम्पराओं में विश्वास रखने के कारण और इतने वर्षों के साहचर्य के बाद अपने अनुभव से कहते हैं कि जीवन में किसी भी प्रकार की पूर्णता पत्नी की अनुपस्थिति में संभव नहीं है – "सच कहता हूँ / अनुभव की अग्नि में तपा हुआ / कि सम्भव नहीं है कोई भी पूर्णता इस जीवन में / बिना तुम्हारी उपस्थिति के।"19

निष्कर्ष – निष्कर्ष रूप में हम कह सकतें है कि कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव जी अपनी कविताओं के माध्यम से प्रेम की एक नई परिभाषा रचते हुए नजर आते हैं। वर्तमान समय में जिस प्रकार सिनेमा, सीरियल आदि में प्रेम का विकृत रूप दिखाकर हमारे युवा वर्ग को दिग्भ्रमित करने का जो षड्यंत्र रचा जा रहा है इससे प्रेम के स्वरूप में निरंतर ह्रास होता जा रहा है। ऐसे विडम्बनापूर्ण समय में कवि की कविताएँ समाज को एक नई दृष्टि देती हुई जान पड़ती हैं। मनीषा जैन कहती हैं - जितेंद्र अपने समय के शायद ऐसे अकेले कवि होंगे जिनमें जीवन के अनुभव की गहराई रिश्तों को समझने की समझ, भाषा की सुघड़ता सभी विस्तार पाते हैं तथा कविता आत्मा के अंतरतम बिंदु तक पहुँच कर सुख का अनुभव कराती है। कवि की कविताएँ अनुभूति से संपृक्त है इसलिए उनमें मानव समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित है कवि की प्रेम कविताएँ मानवीय संबंधों की ऊष्मा का अन्वेषण करती हुई मानवीय मूल्यों को जीवंत रखने का भरसक प्रयास करती हैं।

000

संदर्भ- 1 चतुर्वेदी, परशुराम, हिन्दी काव्य धारा में प्रेम विवाह, किताबमहल, इलाहाबाद, प्र.सं.-1952, पृ.-1, 2 डेली न्यूज लखनऊ, 16 जुलाई, 2017, 3 श्रीवास्तव, जितेन्द्र, कायान्तरण, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.-2012 पृ.12, 4 बिल्कुल तुम्हारी तरह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं.-2011, पृ.-22, 5 वही पृ.- 68, 6 वही पृ.-14, 7 वही पृ.- 62, 8 कवि ने कहा, किताबहार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.-2014. पृ-43, 9 जितेन्द्र, जितनी हँसी तुम्हारे होंठों पर सेतु प्रकाशन, प्र. सं.-2022, पृ.-15, 10 बिल्कुल तुम्हारी तरह के फ्लैप से, 11 जितेन्द्र, सूरज को अँगूठा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. -2020, पृ.-77, 12 जितेन्द्र, जितनी हँसी तुम्हारे होंठों पर, सेतु प्रकाशन प्रा. लि. नोएडा, प्र. सं. 2022, पृ. 43, 13 वही पृ.- 46, 14 जितेन्द्र, रक्त-सा लाल एक फूल, आईसेक्ट पब्लिकेशन, प्र. सं.-2020, पृ. -150-151, 15 जितेंन्द्र, स्त्रियाँ कहीं भी का लेती हैं पुरुषों को, प्रलेक प्रकाशन, प्रा. लि., ठाणे, महाराष्ट्र, सं. -2021, पृ.- 10, 16 जितेन्द्र उजास, सेतु प्रकाशन प्रा. लि., पटपड़गंज, दिल्ली, प्र. सं.-2014, पृ.-164, 17 असुविधा (समकालीन कविता को देहरी); महेश पुनेठा, 'जीवन के सपनों और उजास भरी आँखों के कवि: जितेंद्र श्रीवास्तव, 18 जितेंन्द्र, स्त्रियाँ कहीं भी का लेती हैं पुरुषों को, प्रलेक प्रकाशन, प्रा. लि.,ठाणे, महाराष्ट्र, सं. -2021, पृ.- 90, 19 जितेन्द्र, जितनी हँसी तुम्हारे होंठों पर सेतु प्रकाशन, प्र. सं.-2022, पृ.-154,

(शोध आलेख)

हिन्दी के भक्तिकालीन प्रमुख मुस्लिम साहित्यकार

शोध लेखक : डॉ. संतोष गिरहे
सहयोगी प्रोफेसर- हिन्दी विभाग

भारतीय साहित्य में हिन्दी के भक्तिकालीन प्रमुख मुस्लिम साहित्यकारों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सुधार एवं समन्वय की दृष्टि से इन संतो ने अपनी क्षमता एवं ज्ञान से भारतीय समाज में परिवर्तन करने तथा प्रगतिशील समाज बनाने में बड़े दायित्व का निर्वहन किया था। वैसे तो मध्यकाल धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था, इस काल में भक्ति आंदोलन एवं धर्म सुधार का कार्य सभी हिन्दी साहित्यकारों ने किया है। परंतु उनमें मुस्लिम साहित्यकारों का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है; जिन्होंने हिंदू मुस्लिम दोनों धर्मों के बीच समन्वय करके सांप्रदायिक दृष्टि से एकता एवं भाईचारा बढ़ाने की भरसक कोशिश करके अपने कार्य की विशेष छाप भारतीय जन सामान्य पर छोड़ने का प्रयास किया है।

इन सभी में सबसे पहला नाम अगर लिया जाए तो वह हिन्दवी कविता के जनक अमीर खुसरो का ले सकते हैं। अमीर खुसरो 14 वीं सदी के प्रमुख शायर, गायक तथा संगीतज्ञ के रूप में विख्यात थे। खुसरो को हिन्दवी या हिंदुस्तानी बोली का प्रथम लोकप्रिय कवि माना जाता है। वे पहेलियाँ, मुखरियाँ, ढकोसले, सखुनों आदि लोकप्रिय साहित्य के प्रणेता माने जाते हैं। उन्हें अरबी, फारसी, तुर्की, हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। ऐसा माना जाता है कि खुसरो ने अपनी किशोरावस्था में काव्य लिखना आरंभ किया था और बहुत कम समय में एक

डॉ. संतोष गिरहे
सहयोगी प्रोफेसर- हिन्दी विभाग
राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज नागपुर
विश्वविद्यालय, नागपुर(महाराष्ट्र) 440033
मोबाइल- 9421971832
ईमेल- santoshmgirhe@gmail.com

प्रसिद्ध कवि के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। खुसरो की पहेलियाँ, मुखरियाँ तथा कविता हमेशा जनसाधारण आम व्यक्ति की जुबान पर चढ़ी मिलती है। खुसरो कवि एवं संगीतकार के साथ-साथ एक अच्छे सूफी संत भी थे। आज भी उनकी रचनाएँ गाकर सूफी संत आनंद की आत्म अनुभूति प्राप्त करते हैं।

"छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके / प्रेम बटी का मदवा पिलाइके मतवाली कर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके, / गोरी-गोरी बइयाँ हरी चूड़ियाँ, बइयाँ पकड़ धर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके, / बल-बल जाऊँ मैं तोरे रंग रजवा, अपनी सी लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके, / खुसरो निजाम के बल-बल जाए, मोहे सुहागन कीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके।"1

इतना ही नहीं खुसरो अपने आपको हिंदुस्तानी होने का गर्व महसूस करते थे। उनको हिंदुस्तान से बेपनाह मोहब्बत थी।

"चु- मन तूती-ए-हिंदम, अर रास्त पुर्सी / जि मन हिन्दवी की पुर्स, तो ज़न्म गोयम।"2

अमीर खुसरो एक अच्छे हिंदुस्तानी होने के साथ-साथ एक सच्चे मुसलमान भी थे। जिन्होंने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के बीच सेतु का काम किया तथा इनमें समन्वय एवं भाईचारा की पहल भी की थी, और दोनों धर्मों को इस देश में एक साथ रहने और बढ़ने के लिए पोषक वातावरण तैयार किया था।

"खुसरो पाती प्रेम की, बिरला बाँचे न कोय / वेद, कुरान, पोथी पढ़ें, प्रेम बिना का होय।"3

खुसरो हिन्दी खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि थे, साथ ही साथ एक दरबारी कवि होकर भी उन्होंने जन सामान्य व्यक्ति तथा भारतीयता को बढ़ाने वाले साहित्य का निर्माण किया था; जो उनकी विशेष ख्याति के लिए याद किया जाता रहेगा।

हिन्दी के भक्तिकालीन साहित्य में एक और महत्त्वपूर्ण नाम मलिक मोहम्मद जायसी का लिया जाता है। जिन्होंने अपने साहित्य में हिंदू मुस्लिम संस्कृति का समन्वयक करा कर भारतीय जनमानस में अपने साहित्यिक योगदान की एक अलग छाप प्रस्तुत की है। अपने साहित्य में उन्होंने रहस्यवादी विचारों को स्थान दिया था, उनका यह रहस्यवाद भारतीय अद्वैतवादी विचारों पर आधारित था। जिसमें साधक या भक्त परमात्मा को प्रियतम के रूप में खोजता है। साधक अपने प्रियतम परम सत्ता को प्राप्त करने के लिए हमेशा बैचेन होता है। तथा हठयोगियों में प्रचलित साधना पद्धति को अपनाकर अपना संपूर्ण राज-काज एवं घर-परिवार छोड़कर परमात्मा पद्मावती को खोजने या प्राप्त करने हेतु घर से योगी के भेस में निकल पड़ता है। पद्मावती परमात्मा का रूप है; जिसे साधनात्मक रहस्यवाद के माध्यम से जोगी का भेष धारण कर राजा रत्नसेन प्राप्त करने का प्रयास करता है।

जायसी के इस पद्मावत में जिस प्रेम का वर्णन किया है, वह प्रेम न होकर लौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक बात को अभिव्यक्त किया है। जायसी के इस काव्य में जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति देखने मिलती है। साथ ही साथ लौकिक सौंदर्य वर्णन द्वारा अलौकिक सौंदर्य की व्यंजना करते हुए उस दिव्य आध्यात्मिक प्रेम को भी उद्घाटित करने का प्रयास किया है। यह जायसी का महाकाव्य अपने आप में अन्योक्ति है जिसमें सारी बातें प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त होती हुई दिखाई देती है।

"तन चितउर मन राउर कीन्ना। / हिय सिंहल बुधि पदमिनि चीन्हा "4

जायस ने अपने साहित्य में उस समय प्रचलित हिंदू संस्कृति एवं परिवारों में प्रचलित कहानियों को अपनाकर भारतीय होने का पुष्ट प्रमाण पेश किया है। भारतीय समाज में प्रचलित प्रेम कथाओं को अपनाकर उसी पर आधारित साहित्य साधना करके जिस मिसाल को जायसी प्रस्तुत करते हैं वह अपने आप में एक बहुत ही बड़ी बात थी। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया है।"5

इसी प्रकार भक्ति काल में और एक मुस्लिम महत्त्वपूर्ण कवि दिखाई देते हैं, जिनका नाम है रसखान। रसखान अपनी कृष्ण भक्ति के लिए सर्वत्र विख्यात रहे हैं। इनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि मुस्लिम व्यक्ति होकर भी कृष्ण भक्ति तथा हिंदू देवी-देवताओं की भक्ति एवं उपासना को महत्त्व दिया है। रसखान एक उच्च कोटि के कृष्ण भक्त कवि थे, जिन्होंने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का बखान किया है। रसखान का वास्तविक नाम सैयद इब्राहिम अथवा सैयद गुलाम मोहम्मद था। रसखान की कृष्ण लीला जितनी विख्यात है; उतना ही उनका गोकुल प्रेम भी महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है। गोकुल के प्रति रसखान का गहरा प्रेम उनके काव्य से प्रकट होता है।

"मानुष्य हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।, / जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौ नित नंद की धेनु मझारन।। / पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरंदन धारन। / जो खग हौं तो बसेरो करौ मिलि कालिंदी कूल कदंब के डारन।।"6

रसखान में भारतीय जीवन दर्शन की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। यही बात है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है उसमें कृष्ण भक्ति के साथ-साथ भारतीय जीवन मूल्यों के भी दर्शन हो जाते हैं। उदात्त मानव मूल्य, उदारता, मैत्री, करुणा, कृतज्ञता, प्रेम, सेवा, सहयोग, परोपकार, समता आदि को प्रतिष्ठित करने का प्रयास उनका हमेशा दिखाई देता है। वे मुस्लिम होते हुए भी हिंदू जीवन दर्शन अपनाने के कारण हमेशा मानवतावादी कवि के रूप में हम सभी का पथ प्रशस्थ करते रहे हैं। सभी धार्मिक एवं जातिगत संकीर्ण मान्यताओं को त्याग कर उच्च विचारों को प्रस्तुत करते हैं।

"गावै गुनी गानिका गंधरव औ सारद सेस सबै गुन गावत।/ नाम अनंत गनंत ज्यौ ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावन। / जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लागवति। / ताहि अहीर को छोहरियाँ छछिया भारे छाछ पै नाच नाचवत।।"7

रसखान की कृष्ण भक्ति असीम थी। इसकी भक्ति का आधार प्रेम रहा है, इस प्रेम में केवल लोभ नहीं है; समर्पण और त्याग की अनमोल निधि है। जिसमें स्वार्थ रहित भाव की महत्ता होती है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब आदि का कोई भेद नहीं होता, अपितु उदात्त भाव के साथ आपस में स्नेह बढ़ाता है। यही सब खूबी रसखान की कृष्ण भक्ति में देखी जाती है। वह लिखते हैं- ब्रह्मा में ढूँढ़यो पुरातन गानन, वेदरिचा सुनील चौगुने चायन। / देखो सुन्यो कब हूँ न कहूँ वह, कैसे सरूप औ कैसे सुभायन। / टेरत हेरत हारि पदयो, रसखान बनायो न लोग-लुगायान। / देख्यो दुरो कुंज कुटीर में, बैठो पलोटन राधिका पांयन।।

जाति धर्म संप्रदाय की बड़ी-बड़ी दीवारें आज के समान तब भी थीं, रसखान मुस्लिम थे तथा कृष्ण थे हिंदुओं के देवता। ऐसी विकट स्थिति में उन्होंने धर्म और संप्रदाय का सामना करना पड़ा। इस संदर्भ में वे लिखते हैं- "द्रौपदी ओ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो। / गौतम गेहनि कैसी तरी प्रहलाद को कैसे ह्योर दुख भारो।। / काहे कों सोच करै रसखानि कहा करिहैं रविनंद बिचारो। / ता खन जा खन रखिए माखनहारो सो राखन हारो।।"8

भक्ति काल में भक्ति की ज्योत प्रज्वलित करने वाले एक और महत्त्वपूर्ण मुस्लिम कवि रहीम का नामोल्लेख किया जा सकता है। रहीम बहु भाषाविद, भक्ति और नीति का अनमोल संयोग उनके लेखन कला की विशेषता रही है।

यह अकबर के नवरत्नों में से एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। रहीम की विशेष ख्याति नीतिपरक दोहों के कारण रही है। उन्होंने व्यावहारिकता को आधार बनाकर जनसामान्य में सदाचार, भाईचारा, प्रेम एवं सौहार्द की हमेशा वकालत की है। यद्यपि रहीम एक मुस्लिम कवि थे, परंतु वे राम नाम के स्मरण न करने पर होने वाले परिणामों को बताते हुए अपनी राम भक्ति की महिमा जताते हुए लिखते हैं- "राम नाम जान्यो नहीं,भइ पूजा में हानि। / कहि रहीम क्यों मानि हैं, जम के किकर कानि।।"9

राम के साथ-साथ कृष्ण भक्ति की प्रधानता रहीम में दिखाई देती है। यह भी महत्त्वपूर्ण रहा है कि अनेक कट्टरपंथी मुसलमानों ने उन्हें बहुत परेशान भी किया था। ऐसी स्थिति में अपने तारणहार के रूप में वे श्री कृष्ण की शरण ले लेते हैं।

रहिमन कोई क्या करे, ज्वारी, चोर, लवार। / जौ पत राखनहार है, माखन चाखनहार।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के मध्यकालीन मुस्लिम कवि भले ही बाहर से आए विदेशी कहलाते हो, परंतु भारत में प्रविष्ट होने के बाद वे अपने आपको भारतीय कहलाना ज्यादा पसंद करते थे। वे यहाँ की संस्कृति, समाज एवं जन जीवन को पूरी तरह आत्मसात कर चुके थे तथा यहाँ के रीति-रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, रहन-सहन या फिर जीवन पद्धति इन सब को आत्मसात करने का प्रयास करते रहे हैं। इन्होंने भारत में हिंदू मुस्लिम संस्कृति का समन्वय करके यहाँ के लोग जीवन में राष्ट्रीय एकता एवं हिंदू मुस्लिमों में सांप्रदायिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समन्वय करके सामाजिक सौहार्द्र बढ़ाने में मदद की है। इतना ही नहीं तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों एवं अंधविश्वासों गलत रूढ़ियों, प्रथा, परंपराओं को समाप्त करने तथा सदाचार की सीख देने का सतत प्रयास किया है।

000

संदर्भ -

1.अमीर खुसरो का हिन्दवी काव्य- गोपीचंद नारंग, पृष्ठ सं.98, 2. वही, पृष्ठ सं.04, 3. वही, पृष्ठ सं.57, 4.हिन्दी साहित्य युग: और प्रवृतियाँ- सं. शिवकुमार शर्मा, पृष्ठ सं.200, 5.हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ सं.59, 6.रसखान और घनानंद : सं.अमीर सिंह, पृष्ठ सं.13, 7. रसखान आधुनिक संदर्भ - सं.बेला बैनर्जी, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, पृष्ठ सं.60, 8. रसखान- श्याम सुंदर व्यास, साहित्य अकादमी,दिल्ली, पृष्ठ सं.46, 9. रहीम ग्रंथावली- डॉ.देवराज सिंह भाटी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.175

नई पुस्तक

(कहानी संकलन)

कुछ उदास कहानियाँ

संपादक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार पंकज सुबीर के संपादन में यह पुस्तक 'कुछ उदास कहानियाँ' नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के सेट में प्रकाशित होकर आ रही है। इसमें अलग-अलग समय पर अलग-अलग लेखकों द्वारा लिखी गयी उदास कहानियों का संकलन किया गया है। संपादक पंकज सुबीर इस संग्रह के बारे में भूमिका में लिखते हैं- 'ये कहानियाँ अलग-अलग समय पर पढ़ी गयी थीं, लेकिन स्मृति में एक ही सूची में उपस्थित थीं। उस सूची को इस किताब की शक्ल देना ही बरसों से लंबित हो रहा था। योगिता यादव जी की कहानी पढ़ कर वह लंबित कार्य अचानक ही कार्यरूप होकर सामने आ गया। इन कहानियों में उदासी एक स्थाई भाव की तरह उपस्थित है, वही इन कहानियों को एक सूची में लेकर आने का मुख्य कारण भी है। यदि इनको पढ़ते हुए आप उदास होते हैं, बेचैन होते हैं, तो इन कथा-लेखकों का उद्देश्य पूरा हो जाता है। और मेरा भी, इन कहानियों को एक पुस्तक में लेकर आने का। इन बारह कहानियों के लेखकों को आभार, इन कहानियों को लिखने के लिए।'

000

(शोध आलेख)

पाश्चात्य एवं भारतीय मिथक में कृषि जीवन

शोध लेखक : नीरजा. टि. के
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
शोध निर्देशक : डॉ. जी. शान्ति,
असोसिएट प्रोफेसर,
अविनाशिलिंगम इनस्टिट्यूट फॉर होम साइंस एण्ड हायर एजुकेशन फॉर वुमेन (कोयम्बत्तूर)

नीरजा. टि. के
श्री अभिरामी इल्लम, 2/179 B2,
वनप्रस्था रोड़, वड़वल्लि, कोयम्बत्तूर - 641041, तमिल नाडु
मोबाइल- 9497231516
ईमेल- kajarint1@gmail.com

शोध सार- मिथक का अर्थ है वह परंपरागत और प्राचीन कथा जो किसी अतिमानवीय व्यक्ति या घटना से संबंधित होती है। मिथक ऐसी कथा है जो कई सहस्राब्दियों तक सुरक्षित रहती है और यह कथित प्राणियों या घटनाओं से जुड़ी होती है जो इसके प्रचारकों के लिए उनके गहन महत्त्व और व्यवहारिक उपयोग का सबूत होता है। इसलिए मिथक को धर्म से अलग करना कठिन होता है, क्योंकि यह सदैव किसी न किसी रूप में धर्म से संबंधित होता है। मिथक मुख्य रूप से ग्रहों या ब्रह्मांड के निर्माण पर विचार करता है और इस प्रकार के मिथक विश्व की उत्पत्ति और व्यापार के संदर्भ में अहम जानकारी प्रदान करते हैं। मेरा उद्देश्य, इस प्रपत्र के माध्यम से दो प्रमुख संस्कृतियाँ- ग्रीक और भारतीय संस्कृति के कृषि से जुड़े मिथक और उनकी देवी - देवताओं के बारे में प्रचलित कहानियों पर प्रकाश डालना है।

बीज शब्द - मिथक, कृषि, ग्रीक संस्कृति, डिमीटर, बलदेव

विश्व में आए सांस्कृतिक परिवर्तन की व्याख्या हम मिथक के माध्यम से कर सकते हैं। मिथक अनेक विश्वास और मूल्यों के वाहक है। मिथकीय एवं पौराणिक पात्रों की कथाओं से हम भौतिक दुनिया में आए परिवर्तन का अनुमान लगा सकते हैं। मिथकों का अध्ययन करने से हमें यह पता चलता है कि शिकार एवं कृषि एक ऐसी ऐतिहासिक प्रथा है जिसके उल्लेख कई जगह पर हमें मिलता है। इन से संबंध मिथक एवं उनका अर्थ हज़ारों सालों में विकसित एवं परिवर्तित हुए हैं।

पाश्चात्य मिथक में कृषि- पाश्चात्य मिथक में सबसे प्रसिद्ध मिथक ग्रीक मिथक है। ग्रीस के लोकप्रिय त्योहारों में कृषि का महत्त्व का ज्ञान उनके पूर्वजों को थे। अरस्तु का कहना है कि फसल की कटाई से जब उन्हे फुर्सत मिलते थे तब वे सभा बनाकर चर्चाएँ करते थे और कभी-कभी बलिदान भी करते थे। मक्सिमुस नामक लेखक का कहना था कि प्राचीन यूनानी कृषि उत्सवों का आयोजन करते थे तथा डायोनिसस ओर डिमीटर को प्रसाद करने के लिए नृत्य किया करते थे।

ग्रीक मिथक में डिमीटर नामक मिथकीय पात्र है जिसे कृषि की देवता मानी जाती है। ग्रीक लोगों का यह विश्वास है कि डिमीटर ने मनुष्यों को दान्य उगाने और कटाई की कला सिखाई जिससे मानव राशि कृषि करना आरंभ किया। डिमीटर के नाम से 'मीटर' शब्द प्राचीन ग्रीक शब्द 'meter' से लिया गया है जिसका अर्थ है माँ। डिमीटर को 'माँ धरती' के रूप में देखी जाती है जिसके कारण यह नाम उनकी भूमिका के साथ मेल खाती है।

डिमीटर को केवल कृषि की देवी के रूप में ही नहीं बल्कि भोजन दाता के रूप में भी देखी जाती थी क्योंकि यूनानी के मानना था कि उन्होंने पृथ्वी की उपज से उनका भरण पोषण किया था। उनका मानना था कि डिमीटर पृथ्वी के चक्रों तथा ऋतुओं का भी प्रभारी थी जो प्रकृति के नियमों का पालन करती है। डिमीटर को विवाह एवं पवित्रता का भी देवी मानी जाती थी जिसके कारण विशेष रूप से महिलाओं द्वारा उनकी पूजा होती थी। 'थेस्मोफोरिया' नामक धार्मिक त्योहार केवल महिलाओं तक सीमित थे।

डिमीटर से प्रार्थना करने की विधि में ग्रीक अपनी मंदिरों को गेहू के ठंडल और मकई की टोकरियों के साथ लाल और पीले फूलों से सजाते थे। डिमीटर की बेटी पेर्सेफोन वसंत एवं वनस्पति की देवी थी जिसकी आराधना डिमीटर के साथ ही किया जाता था। अपनी वेदियों को बैंगनी एवं काले फूलों से सजा कर लोग पेर्सेफोन की पूजा किया करते थे। डिमीटर के नाम कई बलिदान भी होते थे जिनमें उर्वरता की प्रतीक सूअर की भी बलि दी जाती थी। शहद की मिठाइयों एवं फलों को वेदी पर या उनके मंदिर में प्रसाद के रूप में छड़ाए जाते थे।

डिमीटर से संबंधित सबसे प्रसिद्ध मिथक है पाताल के देवता द्वारा डिमीटर की पुत्री का अपहरण जिससे प्राचीन यूनानी, ऋतुओं की व्याख्या करती थी। डिमीटर पेर्सेफोन से बहुत प्यार करती थी। उसे अपनी पुत्री से जो प्रेम एवं संतोष प्राप्त हुई इसके कारण प्रचुर मात्रा में अनाज उगने लगा, सुंदर जंगली फूलों से घास के मैदान भरने लगे, पेट बड़े होने लगे और स्वादिष्ट फल भी पकने लगे।

पेर्सेफोन बड़ी होकर एक सुंदर युवती बनती है। हेडिस नामक देवता उस पर आकर्षित होकर ज़ीउस से उसकी हाथ माँगता है। ज़ीउस उसकी इस प्रस्ताव को इनकार करता है। क्रोध में आकर हेडिस पेर्सेफोन का अपहरण करने का निश्चय करता है। जब पेर्सेफोन अपनी दोस्तों के साथ फूल तोड़ने जाती है तो हेडिस रथ में आकर उसे पकड़कर ले जाता है।

डिमीटर अपनी प्रिय पुत्री से जुदाई सह नहीं पाता और वह बहुत व्याकुल हो जाती है। वह पृथ्वी और वहाँ के लोगों की देखभाल करना छोड़ कर अपनी पुत्री की खोज में लग जाती है। वह अपनी पीड़ा में इतनी डूब जाती है की भूमि पर सभी जीव, जंतु मुरझाने तथा मरने लग जाते हैं। और पृथ्वी पर अकाल पड़ जाता है।

अकाल के कारण पीड़ित लोगों को देखकर ज़ीउस परेशान हो जाता है और ग्रीक देवों की दूत है हेर्मेस को पाताल भेजकर हेडिस से पेर्सेफोन को वापस करने के लिए कहता है। हेडिस इस बात से सहमत हो जाता है और पेर्सेफोन को घर भेजने के लिए तैयार हो जाता है किंतु जाने से पहले वह उसे एक अनार खिलाता है। जो कोई भी पाताल से खाना खाता है उसे वापस आना ही पड़ता था अर्थात एक वर्ष में पहले छह माह पेर्सेफोन अपनी माँ के साथ रहेगी और अगले छह माह वह पाताल में लौट जाएगी। इसलिए ग्रीक के अनुसार जब एक वर्ष के प्रथम छमाही पेर्सेफोन डिमीटर के साथ होती थी तब हर तरफ हरियाली होती थी, फूल खिलते हैं, फसलें उग जाती हैं, पेड़-पौधे भी लंबी हो जाती है किंतु साल की दूसरी छमाही के दौरान पुत्री वियोग में डिमीटर दुखी होने के कारण पृथ्वी हरे-भरे नहीं रहती। कभी-कभी खोर तापमान होती है, पत्ते झड़ते हैं और अन्य जीव-जंतु अकाल से पीड़ित होते हैं।

पुरानी ग्रीक शहर एवं राज्य की समृद्धि का हिस्सा कृषि और आवश्यक अधिशेष का उत्पादन करने की क्षमता पर आधारित था जिसने लोगों को अन्य व्यापार एवं मनोरंजन को आगे बढ़ाने और निर्यात वस्तुओं की एक मात्रा का उत्पादन करने की अनुमति दी, जिन्हें उन आवश्यकताओं के लिए आदान प्रदान किया जा सकता था जिनकी समाज में कमी थी। ग्रीक के जलवायु उपयुक्तता के कारण तीन सबसे अधिक उत्पादक खाद्य पदार्थ थे - अनाज, जैतून एवं वाईन।

ग्रीक के लिए धार्मिक संस्कार पर आधारित त्योहारों में कृषि की प्रासंगिकता और भी अधिक था। नियमित रूप से प्रयोग की जानेवाली ग्रीक कैलेंडर से भिन्न प्रख्यापित त्योहारों का एक अलग कैलेंडर है ताकि कृषि की देवताएँ और उनसे जुड़ी मिथक एवं संस्कारों को उचित समय पर मनाया जा सके। यहाँ खेती से जुड़े हर कार्य मौसम से जुड़े होने के कारण सही क्रम में होता रहता है जैसे की बुआई, कटाई खुदाई और फलों की इकट्ठा करना इन सभी कामों से जुड़ी संस्कार एवं समारोह प्राचीन यूनान (ग्रीक) संस्कृति में होते थे।

इन मान्यताओं और अनुष्ठानों का एक लंबा इतिहास है जो उनके धर्म का हिस्सा है किंतु इनके धर्म के उच्च सिद्धांतों के साथ कोई लेना देना नहीं है। इस प्रकार की रीति रिवाज़ अन्य यूरोपीय लोक कथाओ में पाए जा सकते हैं और जबकि पुराने देवताओं और उनके पंथों का स्थान नए धर्मों ने ले लिया है कि अब पुराने धर्मो का निशान भी मिलना मुमकिन नहीं था। किंतु पुराने ग्रामीण रीति रिवाज़ और विश्वास मध्य युग से लेकर आज तक, धर्मों के तमाम सारे परिवर्तन से प्रभावित हुए बिना ही जीवित रहे।

भारतीय मिथक में कृषि- भारत को लंबे समय से कृषि प्रधान देश माना गया है। ग्रामीण सभ्यता के प्राचीन मूल्य एवं अर्थव्यवस्था आज भी विद्यमान है। भारत का जो कृषि का इतिहास है वह सिंधु घाटी सभ्यता से भी पहले का है। यह बात ज़रूर है कि नवपाषण क्रांति (Neolithic evolution) के दौरान गेहूँ और जौ की खेती की जाती थी और सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान सिंचाई का पूर्ण विकास हुआ था। कृषि प्रारंभिक एवं मध्य यूग में फली-फूली। विभिन्न प्रकार के फसल उगाए गए और भारत अपने मसालों के लिए जाना जाने लगा। मसालों का केंद्र में आने से व्यापार बढ़ा जो मुगल काल तक जारी रहा। भारतीय किसानों की तकनीक एवं कौशल बहुत ही उन्नत थे और संभवत: दुनिया में सर्वश्रेष्ठ थे।

इस प्रकार प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति एवं धर्म में कृषि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कृषि से जुड़ी कई प्राचीन भारतीय देव-देवताओं की कथा आज भी भारतियों के हृदय में जीवित है जिनमें प्रत्येक

इश्वर की अपनी विशेषताएँ और पौराणिक कथाएँ हैं।

इंद्र - इंद्र प्राचीन भारत की मिथकीय कथाओं में सबसे प्रसिद्ध देवताओं में से एक है जो गरज, बिजली और बारिश से जुड़ा है। वह अक्सर वज्रायुद्ध नामक हथियार के साथ दिखाई देते हैं जो बिजली का प्रतीक माना जाता है। पृथ्वी में वर्षा की उत्तरदायित्व इंद्र का है जो कृषि की वृद्धि के लिए एक आवश्यक खड़ी है।

वरुण - भारतीय मिथक के एक और महत्त्वपूर्ण देवता है वरुण जो आकाश और समुद्र से संबंधित है। वह समुद्र में सवार करते हैं और लहरों को नियंत्रित करने की क्षमता रखते हैं। फसल की वृद्धि के लिए आवश्यक जल की संरक्षक होने के कारण वह कृषि से जुड़े हैं।

बलराम - भारतीय मिथक में जिस देव को किसानों के संरक्षक माना गया है वह बलराम है। वे ज्ञान के अग्रदूत है जो कृषि के उपकरण एवं धन का प्रतिनिधित्व करता है। कृष्ण के बड़े भाई बलराम बलदेव, बलभद्र, हलधर और हलयुद्ध के नाम से भी जाने जाते हैं। भारतीय मिथक के अनुसार बलराम विष्णु के दस अवतारों की सूची में आठवें अवतार के रूप में आते है।

विकासवादी दृष्टिकोण से यह अवतार उस समय का प्रतिनिधित्व करता है जब मनुष्य ने कृषि पर आधारित जीवन के एक व्यवस्थित शैली को अपनाना शुरू किया था। पुराण में ऐसा कहा गया है कि जब इंद्र और अन्य देव भगवान विष्णु के पास और मथुरा के राजा, राक्षस पुत्र कंस से उनकी रक्षा की माँग की तो भगवान विष्णु ने अपने सिर से एक काला और सफेद बाल तोड़कर उनके हाथ में सौंपा और उनहें यह वचन दिया कि यह दोनों राक्षस के खिलाफ लड़ने के लिए आएँगे। इस तरह पहले बलराम और कृष्ण ने जन्म लिया। बलराम से जुड़ी एक और प्रसिद्ध मिथक यह है कि विष्णु के अवतार होने से अतिरिक्त उनको आदि अनंत शेषनाग के अवतार के रूप में भी देखा गया है जो कई सिर वाले एक नाग है जिस पर भगवान विष्णु क्षीरसागर में विश्राम करते हैं। शेषनाग सभी नागाओं के नेता है। वह अपने फन पर ब्रह्मांड के सभी ग्रहों का धारण किए हुए हैं जिससे यह स्पष्टीकरण मिलता है कि बलराम को हाथियों के झुंड से अधिक शक्तिशाली क्यों कहा जाता है।

लक्ष्मण ने एक बार राम से कहा था कि चूँकि वह राम से छोटे हैं उन्हें अपने बड़े भाई की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना होगा। यही कारण है कि अगले अवतार में उनकी बड़े भाई बनने की इच्छा पूरी हुई। भगवान विष्णु छोटे भाई कृष्ण बने और शेषनाग बड़े भाई बलराम। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि शेषनाग विष्णु से अविभाज्य है क्योंकि जब विष्णु राम के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए तो शेषनाग ने लक्ष्मण के रूप में अवतार लिया और जब विष्णु ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया तो शेषनाग उनके बड़े भाई बलराम के रूप में उनके साथ थे।

बलराम को कृषि के भगवान के रूप में भारतीय मिथक में उल्लेखित किया है। वे बहुत ही शक्तिशाली थे। उनके हथियार गदा और हल थे। वे हल चलाते थे और गदे से युद्ध करते थे। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में ऐसा कहा गया है कि बलराम की पूजा उन लोगों द्वारा की जानी चाहिए जो कृषि में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं और शक्तिशाली बनना चाहते हैं।

भारत की संस्कृति विरासत अन्य सभ्यता से अद्वितीय है। भारत में कृषि की उत्पत्ति 7500 - 4000 ई पूर्व के नवपाषाण युग से शुरू होता है। इसने आदि मानव की जीवन शैली को बदल दिया था। कृषि की कारण जंगली जामुनों की खानाबदोश शिकारी से लेकर भूमि में स्वयं खेती करके अपने लिए अन्न इकट्ठा करने वाले सभ्य मनुष्य बने। प्राचीन काल के संतों के ज्ञान और उपदेश कृषि के लिए सदैव लाभकारी रहा है। यह ज्ञान तथा कार्यन्वित प्रथाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया। प्राचीन काल के किसानों ने खेती ऐसे तकनीक अपनाएँ जो पर्यावरण को अनुकूल थे जैसे फसल चक्र, मिश्रित खेती और फसल आदि। भारत के पुराने पीढ़ियों के कृषकों के पास कृषि से संबंधित जो ज्ञान का स्तर था वह प्राचीन काल के श्रेष्ठ रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य में दर्शाया गया है।

कहा जाता है कि विश्व के कई प्रसिद्ध धर्मों का जन्म कृषि क्रांति (Agricultural revolution) के समय हुआ था। इस विषय पर किए गए अध्ययनों ने इस सिद्धांत को साबित भी किया है। लोगों ने इन धर्मों का प्रचार मिथक के माध्यम से किया जिसके कारण मनुष्य के हृदय में उन धर्मों के प्रति आस्था जागना शुरू हुआ। हर जाति और हर संस्कृति के लोगों के बीच अपने फसल के उपज एवं खेती के समय उनके ईश्वर की पूजा एवं प्रार्थना करने का रिवाज़ आरंभ हुआ।

किसी भी राष्ट्र का हृदय वहाँ की कृषि और कृषक में बसता है। किसान एवं मज़दूर न सिर्फ एक बड़ी आबादी को खिलाने की क्षमता रखते हैं बल्कि वह भोजन से संबधित उत्पादों का निर्यात के लिए भी ज़िम्मेदार है। कृषि का प्रभाव एक देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष और वहाँ की अर्थ व्यवस्था पर भी पड़ता है।

000

संदर्भ-

1 पाश्चात्य साहित्य चिंतन - निर्मला जैन - राधा कृष्ण प्रकाशन - 1990, 2 भारतीय मिथक कोश - उषा पुरी - नाषणल पब्लिषिंग हाऊस - 2004, 3 भारत में कृषि - रंजित सिंह - नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया - 2021, 4संस्कृति, राज्य, कलाएँ और उनसे परे - बाल्मीकि प्रसाद सिंह - राजकमल प्रकाशन - 1999, 5Mythology; Timeless Tales Of Gods & Heroes - Edith Hamilton - Black Dog & Leventhal Publishers - 1990,

अन्य संदर्भ- 1 The Greek God of Farming and Agriculture https://www.twinkl.co.in/teaching-wiki/the-greek-god-of-farming-and-agriculture, 2)Rural Customs And Festivals https://sacred-texts.com/cla/gpr/gpr06.htm 3)10 Interesting Facts about Balarama - The God of Agriculture https://vedicfeed.com/facts-balarama-god-of-agriculture/

(शोध आलेख)

कुँवर नारायण के काव्य में पश्चिमी संदर्भ

शोध लेखक : वर्षा पाल
शोधार्थी
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखंड

शोध सार- कुँवर नारायण की पश्चिमी संदर्भों पर आधारित अधिकतर कविताएँ अलग-अलग काव्य संग्रहों में संकलित हैं, जबकि इस तरह की कविताओं का अलग से एक संग्रह तैयार किया जा सकता है। कुँवर नारायण ने पश्चिमी साहित्य का गहन अध्ययन किया था। उन्हें ब्रेख्त, काफ्का, नेरुदा आदि अत्यंत प्रिय थे। पश्चिमी साहित्य के गहन अध्ययन ने उनकी कविता की विषय-वस्तु को विस्तार दिया है। उन्होंने अपने प्रिय साहित्यकारों को आधार बनाकर कविताएँ भी लिखीं, जिनमें उनके प्रति कुँवर नारायण का प्रेम तो अभिव्यक्त हुआ ही है। साथ ही उनसे यह भी ज्ञात होता है कि साहित्य किसी भौगोलिक सीमा को नहीं मानता और न ही कोई भौगोलिक सीमा साहित्य को दूसरे देश जाने से रोक सकती है। हर देश का साहित्य बदली हुई भाषा में मनुष्य की समस्याओं का चित्रण करता है। अंतर केवल इतना होता है कि कभी-कभी वे समस्याएँ देश-सापेक्ष होकर भौगोलिक सीमा में बंध जाती हैं, तो कभी वह ऐसे साहित्य का सृजन करता है, जो भौगोलिक सीमा को तोड़कर हर देश, हर समाज के व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः "कुँवर नारायण का अनुभव संसार व्यापक है और दृष्टि बहुआयामी। अपनी कविताओं में वे व्यक्तिगत अनुभूति को देश और काल के विराट प्रश्नों में फैलाते हैं और इसमें जितनी व्यापकता दिखलाई देती है, उतनी गहराई भी।"1

बीज शब्द- पश्चिमी साहित्य, मिथक, लोकविश्वास, राजनीति, मानवता।

मूल आलेख- साहित्य में विषय की विविधता रचनाकार के विस्तृत ज्ञान की ही परिचायक

वर्षा पाल, शोधार्थी
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखंड
मोबाइल - 6394936733
ईमेल - vasrhapalsk@gmail.com

नहीं होती, बल्कि इससे उसके सृजनात्मक कौशल का भी परिचय मिलता है। भिन्न-भिन्न विषयों को आधार बनाकर साहित्य-रचना करते हुए रचनाकार के समक्ष चुनौती होती है कि वह विषय को केंद्र में रखते हुए अपने समय की समस्याओं के चित्रण में न्याय करे। कुँवर नारायण के काव्य में विषय की विविधता होने के बावजूद यह न्याय मौजूद है। कुँवर नारायण ने मुख्य रूप से मिथकीय प्रसंगों को कविता का आधार बनाया है। उन्होंने मिथकीय कथाओं को आधार बनाकर 'आत्मजयी' तथा 'वाजश्रवा के बहाने' की रचना की। इसके अतिरिक्त 'चक्रव्यूह' काव्य संग्रह में संकलित प्रमुख कविता 'चक्रव्यूह' भी मिथकीय प्रसंग पर आधारित है। उनके अन्य काव्य सग्रहों में भी मिथकों पर आधारित फुटकर कविताएँ प्राप्त होती हैं। मिथकीय घटनाओं एवं प्रसंगों के अतिरिक्त कुँवर नारायण ने ऐतिहासिक घटनाओं और प्रसंगों को भी अपनी कविताओं का आधार बनाया है। उन्होंने कुमारजीव नामक बौद्ध विद्वान कुमारजीव को आधार बनाकर 'कुमारजीव' नामक खंडकाव्य की रचना की। समग्र रूप में कहा जाए तो कुँवर नारायण के काव्य का बड़ा अंश आख्यान पर आधारित है। हिन्दी आलोचकों ने इसी रूप में कुँवर नारायण के काव्य का मूल्यांकन किया है। कुँवर नारायण की उन कविताओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, जिनमें उन्होंने पश्चिमी प्रसंगों तथा घटनाओं को कविता का आधार बनाया है। कुँवर नारायण की उन कविताओं का विशेष अध्ययन अत्यंत आवश्यक है क्योंकि वे कविताएँ न केवल कुँवर नारायण के विषय-विस्तार की परिचायक हैं, बल्कि उनमें विश्व-मानव की संवेदना तथा वैश्विक समस्याओं का भी चित्रण किया गया है।

कुँवर नारायण ने उत्तरी अफ्रीका के एक देश 'ट्यूनीशिया' में प्रचलित लोकविश्वास को आधार बनाकर 'ट्यूनीशिया का कुआँ' कविता की रचना की। लोकविश्वास है कि ट्यूनीशिया में एक ऐसा कुआँ है, जिसका पानी अंदर ही अंदर मक्का में स्थित पवित्र कुएँ से जुड़ा है। इस कविता में कुँवर नारायण ने इस स्थानीय लोकविश्वास को व्यापक एवं वैश्विक अर्थ दिया है- "मैंने तो यह भी सुना है / कि धरती के अंदर ही अंदर / हर कुएँ का पानी / हर कुएँ से जुड़ा है"2

यहाँ कुँवर नारायण मनुष्य मनुष्य के मध्य खींची गई भौगोलिक सीमा के बंधन तोड़ते हैं। वह विभिन्न धर्मों और समाज में बँटे मनुष्य को पाठ पढ़ाते हैं कि हमने बेशक किसी धर्म या जाति का बंधन स्वयं पर लागू कर लिया हो, किंतु वास्तव में हममें कोई भेद नहीं है। हमारी पवित्रता अंदर से एक-सी है। अंतर केवल हमारे विश्वासों में है। हमारे भिन्न-भिन्न विश्वासों ने ही हमें एक-दूसरे से भिन्न स्वरूप प्रदान कर रखा है। वास्तव में हम हर कुएँ के पानी के समान एक-दूसरे से अंदर ही अंदर जुड़े हुए हैं। कुँवर नारायण की विशेषता है कि वह सामान्य से प्रसंग को आधार बनाकर बहुत कम शब्दों में बड़ी बात कह देते हैं। पश्चिमी पृष्ठभूमि लिखी गई उनकी कविताएँ इसका प्रमाण हैं।

कुँवर नारायण की कविताओं में पश्चिमी मिथकीय कथाओं से लेकर ऐतिहासिक चरित्रों को आधार बनाकर काव्य-रचना की गई है। यूनान, रोम, मिस्र तथा चीन आदि में प्रचलित अमर पक्षी की लोककथा को आधार बनाकर कुँवर नारायण ने 'अमर-पक्षी' कविता की रचना की। अमर पक्षी के संदर्भ में कथा प्रचलित है कि यह पाँच सौ से एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है। जीवन के अंतिम पड़ाव में यह लकड़ियों का घोंसला बनाकर स्वयं जल जाता है। बाद में इसी राख से नए अमर पक्षी का जन्म होता है। कुँवर नारायण ने इस लोककथा का प्रयोग जापान के फुकुशिमा शहर की जिजीविषा को दर्शाने के लिए किया है। फुकुशिमा विषम भौगोलिक परिस्थितियों से घिरा शहर है, जिसे प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। 2011 में फुकुशिमा दाइची परमाणु ऊर्जा संयंत्र को तेज भूकंप और सुनामी के कारण बंद कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि वहाँ के पर्यावरण में बड़ी मात्रा में रेडियोधर्मी किरणें फैल गईं। इसमें हजारों लोगों की जान गई, किंतु फुकुशिमा के लोगों ने हार नहीं मानी। वस्तुतः जापान हर युद्ध तथा प्राकृतिक आपदा के बाद पहले से अधिक अदम्य शक्ति के साथ उठ खड़ा हुआ और उसने प्रगति के नए प्रतिमान स्थापित किए। वहाँ के लोग हर आपदा के बाद उसी तरह उठ खड़े हुए, जिस तरह अमर पक्षी अपनी राख से जीवन को जन्म देता है- "विचारों में जी उठती है / एक शांत बुद्ध प्रतिमा / अदम्य जीवन-शक्ति का प्रतीक- / एक अग्नि-पक्षी की तरह / बार बार अपनी ही राख से / जी उठता है जापान / फिर भरता गगनचुंबी उड़ान।"3

अमर पक्षी को आधार बनाकर उन्होंने एक और कविता लिखी है-'शव-परीक्षा'। इस कविता में कुँवर नारायण ने अमर पक्षी के माध्यम से मनुष्य के अस्तित्व तथा जीवटता का चित्रण किया है। अनेक ऐतिहासिक युद्धों में असंख्य लोग मारे गए लेकिन मनुष्य की जीवटता ने कभी हार नहीं मानी। वह हर बार उसी तरह जी उठा, जैसे अमर पक्षी स्वयं को जलाकर फिर से जन्म लेकर जी उठता है। कुँवर नारायण ने केवल धार्मिक लोकविश्वासों को आधार बनाकर ही काव्य-रचना नहीं की, बल्कि उन्होंने कुछ ऐतिहासिक लोकविश्वासों को आधार बनाकर भी कविताएँ लिखी हैं। 'नीरो का संगीत-प्रेम' उनकी इसी प्रकार की कविता है, जिसमें उन्होंने नीरो के माध्यम से राजनीति और सत्ता पर व्यंग्य किया है। शासक अपने अनुसार प्रजा को चलाना चाहता है। वह उनके जीवन, उनके व्यवहार, उनकी मान्यताएँ, यहाँ तक कि उनके कला-कौशल को भी अपने अनुसार ढालना चाहता है। राजा के अनुसार किसी भी क्षेत्र में उससे श्रेष्ठ कोई नहीं है। यदि किसी व्यक्ति को लोग किसी भी क्षेत्र में राजा से श्रेष्ठ मानने लगते हैं, तो उसका जीवन संकट में आ जाता है। ऐसा माना जाता है कि रोमन सम्राट नीरो को संगीत से बहुत प्रेम था। वह स्वयं को सबसे श्रेष्ठ गायक मानता था। एक दिन उसके सैनिक ऐसे गायक को पकड़कर लाये, जो लोगों की दृष्टि में नीरो से अच्छा गायक था। नीरो ने उसे गाने के लिए कहा- "सिपाहियों ने भाले से / उसे कुरेदते हुए सम्राट के सामने गाने को कहा / लेकिन

गायक इतना भयभीत था / कि उसके गले से आवाज ही न निकली / इस पर उसे यातना दी जाने लगी / और वह दर्द से चीखने लगा।"4

लोगों के मन में समाया यह भय ही राजा की वास्तविक शक्ति होती है, जिसका वह जब चाहे, अपने अनुसार लाभ उठा सकता है। पश्चिमी लोकविश्वासों तथा मिथकों के अतिरिक्त कुँवर नारायण ने पश्चिमी साहित्यकारों को आधार बनाकर भी कविताएँ लिखी हैं। इससे ज्ञात होता है कि कुँवर नारायण को पश्चिमी साहित्य की अच्छी समझ थी। नाज़िम हिकमत तथा पाब्लो नेरुदा से उनकी भेंट परिचायक है कि उनकी न केवल पश्चिमी साहित्य पर अच्छी पकड़ थी, बल्कि कुछ पश्चिमी लेखकों के साथ उनके अच्छे संबंध भी थे। इन भेंटों को आधार बनाकर कुँवर नारायण ने 'नाज़िम हिकमत के साथ-1955', 'पाब्लो नेरुदा से एक भेंट-वारसा 1955', 'एक चीनी कविमित्र द्वारा बनाए अपने एक रेखाचित्र को सोचते हुए' आदि कविताएँ लिखीं। पोलिश लेखिका दानूता स्ताशिक ने 'कुँवर नारायण: कविताएँ' शीर्षक से कुँवर नारायण की कविताओं का पोलिश भाषा में अनुवाद किया, जिससे यह निश्चित हो जाता है कि पश्चिमी साहित्यकारों के साथ कुँवर नारायण के अच्छे संबंध थे।" दानूता ने इस चयन के लिए ऐसी कविताएँ चुनी हैं जो आम आदमी, जिसकी जरा-सी भी साहित्यिक दिलचस्पी है, भी समझ सके और उसके कथ्य को आत्मसात कर सके। कुँवर जी ने इस पुस्तक में पोलैंड से अपने रिश्ते पर भी रोशनी डाली है। वे पहली बार 1955 में वारसा गए थे, जहाँ वे आश्चर्यजनक ढंग से विश्व के ख्यात कवियों पाब्लो नेरुदा व नाज़िम हिकमत से मिले थे जो उन दिनों वहाँ आए हुए थे।"5

प्रसिद्ध यूनानी कवि कोंस्तांतिन पी. कवाफ़ी की कविता 'बर्बरों की प्रतीक्षा' को आधार बनाकर कुँवर नारायण ने 'बर्बरों का आगमन' कविता लिखी। 'बर्बरों की प्रतीक्षा' में कवाफ़ी ने पतनशील प्राचीन रोम साम्राज्य के माध्यम से तत्कालीन राजनीति का चित्रण किया है, जहाँ नेता भाषणबाजी, अच्छी महँगी पोशाकों, कानूनी दाँव-पेचों तथा ऐश्वर्य में डूबे हुए हैं। उन्हें प्रजा तथा उनकी समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। इसके विपरीत कुँवर नारायण ने 'बर्बरों का आगमन' कविता में उन बाहरी आक्रमणकारियों का चित्रण किया है, जो हिंसा के बल पर दूसरे देशों पर कब्जा कर लेते हैं और राज करते हैं। साथ ही इस कविता में अकर्मण्य सत्ताधारियों पर भी व्यंग्य किया है- "अब किसी भी बात को लेकर / चिंता करना व्यर्थ है। वे आ गए हैं। उन्होंने फिर एक बार हमें जीत लिया है।"6

राजनीति और स्वार्थ से प्रेरित नरसंहार मनुष्य के लिए अभिशाप है लेकिन इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है, जहाँ राजनीतिक लाभ के लिए लाखों लोगों ने अपने जीवन की बलि दी। इसके लिए राजाओं ने क्रूरता की सारी सीमाएँ पार कर दीं। कुँवर नारायण को विश्वास है कि इतना कुछ होने पर भी मनुष्य के भीतर कहीं-न-कहीं मानवता का प्रकाश-पुंज अवश्य बचा हुआ है। इसलिए वह ऐतिहासिक नरसंहारों के संबंध में कहते हैं- "कोई नहीं। कुछ नहीं। यह सब / एक गंदा ख्वाब है

यह सब आज का नहीं / आज से बहुत पहले का इतिहास है / आदिम दरिंदों का"7

किंतु इस विश्वास के बावजूद दो विश्व युद्ध, यूक्रेन-रूस युद्ध तथा इजराइल-गाजा युद्ध मानवता पर गहरे प्रश्न खड़े करते हैं। इस प्रश्न के उत्तरदायी हम स्वयं है। इसे किसी भी तर्क से उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसका एक ही समाधान है कि इसे रोक दिया जाए क्योंकि- "ठहरो, यह मत करो, / हमें इसका उत्तर देना होगा / विज्ञापन के चतुर लहजों में नहीं किसी घायल बच्चे के दर्द-सी सादी भाषा में / कि कौन-सी मृत्यु अनिवार्य है?"8

'बुरे वक्तों की कविता', 'तेलीमेना', 'वियतनाम', 'काफ्का के प्राहा में', 'क्राकाउ के चिड़ियाघर में', 'संदर्भ: गुएर्निका', 'कोलंबस का जहाज' तथा 'शाहनामा' आदि अन्य ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें कुँवर नारायण ने पश्चिमी संदर्भों को कविता का आधार बनाया है।

निष्कर्ष- कुँवर नारायण ने विश्व की अलग-अलग भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों का अध्ययन किया था। यही कारण है कि उनकी कविताओं में अलग-अलग कवियों से भेंट तथा उनकी कविताओं के संदर्भ आए हैं। कुँवर नारायण की कविताओं की विशेषता है कि उनमें "कोलाहल नहीं, शांत मनोरम वातावरण की दीप्ति झिलमिलाती है। जैसे शरीर में छिपी आत्मा, वैसे ही उनकी कविताओं की आत्मा की अपनी उजास है जो शब्दों की स्थूल काया में भी साफ-साफ दिखाई देती है। कवि की उड़ान आत्मा की तरह स्वच्छंद और उन्मुक्त है।"9 यही कारण है कि कुँवर नारायण की कविताएँ पढ़ते हुए आत्मिक संतुष्टि का अनुभव होता है तथा यह विश्वास और बढ़ जाता है कि मनुष्य कितना स्वच्छ, कितना सुंदर हो सकता है।

000

संदर्भ-

संदर्भ- 1 डॉ. लताश्री, कुँवर नारायण: कविता की एक भावदीप्त विचार-यात्रा, मेरठ: संवाद प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ संख्या-82, 2 नारायण, कुँवर, हाशिए का गवाह, दिल्ली: मेधा बुक्स, द्वितीय संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या-32, 3 नारायण, कुँवर, सब इतना समाप्त, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2018, पृष्ठ संख्या-72, 4 नारायण, कुँवर, हाशिए का गवाह, दिल्ली: मेधा बुक्स, द्वितीय संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या-23, 5 सं. निश्चल, ओम, कविता की सगुण इकाई: कुँवर नारायण, दिल्ली: यश पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 2018, पृष्ठ संख्या-137, 6 नारायण, कुँवर, अपने सामने, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, 1989, पृष्ठ संख्या-93, 7 नारायण, कुँवर, अपने सामने, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, 1989, पृष्ठ संख्या-89, 8 नारायण, कुँवर, अपने सामने, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, 1989, पृष्ठ संख्या-94, 9सं. निश्चल, ओम, कवि का उत्तर जीवन, दिल्ली: विजया बुक्स, पहला संस्करण, 2020, पृष्ठ संख्या-99

(शोध आलेख)

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा में चित्रित दलित वर्ग के आर्थिक समस्याएँ

शोध लेखक : अश्विनी अजी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
शोध निर्देशक : डॉ. जी. शान्ति
असोसिएट प्रोफेसर,
अविनाशिलिंगम इनस्टिट्यूट फॉर होम साइंन्स एण्ड हायर एजुकेशन फॉर वुमेन (कोयम्बत्तूर)

अश्विनी अजी,
श्री अभिरामी इल्लम, 2/179 B2,
वनप्रस्था रोड़, वड़वल्लि, कोयम्बत्तूर - 641041, तमिल नाडु
मोबाइल- 9746382365
ईमेल- ashajin11@gmail.com

शोधसार : आत्मकथा, एक व्यक्ति के अनुभवों से उनके समकालीन संदर्भों के सच्चाई को बताता है। दलित होने के साथ स्त्री होने की समस्याओं को 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में अभिव्यक्त किया है। सदियों से दलित अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ रही है। इस शोध आलेख में मुख्यत: बचपन में हुए आर्थिक कष्टताएँ, परिवारवालों के मेहनत, पृथ्वी को आश्रय मानकर जीने वाले दलित लोगों के अनुभव हैं। इस शोध आलेख का उद्देश्य यह है कि सुशीला टाकभौरे के अनुभवों के ज़रिए दलित जीवन के यथार्थ को पर्दाफाश करना है।

बीज शब्द - दलित स्त्री, पीड़ित, आत्मकथा, भूख

जब कोई आत्मकथाकार अपने संघर्षों पर खुलकर बात करता है, तो पाठक उनसे हमदर्दी महसूस करता है और उन संघर्षों से उनकी जीत उन्हें उम्मीद दिलाती है। उनके अनुभव लोगों के व्यवहार और प्रतिक्रियाओं को बताते हैं। वर्तमान समाज की गलत नीति आत्मकथा में दिखाई देती है। कुछ लोग शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अशिक्षित, बेघर और निर्दोष गरीब किसानों को बेरहमी से पीते हैं। सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा, 'शिकंजे का दर्द' में अपने बचपन की आर्थिक समस्याओं और उनके कारणों पर चर्चा की है।" मैं इतना जानती थी, हमारे देश के उच्च वर्ण के चालाक लोग जातिभेद मानते हुए इनसानों में भेदभाव करते हैं। जाति के नाम पर स्वयं को श्रेष्ठ कहने वाले जाति-व्यवस्था बनाये रखना चाहते हैं। वे समाज-व्यवस्था में ऊँच-नीच की विषमता बनाये रखने के लिए, अपने ढंग से कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से, धर्म और परम्परा के नाम पर लोगों से इन बातों का पालन करवाते हैं। सामाजिक व्यवहार में मैं इन बातों को देखती थी- लोग ऐसी परंपराओं से अपना लाभ निकालते थे।" उन्हें और बड़ी बहन को माँ खेत-खलिहान में काम करने के लिए ले जाती थी। वे खलिहान में सूखे चने के पौधे काटते और सूखी डालियों से चने अलग करते। तब चने की सूखी पत्तियों की खटाई करते वक्त उनकी माथे से पसीना बहता रहता था। इससे जुटाए गए पैसे से उन्हें धन मिलता था। दिन भर धूप में पसीना बहाने के बाद भी बहुत कम पैसा मिलता था। जब उनकी माँ और पैसे माँगती थी तो मालिक कहता था कि वह काम के हिसाब से पैसे देते हैं। लेखिका के हाथ खेत की खलिहान में

सूखे पौधों की खाल उधेड़ते वक्त उन्हें चोट लगती है और उससे खून बहता था। पौधों की जड़ें गहरे तक फैली होती हैं। लेखिका को बहुत दर्द हुआ था, लेकिन पैसे कमाने की मजबूरी में वे पीड़ाओं को भूल जाती थी। वे लोग सूखे तिल के पौधों से तिल निकालते थे और तिल की तरह ही वेतन मिलता था। उन्हें मालिकों से सदैव कम हिस्सा मिलता था इसलिए उनकी माँ दुकान में तिल बेचकर पैसे कमाती थी।

आर्थिक तंगी से जूझ रही माँ को अपने बच्चों के दर्द में मरहम लगाने का समय नहीं मिला। ऐसी एक प्रक्रिया है कि गरीब लोग ही खेतों में काम करने जाते थे। उच्च वर्गीय समाज ऐसे दरिद्र किसानों को हेय दृष्टि से देखते थे। अछूतों को दूर से डाँटा जाता था क्योंकि उन्हें सबसे निचला दर्जा दिया जाता था। बचपन से ही ऐसी परिस्थितियों का सामना करते हुए वे अपने सामाजिक व्यवहार में और अधिक विनम्र हो गए। लेखिका भय से काँपती थी और सामाजिक अपमान के सामने सिर झुका लेती थी। ऐसे समय में श्रम कष्टकारी नहीं लगता था और रोटी से भूख की तृप्ति के लिए श्रम अधिक महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने सोचा कि सबसे महत्त्वपूर्ण बात उनकी माँ को बेहतर महसूस कराने में मदद करना है। वे अपनी माँ के साथ खेत में काम करती रहीं और चिलचिलाती धूप में भूख-प्यास से पसीना बहा रहता रही।

खेत में सूखी फलियों को पत्थर या लकड़ी के तख्तों पर पटककर झाड़ू से अलग किया जाता था। इस अवसर पर बड़ी संख्या में महिलाएँ और पुरुष खेत में काम करते थे। किसान पूरी कोशिश करते थे। सुशीला जी के घरवाले सुबह से शाम तक काम करते थे। दोपहर में वे प्याज और चटनी की रोटी खाते थे और पानी माँगते थे। मालिक के सेवक कृषकों की हथेलियों पर दूर से पानी डालते थे। खाने के बाद वे बिना रुके काम करते थे। सुशीला ने अपनी माँ और दूसरी महिलाओं को देखकर और अधिक काम करने की कोशिश की। फिर उनके पैरों में दर्द होने लगा और उनके हाथ लाल होने लगे। शाम को वे अपनी तुअर को नाप-तौल करके हिसाब से मेहनातने में तुअर पाते। तुअर के साथ खाडू भी लेते थे। कच्ची मिट्टी की दीवारों, छप्परों और झाड़ूओं में खाडू की लकड़ी का उपयोग किया जाता था। इससे बरसात में चूल्हे में आग सुलगाना आसान होता। सिर पर खाड़ी के गट्ठे लाकर घर में रखते हैं। चक्की में हाथ से तुअर डालकर माँ दाल बनाती, फिर उसे कनस्तर में डालती। बड़ी बहन दाल को ऊखल में कूटकर पकाती थी। मेहनत से प्राप्त दाल खाने में बहुत स्वादिष्ट लगी। वे महँगी दाल खरीद नहीं सकते थे।

वे खेतों और खलिहानों में खेती करने आने वाली लड़कियों और महिलाओं को देखती थीं और उनके बातें सुनती थीं। उन्हें दिन भर कड़ी मेहनत करके थकान होने पर भी लगता था कि वे एक उत्सव में भाग ले रहे हैं। किसान-मजूरों का यह उत्सव खेतों में ही होता था, लेकिन मालिक पूरा लाभ उठता था। कृषकों को बस मेहनत ही लाज़मी थी। दिन भर मेहनत करने से कोई फायदा नहीं हुआ। लेखिका की माँ थक जाती। वे तब तक लाभों और नुकसानों का आकलन नहीं कर पाया। उनकी माँ अपने बच्चों का हर समय देखभाल करती है। माँ हमेशा अपनी बेटियों को सुरक्षित रखती थी। वह उन्हें अपनी नज़र से कभी ओझल नहीं होने देती थीं। दादी को हमेशा माँ की सुरक्षा में रहने के कारण कुछ नया देखने या समझने का मौका नहीं मिला। जिस दिन खेत-खलिहान में जाती थी वह कक्षा में गैरहाजिर रहती थी। कक्षा में हर कोई जानता था कि वे क्यों नहीं गए। जब शिक्षक और लड़कियाँ उन्हें दयाभाव और सहानुभूति से देखते थे, तो वे चुपचाप अपनी पढ़ाई करती रहती थीं। लेखिका बचपन में जो भी सीख में प्राप्त हुआ वह माँ और नानी से मिली थी। वे अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर सब कुछ उन्हें समझाकर बताती हैं। वे अपनी बातों पर भरोसा करती थीं। सुशीला जी की माँ, नानी और पिताजी हमेशा कहते थे- "गोरे बड़े दयावान थे। सबको समानता की एक नजर से देखते थे। उन्होंने हमसे कभी भेदभाव नहीं किया। अपने देश के लोगों के मन में हमारे लिए कभी ऐसी भावना नहीं रही। अंग्रेजों के आने ही हमारे बच्चों को पढ़ने-लिखने का मौका मिल सको है, नहीं तो हमारे देश के बामन- बनिया कभी उन्हें स्कूल में नहीं पढ़ने देते।"

उनके गरीब जीवन में भूख बहुत कठिन रही थी। लेखिका और छोटे भाई कभी रोकर, कभी खेलकर इस दर्द को सहते थे, लेकिन बड़े भाई इससे निपटने का कुछ उपाय ही करते थे। घर के पीछे सरदारों के खेतों में उस समय गन्ने की फसल लगी हुई थी। बगीचे में कई आम उग रहे थे। शंकरभाई ने खेत से गन्ना तोड़ते हुए चौकीदार की आँखों को बचाया। तब सभी भाई-बहन गन्ने का रस चूसते थे। गर्मी में आम तोड़ते थे और कच्चे पके हुए आम खाते थे। माँ शंकर को कभी-कभी गाली देती थी और उसे ऐसा करने से मना करती थी। उन्होंने कहा कि अगर सरदार इसे देखता है, तो काटने को फेंक देगा। कभी-कभी माँ चुप रहती थीं। भाई ने सुख-दुःख, भूख-प्यास का विचार किया। छिंदोल के पेड़ से पीले फल तोड़े गए। डॉक बंगले के पास बड़े जामुन के पेड़ से पकी हुई मीठी जामुन थैलियों में लायी जाती थीं और सामने आम के पेड़ों से आम तोड़ लिये जाते थे, जो स्वादिष्ट होते थे। इस तरह वे इसे प्राप्त करके प्रसन्न होते थे। उनके लिए पैसा खर्च करना और बाजार से भोजन खरीदना मुश्किल था। जब रोटी नहीं होती थी, तो पानी पीना और पेट भरना सामान्य बात थी। भूख लगने पर वह इमली के पेड़ के नीचे गिरी इमली खाती थी। भूख मिटाने और रोटी की व्यवस्था करने के हरसंभव प्रयास किये गए। वह अपने पिता और भाइयों को कड़ी मेहनत करते हुए देखती थी। यह जानते हुए कि अनाज की बोरियाँ गाँव ले जानी हैं, उनके पिता और दो बड़े भाई वहाँ जाते थे। एक या दो आने प्रति बोरी की दर से वह अधिक से अधिक बोरियाँ ढोने का प्रयास करता था। वह पीठ पर बोरा लादे बहुत दूर तक चलते, कभी स्टेशन से गोदाम तक, कभी माल गोदाम से सेठ के गोदाम तक, कभी अड्डा बाजार से दलाल की दुकान तक, चलते-चलते उसके पैर थक गए। कभी पीठ

में दर्द तो कभी पेट में दर्द रहता था। जब लेखिका ने उन्हें देखा तो उनका दिल दुख गया। उन्हें ऐसा महसूस हो रहा था मानो वह अपने सिर और पीठ पर कोई बोझ ले जा रही हो। लेखिका को परिवार के सदस्यों की थकान अपनी थकान जैसी महसूस हुई। पूरे दिन और शाम में सिर्फ दो से चार रुपये ही कमाई हो पाती थी। वे इससे संतुष्ट थे। एक दिन माँ ने उन्हें मछली और मटन की तरकारी बनाकर खूब खिलाया। मेहनत की कमाई सिर्फ खाने-पीने में ही खर्च हो जाती थी।

सुबह घर में कोयला पीसकर या चूल्हे की राख से दांत साफ किये जाते थे। कभी-कभी जब कोयला अच्छा नहीं होता था, तो उसके मुँह में छाले हो जाते थे और उसके पास कोई विकल्प नहीं होता था। उन्हें अपनी जिद और उस समय की अज्ञानता पर दु:ख हुआ। वह उन गरीब लोगों का दर्द जानते हैं जिनके दांत भोजन की कमी और कुपोषण के कारण बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं। उनकी भोजन प्रणाली ऐसी थी; रोटी के साथ एक या दो कप काली चाय, यही खाकर वे सभी भाई स्कूल जाते थे। दोपहर में हरी मिर्च के साथ रोटी बनाई गई। दाल और सब्जियों की कीमत अधिक होने के कारण दोपहर में नहीं पकाई जाती थीं। हरी या सूखी लाल मिर्च को कड़ाही में थोड़े से तेल में भून लिया जाता था, रोटी के दो टुकड़े और पानी से परिवार के सभी सदस्य अपने पेट भरते थे।

लेखिका के ये अनुभव हमारे समाज की वास्तविकता को दर्शाते हैं कि किसान और अन्य गरीब लोग किस प्रकार जीवन बिताते हैं। उनकी आत्मकथा लिखने का लक्ष्य सच्चाई लोगों तक पहुँचाना है। उन्होंने सोचा कि लोग इन सच्चाइयों को स्वीकार करेंगे। भविष्य में भारत को समतामूलक बनाने के लिए इन तथ्यों को समझना होगा। महिलाओं, दलितों और किसानों के जीवन की गंभीर पीड़ाएँ उनकी आत्मकथा में बार-बार उजागर होती हैं। जब उनके पास पैसे नहीं थे, गहनों को गिरवी रखकर खर्च चलाया। समय गुजर गया। जीवन जीने की बजाय काटती थी। कभी बर्फ और कोहरे से सब धुँधला पड़ जाता है, कभी सूरज की जलती किरण पूरी दुनिया चुभती है या कभी बारिश की बूँदे पत्तों में हीरे की तरह चमकती है। मौसम बदलता ही रहता है और उसी प्रकार समय बिना रुके चलता ही रहता है।

'शिकंजे का दर्द' में लेखिका ने घोषित किया है कि "मैं स्वयं तक सीमित नहीं, मैं मात्र अपने जाति समुदाय तक सीमित नहीं हूँ। सम्पूर्ण विश्व मेरा है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर निवास करने वाला मानव समाज मेरा कुटुम्ब है। मेरा हितचिन्तक सबके लिए है। मैं सबके लिए न्याय की माँग करती हूँ। मानवता मेरा धर्म है, मानवाधिकार मेरी माँग है। दलित, शोषित, पीड़ित सम्पूर्ण मानव समुदाय के लिए मैं समता, सम्मान, स्वतंत्रता, मैत्रीभाव की कामना करती हूँ। यही मेरा लक्ष्य है, यही मेरी मंजिल है। प्रयत्नों की सफलता के लिए, श्रम और संघर्ष के साथ, मैं कर्त्तव्यपथ पर आगे बढ़ रही हूँ।"

000

संदर्भ-

डॉ. कमलापती उपाध्याय - हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन -- साहित्य रत्नालय, कानपुर, 1992, डॉ. विश्व बन्धु शास्त्री, विद्यालंकार - हिन्दी का आत्मकथा साहित्य (स्वरूप-विवेचन और विकास-क्रम)- राधा प्रकाशन, सीताराम बाजार, दिल्ली-6 - 1989, 3रमणिका गुप्ता- स्त्री विमर्श-कलम और कुदाल के बहाने - शिल्पायन 10295, लेन नं.1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032 - 2004, राजेन्द्र यादव - देहरी भई विदेस (लेखिकाओं के आत्मकथांश) - किताबघर प्रकाशन - 2006, रामअवतार यादव - दलित आत्मकथा दलित महाकाव्य - अमन प्रकाशन 104 A/80C रामबाग, कानपुर- 208 012 - 2006, डॉ. रंजित एम और डॉ. सूर्या बोस - हिन्दी कथा साहित्य में नारी - जवहर पुस्तकालय, हिन्दी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा (उ.प्र.) 281001, हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र - मयूर बुक्स - 2018, सुशीला टाकभौरे - शिकंजे का दर्द - पृ.सं. 175

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

(शोध आलेख)

यथार्थ का संस्पर्श : प्रेमचन्द की कहानियों में

शोध लेखक : डॉ. सिन्धु जी नायर
असोसिएट प्रोफेसर, महाराजास कॉलेज (सरकारी स्वायत्त)
एरणाकुलम, केरल

शोध सार-साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद अपने व्यवस्थित रूप में 19 वीं शताब्दी से शुरू होता है। यह प्राय: आदर्शवाद और रोमैंटिसिज़म के विरोध में उद्भूत माना जाता है। साहित्य में यथार्थ-चित्रण के महत्त्व को एक भिन्न दृष्टिकोण के साथ स्वीकारा गया है। वहाँ जीवन की "वास्तविकता" यथार्थ न होकर कल्पित है। कलाकार की अपने युग की अभिव्यक्ति देने की एक निजी और विशिष्ट दृष्टि रही है। लेखक अपनी रचनाओं में व्यक्ति और समाज को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है। लेखक जीवन के घिनौने, गंदे एवं अश्लील रूप का उद्घाटन तटस्थता के साथ करता है। इस चित्रण से चाहे समाज को कितनी ही हानि उठानी पड़े, इस की परवाह लेखक नहीं करता है। लेखक अपने साहित्य में व्यक्ति और समाज का चित्रण समग्रता के साथ करता है। कोई भी पक्ष उन के द्वारा उपेक्षित नहीं होता है। रचनाकार रूढ़ियों और परंपराओं में जकड़े हुए जीवन को छोड़ देता है। लेखक की दृष्टि सदैव मानव जीवन पर ही केन्द्रित होती हैं।

बीज शब्द- साहित्य, यथार्थ, समकालीन परिस्थितियाँ, प्रेमचन्द, साहित्यकार।

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "साहित्य के रूप केवल रूप नहीं हैं। बल्कि जीवन को समझने के भिन्न-भिन्न माध्यम हैं। एक माध्यम जब चुकता दिखाई पड़ता है, तो दूसरे माध्यम का निर्माण किया जाता है। अपनी महान् जययात्रा में सत्य-सौन्दर्य-द्रष्टा मनुष्य ने इसी तरह समय-समय पर नए-नए कला रूपों की सृष्टि की ताकि वह नित्य विकासशील वास्तविकता को अधिक-से-अधिक समझ और समेट सके। हमारी इसी ऐतिहासिक आवश्यकता से एक समय कहानी भी उत्पन्न हुई और अपने रूप-सौंदर्य के द्वारा इसने हमारे सत्य सौन्दर्य-बोध को विकसित किया। कहानी की इसी ऐतिहासिक भूमिका की माँग है कि वर्तमान परिस्थिति में उसकी सार्थकता की परीक्षा व्यापक संदर्भ में की जाय।"1

साहित्य समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। युग की परिस्थितियाँ ही कलाकार को उत्पन्न करती है। यही कारण है कि अपने युग के प्रति तटस्थ रहने का दंभ करनेवाले साहित्यकार की विभिन्न कृतियों में कहीं न कहीं, युग की प्रतिच्छाया प्रतिबिंबित होती ही हैं। यथार्थ वास्तविक अर्थ में प्रेमचन्द की कहानियों के साथ ही प्रकट है। प्रेमचन्द ने यथार्थ का आँचल कभी नहीं छोड़ा। प्रेमचन्द की कहानियाँ समकालीन जीवन यथार्थ की गहरी पहचान से उद्भूत हैं। उनकी कहानियाँ मानव मन के अनेक दृश्यों, चेतना के अनेक छोरों, सामाजिक कुरीतियों तथा आर्थिक उत्पीड़न के विविध आयामों को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करती हैं। प्रेमचन्द ने अपने समय के भारतीय समाज के अनेक वर्गों के पात्रों, उनके आपसी संबंधों, उनसे संबद्ध विविध समस्याओं का बड़ा ही प्रामाणिक चित्र खींचा है। प्रेमचन्द के कथा-साहित्य पर उनकी युगीन परिस्थितियों का सम्यक् प्रभाव पड़ा है। समाज के दलित वर्गों, आर्थिक और सामाजिक यंत्रणा के शिकार मनुष्यों के अधिकारों के लिए जूझने वाली प्रेमचन्द की कहानियाँ हमारे साहित्य की महत्त्वपूर्ण निधि हैं।

प्रेमचन्द की प्रारंभिक कहानियों में आदर्श का स्वर अधिक मुखर है। अच्छाई की विजय और बुराई की पराजय उनकी प्रारंभिक कहानियों की विशेषता है। कभी-कभी यह प्रवृत्ति स्थूल

डॉ. सिन्धु जी नायर
असोसिएट प्रोफेसर,
महाराजास कॉलेज (सरकारी स्वायत्त),
एरणाकुलम, केरल

प्रत्यक्ष रीति से स्पष्ट होती है तो कभी सूक्ष्म सांकेतिक रीति से प्रस्तुत है। "बड़े घर की बेटी "2 कहानी में प्रेमचन्द इस बात को महसूस करते दिखाई पड़ते हैं कि संयुक्त परिवार को अधिक समय तक बनाये रखना मुश्किल है। श्रीकंठ के पिता और ससुर दोनों ही जमीन्दार है। सामंती दिखाने और आचार के कारण दोनों ही घरों की हालत बुरी हो गई है। श्रीकंठ के ससुर के सात बेटियाँ हैं। उनमें से तीन की शादी में उनका आर्थिक ढांचा बुरी तरह चरमरा गया गया है। वे अब कर्ज में डूबे हुए हैं। श्रीकंठ बी.ए. करके संयुक्त परिवार प्रथा की वकालत और गाँव में होनेवाले धार्मिक उत्सवों - आयोजनों में गहरी रुचि रखता है। अपनी पत्नी आनन्दी और भाई लालबिहारी की उदंडता की बात सुनकर श्रीकंठ के मन मे संयुक्त परिवार को लेकर जो उत्साह रहा है सब खत्म हो गया है। परिवार की टूटन को देखकर आनन्दी ही टूटते हुए परिवार को विच्छिन्न होने से बचा लेती है। प्रेमचन्द की कहानियों में संयुक्त परिवार के प्रति मोह दिखाई पड़ता है। इस मोह के साथ ही पीड़ित और वंचित वर्ग के अभिशप्त जीवन के भी दर्शन होते हैं। उन पर होनेवाले अत्याचारों और निर्मम शोषणों का चित्रण भी प्रेमचन्द की कहानियों का विषय रहा है। इस समस्या को प्रेमचन्द ने "बूढ़ी काकी"3 में चित्रित किया है। इस समस्या का प्रस्तुतीकरण इस कहानी में अत्यधिक मार्मिक ढंग से हुआ है। केवल लाड़ली ही बूढ़ी काकी को चाहती है। लड़के के तिलकोत्सव पर मेहमानों को पूरी, कचोरियाँ, दही, मिठाई आदि खिलाई जाती है लेकिन बूढ़ी काकी को कोई नहीं पूछता है। बूढ़ी काकी किसी तरह खाद्य सामग्री पाने हेतु बाहर आती है तो रूपा (बहू) उसका अपमान करती है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में हृदय-परिवर्तन को प्रमुख स्थान दिया है क्योंकि यह एक सहज मानवीय अनुभूति है जो बुराइयों आवरण के नीचे अवश्य रहती है। इस कहानी में रूपा का हृदय परिवर्तन होता है।

इस पारिवारिक भावना का चित्रण प्रेमचन्द ने "नरक का मार्ग" में प्रस्तुत किया है। यह कहानी एक स्त्री की आत्मकथा है। वह स्त्री अपनी असफल वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट होकर, सड़ी-गली रीति-रिवाज़ों, व्यवस्था आदि के विरुद्ध विद्रोह करती है। अपने पति के निधन का भी दु:ख नहीं होता है। वह कहती है कि " इन्होंने मुझे यहाँ कारावास -मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती - यह कारावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूँ कि जिसने मुझे कैद में डाल रखा हो, उसकी पूजा करूँ; जो मुझे लात से मारे, उसके पैरों को चूमूँ। मुझे तो मालूम हो रहा है, ईश्वर इन्हें इस पाप का दण्ड दे रहे हैं। मैं निस्संकोच होकर कहती हूँ कि मेरा इनसे विवाह नहीं हुआ। स्त्री किसी के गले बाँध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती। वहीं संयोग विवाह का पद पा सकता है, जिसमें कम-से-कम एक बार तो हृदय-प्रेम से पुलकित हो जाय।"4

प्रेमचन्द की कहानी "कुसुम"5 में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि जब तक स्त्री-पुरुष के अधिकार समान नहीं होंगे तब तक पति परायण नारियों पर अत्याचार होता ही रहेगा। सुखमय दांपत्य जीवन की नींव अधिकार साम्य पर ही रखी जा सकती है। हम आज जिसे स्त्री-पुरुष में प्रेम कहते हैं, वह प्रेम है, जो स्वामी का अपने पशु से होता है। पशु सिर झुकाये जब तक काम करता जाता है, स्वामी तब तक उसे भूसा और खली देता है। पशु के शरीर को स्वामी सहलाता है उसे अनेक प्रकार के आभूषण पहनाता है। लेकिन पशु ज़रा सी अपनी चाल धीमी कर दी कि मालिक का चाबुक पीठ पर पड़ जाता है। इस संबंध में प्रेम नहीं है।

प्रेमचन्द की प्रारंभिक कहानियों में यथार्थ का निरूपण अवश्य हुआ है। परन्तु वहाँ उसकी चरम परिणति आदर्शवाद में जाकर हुई है। उनकी अन्तिम कहानियों में यथार्थ की यह चेतना अपेक्षाकृत अत्यन्त प्रखर रूप से विद्यमान है। "कफन"6 कहानी आद्योपांत यथार्थ की हो यात्रा करती है। इस कहानी की यह एक विशेषता है कि यह कहानी अर्थमूलक यथार्थ के कई जटिल आयामों को एक साथ उद्घाटित करती है। यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कहानी है जो श्रम के प्रति आदमी में हतोत्साह पैदा करती है क्योंकि श्रम की सार्थकता उसे दिखाई नहीं देती है। मेहनत करने के बाद भी श्रमिक को भूखे रहना ही पड़ता है। सामाजिक व्यवस्था से निर्वासित और जीविका की अनिश्चितता के परिणामस्वरूप व्यक्ति का नैतिक-बोध लुप्त हो जाता है। इस कहानी में घीसू माधव की संवेदनशून्यता, अकर्मण्यता, जड़ता, निष्क्रियता और मानवीय संबंधों का निरर्थकता बोध उनके अंदर व्याप्त पीड़ा को ही उजागर करता है। इस प्रकार के व्यवहार से शोषण के अमानवीय एवं विकृत स्वरूप को ही निरावृत करने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया है - घीसू और माधव प्रसव पीड़ा में पछाड़ खाती हुई बुधिया की ओर पीठ कर आलू खा लेने में असंगति महसूस नहीं करते हैं। इस की वजह यह है कि गरीब की दुनिया में भूख के अतिरिक्त सब कुछ गौण है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि सब रिश्ते-नाते यहाँ कोई महत्त्व नहीं रखते हैं बस उन के लिए बुने हुए आलू ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। बुधिया को पीड़ा से पछाड़ खाते हुए सुनकर भी कोई अन्दर जाकर नहीं देखता है क्योंकि उसके अन्दर यह भय है कि अगर वह वहाँ से हटा तो दूसरा व्यक्ति पूरा आलू खा जाएगा। वे दोनों आज इस बात का इन्तज़ार कर रहे है कि वह मर जाए और वे दोनों आराम से सो जाएँ। पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तर का रागात्मक संबंध आलू के आगे जुड़े भूख के संबंध के आगे हल्का पड़ जाता है। बुधिया के कफन के लिए जुटाये गए पैसों को शराब-ताड़ी में व्यय करते हुए वे अपना दोजख भरने में ही निमग्न हो जाते हैं। अपनी उम्र के अनुरूप घीसू ज़्यादा समझदार है। और वह जानता है कि लोग फिर से कफन की व्यवस्था करेंगे। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने समाज की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को परत दर परत खोल कर उसका सच्चा स्वरूप प्रस्तुत किया है। गाँव के संपन्न लोग जीवित मनुष्यों का शोषण करते हैं, उन्हें खाना कपड़ा भी नसीब नहीं होता है परन्तु मरने के बाद गाँव की धार्मिक औपचारिकता के पालन के लिए उनके कफन के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं। यह धार्मिक

नैतिकता कितनी खोखली है, इस ओर लेखक ने इशारा किया है। यह समाज भी कैसा है जो जीवित मनुष्य की अपेक्षा मरे हुए का ख्याल करती है। घीसू और माधव के दृष्टिकोण में वह मृत्यु धन्य है जो भूखे-प्यासे को जीवन देती है। "कफन " अपने गहरे अर्थों में बुधिया के कफन की कहानी मात्र नहीं है, वह मानवीयता और मृत नैतिक-बोध के कफन की कहानी है। यह कहानी उस हताशा की कहानी है जो मनुष्य को अस्तित्व आदिम स्तर पर ले जाती है जहाँ वह बहुत ही स्वार्थी बन जाता है।

"पंच परमेश्वर"7 ग्रामीण परिवेश की एक ऐसी सशक्त कहानी है जिसमें भारतीय ग्रामीण परिवार समाज का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इस कहानी में विभिन्न पारिवारिक सदस्यों के संबंध, संबंधों से उत्पन्न स्थितियों और समाज के संदर्भ में अन्योन्याश्रित भावना ही सजीव हो उठी है। अलगू शेख और जुम्मन चौधरी के माध्यम से प्रेमचन्द मुस्लिम और हिन्दू एकता का समर्थन करते हैं, साथ ही वे न्याय की निष्पक्षता का समर्थन भी करते हैं। इस कहानी में ग्रामीण लोगों में जो ईमान और न्यायप्रियता है, उसका चित्रण और प्रतिष्ठापन किया गया है। जुम्मन अलगू की मित्रता उस समय भी न्याय के रास्ते में कोई बाधा नहीं पहुँचाती जब जुम्मन अपनी खाला की जायदाद ले लेने के बाद उनकी परवरिश करने से मुँह फेर लेता है। न्याय की प्रतिष्ठा के लिए अलग जुम्मन के विरुद्ध फैसला करने में ज़रा भी नहीं हिचकता है। लेकिन थोड़े ही समय के बाद अलग एक मामले में फँस जाता है। झगड़ू साहू उनका बैल उधार में ले जाता है और उस पर बोझ लाद-लाद कर उसे मार डालता है। अलगू उससे पैसा माँगता है तो वह बिगड़ पड़ता है और पैसे देने से इनकार कर देता है। अलगू को पंचायत बुलानी पड़ती है। अलगू क दुश्मन जुम्मन को झगड़ू साहू पंच बना देता है कि जुम्मन अलग से बदला ले लेगा और न्याय उसके पक्ष में जाएगा। लेकिन पंच बन जाने पर जुम्मन के भीतर नैतिकता का प्रकाश फैल जाता है। उसकी आत्मा उसे न्याय मार्ग से विचलित नहीं होने देती है और वह अलगू का पक्ष लेकर बोलता है।

प्रेमचन्द की एक और कहानी "पूस की रात"8 में यथार्थ का चित्रण हुआ है। इस कहानी का नायक हलकू का सब कुछ कर्ज पाटने में चला जाता है। वह जीवन की निहायत जरूरी चीज़ों के लिए तक तरसता है। कई वर्षों से कम्बल खरीदने की उसकी लालसा पूरी नहीं होती है। वह अपने खेत की रखवाली के लिए अपना कुत्ता ज़बरा के साथ जाता है और वहीं अलाव की गर्मी में सो जाता है। रात को नील गाय उसके खेत का सफाया कर जाती है। इस कहानी में प्रेमचन्द ने मानवीय संवेदना को विविध परतों से निर्मित किया है। नील गाय द्वारा खेत के सफाया हो जाने पर जब हलक की पत्नी कहती है कि अब उन्हें मज़दूरी करके लगान भरना पड़ेगा तब हलकू इस बात को सोचकर आश्वस्त है कि उसे ठंड में खेत की रखवाली नहीं करनी पड़ेगी। इस कहानी में हलक की निष्क्रियता अपनी पराजय में ही चैन को खोजती है। एक किसान को अपनी भूमि से अत्यंत लगाव होता है। यहाँ जड़ से उखड़ने की विवशता है जिसके मूल में जमीन्दारों द्वारा किया जानेवाला शोषण ही एकमात्र कारण है। "ठाकुर का कुआँ"9 कहानी में गाँव की वास्तविकता, भ्रष्ट व्यवस्था, निम्न जातीय व्यक्तियों के साथ उच्च वर्ग के लोगों का अमानवीय व्यवहार आदि का चित्रण हुआ है। इस कहानी में सारी सेवा के बावजूद ये लोग नीच, कमीने और अस्पृश्य ही माने जाते हैं। ये लोग मज़बूरी में ठाकुर के कुएँ का एक लोटा पानी भी भर लेने के हकदार नहीं हैं। शेर से भी भयानक मुँहवाले ठाकुर को देखते ही गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है और घड़ा धड़ाम से हिलकोरे की आवाज़ें छोडती हुई पानी में सरक जाती हैं। बदहवासी में वह घर पहुँचकर देखती हैं कि जो जोखू (पति) लोटा मुँह से लगाए वही मैला-गंदा और बदबूदार पानी पी रहा है।

"सद्गति"10 कहानी में चमारों के प्रति ब्राह्मणों के अमानुषिक व्यवहार का नग्न चित्रण है। धर्म भीरू दुखी चमार द्वारा मूक और निर्द्वन्द्र भाव से सब अत्याचार सहन करना एवं मृत्यु के उपरांत पंडित के हाथों जिस प्रकार दुखी की सदगति होती है वह समाज के नग्न यथार्थ के समक्ष लाकर ब्राहमणों के व्यर्थ पाखंड का पोल खोल देती है।

निष्कर्ष: भारतीय जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक संदर्भों का यथार्थ अंकन प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में किया है। सामाजिक जीवन में विद्रूपताओं, विसंगतियों, विषमताओं एवं विडम्बनाओं का जीता जागता यथार्थवादी चित्रण प्रेमचन्द ने समसामयिकता के धरातल पर किया है। प्रेमचन्द की कहानियों में समाज की हर एक समस्या को हुआ है। इसकी कहानियाँ हिन्दी कहानी साहित्य की महत्त्वपूर्ण देन है जो कहानी परंपरा को प्रतिष्ठित करने में सहायक सिद्ध हुई है।

000

संदर्भ- 1. डॉ.नामवर सिंह-कहानी:नई कहानी-पृ.2 0 , लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,संस्करण-1994, 2. प्रेमचन्द - "बड़े घर की बेटी" - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ.62,राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1995, 3 प्रेमचन्द- "बूढ़ी काकी" - मानसरोवर-8 - पृ. 125,भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, 1992, 4. प्रेमचन्द- "नरक का मार्ग - मानसरोवर-3 - पृ. 24, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, 1992, 5. प्रेमचन्द - "कुसुम " -मानसरोवर - 2 - पृ. 9, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, 1988, 6. प्रेमचन्द - "कफन " कथा यात्रा - पृ. 42, सं. राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1997, 7. प्रेमचन्द - "पंच परमेश्वर" - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 116, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1995, 8 प्रेमचन्द - "पूस की रात" - कथा श्री - पृ. 13, श्री. चक्रधर, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, संस्करण- 1994, 9 प्रेमचन्द - "ठाकुर का कुआँ" - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 94, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1995, 10 प्रेमचन्द - "सदगति " - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 108, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1995

(शोध आलेख)

दलित नारी चेतना के परिप्रेक्ष्य में कुसुम कुमार का नाटक 'सुनो शेफाली'

शोध लेखक : अंजु गोत्रा
शोधार्थी (पीएच.डी.)
हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय

शोध सारांश : भारतीय समाज मूलत: वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज है। वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज में प्राचीन काल से आज तक किसी-न-किसी रूप में चली आ रही है। इसी से जाति व्यवस्था निकली और जाति व्यवस्था से 'दलित' शब्द। 'दलित' का समान्य अर्थदबा-कुचला और अपमानित, प्रताड़ित प्राणी होता है, किन्तु आज तक के प्रचलित अर्थ में यह केवल भारत की अनुसूचित जाति और जनजातियों के अर्थ में ही रूढ़ हो गया है जहाँ तक चेतना शब्द के अर्थ की बात है तो "वस्तुओं को समग्रता से परखना ही 'चेतना' है।"1 वर्ण व्यवस्था में जिसे अछूत या अन्त्यज समझा गया, जिसका शोषण और दलन हुआ, जिसे संविधान ने अनुसूचित कहा और जो जन्मना अछूत और घृणा का पात्र रहा, वही दलित है। यह दलित शब्द साहित्य के साथ मिलकर एक ऐसी साहित्यिक धारा का निर्माण करता है, जो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर उसकी विसंगतियों को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती है। दलित नारी को दोहरे रूप में शोषण का शिकार होना पड़ता है। एक तो दलित स्त्रियाँ पुरुषों की वर्चस्ववादी मानसिकता के कारण शोषित होती हैं और दूसरा उन्हें समाज द्वारा दलित होने का दंश भी झेलना पड़ता है। समय परिवर्तन के साथ दलित नारियों ने अपने इस शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना सीख लिया है और उसने प्रत्येक प्रकार के शोषण के विरोध में एक चेतना का प्रवाह देखने को मिलता है। दलित नारी की इसी चेतना की अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध नाट्य लेखिका कुसुम कुमार के नाटक 'सुनो शेफाली' में दिखाई देती है। इन्होंने इस नाटक में नारी को असहाय, शोषित, पीड़ित के स्थान पर प्रगतिशील विचारों से युक्त दिखाया है।

बीज शब्द : दलित, चेतना, स्वाभिमानी, प्रतिशोध, जागरूकता, हरिजन, राजनीति, अस्मिता, विरोध, भेदभाव, समतावादी दृष्टिकोण, वर्ण-व्यवस्था, असमानता, पुरुषसत्तात्मक, शिक्षित, आत्मनिर्भर।

मूल आलेख : दलित साहित्य में दलितों और गैर दलितों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दलित साहित्य को केवल दलितों की सीमा में बाँधना उचित नहीं है। साहित्य साहित्य होता है, जिसके सृजन का अधिकार सबको है। हाँ, निष्ठा, संवेदना और प्रतिबद्धता आवश्यक है। केवल ऊपरी सहानुभूति से चेतना की धारा में शामिल नहीं हुआ जा सकता। गैर दलित लेखन में यदि दलितों के प्रति सच्ची सहानुभूति, संवेदना और उनकी मुक्ति की चिन्ता और चेतना है तो ऐसे साहित्य को दलित चेतना से सम्पन्न साहित्य मानने में कोई हर्ज़ नहीं है। दलित रचनाओं में दलित जीवन की समस्याएँ और सरोकार अवश्य होने चाहिए।

कुसुम कुमार एक ऐसी ही लेखिका हैं जिन्होंने गैर दलित रचनाकार होते हुए भी अपने नाटक 'सुनो शेफाली' में एक हरिजन लड़की के जीवन के विविध पहलुओं एवं संघर्ष को पूरी सशक्तता और ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा इन्होंने नाटक द्वारा दलित विमर्श को नया आयाम प्रदान करने का प्रयास किया है। नाटक एक ऐसी विधा है जिसका सीधे-सीधे संबंध समाज से आकर जुड़ता है। क्योंकि यह एक जीवन्त और दृश्यात्मक विधा है। नाटक पढ़ते समय एक-एक दृश्य पाठक के समक्ष प्रस्तुत हो उठता है क्योंकि इसमें अभिनय तत्व की प्रधानता होती है।

नारी चाहे दलित वर्ग की हो अथवा गैर दलित वर्ग की पुरुषसत्तात्मक समाज में वह शोषित होती रही है। नारी के इसी शोषण और उत्पीड़न ने नारी संघर्ष और नारी संघर्ष ने नारी चेतना को जन्म दिया है। सदियों से प्रताड़ना सहती नारी जब धीरे-धीरे शिक्षित होने लगी तो उसमें

अंजु गोत्रा
कन्हाल लोअर
बिश्नाह, जम्मू - 181132
जम्मू-कश्मीर
मोबाइल- 6006473432
ईमेल- anjug2380@gmail.com

आत्मनिर्भरता का भाव आने लगा, वह अपनी स्थिति को लेकर सजग, सचेत होने लगी और इसी सजगता के कारण उसमें चेतना आई। अलका प्रकाश पुस्तक 'नारी चेतना के आयाम' में लिखती हैं, "स्त्री-चेतना से अभिप्राय स्त्री के अपने अस्तित्व बोध से है।"2

कुसुम कुमार का नाटक 'सुनो शेफाली' दलित नारी चेतना एवं जागरूकता को प्रस्तुत करने वाला महत्त्वपूर्ण नाटक है इसमें इन्होंने दलित नारी के संघर्ष को नए सिरे से देखने और पहचानने का प्रयास किया है। प्रस्तुत नाटक एक हरिजन लड़की शेफाली और उच्च कुलोत्पन्न बकुल के प्रेम संबंध के इर्द-गिर्द घूमता है। बकुल के पिता सत्यमेव दीक्षित एक समाजसेवी है और वह अपने आगामी चुनाव के लिए दोनों की शादी करवाकर धार्मिक सहानुभूति के नाम पर हरिजनों के वोट प्राप्त करना चाहते हैं। जब शेफाली को पता चलता है कि बकुल ने राजनीति में स्वार्थ साधने के लिए उसके साथ प्रेम का नाटक किया और अब वह उसके साथ विवाह भी करना चाहता है तो वह इस राजनीतिक छल, प्रपंच, स्वार्थनीति का प्रतिकार करती है। वह स्पष्ट शब्दों में बकुल से कहती है, "बस बाबा, बस। दूध की धुली, प्यार की यह लफ्फाजी और नहीं चाहिए अब ...।"3

वह एक स्वाभिमानी नारी है। अपनी इसी स्वाभिमानी प्रवृत्ति के कारण वह घिनौनी राजनीति के लिए स्वयं का बलिदान नहीं होने देती। परिस्थितिवश शेफाली की माँ बार-बर उसे विवाह के लिए बाध्य करती है लेकिन शेफाली का स्वाभिमान परिस्थितिवश हारता नहीं है। उसे लगता है कि दोनों बाप-बेटे षडयंत्र और स्वार्थ के चलते उसे विवाह के जाल में फँसाकर समाज के समक्ष उस पर उपकार, कृतज्ञता का भाव दिखाकर स्वयं को ऊँचा दिखाना चाहते हैं। वह उस पर किये जाने वाले इस कृत्रम उपकार का विरोध कर स्वाभिमानी नारी होने का परिचय देती है, "मुझ पर रहम खाए कोई मुझसे शादी करे, नहीं चाहिए मुझे ऐसी शादी।"4

इस प्रकार वह किसी की दया दृष्टि की पात्र या किसी के हाथ की कठपुतली नहीं बनना चाहती। राजनीतिक चाल के चलते एक दलित स्त्री को पारिवारिक बंधनों में कैद कर दलितों के उद्धारक होने का मुखौटा लगाकर, उनके वोट पाने के घृणास्पद यथार्थ का वर्णन लेखिका ने सुंदर ढंग से किया है। पुरुष सदैव से ही नारी को निर्जीव वस्तु समझ उसका उपयोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए करता आया है और जब बात दलित नारी की हो तो उसके प्रति अत्यन्त हीन दृष्टिकोण अपनाया जाता है। उसको अपने स्वार्थानुसार चलाना उच्च वर्ग के पुरुष अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। किंतु शेफाली के शब्दों में लेखिका ने ऐसी मानसिकता का प्रतिकार किया है, "अपनी सहूलियत बनाना चाहते हैं मुझे समाजसेवक साहेब। ... ऊपर से जताते हैं, ऐसे जैसे हम पर कोई उपकार कर रहे हों।"5

प्रस्तुत नाटक में शेफाली को सजग, सतर्क युवती के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। वह बकुल की प्रेम की आड़ में वोट हथियाने की कुटिल राजनीति एवं वहशीयत भरी चाल का भी पर्दाफाश करती हैं। अपने सच्चे प्रेम का बलिदान कर सामाजिक, राजनीतिक विकृतियों पर आक्रोश से स्वर बुलंदित करने वाली युवा दलित नारी नि:संदेह चेतना युक्त नारी है। वह ऐसी राजनीतिक व्यवस्था का विरोध करती है जिसमें सर्वसाधारण के हितों की अपेक्षा राजनेता छल द्वारा किसी के प्रेम आदि भावों का प्रयोग अपने स्वार्थ हेतु करते हैं। शेफाली का माँ से यह कथन, "तू क्या उन्हें इतना भोला समझती है, अम्मा? वह क्यों शादी करना चाहते हैं मुझसे - अभी इसी वक्त मैं खूब समझती हूँ बाप-बेटा अपनी समाजसेवा की सरसों हथेली पर जमाना चाहते हैं। एक हरिजन लड़की का उद्धार किया उन्होंने कह-कहकर अपने लिए जिंदाबाद के नारे लगवाएँगे और मैं? ... उनके विज्ञापन की तस्वीर बनी ...।"6 राजनेताओं की नीच मानसिकता को दर्शाता है।

शेफाली का सामाजिक असमानता, जाति आधारित व्यवस्था के प्रति क्रोध एवं विरोध का भाव इस नाटक में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। बचपन में स्कूल में पढ़ते समय जाति के आधार पर मिलने वाली रियायतों और सुविधाओं को वह अस्वीकार कर देती है और अपनी दोनों छोटी बहनों को भी इन रियायतों को अस्वीकार करने को कहती है, क्योंकि वह स्वयं के बल पर विकसित होने में विश्वास रखती है। वह स्वयं को किसी से भी कमतर नहीं आँकती। शेफाली का बचपन में जातिगत व्यवस्था के प्रति विरोध का भाव इन शब्दों में अभिव्यक्ति पाता है, "स्कूल में कभी किताबें बंटतीं, कभी मुफ्त ऊन मिलती, कभी वर्दी का कपड़ा लेकिन हम तीनों बहनें कोई रियायत न लेतीं हम क्यों कहें कि हम हरिजन हैं?"7

स्पष्ट है कि शेफाली समतावादी दृष्टिकोण में विश्वास रखने वाली युवती है। वह नहीं चाहती कि समाज उसे उसकी जाति के आधार पर निम्न स्तर का समझें। वह स्वयं को जाति के अतिरिक्त एक मनुष्य के रूप में देखती है और वह समाज से भी यही आशा करती है कि उसे लैंगिक अथवा जाति के आधार पर नहीं अपितु मनुष्य के रूप में देखा जाए। वह अपने इसी समतावादी दृष्टिकोण का परिचय देती हुई कहती है, "बराबरी माँग कौन रहा है? बराबर तो मैंहूँ ... उनकी दया का पात्र बनना होता तो मेरी शादी के खील-बताशे तुम भी कब के बाँट चुकी होती ... अम्मा, मैं कैसे ना यह सोचूँ कि हम उनकी दया के पात्र होने के अलावा भी कुछ हैं?"8

शेफाली ने जातिगत व्यवस्था का विरोध प्रत्येक स्तर पर किया है चाहे सामाजिक स्तर हो या राजनीतिक। वर्ण व्यवस्था के प्रति उसके यह विचार सम्पूर्ण दलित वर्ग एवं दलित नारियों को एक नई दिशा की ओर अग्रसर करता है। जातिगत व्यवस्था या असमानता का विचार मात्र ही उसके लिए दमघोंटू वातावरण के समान हैं, "बस करो, अम्मा बस करो। तुम अभी भी जात-बिरादरी के सपने देख रही हो। बचपन से लेकर अब तक जिन जात-बिरादरियों के लिए मेरी आँखों से क्षोभ का लावा निकलते देखा तुमने उसी को फिर तुम उन दमघोंटू दायरों में रख देखने लगती हो? ...9

शेफाली का चरित्र विद्रोहात्मक है। अपनी

इसी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के कारण वह अपने प्रेमी के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। उसके विचार में किसी भी व्यक्ति के गरीब होने या निम्न जाति के होने का यह अर्थ नहीं है कि वह कसूरवार है या गुनहगार है। दलित नारी के प्रति ऐसा व्यवहार निंदनीय है। ऐसी व्यवस्था के प्रति शेफाली का व्यंग्य इस प्रकार है, "हाँ-हाँ, हम गरीब लोग हैं, कुसूरवार हैं, पिछड़ी जात हैं, हमें उनके पाँव पड़कर माफी माँगनी चाहिए - 'हुजूर, हमें माफ कर दीजिए ... हमारी बेटी की जगह अब सिर्फ आपके बेटे के चरणों में है ... अब वह, सिर्फ आपके घर में, समा सकती है।(क्रोध और जलन से) दुष्ट! नीच! पाखंडी। जैसा बाप, वैसा बेटा।"10

युवती के लिए ऐसी धारणा रखने वाला व्यक्ति घोर घृणा का पात्र है। उसका यह विद्रोह केवल उसके प्रेमी के प्रति नहीं है बल्कि उस राजतंत्र के प्रति भी है जो दलित नारियों को अपने हाथ का खिलौना समझता है। इस नाटक में वह सम्पूर्ण दलित नारी वर्ग के प्रतिनिधित्व के रूप में खड़ी है। उसके लिए उसके प्रेमी ने उसके साथ ही नहीं बल्कि पूरे दलित वर्ग की नारियों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया है, "बकुल जी ... बकुल बाबू ... आप भी क्या याद करेंगे - एक हरिजन लड़की का सिखाया पाठ पूरी उम्र बैठकर रटते न रह जाएँ तो मेरा नाम शेफाली नहीं।"11 शेफाली भीतर-ही-भीतर भले ही टूट कर बिखर जाती है, किंतु व्यवस्था के सामने घुटने नहीं टेकती बल्कि पूरे साहस और निडरता के साथ इस छल, प्रपंचना का सामना करती है।

शेफाली की चेतना उस पुरुषसत्तात्मक समाज के प्रति भी है जो नारी को अबला, असहाय, समझ उस पर अत्याचार करता है और उसे अबला, असहाय बने रहने पर ही विवश करता है। भारतीय समाज पुरुष की वर्चस्ववादी मानसिकता से चालित रहा है, जहाँ नारी के प्रति दोहरे मानदण्डों की सृष्टि होती है। इस समाज में यदि नारी किसी पुरुष से प्रेम करती है तो उसे चरित्रहीन समझा जाता है, उसके चरित्र पर तरह-तरह के सवाल उठाए जाते हैं किंतु बात जब पुरुष की आती है तो उसके विषय में समाज के सारे मानदण्ड ही बदल जाते हैं। समाज की दोहरी मानसिकता पर प्रहार कर शेफाली अपनी चेतना सम्पन्नता का परिचय देती है, "आप पुरुष थे तो क्या हुआ? सिर्फ इसीलिए तो आप लावारिस सांड की तरह छुट्टी नहीं पा सकते?"12

शेफाली आधुनिक नारी की भूमिका में भी एक चेतना सम्पन्न नारी दिखाई देती है। आज की आधुनिक विचारों से सम्पन्न स्त्री को भी शोषण की चक्की में पिसना पड़ता है, किंतु आज की दलित नारी अपनी बात को पूरी निर्भयता और बेबाकी से प्रस्तुत करती है। आज की दलित नारी शोषित होते हुए भी लाचार नहीं है। उसने उच्च जाति की स्त्रियों के साथ-साथ पुरुषों के साथ भी कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलना और अपने अधिकारों के प्रति आवाज़ बुलन्द करना सीख लिया है। वह भी अब अपनी पहचान, अस्मिता के लिए संघर्षरत है। अस्पृश्यता और शोषण के भय से घर में कैद नारी की भूमिका से बाहर निकलकर अब वह अपनी बात को डंके की चोट पर कहने वाली दलित नारी है, "बकुल के प्यार में जो कुछ भी होता रहा, मैं कुछ समझ नहीं पाई ... लेकिन अम्मा, किसी के पास आबरू थी, हमने गलती से कुछ खो भी दी होगी - पर वे जो बड़े ऊँचे खानदानी लोग हैं उनकी आबरू कब कहाँ थी? आबरू अगर सिर्फ जिस्म का दूसरा नाम है तो उनकी आबरू भी कम नहीं खोई होगी।"13

लेखिका ने दलित नारियों के लिए शिक्षा का महत्त्व भी प्रतिपादित किया है। व्यक्ति का शिक्षित होना और उसका चेतना सम्पन्न होना, यह दोनों कहीं न कहीं एक-दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति शिक्षित होने लगता है उसके भीतर सही-गलत की पहचान, चीजों को देखने का नजरिया ही बदल जाता है। उसमें चेतना का प्रवाह होता नज़र आता है। शेफाली शिक्षित, आत्मनिर्भर युवती है। दसवीं कक्षा पास होने पर युवती की माँ आर्थिक तंगी और शेफाली के विद्रोही व्यक्तित्व के भय से उसे आगे पढ़ाने से मना कर देती है। माँ मिस साहब के घर काम करके घर का खर्चा चलाती है। जब मिस साहब को पता चलता है कि शेफाली एक बुद्धिमान और होनहार युवती है तथा आगे पढ़ने की इच्छुक है तो वह स्वयं उसकी पढ़ाई का सारा खर्च उठा लेती है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर युवती सत्यमेव दीक्षित को अंग्रेजी पढ़ाने जाती थी और वहीं बकुल उसे अपने प्रेम जाल में फांस लेता है। शिक्षा के संदर्भ में मिस साहब कहती हैं, "तुम ग्यारहवीं तो क्या बी.ए भी करना चाहो तो तुम्हारा खर्च मैं दूँगी। वह दिन गया और मेरे बी.ए पास करने तक मेरा पूरा बोझ अपने सिर पर ले लिया मिस साहब ने ... ।"14 समाज में ऊँची जाति में भी ऐसे लोग विद्यमान हैं जो इस वर्ग को भी आगे लाने में प्रयासरत हैं।

निष्कर्ष :- कुसुम कुमार हिन्दी साहित्य की समर्थ और सशक्त नाट्य लेखिका हैं। इनके नाटक 'सुनो शेफाली' में आरम्भ से अन्त तक एक नवीन दृष्टिकोण एवं चेतना की लहर देखने को मिलती है। इन्होंने शेफाली के माध्यम से अपने समतावादी विचारों को प्रस्तुत किया है। इन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने का संदेश दिया है। नि:संदेह आज दलितों की स्थिति में परिवर्तन आया है किंतु बौद्धिक स्तर पर ऊच्च वर्ण के लोगों में अभी भी परिमार्जन की आवश्यकता है तभी एक स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है। शिक्षा के माध्यम से दलित नारियों में जो स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता का भाव आया है, इसकी भी सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत नाटक में देखने को मिलती है।

000

संदर्भ- 1 - इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका, संस्करण 2010, पृ. 369, 2-अलका प्रकाश, नारी चेतना के आयाम, लोकभारती, इलाहाबाद, 2013, पृ. 13, 3-कुसुम कुमार, समग्र नाटक, सुनो शेफाली, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018,पृ. 306, 4-वही, पृ. 339, 5-वही, पृ. 343, 6-वही, पृ. 340, 7-वही, पृ. 317, 8-वही, पृ. 341, 9-वही, पृ. 341, 10-वही, पृ. 343, 11-वही, पृ. 345, 12-वही, पृ. 345, 13-वही, पृ. 340, 14-वही, पृ. 319

(शोध आलेख)

ममता कालिया के कथा साहित्य में पंजाबी परिवेश

शोध लेखक : शशि कुमारी (शोधार्थी) हिन्दी-विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय

सारांश - ममता कालिया आधुनिक हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध रचनाकार हैं उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, बाल साहित्य इत्यादि पर अपनी लेखनी चलाई है और हिन्दी साहित्य को सशक्त रचनाएँ प्रदान की हैं। समाज का प्रत्येक वर्ग इनकी लेखनी के केन्द्र में है। ममता कालिया का रचना स्थल इलाहाबाद रहा परन्तु उनका विवाह पंजाब के जालंधर शहर में होने के कारण वह पंजाबी संस्कृति और वहाँ के परिवेश से भी जुड़ी रहीं। इसलिए इनकी कुछ कहानियों और उपन्यासों में पंजाबी संस्कृति के दर्शन स्पष्ट दिखाई देते हैं।

बीज शब्द- पंजाब, लोकजीवन, नामकरण, संस्कृति, व्रत

पंजाब साहित्य, संस्कृति और कला की तपोभूमि के रूप में विश्वभर में विख्यात भारत का एक प्रसिद्ध राज्य है। पंजाब की इसी भूमि पर वैदिक सभ्यता का जन्म और विकास हुआ। ऋग्वेद जैसे प्राचीनतम ग्रन्थ की रचना भी यही नदियों के किनारे पर ही हुई। भारतीय आर्य जातियों का निवास स्थान भी पंजाब की भूमि को ही माना जाता है।

''पंजाब'' शब्द की व्युत्पति की यदि बात की जाए तो ''पंजाब'' 'पंज' ''आब'' पदों के योग से बना है। ''पंज'' और ''आब'' दोनों ही शब्द फारसी भाषा के है। उनके अर्थ क्रमशः 'पाँच' और 'पानी' हैं। अस्तु पंजाब का अर्थ हुआ पाँच पानी से सींची हुई भूमि।''1

यह मानने योग्य तथ्य है कि पंजाब प्रदेश को भारत का प्रवेश द्वार माना जाता है इसलिए भारत पर जब-जब कोई आक्रमण हुआ है उसका सबसे पहले सामना पंजाब के लोगों को करना पड़ा है। परन्तु पंजाब के लोगों ने इन सभी आक्रमणों का बड़ी वीरता और साहस के साथ उत्तर दिया है। भूमि के लिए लड़ा जाने वाला पहला युद्ध महाभारत और जनमेजय का नाग-यज्ञ भी पंजाब में ही हुए। निरन्तर युद्धों का सामना करने वाले पंजाब प्रदेश को राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक धरातलों पर कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। परन्तु लगातार इन

शशि कुमारी (शोधार्थी)
हिन्दी-विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर, (पंजाब)
ईमेल- shashikumari1051997@gmail.com

कठिनाईयों का सामना करते हुए वह कभी किसी के समक्ष नहीं झुका है। यहाँ की पाँच नदियाँ:- झेलम, ब्यास, रावी, चिनाव और सतलुज निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती रहती हैं।

जहाँ तक पंजाब में रचे जाने वाले साहित्य की बात है तो पंजाब में रचे जाने वाले पंजाबी हिन्दी साहित्य का इतिहास काफी प्राचीन है। यहाँ के साहित्यकारों ने समय-समय पर बदलती परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य रचना की है। हिन्दी साहित्य की बात करें तो यहाँ के ज्यादातर बड़े लेखक पंजाब के भी हैं। हिन्दी के साहित्यकार जैसे भीष्म साहनी, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, देवेन्द्र सत्यार्थी, कृष्ण बलदेव वैद, अमृता प्रीतम, बलराज साहनी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सुदर्शन, विष्णु प्रभाकर आदि लेखकों के साहित्य में पंजाब संस्कृति, परिवेश, दंगों, संप्रदायिकता के आधार पर होने वाले दंगों, विभाजन की त्रासदी, धार्मिक परिवर्तनों आदि का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। भारत के इतिहास में पंजाब के इतिहास की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

इसी परिप्रेक्ष में साठोत्तरी काल के यथार्थवादी साहित्यकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली ममता कालिया की बात की जाए तो भले ही वह पंजाब प्रदेश में पैदा नहीं हुई हों परन्तु फिर भी वह पंजाबी लोक संस्कृति और वहाँ के समृद्ध परिवेश से बचकर नहीं निकल पाई हैं। इनका जन्म 2 नवम्बर 1940 में वृन्दावन में हुआ था। उनकी माता का नाम इन्दुमति और पिता का नाम विद्याभूषण अग्रवाल था। ममता जी का विवाह 12 दिसंबर 1964 में पंजाब के जालंधर प्रांत में रविन्द्र कालिया से हुआ। वह अपने ससुराल में अधिकतर समय के लिए नहीं रही परन्तु फिर भी पंजाबी रीति-रिवाज़ों और संस्कृति को समझने में उन्होने दिलचस्पी का परिचय दिया है। उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं:- छुटकारा, एक अदद औरत, सीट न.-छः, बोलने वाल औरत, मुखौटा आदि। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा लिखित उपन्यास हैं:- बेघर, अंधेरे का ताला, लड़कियाँ, दौड़ आदि।

ममता कालिया के उपन्यास बेघर में पंजाबी जीवन की छवि देखने को मिलती है। इस उपन्यास में दिल्ली में रह रहे एक पंजाबी परिवार को केन्द्र में रखा गया है। कथा का नायक परमजीत दिल्ली से बंबई चला जाता है, अपनी कच्ची-पक्की अंग्रेजी लेकर। वहाँ उसे संजीवनी नामक स्त्री से प्रेम हो जाता है। वह कभी उसके सामने विवाह का प्रस्ताव नहीं रख पाता हैं। उनका प्रेम अन्त तक पहुँचने के पहले ही ध्वस्त हो जाता है। इसके पश्चात परमजीत रमा से विवाह करता है। बच्चे भी होते हैं पर परमजीत अपना घर होते हुए भी स्वयं को बेघर महसूस करता है। रमा की रूढ़िग्रस्ता परमजीत के आत्मनिर्वासन पर अंतिम मुहर लगा देती है।

इस उपन्यास के आरम्भ में पंजाबी लोक जीवन की छवि देखने को मिलती है। जैसे कि पंजाबी लोग अपने खाने-पीने में विभिन्नता और पौष्टिकता का परिचय देते हैं। यहाँ के लोग उँचे कद वाले हृष्ट-पुष्ट होते हैं जो दिन भर मेहनत करते हैं। अत: इनका खाना-पीना पौष्टिक होना स्वभाविक हैं। यहाँ के लोग रोटी के साथ सब्जियों के रूप में सरसों, चने, पालक आदि खाते हैं। सरसों के साग के साथ मक्की की रोटी तथा लस्सी का सेवन पंजाबी खान-पान की विशेष पहचान है। उपन्यास में परमजीत के पिता पंजाब से आकर दिल्ली बस गए थे परन्तु फिर भी वह अपनी पंजाबी संस्कृति को नहीं भूले थे। इसलिए उपन्यास के आरम्भ में ही पंजाबी लोकजीवन देखने को मिलता है-

''परमजीत के बाप की लस्सी की दुकान थी। लस्सी बिलोते-बिलोते उसकी हथेलियों में स्थायी ठेकें और सूजन बैठ चुकी थी।''2

इसके साथ ही पंजाब में कद्दू की सब्ज़ी पंजाब के कुछ प्रांतों में खाई जाती है। कद्दू से विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। कद्दू का हलवा यहाँ के कुछ लोगों का स्वादिष्ट व्यंजन है। उपन्यास में परमजीत की माँ भी कद्दू बनाती है।

''उसकी माँ कई तरह से कद्दू बनाती थी। वह कद्दू की तीखी तरकारी भी बनाती थी और मीठी भी। उनके घर कद्दू के कौफ्ते और पकोड़े बनते थे। उसकी माँ को कद्दू का स्वादिष्ट हलवा भी बनाना आता था।''3

पंजाब के लोगों के रखे जाने वाले नामों पर यदि ध्यान दिया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही नाम लड़के और लड़की दोनों के लिए रखा जा सकता है उदाहरण के रूप में ''कमल'' लड़के और लड़की दोनों का नाम हो सकता है इस उपन्यास के नायक का नाम परमजीत है जो किसी लड़की का नाम भी हो सकता है।

लड़के और लड़की के नाम में समानता का यह भाव इस बात को स्पष्ट करता हैं आरम्भ से ही पंजाब जैसे क्षेत्र में समानता की भावना देखने को मिलती है।

पंजाब के लोगों के पहनावे की यदि बात की जाए तो यहाँ के पुरुष लट्ठे की सलवार या तहमद, कमीज़, सिर पर पगड़ी या साफा पहनते हैं। स्त्रियाँ साधारण सलवार कमीज़ और दुपट्टा ओढ़ती हैं। पंजाब की पटियाला सलवार विश्वभर में प्रसिद्ध है। पंजाबी पहनावा विश्व के अन्य लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित करता है।

''बेघर'' उपन्यास में परमजीत की माँ भी सलवार, कमीज़ और दुपट्टा लेती थी।

''वह अक्सर सलवार-कमीज़ पहनती थी, जिनमें उसके दुबले हिस्से और दुबले और मोटे हिस्से और मोटे लगते।''4

अत: पंजाब की संस्कृति विश्वभर में सबसे प्रसिद्ध संस्कृति मानी जाती है। यह राज्य अपनी भाषा, खान-पान के अनोखे अन्दाज एवं अपनी रीति-रिवाज़ों के कारण तथा अपनी अलग संस्कृति के नाम से जाना जाता है। यह बड़े दुख की बात है कि वर्तमान समय में पंजाब में निरन्तर बढ़ती जा रही बेरोज़गारी एवं नशाखोरी पंजाब क्षेत्र को अवनति की ओर धकेल रही हैं। पंजाब का अधिकतर युवा वर्ग पंजाब छोड़कर अधिक धन कमाने की लालसा में दूसरे देशों में जाकर बस गया हैं। ममता कालिया की कहानी 'परदेस' पंजाब की संस्कृति, विदेशों में रहने वाले पंजाब की युवा पीढ़ी की कठिनाईया, पंजाब के वृद्धों द्वारा बाहरी देशों में जाकर भी

अपनी संस्कृति को नहीं भूलना इन बातों को दर्शाता है कि पंजाबी चाहे विश्व के किसी भी कोने में क्यों न रहें वह सदैव अपनी संस्कृति से जुड़े रहेंगे। वर्तमान काल में अपने देश से बाहर किसी और देश में जाना काफी प्रचलन में है। इसके कई कारण हैं जैसे पढ़ाई करने, रोज़गार के लिए आदि। कुछ आर्थिक कारणों से जाते है तो कुछ शौकिया तौर से भी जाते हैं। पंजाब जैसे कृषि-प्रधान राज्य में आर्थिक संकट से जूझते हुए लोगों की संख्या हालाँकि कम है, फिर भी विदेशों में जाने की प्रथा पहले से ही विद्यमान है। जिन लोगों के पास पढ़ाई और रोज़गार के साधन उपलब्ध हैं, वे भी देखा देखी में विदेशों में जाते है। कुछ इसे आधुनिक और परिमर्जित सोच मानते हैं, इसलिए विदेश जाने की होड़ लगी है। कभी-कभी तो बिना बताए ही यह लोग बाहरी देशों में भाग जाया करते हैं। "परदेश" कहानी की यह पंक्तियाँ -"पटेल चैक से कोट लखपत तक की थोड़ी सी दूरी है। इतने फासले में ही तेरह बच्चे लापता थे। सबकी माँ और बहने दोपहर भर आँखें दरवाज़े पर टिकाये रहती।"5 इस बात को स्पष्ट करती हैं कि पंजाब के अधिकतर युवा बाहर की ओर भाग रहें हैं जिसके कारण परिवारजन उनकी चिंता में डूबे रहते हैं।

कहानी में टूटू नामक युवक भी इसी तरह भागा था। और पूरा परिवार शोक में डूब गया था। अपने परिवार का कोई सदस्य यदि बाहर जाकर काम करने लगे तो पंजाबी लोगों के लिए यह गर्व की बात होती है। टूटू द्वारा भेजी गई चिट्ठी में उसकी खुशी झलकती है। उसने लिखा था-

"साल भर में काम कर पैसे जोड़ लूँ, फिर भाई जी, तुम्हें मैं अपने पास बुला लूगाँ।"6 यह सुनकर टूटू की बेबे फूले न समाई थी और खुशी से झूमकर कहने लगी थी-हाए नी मैं सदके जाँवा।"

ममता कालिया ने परदेश कहानी के माध्यम से यह भी बताने का प्रयास किया है कि भारत से विदेशों में काम करने के लिए गए हुए लोग सरलता से अपने देश को नहीं भुला पाते। वहाँ इतनी सुविधाओं के होते हुए भी अधिकतर लोग अपने देश को याद करते हैं। उनकी यह भावना राष्ट्र प्रेम को चित्रित करती है। टूटू और उसके दोस्त भूषी की अम्मा जब विदेश जाती हैं तो वहाँ पहुँचकर सोचती हैं- "अपना वतन, अपनी ज़मीन छोड़ने का क्या मतलब होता है। यहाँ उनके लड़के गोरे लड़कों से दुगना काम करते हैं और वेतन आधा पौना पाते हैं।"7 विदेशों में भारतीयों की इसी स्थिति के दर्शन भी ममता कालिया ने अपनी कहानियों के माध्यम से करवाए हैं।

पंजाब में रहने वाले हिन्दू लोगों में व्रत रखने की परम्परा निरन्तर चली आ रही है। इंग्लैंड में गई हुई बेबे बिल्डिंग की कुछ औरतों को व्रत के लिए चुनती हैं परन्तु उन औरतों का कहना था -"हमने ये सब ढकोसले बन्द कर दिए हैं" परन्तु बेबे उनकी परवाह न करते हुए परदेश में भी करवाचैथ का व्रत रखते हुए अपनी संस्कृति का पालन करती है।

निष्कर्ष - अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ममता कालिया का कथा साहित्य अत्यन्त विस्तृत है जिसमें अलग-अलग समुदायों, समाज या लोकसंस्कृति के दर्शन होते है। अपने कथा साहित्य में भले ही उन्होने पंजाब के छोटे अंश को केन्द्र में रखकर उपन्यास या कहानियाँ लिखी फिर भी पंजाबी संस्कृति, पंजाबी लोगों की आर्थिक स्थिति, उनकी मानसिक स्थिति तथा समय के साथ आने वाले परिवर्तनों को उजागर करने में वह सफल होती हुई प्रतीत होती हैं।

000

संदर्भ- 1गीता पैन्तल, पंजाब की संगीत परम्परा (नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स, 2011) पृ. 3, 2ममता कालिया, बेघर (दिल्ली: वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण, 2021) पृ. 21, 3ममता कालिया, बेघर (दिल्ली: वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण, 2021) पृ.22, 4ममता कालिया, बेघर (दिल्ली: वाणी प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 2021) पृ.23, 5ममता कालिया, मुखौटा (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2005, दूसरा संस्करण) पृ.28, 6ममता कालिया, मुखौटा (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2005, दूसरा संस्करण) पृ.29, 7वही, पृ. 29

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

(शोध आलेख)

हरिसुमन बिष्ट के उपन्यास 'आछरी-माछरी' में चित्रित पहाड़ी जीवन

शोध लेखक : श्वेता रानी
शोधार्थी कश्मीर विश्वविद्यालय

साहित्य में समाज की यथार्थ और वास्तविक स्थिति का चित्रण होता है। समाज में प्रचलित सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों के साथ-साथ तत्कालीन रीति-रिवाज़, आचार-विचार, रूढ़ियाँ- परम्पराएँ आदि भी स्वत: ही साहित्य में अभिव्यक्ति पाती हैं। हरिसुमन बिष्ट का जन्म 1 जनवरी सन 1958 को उतराखंड के गाँव कुन्हील, अल्मोड़ा में हुआ। पहाड़ी पृष्टभूमि में जन्म लेने के कारण ही पहाड़ी परिवेश के प्रति इनका विशेष आकर्षण रहा, जिसका जीवंत चित्र इन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यासों में ममता(1980), आसमान झुक रहा है(1990), होना पहाड़(1999), आछरी-माछरी(2006,2012), बसेरा(2011), भीतर कईं एकांत(2017), बतीस राग गाओ मोला(2021), अपने अरण्य की ओर(2021) आदि प्रमुख हैं 'आछरी- माछरी' उपन्यास में बिष्ट जी ने पहाड़ों पर बसने वाली साधारण जनता की पीड़ा, अन्धविश्वास, आर्थिक स्थिति, अशिक्षा, नारी-शोषण, राजनीति, पुरुष-प्रधान समाज, जातिवाद, आदि का यथार्थ वर्णन किया है।

'आछरी- माछरी' उपन्यास पहाड़ी जीवन एवं मनुष्य के खोखले संबंधों का यथार्थ चित्रण करता है। इसके केंद्र में आछरी नामक एक निम्नवर्गीय भोटिया जाति की स्वाभिमानी एवं मेहनती लड़की की कहानी है, जिसके माध्यम से लेखक ने पहाड़ में रहने वाली अशिक्षित नारियों के संघर्षपूर्ण जीवन से पाठकों को अवगत कराया है। उपन्यास के आरम्भ में ही मोंन्पाओं के समाज में प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों मान्यताओं का वर्णन देखने को मिलता है। आछरी के पिता वीर सिंह प्रत्येक वर्ष अपने परिवार के साथ भोटिया महाल के एक छोटे से गावं से बुग्यालों की ओर भेड़-बकरियाँ लेकर जाते थे। वहाँ प्रस्थान करने से पूर्व वह शकुन विचार का अनुष्ठान करते थे, जिसमें उनको एक भेड़ की बलि देनी होती थी। वह बलि के लिए आछरी से भेड़ क चयन करवाते है, किन्तु उसकी माँ का मानना है कि लड़की के हाथों भेड़ का चयन कराना

श्वेता रानी
शोधार्थी कश्मीर विश्वविद्यालय,
हज़रतबल, श्रीनगर, 190006
मोबाइल- 9906234327
ईमेल- schwetarani@gmail.com

अपशकुन होगा। "भेड़ को बलि वेदी पर लाकर स्वच्छ जल से स्नान करवाया। पूजा-अर्चना के बाद म्यान से खुकरी निकाली एक ही झटके में वीरसिंह ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया था। फिर उसका पेट चीरा और शकुन विचार करने लगा।"1

प्रस्तुत उपन्यास के अंतर्गत पुरुष-प्रधान समाज में नारी की दयनीय स्थिति को दर्शाया गया है। डूंगरपुर नामक पहाड़ी गावं का प्रधान तुलसा पंत विवाहित होते हुए भी आछरी को अपनी वासना का शिकार बनाता है। आछरी अपने भोलेपन के कारण उसकी बातों में आ जाती है और वह कुंवारी ही गर्भवती हो जाती है, जब इस बात का पता उसके पिता वीरसिंह को चलता है तो वह अत्यंत क्रोधित होता है। उसके माता-पिता उसे बुग्याल के तम्बू में एक पहरुए कुत्ते और कुछ भेड़-बकरियों के साथ अकेले छोड़कर वापिस भोटिया महाल लौट जाते हैं। माँ के लाख आग्रह करने पर भी वह उसे अपने साथ वापिस नहीं ले जाते। आछरी को कभी यह याद नहीं आता कि पिता ने कभी उसके साथ प्रेम से बातचीत भी की हो लेखक के शब्दों में, "बेटी तक का संबोधन उन्होंने आछरी के जीते जी रामगंगा के किनारे बने शमशान पर रख दिया था।"2 परस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं थी। वह जानती थी कि यह उसके जीवन की सबसे बड़ी भूल थी, लेकिन यदि वह अपनी इस भूल का समाधान ढूँढ़ती तो गर्भ में पल रहे नन्हे जीवन का अंत हो जाता। विपरीत परस्थितियों में भी वह हिम्मत नहीं हारती और अवैध तरीके से माँ बनकर भी अपने पुत्र मोहना का त्याग नहीं करती।

आछरी मोहना के जन्म के पश्चात् डूंगरपुर गाँव में रहने लगती है। वहाँ उसकी भेंट तुलसा पन्त से होती है, वह इस बात से भली भांति परिचित है कि मोहना उसी का पुत्र है, परन्तु समाज के भय से वह उसे अपनाने से इन्कार कर देता है और आछरी से इस बात का सबूत माँगता है। उत्तर देते हुए वह कहती है, " औरत के पास कैसा सबूत हो सकता है भला। वह तो बहती नदी है, कोई भी मर्द आए और गोता लगाकर चला जाए। पर एक बात पूछूं तुलसा पन्त नौं माह जिसको मैं पेट में रखकर बोझ बनाकर ढोती रही वह क्या सबूत नहीं है?"3तुलसा पन्त के अमानवीय व्यव्हार से वह पूरी तरह टूट जाती है। उसका सम्पूर्ण जीवन कष्टकारी बन जाता है और वह स्वयं को अकेला अनुभव करती है। वह अकेले ही मोहना भरण-पोषण करती है, उसे एक अच्छा इन्सान बनती है।

उपन्यास में वर्णित पहाड़ी लोग अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में बहुत व्यस्त रहते थे, उनका पूरा दिन घरेलू काम करने में निकल जाता था। फिर भी उन्हें अनेक प्रकार की आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। आछरी के माता-पिता भेड़- बकरियों पालकर, हींग, गंदरैणी आदि बेचकर अपना खर्चा चलते थे, यही उनके जीवन का आधार था। वीरसिंह अपनी व्यस्तता को स्पष्ट करते हुए कहता है, "मुझसे अच्छे तो पहरुए हैं जो दिन भर आँखे मूंदे पड़े रहते हैं। शाम ढलते ही चोकन्ना होकर अपना कार्य करते हैं और मैं दिनभर बुग्याल नापता हूँ और रात में दस मील चली गई दूरी का हिसाब लगता रहता हूँ।"4 माता- पिता द्वारा त्याग देने के बाद आछरी उनके द्वारा छोड़ी गई भेड़-बकरियों के सहारे जीवन यापन शुरू करती है, वह डूंगरपुर गावं में जाकर खेत खरीदती है, धान की खेती करती है तथा मिर्च की फसल उगाती है। वह अपने पुत्र की पढाई के लिए भेड़ों को बेचने का सोचती है पर मोहना उसे रोकते हुए कहता है " तुम भेड़े बेचोगी माँ ! नहीं, माँ नहीं, भेड़ एक-एक करके बेच दोगी तो हम खाएँगे कहाँ से? यह तो हमारे प्राण हैं, जीवन हैं। क्या हम अपने खून- मॉस को बेच देंगे।"5 गावं की अन्य स्त्रियाँ घास काटने जंगल में जाती हैं, जहाँ अनेक प्रकार के जंगली जानवरों का भय रहता है। आछरी के पहरुए कुत्ते को जंगल में बाघ खा लेता है। मोहना भी एक बार बाघ के हमले का शिकार हो जाता है और उसकी गाय चाँदनी भी मारी जाती है। गावं के अन्य लोग ठाकुर और ब्राह्मणों के खेतों में पूरा दिन काम करके अपनी रोज़ी-रोटी जुटाते हैं। गोधना कहता है, "हम तो जीवन भर इस गावं के बीठों की खिदमत ही करते रहे जूठन खाने के सिवाय इन्होंने हमें दिया ही क्या? " 6 जुनजुनाली आर्थिक तंगी के कारण गावं में रात को महफ़िल लगाती है, जिसमे वह नाच-गाना करती है। उसके साथ उसके भाई लीलू और गेलु तबला और ढोलक बजाते हैं।

शिक्षा की समस्या इस पहाड़ पर मुख्य रूप से देखने को मिलती है। यहाँ पहले भी एक स्कूल चलता था जो अभी बंद हो चुका था। स्कूल बंद होने का कारण यह था, कि जो बच्चा अधिक पढ़-लिख जाता वह गावं छोड़कर शहर पलायन कर जाता था। गोधना जो हुड़किया(नाचने-गाने वाला) जाति से संबंध रखता था उसका पुत्र शिक्षक बन्ने के उपरांत अपनी पत्नी और बच्चों के साथ दूसरे गावं में स्थायी तौर से रहने लगता है। पुत्र के घर छोड़ने का गोधना को बहुत दु:ख है। वह कहता है, "हमें तो किसी को पढ़ा-लिखा कहने से भी डर लगता है। एक बेटा है उसे पढ़ाया-लिखाया वह भी हाथ से चला गया"7 गावं में स्कूल ना होने का एक अन्य कारण जातिवाद भी था। गोधना आछरी को बताता है, कि गावं में रहने वाले उच्च जाति के लोगों ने अपने बच्चों को स्कूल भेजना इसलिए भी बंद कर दिया था, क्योंकि वह हुड़किया (नीच-जाति) के मास्टर से अपने बच्चों को नहीं पढ़ाना चाहते थे। आछरी के गावं जाने के पश्चात् स्कूल दोबारा खुलता है। वह उसमें मोहना का दाखिला करवाती है, लेकिन यह स्कूल सिर्फ़ पाँचवी कक्षा तक ही था। उसके बाद की पढ़ाई के लिए शहर जाना अनिवार्य था। माँ की आर्थिक तंगी को देखते हुए मोहना आगे की पढ़ाई का सपना छोड़ देता है। आछरी भी इससे संतुष्ट हो जाती है, "भेड़-बकरियों का व्यापार करे तो उसके लिए यह काम कोई छोटा नहीं है। यह कम है कि पढ़-लिख लिया, अब उसे कोई अनपढ़ तो नहीं कहेगा।"8 वह स्वयं भी अनपढ़ है, क्योंकि भोटिया महाल में शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी उसकी माँ भी अनपढ़ थी, जिस कारण रामनगर के बनिए हिसाब किताब में हेर-फेर करते थे। तुलसा पन्त की पत्नी चन्द्रा भी अनपढ़ है, इसी कारण उसमें आत्मविश्वास की कमी है, कि वह गावं की प्रधान नहीं बन

सकती। उसकी दोनों बहुएँ शिक्षित होते हुए भी केवल घर- ग्रहस्थी का कार्य- भार ही सँभालती हैं।

तुलसा पन्त जब प्रथम बार आछरी को गावं में देखता है, तो वह उसके साथ शादी करके उसको अपने घर में लाने का मन बना लेता है। उसे दूसरा विवाह करने में कोई बुराई प्रतीत नहीं होती। उसका मित्र जयदंत पन्त उससे पूछता है कि क्या वह सचमुच दूसरा विवाह करना चाहता है? वह उत्तर देते हुए कहता है "क्यों नहीं अवश्य इस गावं के हर परिवार को देखो, दो- तीन विवाह किए है हर मर्द ने यदि में ऐसा करूँ तो इसमें नया क्या है?"9 जब चंद्रा को इस बात का पता चलता है, तो दोनों के संबंधों में दरार आने लगती है। वह पति के दुर्व्यवहार को सहन करती है। उसके शब्दों में "मैं एक औरत हूँ इंसान हूँ घर होता इंसान का हैवान का नहीं।.... जिसे पराये घर की चुपड़ी रोटी का स्वाद और भू मारती गुदड़ी की गरमाइश की आदत पड़ जाती है, वह अपने घर में कैसे रह सकता है।"10

इस उपन्यास में भ्रष्टाचार भी पनपता हुआ दिखाई देता है। गावं का प्रधान तुलसा पन्त गावं की अनेक योजनाओं के लिए सरकार द्वारा दिए गए रुपयों का दुरुपयोग करता है। वह जल- विभाग की योजना का पैसा स्वयं खड़प लेता है, इंचभर मोटे नलों की अपेक्षा अदा इंच के नल लगवाता है। गावं के लोग जब उससे शिकायत करते हैं तो वह कहता है "इंच भर के नल लगवाता तो इंजीनियर और वी. डी. ओ. को सुविधा शुल्क कहाँ से देता। अपनी गाँठ से।"11 जयदंत पन्त भी भ्रष्टाचारी है पूरे गावं के लोग उसके इस चरित्र के बारे में भली-भांति जानते हैं, फिर भी उनका कहना है "जयदंत बेईमानी करेगा भी तो वह कोई नया काम तो कर नहीं रहा। पूरा देश बेईमानी कर रहा है, जिस देश के नेता, आफ़िसर बेईमान हो वहाँ दो पैसे की हेर-फेर जयदत भी कर ले तो क्या फ़र्क पड़ेगा।"12 जयदत आछरी की मिर्च की फ़सल कम दामों पर खरीदना चाहता है, किन्तु वह इस अन्याय का विरोध करती है।

उपन्यास के अंत में उपन्यासकार ने पहाड़ में उत्पन्न होने वाली राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ वर्णन किया है। तुलसा पन्त गावं में प्रधान के पद पर नियुक्त है, वर्तमान में नए प्रधान की नियुक्ति के लिए चुनाव हो रहें हैं, जिसमे केवल महिला आरक्षित सीट है। गाँव में वोट का आधार जाति है, "पूरी पन्त बिरादरी में चार सौ वोट हैं अकेले बीस वोट जयदत के घर में हैं।"13 प्रधान चाहता है कि उसकी परिवार की महिलाओं में से ही प्रधान का चयन होना चाहिए। किन्तु उसकी पत्नी की इच्छा है, कि आछरी को ही गावं का आगामी प्रधान बनना चाहिए। तुलसा पन्त इस चुनाव में जीतने हेतु अनेक प्रकार के यत्न करता है। वह अपने घर पर दावत रखता है, जिसमें वह पटवारी से लेकर ब्लाक प्रमुख के आला अफसरों को बुलाता है। दावत में सभी को भुटुवा(बकरी का मास) खिलाया जाता है तथा शराब भी पिलाई जाती है ताकि सभी उसके पक्ष में हो जाएँ। दूसरी ओर आछरी दृढ़ संकल्पी है। पहले तो वह डरती है कि चुनाव में भाग लेने का नाम सुनकर मोहना उससे रुष्ट ना हो जाए, किन्तु बाद में वह अपना लक्ष्य निश्चित कर लेती है लेखक के शब्दों में "आछरी ने भी गहरे मंथन के बाद ठान लिया कि वह जिस रास्ते को चुन रही है, वह उसके लिए अनजान जरूर है, मुश्किल नहीं।"14 अंत में उसकी जीत होती है। उसके प्रधान बन्ने का समाचार सुनकर गावं के सभी लोग खुश होते है, परन्तु तुलसा पन्त और जयदंत पन्त उसकी सफलता से बहुत निराश हो जाते हैं। अत: वह प्रधान बनकर अपने साथ हुए अत्याचार का बदला तुलसा पन्त से लेती है।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि यह उपन्यास पहाड़ी जीवन को पूरी यथार्थता के साथ हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। जहाँ एक ओर लेखक ने हमें पहाड़ में व्याप्त विसंगतियों, कुरीतियों, रूढ़ियों समस्याओं आदि से अवगत करवाया है वहीं उनका डटकर सामना करने वाले चरित्रों की सृष्टि कर उनका समाधान भी सुझाया है। उपन्यास की नायिका एक ऐसी पहाड़ी स्त्री है, जो पुरानी परंपराओं को नकारते हुए जीवन के नए मूल्य गढ़ती है। लेखक ने उसे अबला नारी नहीं बल्कि सशक्त, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक संघर्ष करती हुई स्त्री के रूप में दिखाया है। उपन्यास के अंत में वह अपने पुत्र का विवाह एक नीच जाति की नाचनेवाली लड़की के साथ करवाकर नए मूल्य स्थापित करती है। साथ ही हमें पता चलता है कि पहाड़ में सामान्य-जन का जीवन कठिनाइयों से परिपूर्ण है, यदि कोई व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करने का इच्छुक है तो विद्यालयों, महाविद्यालयों से पहाड़ों की दूरी और आर्थिक विवशता उनके सपनों के आड़े आ जाती है। पहाडों में जातिवाद, जमींदारी प्रथा, विवाहेतर संबंध, भ्रष्टाचार, राजनीतिक समस्याओं आदि का बोलबाला स्पष्टता इस उपन्यास में देखा जा सकता है।

000

संदर्भ- 1. हरिसुमन बिष्ट, आछरी-माछरी,भावना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण द्वितीय- 2013, पृ.9, 2.वहीं पृष्ठ 16, 3. वहीं पृष्ठ 26, 4. वहीं पृष्ठ11, 5. वहीं पृष्ठ 39, 6. वहीं पृष्ठ 119, 7. वहीं पृष्ठ 116, 8. वहीं पृष्ठ 119, 9. वहीं पृष्ठ 32, 10. वहीं पृष्ठ 198, 12. वहीं पृष्ठ 77, 11. वहीं पृष्ठ 125, 13. वहीं पृष्ठ 79, 14. वहीं पृष्ठ 132

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

(शोध आलेख)

हिंदी साहित्य में मानवीय मूल्य

शोध लेखक : डॉ. गजेंद्र सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

'साहितस्य भाव साहित्य' ही हिंदी साहित्य का भी मूल है। हिंदी साहित्य सभी के हित का भाव लेकर मानवीय मूल्य को स्थापित करता है। 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास करता है', जिससे समाज में मानवीय मूल्य सुदृढ़ता से स्थापित होते हैं। "प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है" श्रेष्ठ साहित्य वही होता है जो भविष्य द्रष्टा होने के साथ ही साथ समाज का दिशा निर्देशक भी हो, जो समाज में होने वाले हर बदलाव को न केवल अभिव्यक्त करे, अपितु उचित दिशा भी प्रदान करे। साहित्य की उपादेयता इस बात पर निर्भर है कि वह समाज के लिए कितना हितकारी है। साहित्यकार समाज के मूल्यों, विचारों एवं परंपराओं को रचनात्मकता के माध्यम से व्यक्त करता है। समाज में निहित जीवन मूल्यों से समाज को व्यापक रूप से प्रेरणा मिलती है। साहित्य ही वह भाव भूमि है जिससे मानव मूल्यपरक सिद्धांतों को स्थापित कर अपना जीवन सार्थक बनाता है।

साहित्य मानवीय संवेदनाओं का इतिहास है। इस संदर्भ में धर्मवीर भारती का कथन महत्वपूर्ण है "साहित्यकार का यह नया दायित्व इतिहास निर्माण का दायित्व है मानव संस्कृति के मूल्यात्मक विकास का दायित्व है और सामान्य व्यक्ति के दायित्व से कई गुना अधिक जटिल दायित्व है, क्योंकि साहित्यकार की पक्षधरता और संघर्ष विवेक का स्तर बहुत गहरा है। उसे मानव अस्तित्व की गहन परतों में उतरकर उसकी रक्तशिराओं में चलने वाले भय और साहस के संघर्ष में भय को पराजित करना है, उसके छोटे-छोटे क्षण में जीवन प्रक्रिया को उद्बुद्ध करना है, उसकी भावनाओं के सूक्ष्म से सूक्ष्म तंतु में स्फुरित होने वाले मानवीय मूल्य की विशदता को पहचानना है।" इस प्रकार जीवन मूल्य और साहित्य का सापेक्ष संबंध होता है। आदिकाल से लेकर समकालीन साहित्य तक प्रत्येक साहित्य जीवन मूल्यों को उठाता हुआ, उनकी अभिव्यक्ति करता रहा है। हिंदी साहित्य लोकमंगल का काव्य है, जिसका लक्ष्य लोक कल्याणकारी तत्वों का समावेश कर यथार्थ को प्रस्तुत करने के साथ ही समाज को एक उचित दिशा देना है। लोक मंगल करना ही तुलसी जैसे महान कवि भी अपने साहित्य का मुख्य ध्येय बताते हैं। तुलसी ने राम का चित्रण करके समन्वय भाव और लोकमंगल को निरूपण करके सार्वभौमिक जीवन मूल्यों को स्थापित किया। द्विवेदी युग में आदर्शवाद और नैतिकता को कविता की प्रमुख विशेषता माना। मैथिलीशरण गुप्त के अनेक ग्रंथों में आए हुए कवि और काव्य के महत्व को प्रगट करने वाले उद्गार इस बात के प्रमाण हैं। वे कहते हैं -

"केवल मनोरंजन ना कवि का कर्म होना चाहिए/ उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

हिंदी साहित्य अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है, निराशा से आशा की तरफ जाते हुए

डॉ. गजेंद्र सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
लक्सर, हरिद्वार, उत्तराखंड

वह मनुष्य में न्याय, ईमानदारी, शांति, प्रेम, अहिंसा आदि मानवीय मूल्यों का विकास करता है। यह हम जयशंकर प्रसाद की कामायनी में भी देखते हैं वह मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास का ही समर्थन करती है। कामायनी निराशा से आशा की तरफ ले जाते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है। कामायनी का प्रत्येक सर्ग मानव को और बेहतर मानव बनाने में सहायता करता हुआ मानवतावाद की प्रतिष्ठा करता है। चिंता सर्ग से आनंद सर्ग तक का सफर अद्भुत है। कामायनी की शुरूआत जहाँ – "हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, / बैठ शिला की शीतल छाँह, एक पुरुष भीगे नयनों से/ देख रहा था प्रलय प्रवाह!" / से होता है वही इसका अंत मानवीय समरसता को स्थापित करते हुए और मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करते हुए होता है –

"समरस थे जड़ या चेतन /सुंदर साकार बना था /चेतनता एक विलसती /आनंद अखंड घना था।"

प्रसाद की दृष्टि मानवतावादी दृष्टिकोण से रचनात्मकता करती है, विश्व बंधुत्व के भाव से अभिसंचित है। मानवतावाद की प्रतिष्ठा करता उदाहरण देखिए – "सब भेदभाव भुलवाकर, /दुख सुख को दृश्य बनाता, /मानव कह रे ! यह मैं हूं, /यह विश्व नीड़ बन जाता।।"

निराला जिजीविषा की बात करते हुए मानव जीवन को सशक्त बनाने वाले जीवन मूल्य को स्थापित करते हैं। निराला मानवतावादी विचारधारा के कवि हैं। राम की शक्ति पूजा इसका एक सशक्त उदाहरण है। "वह एक मन था राम का जो कभी ना थका" पंक्तियां हताश, निराश मानव के मन में ऊर्जा का संचार करती हैं। तत्कालीन परिस्थितियों से लड़ने की ताकत देती है। "होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन" के साथ ही राम साधना में सफल होते हैं। सेवा भाव को निराला 'बादल राग' में प्रस्तुत करते हैं।

जीवन मूल्य साहित्य का निकस माना गया है मानवीय मूल्यों में जीवन की सार्वभौमिकता, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति और प्रयोजनीयता को समाहित किया जाता है साहित्य में सौंदर्य, शिवत्व और सत्य के रूप में इनकी अभिव्यक्ति संभव है। हिंदी साहित्य के प्रत्येक युग मूल्यों के स्थापन के हक में खड़ा है। मूल्य के विघटन के परिणामों को अभिव्यक्त करते हुए नए मूल्यों के स्थापन एवं प्रयोजनों को समाज एवं व्यक्ति सापेक्ष बनाने के प्रयास करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है - "प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का सिंचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"

साहित्य का विषय है मानव और उसका गतिशील एवं परिवर्तनशील जीवन। जीवन की परिवर्तनशील परिस्थितियों से नए परिवर्तन का आगाज होता है साथ ही नए जीवन मूल्यों के निर्धारण की आवश्यकता है। आधुनिक साहित्य नए जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति ही नहीं करता वरन उनकी पुनर्व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। औद्योगिकरण, नगरीकरण के प्रभाव, विश्वयुद्ध की विभीषिका, पूंजीवाद का वर्चस्व, उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार ने एक नया परिपेक्ष मानव के समक्ष रखा। समकालीन कविता इसी भाव बोध की कविता है, समकालीन कविता सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों के मोहभंग से उपजी मूल्यहीनता को इंगित करती है। बदलते समय की नब्ज को टटोलते हुए साहित्य की विविध विधाएं सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना की वकालत करती हैं। साहित्यकार मूल्यों की आवश्यकता पर बल देता है क्योंकि समस्त मानव जाति का कल्याण इसमें निहित है, इसलिए वह मूल्य की स्थापना के प्रयास करता है। भूमंडलीकरण में विश्वग्राम की संकल्पना ने भारतीय संस्कृति और मूल्यों को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया है। भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम' की साधना से पोषित है। अंधा युग –

"युद्धओउपरांत / यह अंधा युग अवतरित हुआ /जिसमें परिस्थितियां, मनोवृतिया, नाना आत्माएं सब विकृत हैं/ है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की/ पर वह भी उलझी है दोनों के पक्षों में/ सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का।" / आलोक धन्वा परंपराओं को संजोते हुए अपनी रचनात्मकता में भारतीय संस्कृति की धरोहर को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं - "किसने बचाया मेरी आत्मा को /दो कौड़ी की मोमबत्तीयों की रोशनी ने/ २-४ उबले हुए आलू ने बचाया /सूखे पत्तों की आग /और मिट्टी के बर्तनों ने बचाया /पुआल के बिस्तर ने और /दादी के लिए रोटी पकाने का चिमटा लेकर /ईदगाह के मेले से लौट रहे नन्हे हामिद ने /और ६ दिसंबर के बाद फरवरी आते-आते जंगली बेर ने /इन सबने बचाया मेरी आत्मा को" हिंदी साहित्य के निबंधकार भारतीय संस्कृति, परंपरा, मूल्यों की पुरजोर वकालत करते हैं। उनका समर्थन करते हैं। एक लंबी फेहरिस्त निबंधकारों की है। जिन्होंने अपने निबंधों में लोक-मंगलकारी और आदर्श मूल्यों की स्थापना करते हैं और जनमानस को एक संदेश देते हैं इन मूल्यों के माध्यम से। हजारी प्रसाद द्वेदी, और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इसी लोकमंगलवादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते उदाहरण प्रस्तुत है जहां कविता और साहित्य को उच्च आदर्शों को अभिव्यक्त करने का माध्यम माना गया है – "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि में देखने का पक्षपाती हूं जो वागजाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखाप्रेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदु;खवाकतर और संवेदनशील ने बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"

"कविता ही मनुष्य को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है, जहां जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। उसकी अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागआत्मक संबंध की रक्षा का निर्वाह होता है।"

प्रेमचंद मूल्यों के विघटन एवं नवीन

मूल्यों के स्थापन का विवेचन भी साहित्य में करते हैं। उनके उपन्यास एवं कहानियों में यह विवेचन मुखरित होता है – "समाज शरीर है तथा साहित्य उसका मानसिक तत्व है। स्पष्टत: मन शरीर से अधिक शक्तिशाली है और वह अपनी इच्छानुसार शरीर को चला सकता है। अत: समाज का साहित्य पर प्रभाव स्वीकार करते हुए भी हमें साहित्य को ही अधिक शक्तिशाली स्वीकार करना पड़ेगा। प्रेमचंद साहित्य को सर्वशक्ति संपन्न स्वीकार करते हैं।"

प्रेमचंद साहित्य में मूल्यों की स्थापना करते हैं। विपरीत परिस्थितियों, संघर्षों से जूझता चरित्र मूल्यों को साथ लेकर चलता है। उनके आदर्शवादी चरित्र इसके सशक्त प्रमाण हैं। गोदान उपन्यास में मालती, मेहता के विवाह प्रस्ताव को समाज सेवा से सर्वोपरि नहीं मानती और उसे अस्वीकार कर देती है। अंतत: परोपकार, सेवा, त्याग जैसे शाश्वत मूल्यों की स्थापना करती है – "समाज के इस घोर पतन के काल में प्रेमचंद ने ही पहचाना था कि साहित्य के माध्यम से इस पतन के काल का उपचार हो सकता है ऐसी अवस्था में साहित्य की शक्ति को पहचानने तथा उसे समाज रूपी शरीर के मस्तिष्क के रूप में स्वीकार करने का श्रेय प्रेमचंद को ही दिया जा सकता है और इसी में प्रेमचंद की मौलिकता भी है।"

प्रसाद भारतीय संस्कृति को जितनी गहनता से अपने काव्य में चित्रित करते हैं उतनी ही गहराई उनके कथा साहित्य में भी है। पुरस्कार, ममता, आकाशदीप जैसी कई कहानियां इसका सशक्त प्रमाण हैं। भारतीय संस्कृति, औदात्यत्ता, मानव मूल्यों की स्थापना उनके प्रिय विषय रहे। जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी और प्रेमचंदोत्तर कथाकार किसी न किसी रूप में मूल्यों की स्थापना करते हैं। चित्रलेखा उपन्यास में पाप-पुण्य की व्याख्या करते हुए लेखक लिखते हैं – "मनुष्य न पाप करता है न पुण्य, वह केवल वह करता है, जो उसे करना पड़ता है - फिर पाप-पुण्य कैसा ? वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।"

कथा साहित्य का फलक विस्तृत होता है। उसका कलेवर पाठक पर अधिक प्रभाव छोड़ता है। समय-समय में घटित होते हुए परिवर्तनों को भी कथा साहित्य चित्रित करता है। समाज में आए विभिन्न स्तरों के परिवर्तनों, राजनीतिक हलचलों, सांस्कृतिक संदर्भों की नवीन व्याख्या को साहित्य में अभिव्यक्त किया गया। "निश्चय ही भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण ने जीवन के तमाम परंपरागत क्षेत्रों में हस्तक्षेप किया है। नैतिकता और मूल्य भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। दोनों प्रक्रियाओं के 'फिनामिना' ने सत्ता प्रतिष्ठान, आर्थिक प्रतिष्ठान और समाज के ताने-बाने को प्रभावित किया है, क्योंकि इन प्रक्रियाओं ने सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवहार का एक नया गति विज्ञान दिया है। व्यक्तिवाद, आत्मकेंद्रितवाद, महत्वाकांक्षावाद, उपभोक्तावाद, रफ्तारवाद, और सूचना का विस्फोट हुआ है। जाहिर है इन अधुनातन प्रतिमानों के परिपेक्ष में मानव संबंधों और नागरिक एवं राज्य संबंधों को देखा जाएगा। इसकी वजह यह है कि सार्वजनिक नैतिकता एवं दृष्टि बदल चुकी है। समाज के मुखर वर्गों और शासकों ने नवीनतम प्रतिमानों को स्वीकार कर लिया है। अत: प्रतिवाद, प्रतिरोध और बदलाव के मूल्य पृष्ठभूमि में गुम हो गए हैं। अब मंच पर उभरे हैं – बाजार, वस्तु और उपभोग के मूल्य। भोग्य नैतिकता और मूल्य के उदय का युग है, यानी विश्व स्तर पर नैतिकता एवं मूल्यों के महाभोज का आयोजन चल रहा है।"

अंतत: हिंदी साहित्य विस्तृत फलक का साहित्य है, जहां यथार्थ की अभिव्यक्ति आदर्श की स्थापना के लिए होती है। इस विस्तृत फलक के साहित्य में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस, विनय पत्रिका, सूरदास की सूरसागर, सूर सरावली, जायसी की पद्मावत, कबीर का बीजक, बिहारी की सतसई, मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती, जयशंकर प्रसाद की कामायनी, आँसू, निराला की राम की शक्तिपूजा, सरोज स्मृति, प्रेमचंद्र के गोदान, निर्मला, धर्मवीर भारती के गुनाहों का देवता, अंधायुग, कुंवर नारायण की आत्मजयी, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि के निबंधों एवं अज्ञेय, नागार्जुन, रामधारी सिंह दिनकर, मुक्तिबोध, धूमिल, शमशेर बहादुर सिंह आदि की कविताओं में देखी जा सकती है। हम पाते हैं कि हिंदी साहित्य में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति का फलक इतना विस्तृत एवं विविधता से पूर्ण होता हुआ समृद्ध हुआ है कि उसे कुछ शब्दों में समेटना असंभव है। महत्वपूर्ण व अद्वितीय तथ्य यह है कि हिंदी साहित्य में मानवीय मूल्यों का यह समावेश सफलता के साथ अभिव्यक्त हुआ है और विस्तृत समाज में अभिव्यक्ति पाते हुए, जनमानस के हृदय में अवस्थित हुआ है।

000

संदर्भ- अंजुम शर्मा : निबंध मान, साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है, पृष्ठ संख्या 44, धर्मवीर भारती : मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ संख्या 96, मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृष्ठ संख्या 171, जयशंकर प्रसाद : कामायनी, चिंता सर्ग, पृष्ठ संख्या 11, जयशंकर प्रसाद : कामायनी, आनंद सर्ग, पृष्ठ संख्या 126, जयशंकर प्रसाद : कामायनी, आनंद सर्ग, पृष्ठ संख्या 125, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : राग विराग, राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ संख्या 103, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला : राग विराग, राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ संख्या 104, आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 1, धर्मवीर भारती : अंधायुग, पृष्ठ संख्या 2, आलोक धन्वा : दुनिया रोज बनती है, कविता कोश, विनोद तिवारी : मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, आचार्य हजारी प्रसाद द्वेदी के श्रेष्ठ निबंध, पृष्ठ संख्या 89, आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'कविता क्या है' चिंतामणि भाग-एक, पृष्ठ संख्या 107, नरेंद्र कोहली : प्रेमचंद, पृष्ठ संख्या 164, नरेंद्र कोहली : प्रेमचंद, पृष्ठ संख्या 164, भगवती चरण वर्मा : चित्रलेखा, पृष्ठ संख्या 128, रामशरण जोशी : 21वीं सदी के संकट, पृष्ठ संख्या 70-71

(शोध आलेख)

भाषा का स्त्री पक्ष

शोध लेखक : मिन्नु जोसेफ
शोधार्थी हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय

शोध सारांश - समकालीन समय में अस्मिता का सवाल भाषा की मुख्य मुद्दा है। इक्किसवीं सदी में भाषा अस्मिता और स्वत्व बोध का प्रमुख माध्यम बनकर सामने आई। स्त्री भाषा वर्तमान समय की अवधारणा है। स्त्री भाषा का संबंध- स्त्री के विभिन्न परिवेशों, अनुभूतियों और संवेदनाओं से है। स्त्री भाषा स्त्री लेखन के सशक्त माध्यम है। स्त्री की अनुभूतियों को व्यक्त करने में तथाकथित प्रचलित भाषा की अक्षमता ने ही स्त्री भाषा को जन्म दिया। प्रस्तुत आलेख में भाषा में स्त्री, स्त्री भाषा के विभिन्न परिवेश, स्त्री भाषा की आवश्यकता और चुनौतियों को विषय बनाया गया है।

शोध आलेख - भाषा हमारे सामाजिक संपर्क की बुनियादी आधार है। भाषा सामूहिक विनिमय का माध्यम भी है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज के साथ जुड़ पाते हैं। भाषा के ज़रिए हम अपनी अनुभूतियों और अनुभवों को अभिव्यक्ति देते हैं। बचपन से लेकर भाषा हमारे जीवन के अंग बन जाती है। हम उसी में सोचते हैं, उसी में बोलते हैं। भाषा की यही शक्ति मनुष्य को अन्य जीव-जन्तुओं से अलगाते हैं। मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाने में भाषा का अतुल्य स्थान है। भाषा साहित्य का आधार है। भाषा के अन्तर्गत अस्मिता की पहचान समकालीन साहित्य की देन है। अस्मिता की भाषा का उद्देश्य अपनी स्वत्व बोध की समाजिक प्रस्तुतीकरण है।

वर्तमान समय में भाषा का सवाल साहित्यिक क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दे के रूप में खड़ा है। इक्कीसवीं सदी के साहित्य में अस्मिता, अस्तित्व तथा स्वत्व बोध के प्रश्न को नए तरीके से प्रस्तुत करने में भाषा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसलिए साहित्य के भाषिक विमर्श को नए ढंग से देखने की ज़रूरत है। साहित्य की केंद्रीयता नष्ट हुई तो विभिन्न उपकेंद्र जो हाशिए पर थे मुख्य धारा में अपना स्थान ढूँढ़ते रहे। विमर्श के साथ-साथ भाषा भी इक्कीसवीं सदी के मुख्य साहित्यिक मुद्दे के रूप में सामने आया। "गद्य के उदय के साथ ही भाषा की अस्मिता और भाषा के सवाल केंद्र में आने लगे।" यानि गद्य के आगमन के साथ भाषा में अस्मिता का सवाल भी पैदा हुआ। अस्मिता के इस सवाल ने बीसवीं सदी के अंत में तथा इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में एक प्रमुख मुद्दे के रूप में साहित्य में अपना स्थान संभाला। इससे पहले साहित्य में भाषा आधुनिक विचारों की वाहक और सामूहिक अवबोध का माध्यम भी थी। लेकिन इसमें व्यापक

मिन्नु जोसेफ
शोधार्थी हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय केरल- 682022
मोबाइल- 7356585177
ईमेल- minnuj96@gmail.com

जन समूह के अस्मिता का पहचान नाममात्र था। समकालीन समय में भाषा ने साहित्य के माध्यम से अस्मिता के पूरे परिवेश को एक पहचान दे दी है। भाषा पहले भी अपने विचारों से जनता को प्रभावित करती थी। लेकिन इक्कीसवीं सदी में भाषा एक अलग स्वरूप धारण करके सामने आयी। भाषा के प्रचलित रूपों से भिन्न होकर स्त्री भाषा अपनी खुद की विशेषताओं के साथ प्रकट हुई। अस्मिता विमर्श की दुनिया में भाषा का स्थान उल्लेखनीय है। भाषा और स्त्री भाषा के संबंध में अनामिका का विचार इस प्रकार है "भाषा का सार है संवाद, भाषण नहीं, दोनों होठों की अस्मिता बरकरार रखने का नाम है भाषा। भाषा अपनी पूर्णता में किसी तरह की एकांगिता बर्दाश्त नहीं करती, और इसीलिए हर तरह की अन्यायपूर्ण एकांगिता के स्वर विरोध का हथियार बनती है।" इससे पहले साहित्य की एक ही भाषा मानी जाती थी, वर्चस्व की भाषा। समाज में भाषा के वर्चस्व को टाला नहीं जा सकता। जैसे-जैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था समाज में जड़ पकड़ता गया, भाषा भी पितृसत्तात्मक मानसिकता की जड़ों के बीच फँसती गयी। इस प्रकार भाषा पितृसत्तात्मक मानसिकता के वर्चस्व का प्रमुख माध्यम बन पड़ी। धीरे-धीरे भाषा के द्वारा इस वर्चस्व ने अपना रंग दिखाना शुरु किया। वर्चस्ववादी भाषा कुछ आदर्शवादी शब्दों के सहारे स्त्री को मान मर्यादाओं की सीमा में बाँध कर रखती है तो कुछ अपमानजनक निर्मितियों के साथ जोड़कर उसे हीन से हीनतर चित्रित करते हैं। ये शब्द बार-बार इसलिए प्रयोग में लाते हैं ताकि स्त्री कभी भी पुरुष द्वारा निर्धारित दायरे के बाहर न जाए। वर्चस्ववादी भाषा ही यह तय करता है कि समाज में स्त्री की पहचान कैसी होनी चाहिए। स्त्री भाषा स्त्री को एक वैयक्तिक संपत्ति मानने की प्रणाली के विरुद्ध है।

स्त्री भाषा की पृष्ठभूमि में स्त्री अस्मिता की पहचान निहित है। "स्त्री भाषा का अध्ययन मूलत: भाषा के लैंगिक रूपों का अध्ययन है। यह मुख्य रूप से अर्थ की निर्मिति और शब्दों के उत्पादन से जुड़ा है। स्त्रीवादी भाषाशास्त्रियों ने स्त्री भाषा का जो विमर्श तैयार किया है उसकी शुरुआत प्रचलित भाषा के अध्ययन से ही हुई है।" स्त्री भाषा की हिन्दी आलोचक सुधा सिंह के अनुसार स्त्री भाषा का अध्ययन मुख्यधारा के भाषा शास्त्रियों द्वारा प्रचलित भाषा के पितृसत्तात्मक तत्वों का जान-बूझकर उपेक्षा के कारण हुआ। स्त्री भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं है बल्कि यह एक नई वैचारिकी है जो एक नई विश्व दृष्टि का निर्माण कर रही है। प्रचलित भाषा में स्त्री की अस्मिता, स्वत्व बोध तथा चेतना अभिव्यक्त करने के लिए सक्षम शब्द नहीं के बराबर है। पितृसत्तात्मक भाषा रूपों के माध्यम से जो साहित्य रचे जाते हैं वह स्त्री के अस्मिता बोध से बहुत दूर है। एकपक्षीय दृष्टि से निर्मित भाषा कभी भी स्त्री की नहीं हो सकती। स्त्री की भाषा उसकी अनुभूतियों से निर्भर होता है।

स्त्री भाषा के संबंध में चर्चा करते समय सबसे पहले यह सवाल उठता है कि स्त्री भाषा जैसी अलग भाषा की ज़रूरत है या नहीं? सदियों से समाज और भाषाई क्षेत्र से स्त्री का अस्तित्व गायब था। स्त्रीवादी भाषिक संकल्पना मुख्य धारा की भाषा से संतुष्ट नहीं है। क्यों कि मुख्य धारा की यह भाषा मात्र पितृसत्ता की देन है। एक पक्षीय समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाली भाषा होने के कारण हाशिएकृत समाज की अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा में शब्दों की कमी है। "मर्दों की भाषा अमूमन व्यापार-वाणिज्य की सरल-सपाट भाषा होती है।" पितृसत्तात्मक भाषिक संकल्पना स्त्री की अनुभूति पक्ष को व्यक्त करने में कमज़ोर है। इसलिए वर्तमान समय में स्त्री विमर्श की चिंतन प्रणालियाँ अपने लिए अलग भाषा की माँग करती हैं। स्त्री के अनुभव, अनुभूति और दैनिक कार्य के तमाम व्यवहार को अभिव्यक्ति देने की शक्ति मुख्य धारा की भाषा में गायब है। अगर हम प्राचीन साहित्य पर नज़र डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रचलित भाषिक संकल्पना में स्त्री पहले से ही उपेक्षित थी। संस्कृत नाटकों में स्त्रियाँ संस्कृत नहीं बोलती थीं बल्कि प्राकृत बोलती थीं। भाषिक संरचना के ये रूप पुरुषों ने बनाए हैं। इसलिए भाषा से स्त्री की अस्मिता छूट गई। सामाजिक श्रम विभाजन स्त्री और पुरुष के बीच होते हुए भी भाषा में लिंग का यह वर्चस्व कैसे बना इस पर सुधा सिंह कहती हैं "भाषा अगर सामाजिक निर्मिति है तो निर्माण के बाद भाषा पर वर्चस्व की लड़ाई भी हुई होगी। इसी कारण श्रम के क्षेत्र में कालों, मज़दूरों और स्त्रियों की मौजूदगी के बाद भी भाषा में इनकी उपस्थिति गौण है। इन्हें ऐसी भाषा का उपयोग करना पड़ता है जो अपनी नहीं है। स्त्रियाँ 'मालिक की भाषा' या 'पुरुष की भाषा' में बोलने के लिए बाध्य होती हैं।" स्त्री भाषा असल में भाषा की स्त्रीवादी दृष्टि का मूल्यांकन है। जिस भाषा ने स्त्री के साथ गैर बराबरी की रिश्ता रखा है उसके समक्ष स्त्री भाषा बराबरी की माँग करती है।

साहित्य ने जब भाषा के माध्यम से अस्मिता की तलाश को मुख्य मुद्दा स्वीकार किया तब स्त्रियों ने अपने स्वत्व बोध को अनुभूतियों के सहारे शब्दबद्ध करना चाहा तो स्त्रियों ने यह पाया कि उनके अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा में उपर्युक्त शब्द ही नहीं है। इन लेखिकाओं ने प्रचलित भाषा के वर्चस्ववादी बहुस्तरीय ढाँचे के स्थान पर समानता और स्वच्छन्दता की भावना पर आधरित स्त्री भाषा के प्रयोग पर बल दिया। अत: स्त्री भाषा एक उन्मुक्त अवस्था है। मातृत्व, लैंगिक कामना और आर्तव के संबंध में स्त्री का अनुभव और पुरुष की दृष्टि अलग-अलग है। पुरुष जहाँ आर्तव को पवित्र समझता है वहीं स्त्री के लिए यह उसकी अपनी अनुभूति है। छिन्नमस्ता में प्रिया कहती है "क्या महीने के महीने टाँगों के बीच रिसता हुआ खून मुझे अच्छा लगता है? और इसके कारण कैसी अजीब सी आत्मग्लानि, अपराधबोध, यन्त्रछणा?" आर्तव के बारे में हर स्त्री की अपनी दृष्टि है। स्त्री हर महीने आर्तव की पीड़ाओं से गुज़रती है, उसके लिए यह कोई सुखद अनुभूति नहीं है, शायद इसलिए पुरुष के समान आर्तव को वह पवित्र नहीं समझ पाती। इसी तरह लैंगिक रुचियों की प्रति भी स्त्री की अपनी दृष्टि है। स्त्री के द्वारा

लैंगिक कामनाओं की खुलकर अभिव्यक्ति से तथाकथित मुख्यधारा की भाषा में वह अपराधिनी बन जाती हैं। जो स्त्री अपनी लैंगिक रुचियों की अभिव्यक्ति करती है उसके लिए वर्चस्ववादी भाषा वेश्या या रंडी शब्दों का प्रयोग करते हैं। लेकिन स्त्री भाषा स्त्री की लैंगिक कामनाओं को प्रकट करने में हिचकते नहीं। छिन्नमस्ता की प्रिया कहती है "उस दिन मुझे न कोई ग्लानि महसूस हुई और न ही जुगत्सा। पुरुष का स्पर्श इतना मादक होता है, इतना सुखद, वह इतना कमनीय, इतना आकर्षक हो सकता है, मुझे पहली बार पता चला।" यह भी स्त्री की अभिव्यक्ति है। स्त्री भाषा इन्हीं अभिव्यक्तियों का माध्यम है। भाषा में हीन और कमज़ोर शब्दों के अलावा कुछ ऐसे शब्द भी है जो स्त्री वाचक है, जैसे गाली। गालियों का प्रयोग ज़्यादातर पुरुष ही करते हैं फिर भी सभी गालियाँ स्त्रियों को लेकर गढ़ी है। गाली तो पुरुष वर्ग द्वारा एक दूसरे को दी जाती हैं दरअसल वह गाली उसकी माँ और बहन के लिए होती है।

स्त्री भाषा कोई नवीन भाषा नहीं बल्कि एक नवीन भाषिक प्रणाली है जो स्त्री लेखन में पितृसत्तात्मकता का विरोध, स्वत्व बोध की भावना, स्त्री की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के ज़रिए संपन्न होता है। स्त्री भाषा वही है जो स्त्री लेखन, स्त्री चेतना तथा संवेदना से युक्त होता है। वर्तमान समय में स्त्री भाषा अपनी प्रौढ़ावस्था प्राप्त कर रही है। स्त्री भाषा की प्रमुख विशेषता है व्यवस्था विरोधी स्वर। स्त्री भाषा कम शब्दों में बहुत कहने की क्षमता रखती है। इस नई प्रणाली के चलते स्त्री भाषा एक प्रकार से नए इतिहास को रच रहे हैं। पाश्चात्य चिंतकों ने सन् सत्तर के आसपास ही स्त्री भाषा पर चर्चाएँ शुरू की थी। इसमें वर्जीनिया वुल्फ, डेल स्पेंडर,लूस एरिगरी, कोरा काप्लान, ऑटो येस्पर्सन, केट क्लार्क, सारा मिल, केट मिलर आदि का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी आलोचनाओं के माध्यम से स्त्री भाषा की अहमियत और विस्तृत आलोक को एक पहचान दे दिया। वर्जीनिया वुल्फ ने ही स्त्री भाषा के प्रश्न को साहित्य क्षेत्र में स्थान दिलाया था। उनके अनुसार मुख्यधारा की भाषा में जो पुरुष निर्मित वाक्य है, वह स्त्री लेखन के लिए बहुत भारी और औपचारिक है। इसी दौरान कई भाषा विद्वानों ने स्त्री भाषा को हीन और दुर्बल भाषा सिद्ध करके इसे भाषा के लिए एक खतरा माना। भाषा के समाजशास्त्रीय अध्येताओं तक ने भाषा के निर्माण में स्त्री की भूमिका को अस्वीकार किया। इन भाषा विदों ने यहाँ तक आरोपित किया कि स्त्री केवल पुरुष का अनुकरण करती है। इसलिए भाषा के स्तर पर स्त्री भाषा को कभी भी बराबरी का स्तर प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए स्त्री भी अपनी अनुभूतियों को वर्चस्ववादी भाषा रूप में अभिव्यक्त करने के लिए बाध्य हुई। लेकिन वर्तमान समय में लेखिकाओं ने प्रचलित भाषा रूप की कमियों को पहचानकर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए नए आलोक का निर्माण किया, जो लैंगिक पूर्वाग्रह और लैंगिक वर्चस्व के नियमों के बगैर स्वतंत्र सत्ता के निर्माण तथा बराबरी की माँग करते हैं।

स्त्री भाषा का पाठ परंपरागत रूढ़िगत परिवेशों से अलग स्त्री की अनुभूतियों, संवेदनाओं एवं सपनों से वास्ता रखते हैं। प्रचलित भाषा के साथ टकराव और बोलचाल की भाषा के साथ सहयोग से ही स्त्री भाषा का निर्माण संभव होगा। स्त्री भाषा में स्त्री को एक नए नज़रिए से दिखाया गया है। स्त्री भाषा के सामने अनेक चुनौतियाँ है। समाज और भाषा की वर्चस्ववादी दृष्टि पहली चुनौती है। इस स्वामित्व वाली मानसिकता के बीच रहकर लड़ना आसान नहीं है। फिर भी विभिन्न भाषाओं की लेखिकाएँ इसके प्रति कार्यरत हैं। कई विद्वान मुख्य धारा की भाषा को स्त्री भाषा से तुलना करके उसकी कमियों को ढूँढ़ निकालते हैं। यही स्त्री भाषा की सबसे बड़ी चुनौती है। दरसल इस तरह की तुलना बे बुनियाद है। अधूरे वाक्य खण्ड, व्याकरणिक नियमों को लाँघने की प्रवृत्ति तथा अन्तर्पाठ की दरार आदि स्त्री भाषा की सार तत्व है। इसलिए अनामिका के अनुसार स्त्री भाषा तो सिम्बॉलिक होती है। स्त्री भाषा की अपनी एक विशेष आलोक है। वर्ण, वर्ग और लिंग पर आधारित वर्चस्ववादी समाज के खिलाफ जिहाद ही स्त्री भाषा का लक्ष्य है। इसलिए स्त्री भाषा का मुख्य स्वर स्त्री को एक स्वायत्त सत्ता के रूप में देखने की दृष्टि पैदा करना है।

स्त्री की अपनी एक दुनिया है। जिस भाषा में स्त्री सोचती है, सपना देखती है, बातें करती है वह उसकी खुद की भाषा है। यह भाषा सालों से स्त्री समाज के बीच उपस्थित है। तथाकथित समाज के मान-मर्यादाओं ने इस भाषा रूप को मूर्खों की भाषा कहकर गहरी उपेक्षा के नज़रों से देखते थे। शायद इसलिए स्त्री भी अपनी भाषा को मूर्ख भाषा रूप समझकर अपने जैसियों के बीच समेट लिया। यदि स्त्री भाषा के प्रत्येक शब्द पर गौर किया जाए तो यह उजागर हो जाएगा कि स्त्री संघर्ष की व्याप्ति और गहराई कितनी है। इसके लिए ज़रूरी है कि प्रचलित पुंसवादी मापदंडों से एकदम अलग कसौटी पर स्त्री भाषा का विवेचना किया जाय। वास्तव में स्त्री भाषा अपनी गहरी संवेदना के सहारे पुंसवादी भाषा के वर्चस्व और भेदभाव भरी दृष्टि का पर्दाफाश कर रही है। स्त्री संघर्ष के बगैर स्त्री भाषा और स्त्री भाषा के बगैर स्त्री संघर्ष संभव नहीं है। इक्कीसवीं सदी में अस्मिता और स्वत्व बोध का सवाल ज़ोरों पर पड़ा तो स्त्रियों ने समझ लिया कि यह भाषा उसकी पहचान है, उसकी मुक्ति उसकी ही भाषा में संभव हो सकती है।

000

संदर्भ- आजकल, सं. राकेश रेणु आजकल, मार्च 2022 अंक:11, पृ.06, अनामिका, 2019, कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.29-30, सिंह, सुधा. ज्ञान का स्त्री पाठ, https://notnul.com/Pages/View-Note.aspx, पृ.137, अनामिका, 2019, कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.34, सिंह, सुधा. ज्ञान का स्त्री पाठ, https://notnul.com/Pages/View-Note.aspx, पृ.145, खेतान, प्रभा. 2009, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.43, खेतान, प्रभा. 2009, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.104

(शोध आलेख)

समकालीन काव्य में अभिव्यक्त स्त्री स्वर

शोध लेखक : प्रीति खजूरिया
शोधार्थी हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय

मानव इतिहास के विभिन्न चरणों में स्त्री की परिस्थिति उतनी अच्छी नहीं रही है। परिवर्तनशील समय के साथ-साथ हमारे समाज में भी परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी में जब नवजागरण का दौर आया उसके परिणामस्वरूप स्त्री-शिक्षा,स्त्री-स्वाधीनता, नारी-पुरुष समानाधिकार जैसे मुद्दों पर विचार किया गया एवं सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्र में स्त्री को उचित स्थान दिलाने की चेष्टा आदि में सशक्त पहल आरम्भ हुई। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए जब हम समकालीन कविता के समयावधि में पहुँचते हैं तो उस समय नारी विमर्श जैसा मुद्दा केन्द्र में रहा। नारी को समानाधिकार देने की पक्षधरता में समकालीन कवियों ने आवाज उठाई।

राजेश जोशी समकालीन कवियों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन्होंने स्त्री के विभिन्न रूपों को अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे सामने लाने की कोशिश की है। इस युग में भी स्त्रियों का शोषण लगातार हो रहा है। आज भी दहेज के लिए उसे सताया जा रहा है, स्त्री की आर्थिक पर निर्भरता ने उसे धन कमाने के लिए शरीर बेचने या विज्ञापन की दुनिया में उसे आने को विवश कर दिया है। उसकी यही विवशता कवि हृदय को व्यथित करती है और वह अपनी कविताओं के जरिये समाज के इस घिनौने सत्य को रेखांकित करता है। स्त्री जीवन की इस पीड़ा को कवि 'रैली मे स्त्रियाँ' को इस प्रकार व्यक्त करता हुआ कहता है - 'उनका तार कभी-कभी टूट जाता है / कभी-कभी साथ चलते या गोदी में / लदे बच्चे की भूख / और थकान का ख्याल उन्हें बैचेन कर देता है। / रैली जब कहीं रुकती है तो किसी आड़ का सहारा लेकर / भूख से बेहाल बच्चे को वे दूध पिलाने लगती है।"1

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आजादी के इतने सालों बाद भी समाज में नारी को बराबर का अधिकार उपलब्ध नहीं है। राजेश जोशी का मानना है कि महिलाओं को राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर स्वतन्त्रता न देकर रसोई के नीरस वातावरण में रखते हैं। जिसके कारण स्त्रियाँ वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर पाती है। अपनी 'गृहस्थी' कविता में कवि इस बात का उल्लेख करते हुए कहते हैं - "जैसे कहती हो यह मेरी सृष्टि है / तुम नहीं जान पाओगे कभी / जाओ बाहर जाकर टी.वी. देखो / एक काम पूरा नहीं करोगे और फैला दोगे / मेरी पूरी रसोई...।"2

रघुवीर सहाय भी अपनी कविताओं में नारी को एक विशेष स्थान देते हैं। वे नारी को समतावादी दृष्टिकोण से भी देखना पसंद करते हैं। हिन्दी के ज्यादातर रचनाकार यहाँ नारी को अबला समझ कर उसके प्रति दया का भाव प्रदर्शित करते रहे हैं वहीं रघुवीर सहाय दया के प्रदर्शन को एक सांमती मूल्य मानते रहे हैं क्योंकि उस प्रदर्शन में कहीं-न-कहीं दया के पात्र को छोटा हीन और असहाय समझने और खुद को समर्थ बड़ा और सांमत सरीखा शासक मानने की प्रवृति जाने-अनजाने काम कर रही होती है। रघुवीर सहाय इस मर्म को बहुत पहले समझ गए थे कि दया का भाव बराबरी के मूल्य पर चोट करता है। उनकी कविताओं के वाचक भी अपनी प्रेमिका से दया के भाव की उपेक्षा नहीं करता है - "माधवी। / या और कुछ तुम्हारे नाम हों / तुम एक ही दु:ख दे सकी थी / फिर भला ये और सब किसने दिये है? / जो मुझे है और दुख, वे तुम्हें भी तो हैं / यही क्या नहीं काफी तर्क है कि मुझे / दया का पात्र मत समझो।"3

प्रीति खजूरिया
शोधार्थी हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर- 190006
मोबाइल- 6005793640
ईमेल- Preetiswayam@gmail.com

जो नारियाँ श्रम करती हैं, उनके प्रति भी रघुवीर सहाय की कविताओं में समानता का भाव ही परिलक्षित होता है। नारी-पुरुष की समानता और सहधर्मिता के आर्दश को कवि ने वाणी दी है। परंतु अभिजात्मवादी नारी और श्रमशीला नारी के बीच रघुवीर सहाय अंतर करते हैं। वह नारी जाति की त्रासदी को बखूबी समझते हैं। यह सही है कि उच्च घरानों की प्यारी-प्यारी नारियाँ सुख सुविधा और आराम की जिंदगी बिताती है लेकिन पुरुष द्वारा उनका भी शोषण होता है। इस बात का उल्लेख रघुवीर सहाय इस प्रकार करते हैं - "नारी बिचारी है / पुरुष की मारी है / तन से क्षुधित है / मन से मुदित है / लपककर झपककर / अंत में चित है।"4

समकालीन कवि जगूड़ी जी ने भी स्त्री के विविध रूपों, उसमें जीवन की त्रासदी तथा कन्या की समाज में स्थिति का चित्रण किया है। हमारे समाज में कन्या का जन्म श्राप माना जाता है। उसे रोकने के लिए भ्रूण हत्या के किस्से सामने आते हैं। जगूड़ी समाज में कन्या को उपयुक्त स्थान दिलाने के अधिकारी है। विज्ञान की सुविधाओं के कारण कन्या का जन्म पता लगने पर उसकी गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है। इसी भ्रूण हत्या के प्रति कवि सजग दृष्टि रखता है और समाज की इस यथास्थिति से परिचित करवाते हुए कहता है - "कितनी उदासीनता में जी रहा है आदमी / पानी नहीं दु:ख पी रहा है आदमी / वह देखो बोरे में सिलकर ला रहा है कई भ्रूण / कई विकसित मुण्ड कई इच्छाएँ / कई स्वपन गाथा।"5

अपनी अस्मिता बनाए रखने के लिए और आर्थिक विसंगतियों को दूर करने के लिए औरत विज्ञापन के क्षेत्र में भी उतरी है। यहाँ उसका शोषण किया जाता है। समाज का उपयोगितावादी दृष्टिकोण स्त्री का उपयोग करता है। उसके लिए वह महज सामान बेचने वाली है, जिसका स्थान वस्तु से अधिक नहीं है। वे मात्र अधिकारियों के हाथ की कठपुतलियाँ हैं, जिसकी डोर मालिकों के हाथ में होती है। 'विज्ञापन सुंदरी' कविता में कवि इस प्रकार व्यंग्य करता हुआ स्त्री यथार्थ का पर्दाफाश करता है - "कंपनी की कठपुतलियाँ विज्ञापन सुन्दरियाँ / एक अकर्मण्य-सा परिधान बेचती है / एक अस्वीकार्य-सा वस्त्र स्वीकार्य करवाती है।"6

औरत का दासत्व उसकी असहाय आज भी उसी तरह प्रश्नों के घेरे में है। हर सांस, हर कदम पर पति की अनुमति स्त्री के स्वयं की अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है। स्त्री उत्पीड़न का दर्द उनकी 'स्त्री प्रत्यय' कविता में भी दिखाई देता है जिसका स्थान शब्द के प्रत्यय की भांति सदैव पति से पीछे रहा है - "अकेली आँख शादी के तीस वर्ष बाद भी / पूछती है सड़क पार कर लूँ / वह मर्द को अगुआ करती है। / वह दिखती है एक खोए हुए साहस की तरह।"7

रामदरश मिश्र जी ने भी भारतीय नारी के सुख-दु:ख आकांक्षा को बहुत ही निकट से जाना और अनुभव किया है। स्त्री समाज का आधार है, परन्तु आज भी स्त्री दहेज के लिए सताई जा रही है। उसकी यही विवशता कवि हृदय को व्यथित करती है और वह अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के इस दारूण सत्य को रखता है। स्त्री के साथ दहेज का दानव जुड़ा हुआ है। लड़की के माँ-बाप उसे अनेक मर्यादाओं की शिक्षा देकर ससुराल के लिए विदा करते हैं किन्तु ससुराल में आकर लड़की लोभ व नफरत के चक्रव्यूह में फंस जाती है। सुसराल पक्ष वाले जल्द से जल्द अमीर होने के लिए घर में बहू रूपी कल्पवृक्ष लाना चाहते हैं जिसके माध्यम से उनकी समस्त अन्तहीन इच्छाएँ पूरी हो जाएँ। यदि ऐसा करने में सफल नहीं हो पाती है तो उसे प्रताड़ित किया जाता है ऐसी स्थिति में लड़कियाँ विवश होकर या तो आग में जल जाती है या तो रस्सी से गला कसकर आत्महत्या कर लेती हैं। लड़कियों की इस करुण कथा का चित्रण मिश्र जी ने अपनी कविता 'लड़की' में इस प्रकार करते हैं - "उसके आगे / पैसों की प्यास से जलती / भेड़ियों की आँखें गुर्राती रहेगी / सोते-सोते / जैसे आग दिखाई पड़ेगी / या छत पर लटकती हुई रस्सी / और वह चीख भी नहीं पायेगी।"8

मिश्र ने समय के साथ यह अनुभव किया है कि माँ-बाप का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी लड़कियों को इस प्रकार का संस्कार दें जिससे वह अन्याय और अत्याचार के सहने के बदले उससे लड़ सकें। मिश्र जी लड़कियों को आत्मनिर्भर, आत्मसुरक्षित, सशक्त, स्त्री के रूप में देखना चाहते हैं। लड़कियों के अन्दर इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह हर परिस्थिति से लड़ सकें और शोषण का विरोध कर सकें। मिश्र जी के शब्दों में - "काश, ये माँ-बाप / लड़की को भी थोड़ा-सा सही प्यार दे पाते / उसे ढाल बनने के साथ / हथियार बनने का भी संस्कार दे पाते।"9

मिश्र जी नारी की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए पुरुष की सफलता के पीछे नारी का ही हाथ मानते हैं। वह जानते हैं कि एक पुरुष के जीवन में स्त्री का महत्त्व कितना और किस रूप में है। इस ओर भी कवि ने अपनी रचना के जरिये विचार किया है। स्त्रियाँ अपना पूरा जीवन परिवार के सदस्यों की इच्छाओं को पूर्ण करने में जुटा देती है। परन्तु उनकी सफलता के पीछे स्त्री का संघर्ष गौण रूप ले लेता है। इस पर रामदरश मिश्र स्त्रियों के संघर्ष को इस प्रकार व्यक्त करते हैं - "कि औरत थी / जो चूल्हे-चक्की / बरतन भाड़े की लय पर / जीवन के मंत्र पढ़ती रही / जो खुद को अंधेरे में रखकर / जिन्दगी-भर / रोशनी की मूर्ति गढ़ती रही।"10

समकालीन कवि अरुण कमल के स्त्री चिंतन अवलोकन में भी कई स्त्रियाँ शामिल हैं। मजदूरी करने वाली पति प्रताड़ना सहने वाली, मध्यवर्गीय नौकरी करने वाली स्त्रियाँ, कन्या जन्म की प्रतिक्रिया सभी उस विस्तृत फलक है। जो कवि की नारी विषयक चिंता की परिचायक है। मध्यवर्गीय औरत दोहरे बोझ से दबी है। एक तरफ नौकरी के लिए बाहर जाना और दूसरी तरफ घर गृहस्थी का बोझ सँभालना। यंत्र-सा जीवन जीती थकी टूटी कामगार महिला की स्थिति को अरुण कमल ने स्पष्ट किया है। उनकी 'डेली पैसेंजर' कविता मध्यवर्गीय स्त्री की स्थिति को चित्रित करती है - "पाँव बदलती खड़ी औरत / सहसा मेरे कंधे से लग गया / उस युवती का माथा / लगता है बहुत थकी थी /

वह कामगार औरत काम से वापस लौट रही थी / एक डेली पैसेंजर।"11

स्त्री विमर्श और नारी जागरण के तमाम आन्दोलनों की रोशनी के बावजूद भी यातना और उत्पीड़न भरा जीवन जीने पर विवश है। वह तो अभी भी पुरुषों की जायदाद हैं दलित, पीड़ित, खूंटे से बंधी उसकी परिधि में चक्कर काटने को अभिशप्त है। अभावों और संकटों से जूझती स्त्री की कुंठा को कवि धरती और भार में इस प्रकार व्यक्त करता है कि वह अपनी छवि अपने बच्चे में देखने लगती है - "हवा के चाटे हुए आइने में वह कुछ भी नहीं रहा गया / जो पूरा मिटा हुआ चेहरा उसे दिखा सके / वह सबसे छोटा बच्चे के पास जाती है / उसके बाल बनाती है / जैसे खुद को देखने लायक बना रही हो।"12

समकालीन काव्य के उभरते कवि ज्ञानेन्द्रपति के काव्य संग्रह 'मनु से बनती मनई' भी स्त्रियों के जीवन की गाथा है। वह भी नारी के दर्द को व्यक्त करते हुए कहते हैं - "माँ ने ही बनाये हैं बेटे के हाथ / पूरी गृहस्थी को रचने वाले / पालने सँभालने वाले / अपने तल्लीन हाथों से माँ ने बनाये हैं।"13

उपर्युक्त पंक्ति में माँ की कर्त्तव्यनिष्ठता पर बली दिया गया है। माँ घर से बाहर तक अपना कार्यक्षेत्र बनाकर परिवार को सुचारू वर सुनियोजित ढंग से चलाती है। वह अपने बच्चों के अंदर संस्कार की नींव डालती है जिससे कभी वह सधमार्ग से न भटके। अपार धैर्य और श्रम के बलबुत्ते पर माँ अपने सपने को त्यागकर परिवारजनों के सपनों को गढ़ने में खुद को झोंक देती है। उस माँ को उपेक्षित रखना कवि को सरासर अनुचित प्रतीत होता है।

कवि ज्ञानेन्द्रपति आम जनमानस के सामने स्त्री की कार्यक्षमता पर अपना विचार रखते हैं। एक स्त्री अपने जीवन काल में एक साथ कई संबंधों का बेहतर ढंग से निर्वहन करती है। कवि हर संबंध के अंदर स्त्री की विशेषता को उभार कर हमारे समक्ष रखते हैं - "उसके होंठ प्रेमिका के होंठ हैं / उसकी छातियाँ माँ की छातियाँ हैं / उसके हाथ मजदूर के हाथ हैं।"14

यहाँ पर कवि स्त्री के विविध रूप की चर्चा कर प्रबुद्ध पाठक वर्ग के हृदय में स्त्री के प्रति सम्मान एवं संवेदना को उजागर करता है।

अंतत: विवेच्य कवियों ने समाज में नारी की स्थिति, उसके जीवन की त्रासदी के विविध रूपों की विवेचना कर अपने स्त्री चिंतन का परिचय दिया है। औरत का दासत्व, उसका श्रमिक रूप कवियों को व्यथित करता रहा है। कन्या भ्रूण हत्या के प्रति भी कवियों ने निंदा का भाव दिखाया है और समाज से अपेक्षा की है कि सभी स्त्रियों को सम्मान मिले और उसके अस्तित्व की रक्षा हो सके। अपनी अस्मिता को बनाए रखने के चेष्ठा में विज्ञापन क्षेत्र में उतरी स्त्रियों के अंधेरों में भी इन कवियों ने परिचित कराया है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि समकालीन कवियों ने स्त्री के दर्द को जाना-समझा और फिर अपने काव्य में स्त्री की इस अंतर्मन की पीड़ा को अभिव्यक्त कर समानाधिकार का पक्ष रखा।

000

संदर्भ- 1-चाँद की वर्तनी, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 33, 2-दो पंक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 41, 3-रघुवीर सहाय रचनावली, खण्ड-1, रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014,पृ. 63, 4-वही, पृ. 92, 5-रात अब भी मौजूद है, लीलाधर जगूड़ी, वाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 101, 6-ईश्वर की अध्यक्षता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 21, 7-भय भी शक्ति देता है, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 1991, पृ. 92, 8-रामदरश मिश्र रचनावली, खण्ड-दो, जूलूस कहाँ जा रहा है, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000,पृ. 47, 9-वही, पृ. 47, 10-वही, पृ. 12, 11-अपनी केवल धार, अरुण कमल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 85, 12-वही, पृ. 50, 13-भिन्नसार, ज्ञानेन्द्रपति, सेतु संस्करण, 2023, पृ. 48, 14-मनु को बनाती मनई, ज्ञानेन्द्रपति, किताबघर प्रकाशन, 2013, दरियागंज, नई दिल्ली,पृ. 11

नई पुस्तक

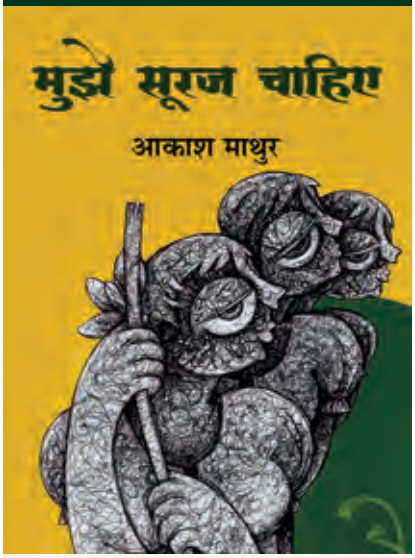

(उपन्यास)

मुझे सूरज चाहिए

लेखक : आकाश माथुर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

लेखक, पत्रकार आकाश माथुर का यह दूसरा उपन्यास है, जो धर्म तथा सांप्रदायिकता तथा उसमें स्त्री की स्थिति की पड़ताल करता है। आकाश माथुर के हैश टैग् मीटू (कहानी संग्रह), कोरोना काल (रिपोर्ताज), उमेदा एक योद्धा नर्तकी (उपन्यास) अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही आकाश माथुर ने शिवना प्रकाशन की कथा- सप्तक श्रृंखला का संपादन किया है जिसमें सुधा अरोड़ा, उषाकिरण ख़ान, धीरेन्द्र अस्थाना, हरि भटनागर, सुधा ओम ढींगरा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, गीताश्री, प्रज्ञा, लक्ष्मी शर्मा, उर्मिला शिरीष के कथा सप्तकों का संपादन किया है। यह उपन्यास स्त्री को देवी बना कर पूजे जाने की परंपरा में स्त्री की अपनी कहानी जानने की कोशिश करता है। जिसमें स्त्री कहती है कि उसे चाँद के आसपास बाँध दिया गया है, उसे जीवन भर सूरज से दूर रखा गया है। किसी ने उसकी नहीं सुनी कि उसको चाँद नहीं चाहिए, उसे तो सूरज चाहिए। इस उपन्यास में आकाश माथुर ने स्त्री की नज़रों से उसकी कहानी को जानने की कोशिश की है।

000

(शोध आलेख)

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल- पर्यावरणीय दृष्टि

शोध लेखक : कुमार मंगलम
शोधार्थी
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय

ग़ज़ल का आरंभ अरबी साहित्य की काव्य विधा के रूप में हुआ। बाद के दिनों में उर्दू, फ़ारसी, नेपाली सहित हिन्दी साहित्य में भी ग़ज़ल का प्रचलन बढ़ा। गजल का स्वरूप प्राय: विषम संख्या के शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ और काफिये में होते हैं। फारसी में ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ है- औरतों से बातें करना। हिन्दी साहित्य कोश में ग़ज़ल का अर्थ नायिकाओं से प्रेम की बातें करना ही मिलता है।

हिन्दी में ग़ज़ल परंपरा का श्रीगणेश संस्कृत के दोहा शैली, अमीर खुसरो की गजलों, कबीर-मीरा आदि भक्त कवियों के साहित्य में खोजा जाता रहा है, किंतु हिन्दी साहित्य की विधा के रूप में ग़ज़ल भारतेंदु युग से प्रतिष्ठित होने लगी थी। आज समकालीन हिन्दी ग़ज़ल अपनी संवेदना और शिल्प के बलबूते युगीन यथार्थबोध से साक्षात्कार कराती हुई, मनुष्य के अंत:करण को माँजने में सफल हुई है।

हिन्दी ग़ज़ल कभी-कभी अत्यधिक हिन्दीपन के मोह में उबाऊ और बोझिल हो जाती है, जो पाठकों को खासा प्रभावित करने में असक्षम होती है। हिन्दी ग़ज़ल का मतलब यह नहीं कि उसमें हिन्दी के कठिन शब्दों का ही इस्तेमाल हो। जिस शब्द से शेरियत आती हो, अगर आम जनता उसे समझ रही है तो उसका प्रयोग बिना किसी पूर्वाग्रह के हिन्दी ग़ज़ल में होना चाहिए। सिर्फ कठिन शब्दों से हिन्दी ग़ज़ल नहीं बनती। कुछ ऐसे शेर देखे जा सकते हैं जहाँ हिन्दी संस्कृत के शब्दों का कठिन प्रयोग शेर वाला स्वाद नहीं दे पाता है।

समकालीन ग़ज़लकार भी अन्य विधाओं के रचनाकारों की तरह पर्यावरण के प्रति रचनाक्रम में सजग दिखाई देते हैं। प्राकृतिक असंतुलन वैश्विक पटल पे चिंता बनकर उभरा है, तब दुनिया भर के साहित्य में इस चिंता को चिंतन द्वारा कमतर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों ने पर्यावरण को केंद्र में रखकर सकारात्मक दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण संबंधित रचनाएँ हम पाठकों के समक्ष रखी हैं।

कोरोनाकाल ने हमें प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सजग होने का संदेश दिया है। उसने स्वार्थी मनुष्यों को अपनी ताकत से वाकिफ कराया है। प्रकृति को स्वच्छ और निर्मल बनाने के लिए मुहिम छेड़ना होगी। हम देखते हैं कैसे, हमारा सभ्य समाज प्रकृति से कटता जा रहा है। हमें प्रकृति की ओर खड़ा होकर, समस्त जीवों के जीवन को बरकरार रखना होगा। पर्यावरण को विकार ग्रस्त करने का साफ अर्थ है-"जीवधारियों का प्राण संकट में डालना।"

वास्तव में पर्यावरण ग़ज़ल के जैसे संतुलन की माँग करता है, संतुलन के बिना दोनों का ढांचा ध्वस्त हो जाएगा।

प्रकृति की सहजता और सौन्दर्यप्रियता के प्रति ग़ज़लकार आकृष्ट नजर आते हैं। दूसरे तरफ छद्म बाजार के पीछे भागते मनुष्यों को देखकर उनमें असंतोष का भाव है, जो गज़लों में साफ दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य इस विशेष समय और परिस्थितियों को समझते हुए भी अपने लिए संकट पैदा करने में तुला है।

कुमार मंगलम
शोधार्थी
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय
नगहर, वार्ड-8, बिक्रम, पटना,
बिहार 801104

वृक्षों की कटाई की वजह से पर्यावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि हुई है। प्रदूषण की समस्या बढ़ी, ग्रीन हाउस गैसों में बढ़ोतरी हुई, फिर यही ग्लोबल वार्मिंग का कारक बन बैठा। इसके साथ ही दिनोदिन जलवायु परिवर्तन का तांडव-नृत्य देखने को मिला है। फिर भी हम वैशाखनंदन की तरह मूकदर्शक बने हुये हैं। कहीं सूखाड़ तो कहीं दहाड़, जनजीवन पूरी तरह से त्रस्त है। पेड़ों के कटने से विषम संकट में लगातार इजाफा होते देख रामदरश मिश्र अति सहमे नजर आते हैं।

"पूछते हैं पेड़ पेड़ो से सहमकर / क्या हवा में आज फैली सनसनी है।" रामदरश मिश्र

पेड़ के कटने से जो दुष्प्रभाव हम भुगत रहे हैं- वायु प्रदूषण में बढ़ोतरी, जलवायु-परिवर्तन, रेगिस्तान का फैलाव, वनस्पतियों का विलोपन, जल-चक्र को नुकसान, मृदा अपरदन की समस्या, आदिवासी जीवन के लिये खतरा, औषधीय गुणों वाली वनस्पतियों का नाश। वहीं दिनोंदिन जनसंख्या में हो रही वृद्धि की वजह से लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ती ही जा रही हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों की कटाई की जा रही है तथा उन्हें शहरों में तब्दील किया जा रहा है। लोग अपने जीवन से जुड़े कार्यों के लिए इन्हीं वृक्षों पर निर्भर हैं जैसे कागज, माचिस, फर्नीचर, सड़क, भवन निर्माण में। लगातार लकड़ी की आवश्यकताएँ बढ़ती ही जा रही है और इसका परिणाम है वृक्षों की अंधाधुंध कटाई।

कल तक हम यात्रा के दौरान प्रकृति सुषमाओं के बीच से गुजरते थे, किंतु आज सुस्ताने के लिए दूर तक तक पेड़ की छांव नजर नहीं आती है। इस भाव को गोपाल दास 'नीरज' बखूबी से गजल में रखते हैं- "कोई दरख़्त मिले या किसी का घर आए / मैं थक गया हूँ कहीं छाँव अब नजर आए।" गोपालदास 'नीरज'

कुंवर बेचैन की ग़ज़ल पढ़ते हुए मुझे रुकना पड़ा, वास्तव में वह ग़ज़ल प्रेम को केंद्र में रखकर रची गयी होगा। किंतु पर्यावरणीय संकट के प्रतिकूल समय में पर्यावरणीय दृष्टि से मुझे अभी प्रेरित किया। जब वातावरण की तरफ़ नजर दौड़ाता हूँ तो प्रदूषण की घनघोर छाया से दम घुटने लगता है। किन्तु कमतर संख्या में ही सही जो प्रकृति संरक्षण हेतु प्रयासरत हैं,उन्हें देखकर मैं आशान्वित हो जाता हूँ।

वैदिक काल से ही पौधों से हमारी संवेदना जुड़ी हुई है, जिसके वजह से इनसे हमारे रिश्ते बेहद भावनात्मक हैं। पेड़ ही प्रकृति के संतुलन में अग्रणी भूमिका निभाते हैं, इसे खारिज नहीं किया जा सकता है।

"है समय प्रतिकूल माना / पर समय अनुकूल भी है / शाख पर इक फूल भी है।" कुंवर बेचैन

"जो पेड़ मेरे पिता ने कभी लगाया था / पिता के बाद पिता सा ही उसका साया था।" जहीर कुरैशी

अदम गोंडवी की ग़ज़लों में जनपक्षधरता के मुखर स्वर मिलते हैं, किंतु ग्रामीण परिवेश का चित्रण हमें पर्यावरणबोध से भी जोड़ता है। प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा का मसला आज बहुत ही महत्त्वपूर्ण है,क्योंकि वह मानव जाति की रक्षा से जुड़ा हुआ है। मानव तक सीमित रखना अन्यायपूर्ण होगा, समस्त जीवों की रक्षा से जुड़ा है। हम भारतीय धर्म-संस्कृति के नाम पर नदी-ताल-पोखर को प्राचीन काल से पूजते आए हैं। बिहार में लोकआस्था का महापर्व छठ पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण का घोतक है।

हमें जंगलों के निकट रहना चाहिए,वन्य क्षेत्र हमें शुद्ध एवं ताजी हवा प्रदान करता है तथा परोक्ष रूप से बारिश द्वारा जल देने भी मददगार है। शहर तो कंट्रीट का जंगल बन गया, गाँव में प्राकृतिक सम्पदाओं के साथ जीवन बचा था। किन्तु शहरीकरण के नाम पर गाँव भी अपने मूल प्रकृति से भिन्न होता जा रहा है।

"ग़ज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नजारों में / मुसलसल फ़न का दम घुटता है इन अदबी इदारों में।" अदम गोंडवी

"हमारे ताल-पोखर धर्म-संस्कृति की धरोहर है / बचाएँगे अगर इनको तो यह सुंदर कमल देंगे। / हमारे जंगलों की भी बादलों से यारी है / ये साँसें भी हमें देंगे, हमेशा हमको जल देंगे।" वशिष्ठ 'अनूप'

"कुहरे में सोए हैं पेड़ / पत्ता-पत्ता नम है / यह सबूत क्या कम है..." माहेश्वरी तिवारी

विकास की कोलाहल में ढीठ मनुष्य अपने ऐशो-आराम और रुतबा की बात करते नहीं थक रहा, दूसरे तरफ विपरीत परिस्थितियों में पशु-पक्षियों का लगातार दम घुट रहा है। तबाह तो वह भी है, पर गाँधारी की तरह आँख पर पट्टी बाँधे सत्य को देखने से बचना चाहता है। किन्तु कब तक; विनाश की अंतिम मुहाने पर आँखें खुल भी जाएँ तो महाभारत होकर रहेगा। हम देख रहे हैं, ग्लोबल वार्मिंग औद्योगिक क्रांति के बाद से औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि को दर्शा रहा है। 1880 के बाद से औसत वैश्विक तापमान में लगभग एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। ग्लोबल वार्मिंग एक सतत प्रक्रिया है, वैज्ञानिकों को आशंका है कि 2035 तक औसत वैश्विक तापमान अतिरिक्त 0.3 से 0.7 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। लगातार धरती की ताप में वृद्धि हो रही है, फिर भी हम स्वार्थ की गठरी लिए अपनी गति से भागे जा रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण मौसम के मिजाज बदल रहे हैं, जिसका खामियाजा कृषक वर्ग को भुगतना पड़ रहा है।

"सारे मकान वाले बिछाए हैं छत पे जाल / बुलबुल भी है उदास कबूतर उदास है।" अनिरुद्ध सिन्हा

"प्यास के हर प्रश्न पर सूखा कुआँ देने लगा / आग की क्या बात पानी भी धुँआ देना लगा।" यश मालवीय

आलोक श्रीवास्तव की अम्मा केंद्रित गज़ल से जब मैं गुजरता हूँ, तो वहाँ अम्मा के रूप में प्राकृतिक छटा लिये धरती दिखाई देती है। धरती की व्यक्तित्व अम्मा से मिलती-जुलती है।

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन विकास के नाम पर जारी है। अगर हम प्राकृतिक संपदा के बचाव एवं सुरक्षा हेतु सचेत नहीं हुए तो कल हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा। नदी में कल तक तो कचरा ही फैलाते थे, अब मनुष्य की होशियारी देखिये;किनारे मिट्टी भर के घर

बनाने से भी नहीं चूक रहे हैं। नतीजा यह हो रहा है कि प्रलयकारी बाढ़ के आगोश में घर की दीवार लरक जा रही है और भारी जान-माल की नुकसान उठाना पड़ रहा है।

"सारे रिश्ते जेठ-दुपहरी गर्म हवा आतिश अंगारे / झरना दरिया झील समुंदर भीनी सी पुरवाई अम्माँ।"आलोक श्रीवास्तव

"नदी के द्वार पर जाकर बसेरा मत बना लेना / बचाती है जो जीवन तो सब कुछ भी डुबाती है।" डॉ.भावना

हिन्दी कविता के जैसे ग़ज़ल विधा में भी प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन रूप का प्रयोग हुआ है, किंतु समकालीन दौर में आकर ग़ज़लकार पर्यावरण की समीक्षा कर पर्यावरण की रखरखाव और बचाव के लिए पर्यावरणीय दृष्टि अख्तियार करते हुए ग़ज़ल रचते हैं। ग़ज़ल की लय-प्रवाह स्मरण के नजरिए से बेहतर है। लोक की व्यापक फलक को अपने से जोड़ने में सक्षम भी है। आज शहर से सुदूर गाँव तक तपिश में जल संकट का सामना कर रहा है। यह स्थिति दिनोंदिन भयावह होते जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र विश्व जल विकास रिपोर्ट 2022 के अनुसार जलधाराओं, झीलों, जलभृतों और मानव-निर्मित जलाशयों से ताज़े जल की तेज़ी से निकासी के साथ-साथ विश्व भर में आसन्न जल तनाव और जल की कमी के संबंध में वैश्विक चिंता बढ़ती जा रही है।

भारत विश्व में भूजल का सबसे अधिक निष्कर्षण करता है। यह मात्रा विश्व के दूसरे और तीसरे सबसे बड़े भूजल निष्कर्षण-कर्ता (चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका) के संयुक्त निष्कर्षण से भी अधिक है।

नीति आयोग के समग्र जल प्रबंधन सूचकांक ने भारत में उभरते जल संकट के बारे में आगाह किया है जहाँ देश के 600 मिलियन से अधिक लोग जल की गंभीर कमी का सामना कर रहे हैं। यह आकलन भी किया गया है कि वर्ष 2030 तक देश की जल माँग उपलब्ध आपूर्ति की तुलना में दोगुनी हो जाएगी। जलवायु प्रवृत्तियों का बदलना, प्राकृतिक आपदाओं और महामारियों की तेज वृद्धि हमें दहला रहा है। जीवन संकट में है, पृथ्वी संकट में है...।

"झुलसती धूप थकते पाँव मीलों तक नहीं पानी / बताओ तो अब कहाँ धोऊँ ये परेशानी।" हरेराम समीप

जीवन की ऊब-भगदौड़ से दूर जाने के क्रम में हम प्रकृति की सुरम्य गोद में ही पनाह पाकर सुकून के इर्दगिर्द पहुँच पाते हैं। शहर की कोलाहल में ऐसा प्रतीत होता है कि हम जीवित होने का नाटक कर रहे हैं। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि उस सुकून से भरे पवित्र स्थल पे जाकर गंदगी फैलाने से बचे। 2016 के दैनिक जागरण अखबार में पहाड़ और प्रदूषण शीर्षक से छपे आलेख को पढ़ा,जिसमें प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार प्रदेश के कई स्थानों पर दीवाली के बाद प्रदूषण के स्तर में कमी आई है। धर्मशाला, शिमला, डमटाल, ऊना में प्रदूषण का स्तर कम आँका गया है। इसका अर्थ यह है कि पहाड़ के लोगों ने इस साल ग्रीन दीवाली मनाने के मर्म को समझा है और पटाखों से दूरी बनाई है। वायु व जल प्रदूषण विभिन्न बीमारियों और विकारों द्वारा हमारे स्वास्थ्य को खतरे में डाल रहे हैं। आज कल हम किसी भी चीज को सेहतमंद नहीं कह सकते क्योंकि जो हम खाते हैं, वह पहले से ही कृत्रिम उर्वरकों के दुष्प्रभाव से प्रभावित रहती है। यह हमारे शरीर के रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम कर देती है। यही कारण है कि कोई भी स्वस्थ और खुश रहने के बावजूद रोग और अवसाद से घिरे रहते हैं।

जिस तरह दीवाली पर एक रात की आतिशबाजी साँसों में जहर घोल देती है,उसी प्रकार साल के एक महीने के दौरान पराली जलाने की घटनाएँ देश के बड़े इलाके को धुंध के मोटी चादर में लपेट देती है। घना आबादी अड़ियल सा सरकार के आदेशों की धज्जियाँ उड़ाते हैं, जैसे उससे उनका कोई वास्ता ही नहीं। आज उसी प्रकार पराली जलाने की घटनाएँ भी थमने की नाम नहीं ले रही।

"किसी पहाड़ पे जाऊँगा छुप के दुनिया से / कटेगा वक़्त वहाँ बदलियाँ पकड़ते हुए।" स्वप्निल तिवारी

लोग आज एक-दूसरे को उपदेश देने में विश्वास रखते हैं और स्वयं पर पालन करने की बात आए तो चारो-खाने चित। आज यह पारंपरिक आदतों में शुमार हो गई है, जिससे आज पर्यावरण को उपेक्षा के गहरे गर्त में धकेल दिया जा रहा है। पर्यावरण संरक्षण से संबंधित सारी चर्चाएँ केवल कागजी रह गई हैं। अगर वास्तव में लोगों को पर्यावरण की इतनी फिक्र होती तो दशकों से प्रतिवर्ष मनाए जाने वाले जल दिवस, पृथ्वी दिवस, ओजोन परत संरक्षण दिवस और पर्यावरण दिवस महज रस्म-अदायगी के त्योहार बनकर सीमित नहीं रह गए होते! व्यवहार के धरातल पर पृथ्वी को बचाने की कोशिश की गई होती, तो आज हमारे पर्यावरण की यह दुर्गति नहीं हुई होती।

पर्यावरण को स्वस्थ व प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए हम किसी विशेष दिवस पर निर्भर नहीं रहेंगे। बल्कि हमें पर्यावरण के रख-रखाव और बचाव को केंद्र में रखकर, विशेष जीवनशैली अपनाना होगा। यह दुनिया के लिए गंभीर मुद्दा है, जिसका हल हर नागरिक के निरंतर प्रयास से ही संभव हो सकता है। जब जागो, तभी सबेरा...!! तमाम संवेदनाओं के जैसे प्रकृति और पर्यावरण समकालीन दौर के ग़ज़लों का केंद्र बिंदु है जिसके बदौलत पर्यावरणीय दृष्टि का विस्तार एवं ग़ज़ल विधा सशक्त हो रही है।

000

संदर्भ-

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल पहचान और परख: (डॉ.) बानो सायमा, कला प्रकाशन। 2013, हिन्दी ग़ज़ल दशा और दिशा: (डॉ.) नरेश,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। 2004, गरम रोटी के ऊपर नमक तेल था: अनूप वशिष्ठ, अनन्य प्रकाशन वाराणसी 2021, गद्यकोश वेबपेज, साहित्य अमृत वेबपेज, कविता कोश मिश्र रामदरश, कविता कोश: कुरैशी जहीर, कविता कोश: नीरज गोपालदास, कविता कोश: बेचैन कुंवर, आलोचना की यात्रा में हिन्दी ग़ज़ल: (डॉ.) सिंह जीवन, बोधि प्रकाशन 2017, हिन्दी साहित्य में पर्यावरण: मौर्य कुमार शिवेंद्र, मनीषा प्रकाशन वाराणसी। 2017

(शोध आलेख)

साहित्य का स्त्रीवादी चेहरा - सुधा अरोड़ा विशेष संदर्भ - 'काव्य-संग्रह- कम से कम एक दरवाजा'

शोध लेखक : डॉ. सुनीता कुमारी
सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची

हिन्दी साहित्य में कविता की लगभग एक हजार साल की परम्परा रही है, हिन्दी कविता ने विभिन्न प्रवृत्तियों और वादों के साथ कई-कई कालखंडों से होती हुई एक प्रदीर्घतर यात्रा तय की है। कहने का तात्पर्य यह है कि देश-काल और मनुष्य की चित्तवृत्तियों में परिवर्त्तन के साथ-साथ कविता-लेखन और उसके शिल्प में भी परिर्त्तन हुए हैं। मानव समाज ज्यों-ज्यों विकसित होता गया कविता और कहानी किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रही है, यह अलग बात है कि सभ्यता के विकास के साथ ही कविता से संवेदनाएँ लगातार गायब होती चली गईं, रामचन्द्र शुक्ल अपने निबंध 'कविता क्या है' में लिखते हैं - ''ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सम्यता के नए-नए आवरण चढ़ते जाएँगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि कर्म कठिन होता जाएगा।'' इस तरह आचार्य शुक्ल ने कवियों को कविता के प्रति उनकी जिम्मेदारी के प्रति भी अगाह किया है। आधुनिकता के इस दौर में लोगों के जीवनशैली में बदलाव आया, भारतीय समाज और आम जनता पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। राजनीतिक घटनाओं की प्रतिध्वनि राजनीति, समाज और संस्कृति में सुनाई दे रही है, जिसका असर आधी आबादी पर और भी ज्यादा पड़ा यही कारण है कि आधी आबादी को हम पहले से ज्यादा मुखर होते हुए देख पा रहे हैं।

पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था में जीने वाली स्त्री की यातना को पकड़ पाना हमेशा काफी कठिन कर्म रहा है। अकेलेपन से जूझने वाली स्त्रियों के अनेक रूपों को अकेली औरत शृंखला की कविताओं में सुधा अरोड़ा ने पूरी खूबसूरती और बेहद संवेदनशीलता के साथ व्यक्त किया है। सुधा अरोड़ा के 'रचेंगे हम साझा इतिहास' (2012) तथा 'कम से कम एक दरवाजा' (2015) - नामक दो काव्य- संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अकेली औरत का हँसना, अकेली औरत का रोना, धूप तो कब की जा चुकी है, गिरे हुए फंदे, शतरंज के मोहरे, कम से कम एक दरवाजा, राखी बाँधकर लौटती हुई बहन, यहीं कहीं था घर, पचपन पार की औरतें, साँकल सपने और सवाल, साथ-साथ, माँ! तुम उदास मत होना! जिन्हें वह संजोकर रखना चाहती थीं - उनकी कविताएँ हैं, सुधा अरोड़ा की कविताएँ न केवल बैचेन करती हैं वरन इन स्त्रियों पर अत्याचार करने वालों को भी ललकारती हैं और स्त्री जगत को आगे बढ़ाने के लिए, बगावत करने के लिए परचम देती हैं-तभी तो अपनी कविता 'सदियों के खिलाफ तैयार हो रहा है एक मोर्चा - में वे लिखती हैं - '' सिर्फ लड़कियों का सिर उठाना है नया / सिर्फ उनका इनकार है नया। / सदियों की चुप्पी के खिलाफ बोलना उनका / जबरन कहला ली गई 'हाँ' के खिलाफ / उनका 'नहीं' है नया।''1

स्त्री जीवन में व्याप्त तमाम विसंगतियों को सुधा अरोड़ा ने तटस्थता से ग्रहण कर, निरावेश संलग्नता से व्यक्त करने का जो कौशल 'कम से कम एक दरवाजा' कविता-संग्रह में दिखाया है वह कौशल इन्हें विशेष अर्थवत्ता प्रदान करता है। सुधा अरोड़ा की हर कविता दमदार है और दिल छू लेने वाली है। इनके काव्य संकलन में एक से बढ़कर एक रचना है - उनका मानना है कि महिलाएँ और मजबूत बनें इस हेतु हर महिला की सक्रिय भूमिका होनी चाहिए ताकि समाधान की रौशनी फैल सके एवं मुश्किलों का, हर कठिनाईयों का सामना वे निडर होकर कर सकें। अपने अधिकारों की परिभाषा को सही मायने में पा सकें तभी तो वे अपनी कविता 'मौत के साये' में लिखती हैं - ''जब मेरी जान पर बन आई तब मैं चेती। / जब मुझे कुचलने की बेतरह कोशिश की गई / मेरे सामने दो ही रास्ते थे - / मैं आत्महहत्या कर लेती या बगावत करती / मैंने दूसरा रास्ता चुना और देखा / लाल गोले सा उगता सूरज।''2

किसी भी कवि या उसकी कविता की निर्मिति उस समय के सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है, कोई भी रचना अपने समय के कटु यथार्थ से टकराये बिना महत्त्वपूर्ण या कालजयी नहीं बन सकती है। स्त्री विषयक ढेर सारे मुद्दों से मुठभेड़ करते हुए भ्रूण हत्या, दहेज हत्या और घरेलू हिंसा के विभिन्न पहलूओं पर लिखते हुए स्त्री पर होने वाली

डॉ. सुनीता कुमारी
ज्योति प्रेस
कोकर, राँची, झारखंड 834001
मोबाइल- 9470368260
ईमेल- dr.sunita71@gmail.com

प्रत्यक्ष और परोक्ष हिंसा पर उनकी लेखनी बे-रोक-टोक चली। उन्हें यह हमेशा महसूस होता रहा कि हमारे चारों ओर नृशंसता और बर्बरता के सामने दिखने और न दिखने वाले इतने तत्व हैं जो समाज में सबसे नाजुक मोड़ पर खड़ी स्त्री को तहस-नहस करने में लगे हैं। एक स्त्री जो अपने दु:ख एवं अन्याय को व्यक्त नही कर पा रही है और कह पाने पर भी उसकी कोई सुनवाई नहीं है -

'कम से कम एक दरवाजा' - इस संग्रह की कविताएँ इन्हीं विसंगतियों, तकलीफों और लाचारियों की स्वत: स्फूर्त अभिव्यक्ति है तभी तो 'अकेली औरत को रोना' - कविता में वे लिखती हैं - "अपने लिए गैस जलाती हैं / कि नाश्ते में कुछ अच्छा पका लें / शायद वह खाना आँखों के रास्ते / मन को ठंढक पहुँचाए / पर खाना हलक से नीचे / ऐसे उतरता है / कि जबान को छुए बगैर / पेट तक पहुँच जाता है। / रूलाई का गुबार पेट में / यहाँ वहाँ फँसता है / और आँखों के रास्ते / बाहर निकलने की सुरंग ढूँढ़ता है।"3

सुधा अरोड़ा की कविता में स्त्रियों के कई आयाम दिखाई देते है। सदियों से दासत्व से मुक्ति की छटपटाहट, मैं भी हूँ का भाव और सामाजिक रूढ़ियों से टकराती हुई स्त्री दिखाई देती है। स्त्री ने जब स्वयं को रचा तो उस मध्यकालीन स्त्री की छवि को तोड़ा जो उसे भोग और श्रृंगार की प्रतिमा के रूप में चित्रित कर रहा था- बहुत अच्छा लगता है पढ़कर जब सुधा अरोड़ा अपनी कविता 'शतरंज के मोहरे' में लिखती हैं - "इक्क्सवीं सदी की यह औरत / हाड़ मांस की नहीं रह जाती / इस्पात में ढल जाती है / और समाज का सदियों पुराना / शोषण का इतिहास बदल डालती है।"4

भूमंडलीकृत समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रखने की छटपटाहट स्त्री रचनाकारों में दर्ज हुई है वह समाकालीन दौर में स्त्री-लेखन को विशिष्ट स्थान पैदा करती है। अलोचकों के अनुसार - "वह अपने वजूद को महसूस करती हैं, एक सजग इकाई के रूप में वह तमाम यथार्थ स्थितियों से प्रतिकृत होती वर्त्तमान सामाजिक परिवेश के अन्तर्विरोधों व असंगतियों को अपनी व्यक्तिमत्ता स्त्री अस्मिता और मानवीय स्थिति के परिप्रेक्ष्य को जानना-समझना चाहती है। उनका विश्लेषण विवेचन करने का प्रभास करती हैं।"

सुधा अरोड़ा की कविताएँ स्त्री के अन्तर्मन के द्वन्द्व को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। इनकी कविताएँ समय और स्त्री के मनोभावों को उकेरती हुई अपने से संवाद और संघर्ष करती हैं। अधिकतर रचनाएँ एक स्त्री की आशा, निराशा, चुनौतियाँ, संवेदनाएँ- जैसी तमाम अभिव्यक्तियों को पाठक तक पहुँचाती हैं। हताश कर देने वाले माहौल में स्त्री विमर्श की पैरोकार कथाकार एवं कवयित्री सुधा अरोड़ा की किताब कम से कम एक दरवाजा विकल्पहीनों, बेबस, मजलूमों और मासुमों के लिए विकल्प की बात करती हैं और आधी दुनियाँ को हाशिए पर डाल देने से क्षोम प्रकट करती हैं। उनकी प्रत्यंचा पर राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति एवं पर्यावरण के सवाल भी है - इसीलिए ऐसी कविताओं के तासीर भी जीवन जन्य खुरदुरापन लिए हुए है तभी तो - बची रहे धरती की सुन्दरता कविता में वे लिखती हैं - "तुम्हें करते रहना है ऐसे ही / और दिनों का आविष्कार / कि बची रहे धरती की सुन्दरता / जंगलों में रंग बिरंगी चिड़िया / और फैलता रहे इस पर्यावरण में / तुम दोनों का प्यार-"5

सुधा अरोड़ा ने स्त्री जीवन के विविध पक्षों को बड़ी संवेदनशील दृष्टि से देखा, परखा और आयन्त सादगी के साथ अभिव्यक्त किया। इन कविताओं में कवयित्री दर्दमंद स्त्रियों की दरदियाँ बनकर अगर एक साथ उनके घाव खोलती है तो दूसरे हाथ में उन्हें आत्मसाक्षात्कार के अस्त्र भी थमाती हैं जिससे ये स्त्रियाँ भावात्मक आघात और संत्रास से टूटती नहीं बल्कि मजबूत बनती हैं तभी तो वो अपनी कविता - "अब हम आँसुओं से नहीं, अपनी आँख के लहू से बोलेंगे में लिखती हैं - "अब तुम हमेशा रहोगी / सत्ता के लिए चुनौती बनकर / कानून के लिए नई इबारत बनकर / स्त्री के लिए बहादुरी की मिसाल बनकर / कलंकित हुई इंसानियत पर सवाल बनकर / सदियों से कुचली जा रही स्त्री का सम्मान बनकर"6

सुधा अरोड़ा ने अपने चारों ओर के परिवेश को समझा और प्रत्येक वर्ग की नारी को अपनी कविताओं में स्थान दिया चाहे वह नारी उच्च वर्ग की हो, मध्यम वर्ग की या सामान्य वर्ग की, उन्होंने प्रत्येक तबके की नारियों के प्रति होने वाली हिंसा तथा प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाले संघर्ष को पाठकों के समक्ष रखा। समाज का चाहे कोई भी वर्ग क्यों न हो। छल हमेशा औरत के साथ ही होता है। इसका मुख्य कारण है वहाँ प्रतिवाद का अनुपस्थित होना। संग्रह के शीर्षक का चयन ही ऐसा है जैसे रूढ़िवादी परम्पराओं और पितृ-सत्तात्मक सोच की दीवारों से बनी काल कोठरी में कैद औरते गुहार लगा रही हों। किस अपराध में उन्हें कैद मिली? आक्रोशित स्वर में वे अपने अधिकारों की माँग कर रही हैं मुक्त करो हमें इस अंधकार से / इस घुटन से / पीट रही है खिड़की-दरवाजों रहित दीवारों को / कम से कम एक दरवाजा / तो हो हमारे लिए- तभी तो वे अपनी कविता कम से कम एक दरवाजा में लिखती हैं - "बेटियों को जब सारी दिशाएँ / बंद नजर आएँ / कम से कम एक दरवाजा / हमेशा खुला रहे उनके लिए।"7

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न नारी सुधारवादी आन्दोलनों के प्रयासों तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण समाज और विशेषकर नारी वर्ग की सोच में क्रांतिकारी परिवर्त्तन आया। विरोधों के मकड़जाल से संघर्ष करती स्त्री अब ताल ठोककर नारी-अस्मिता के रक्षार्थ प्रयास करने लगी - "अकेली औरत / चेहरे पर मुस्कान की तरह / गले में पेंडेंट पहनती है / कानों में बुंदे / उँगली में अँगूठियाँ / और इन आभूषणों के साथ / अपने को लैस कर बाहर निकलती है / जैसे अपना कवच साथ लेकर निकल रही हो"8

इस संग्रह को पढ़ने के बाद अगर ठंडे दिमाग से विचार किया जाए तो महसूस होता है कि कवयित्री के स्वर इनकी हर कविता में "तीखे होते चले गए है"- इन कविताओं में इन्होंने स्त्री की पीड़ा, हताशा और द्वन्द्व को

बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

संख्या के धरातल पर हम देखें तो सुधा अरोड़ा के दो ही काव्य संग्रह प्रकाशित हुए लेकिन उनके काव्यकर्म का कैनवास बड़ा है जिसके भीतर व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक सरोकार समाहित हैं। वस्तुत: सुधा जी ऐसी रचनाकार हैं जो हमेशा समाज में अपेक्षित, वंचित एवं हाशिए पर खड़ी स्त्री के साथ खड़ी दिखाई देती है। इनका कवि मन घोर अमानवीय शक्तियों के सामने भी हार नहीं मानता और इनका सामना करने के संकल्प से युक्त दिखाई देता है। उनके इस संकल्प को उनकी कविता - "वह लड़की मौजूद है एक अध्याय की तरह में देखा जा सकता है - "एक लड़की ने कर दिया है इन्कार / अपनी आत्मा को होने से प्रदूषित / उसने भाँप लिया है चटख रंगों के बीच / - बैठा निषाद - / नकार दिया है घुटन और तनाव की मुख्यधारा को / और बचा ली है कोमलता और संवेदना की नमी"9

जीवन कर्म योग है, एक साधना है, मूल्यों की खोज और प्राप्ति है और इसीलिए वरेण्य है।"10 लेकिन समाज में होने वाले परिवर्त्तनों ने इस धारणा को भी परिवर्तित कर दिया। विज्ञान के आविर्भाव ने मानव को भौतिकता के संमदर में डूबोकर अत्याधिक स्वार्थी बना दिया फलत: घोर अवमूल्यन की स्थिति पैदा हुई। वर्त्तमान सामाजिक परिवेश में मानव पर स्वार्थ इतनी हावी हो गई कि वह समस्त नैतिक दायित्वों को भूलकर केवल स्वार्थ सिद्धि में लिप्त हो गया। मानव को परिवर्त्तन चक्र ने ऐसे बदलकर रख दिया कि सारे उदात्त मूल्य व्यक्ति के जीवन से गायब हो गए। आदर्शो और सिद्धान्तों की बलि चढ़ाकर सुविधाओं और उच्च जीवनयापन की लालसा ने व्यक्ति को चारित्रिक पतन की ओर धकेल दिया, तभी तो वे अपनी कविता "अब हम आँसुओं से नहीं, अपनी आँख के लहू से बोलेंगे में लिखती हैं - दामिनी ! / जीना चाहती थीं तुम / कहा भी था तुमने बार-बार / दरिंदों से चींथी हुई देह से जूझते हुए / मौत से लड़ती रही बारह दिन / कोमा में बार-बार जाती / लौट-लौट आती / कि शायद साँसे सँभल जाए / आखिर सारी प्रार्थनाएँ अनसुनी रह गई / दुआओं में उठे हाथ थम गए / अपने जीवन की जलती मशाल छोड़ कर / देह से तुम चली गई / पर हर जिंदा देह में अमानत बनकर ढल गई" 11

इन्होंने स्त्री जीवन के भीतर के भयावह सच को बहुत सहज ढंग से काव्यानुभूति में परिवर्तित कर एक नए रूप में, नए अर्थ के साथ आग्रह भरे स्वर में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में स्त्री चाहे विषय के रूप में आई हो या विषयी के रूप में उसका एक लम्बा इतिहास रहा है। सुधा अरोड़ा स्त्री की भूमिका को पुनर्परिभाषित करना चाहती है।

संस्कृति नैतिकता, परम्परा और मर्यादा की सुरक्षा के नाम पर सदियों से नारी उत्पीड़ित और दमित हो रही हैं। धार्मिक, सांस्कृतिक मिथकों और आख्यानों में अवस्थित ईश्वरीय विधि-विधान का वास्ता देकर स्त्रियों को नित्यावादी अन्धविश्वासी, रूढ़िग्रस्त बना दिया गया। पितृसत्तात्मक मूल्य व्यवस्था में घर और बाहर दोनों जगह पुरुष संरक्षण के बीच आँकी जाती रहने के कारण उसे दोयम दर्जे ही हासिल हुआ। घर के कामों में बँधी वह स्वयं को 'कमतर' देखने की आदी होती गई। विडंम्बना ही है कि उसने अपने जीवन का सारा तत् अपने भीतर बैठाये गए सत् से जुड़ा हुआ महसूस किया। उसकी अपनी न तो स्वतंत्र गति थी, न ही दिशा।

सुधा अरोड़ा की कविता के कैनवास के केन्द्र में स्त्री अपने अनेक रूप और रंग में विद्यमान है। महानगर और जनपद, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी, बालक और वृद्ध परिवार और समाज तक उसकी संवेदना का विस्तार है। उपेक्षित मानवीयता और उसकी विवशता भी उनकी कविताओं में प्रकट होती है।

यह काव्य संकलन सुधा अरोड़ा की प्रतिमा के साथ न्याय करता है एवं इसमें संकलित तमाम कविताएँ अपनी अभिव्यक्ति के दायरे में जीवन की सहज अनुभूतियों और संवेदनाओं को प्रकट करती है। अपने समय और समाज की विसंगतियों की पहचान इस संग्रह की कविताओं का एक खास गुण है और इसे काफी सरलता जीवंतता से इन कविताओं में दर्ज देखा जा सकता है। इस दौरान यथार्थ की बेहद खुरदुरी जमीन पर विचरता कवयित्री का बेचैन मन नाना प्रकार के झूठ-फरेब से सँवरती बदलती दुनियाँ में स्त्रियों के दुख, आम आदमी के दुख और उसके जीवन की कठिनाइयों से खास तौर पर रूबरू होता दिखाई देता है।

000

संदर्भ- 1 सदियों के खिलाफ तैयार हो रहा है एक मोर्चा- 'कम से कम एक दरवाजा' काव्य संग्रह- बोधि प्रकाशन-दूसरा संस्करण, जून-2017 पृष्ठ सं.-115, 2मौत के साये - कम से कम एक दरवाजा - काव्य संग्रह - बोधि प्रकाशन, दूसरा संस्करण जून-2017 पृष्ठ सं.-136, 3'अकेली औरत का रोना' 'कम से कम एक दरवाजा' काव्य संग्रह - बोधि प्रकाशन, दूसरा संस्करण जून-2017 पृष्ठ सं.-25, 4शंतरज के मोहरे 'कम से कम एक दरवाजा' काव्य संग्रह - बोधि प्रकाशन, दूसरा संस्करण जून-2017 पृष्ठ सं.-48, 5कि बची रहे धरती की सुन्दरता - कम-से-कम एक दरवाजा कविता-संग्रह-बोधि प्रकाशन, दूसरा संस्करण जून-2017- पृष्ठ सं.-98, 6अब हम आँसुओं से नहीं अपनी आँख के लहू से बोलेंगे - कम से कम एक दरवाजा-काव्य संग्रह-बोधि प्र0 जून 2017 - पृष्ठ सं. 100, 7कम से कम एक दरवाजा- 'कम से एक दरवाजा- काव्य-संग्रह-बोधि प्रकाशन दूसरा सं. जून 2017 - पृष्ठ सं.-50, 8 उसका अपना आप-कम से कम एक दरवाजा-काव्य-संग्रह बोधि प्र., जून-2017, पृष्ठ सं.-45, 9 वह लड़की मौजूद है एक अध्याय की तरह कम से कम एक दरवाजा-काव्य संग्रह बोधि प्र. जून 2017 - पृष्ठ सं.-82, 10 डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-समकालीन विद्धान्त और साहित्य, मैकमिलन क. ऑफ इंडिया,1976 - पृष्ठ सं.-82, 11अब हम आँसुओं से नहीं, अपनी आँख के लहू से बोलेंगे - कम से कम एक दरवाजा काव्य-संग्रह-बोधि प्रकाशन, दूसरा सं. - जून 2017 - पृष्ठ सं.-100

(शोध आलेख)

भारतीय लेखक की अनूदित आत्मकथा: सत्य के प्रयोग (महात्मा गाँधी के सन्दर्भ में)

शोध लेखक : प्रो. राखी उपाध्याय
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

प्रो. राखी उपाध्याय
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून
मोबाइल- 9411190099
ईमेल- drrakhi.418@gmail.com

भारतीय लेखकों की अनूदित कृतियों में सर्वश्रेष्ठ कहलाने के अधिकारिणी हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा अनूदित महात्मा गाँधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग'शीर्षक से सस्ता साहित्य मंडल से 1927 ई. में छपी। इसके लगभग बीस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

महात्मा गाँधी की आत्मकथा की लोकप्रियता का अनुमान उसके अद्वितीय प्रचार और प्रसार से लगाया जा सकता है। संसार की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ, हिन्दी में ही लगभग पचास संस्करणों में लाखों प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह सम्मान कृति की अपेक्षा कृतिकार की लोकप्रियता का प्रतीक अधिक है।

महात्मा गाँधी की आत्मकथा 1926 ई. में गुजराती में और 1927 ई. में हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित हुई। प्रथम 20 वर्षों (सन् 1927 से 1947 ई.) (उनके बलिदानोपरान्त) प्रकाशित प्रतियों की क्रमिक तुलना से पता लगता है कि महात्मा गाँधी की लोकप्रियता के साथ-साथ उनकी आत्मकथा की लोकप्रियता भी बढ़ी। यहाँ यह अवश्य मान कर चलना चाहिए कि किसी कृति के गुणावगुण की परीक्षा उसके विषय-विवेचन एवं अन्त:साक्ष्य पर अवलंबित होनी चाहिए, प्रचार, प्रसार की कसौटी आंशिक रूप से ही खरी उतर सकती है। किन्तु यह लिखने में कोई संकोच नहीं होता कि महात्मा गाँधी की आत्मकथा एक विनम्रतापूर्ण आत्म-विश्लेषण तथा अतीत-विवेचन का महाप्रयास है।

कृति के शीर्षक 'सत्य के प्रयोग'से भी यह प्रतीति स्पष्टत: होती है कि लेखक अपने जीवन को प्रयोग-स्थल बनाकर उस पर अनेक परिस्थितियों में बार-बार नए परीक्षण करके उनके परिणाम संसार के सामने रखने की चेष्टा कर रहा है। जब सत्य के ही प्रयोग स्पष्ट करने हों तो उनमें किसी प्रकार का दुराव-छिपाव असह्य होता है। अत: इसमें छोटी से छोटी, घृणित, लज्जा, अपमान या आत्मग्लानि से सम्बन्धित घटना को भी छिपाया नहीं गया है। महात्मा गाँधी ने लिखा है- इस संकुचित क्षेत्र में आत्मकथा के मेरे लेखों से बहुत कुछ मिलेगा, क्योंकि कहने योग्य एक भी बात मैं छिपाऊँगा नहीं। मुझे आशा है कि मैं अपने दोषों का ख्याल पाठकों को पूरी तरह दे सकूंगा। मुझे सत्य के शास्त्रीय प्रयोगों का वर्णन करना है। मैं कितना भला हूँ, इसका वर्णन करने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है।'

'मेरे मन में सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित वस्तुओं का समावेश हो जाता है। इसमें सत्य से भिन्न माने जाने वाले अहिंसा, ब्रह्मचर्य इत्यादि के प्रयोग भी आ जाएँगे। यह सत्य स्थूल वाचक सत्य नहीं है। यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य केवल हमारा कल्पित सत्य ही नहीं है। बल्कि स्वतंत्र चिरस्थायी सत्य है, अर्थात् परमेश्वर ही है।'

अभिमानशून्यता, सरलता, विनीतता एवं अकिंचनता के भाव इस आत्मकथा में इसलिये भी अनिवार्यत: आ गए हैं, क्योंकि लेखक इन्हीं के सहारे अपने प्रयोगों को आगे बढ़ा सका है-

'सत्य की शोध के साधन जितने कठिन हैं, उतने ही सरल भी हैं। वे किसी भी अभिमानी को असम्भव मालूम होंगे और एक निर्दोष बालक को बिल्कुल सम्भव लगेंगे। सत्य के शोधक को रजकण से भी नीचे रहना पड़ता है। सारा संसार रजकणों को कुचलता ही है।'

सवा चार सौ (425) पृष्ठों की इस आत्मकथा में प्रस्तावना और पूर्णाहुति के अतिरिक्त 167 प्रसंग हैं, जिन्हें पाँच भागों में बाँटा गया है। प्रथम भाग में वंश-परिचय, शैशव, बाल-विवाह, शिक्षा, विलायत की शिक्षा तथा वापसी का वर्णन है। द्वितीय में वकालत के प्रयोग, भारत में असफलता, दक्षिण अफ्रीका गमन, नेटाल में बसना, नेटाल इंडियन कांग्रेस तथा वापसी का वर्णन है। तीसरे और चौथे भाग में राष्ट्रीय समस्याओं में कूदना, पारिवारिक उत्तरदायित्व, दक्षिण अफ्रीका में सक्रिय संघर्ष, फिनिक्स आश्रम की स्थापना, गोखले से संबंध आदि प्रसंग मिले-

जुले हैं। इस काल में भारत और दक्षिण अफ्रीका में आना-जाना लगा रहा। पाँचवें भाग में लेखक द्वारा भारतीय समस्याओं का अध्ययन तथा सार्वजनिक जीवन में प्रथम प्रवेश का चित्रण है। इससे पूर्व दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष के अनुभवों की समृद्धि को लेकर वे संघर्ष-कुशल हो चुके थे। आरम्भ में वे अपने को कांग्रेस में बहुत छोटा पाते थे। क्रमिक संघर्ष और अनुपम व्यक्तित्व गुणों ने उन्हें क्रमश: सर्वोपरि बना दिया। अछूतोद्धार, स्वदेशी आंदोलन, स्वालम्बन, सादगी, सत्याग्रह व अहिंसा आदि के प्रचार द्वारा वे लोकप्रिय हो ही चुके थे। अमृतसर की कांग्रेस के समय से उन्होंने दृढ़ता के साथ कांग्रेस पार्टी में प्रवेश किया। सन् 1920 ई. में नागपुर सम्मेलन में महासभा का विधान पास कराना तथा असहयोग आंदोलन के साथ पूर्ण स्वराज्य के संकल्प का नारा देना उनके जीवन की ऐसी सफलताएँ थीं, कि इससे वे खुलकर सार्वजनिक जीवन में आ गए।

यहाँ यह आश्चर्यजनक समानता फिर चौंकाती है कि जिस विनम्रता, कर्त्तव्यशीलता, अहंकार-शून्यता एवं आत्म-श्लाघा से बचने की प्रवृत्ति ने इस युग के प्रख्यात आत्म कथाकारों स्वामी दयानन्द, भाई परमानन्द, श्रद्धानन्द व रवीन्द्र नाथ ठाकुर- को अपने जीवन शिखर के पास पहुँचने से कुछ पहले ही अपने समृद्धिकाल के परिदृष्ट अनुभवों का वर्णन करने से रोक लिया था, महात्मा गाँधी भी ठीक उसी भावना से लिख गए-

'इसके आगे मेरा जीवन इतना अधिक सार्वजनिक हो गया है कि शायद ही कोई चीज ऐसी हो, जिसे जनता जानती न हो। फिर सन् 1921 से मैं कांग्रेस के नेताओं के साथ इतना अधिक ओत-प्रोत होकर रहा हूँ कि किसी प्रसंग का वर्णन, नेताओं के संबंध की चर्चा किये बिना, मैं यथार्थ रूप में कर ही नहीं सकता।'

लेखक ने इस आत्मकथा को लिखते हुए एक विशेष प्रकार की मानसिक सावधानी को सदैव बनाये रखा है। उन्होंने अपने को कुछ विशेष सिद्धान्तों की प्रयोगशाला मान लिया था, और उन प्रयोगों में उन्होंने अपनी पत्नी और सन्तान को भी सम्मिलित करने का प्रयास किया। वे प्रयोग थे सत्य, त्याग, संयम, ब्रह्मचर्य, सादगी, स्वदेशी, खादी, प्राकृतिक चिकित्सा और उपवास-धारण आदि के। शैली इस प्रकार की रखी गई है कि घटनाओं के तारतम्य की अपेक्षा प्रयोगों की तैयारी, कठिनाइयाँ, सफलताएँ या विफलताएँ तथा प्रयोगों के संबंध-सूत्रादि परस्पर संयोजित दृष्टिगत होते हैं। पाठक को कुछ ऐसी प्रतीति होने लगती है कि मानो वह लेखक की कथायात्रा या भावयात्रा में सम्मिलित होने की अपेक्षा किसी प्रयोगशाला के महान कक्ष में प्रविष्ट हो गया है, और उसे एक प्रकोष्ठ से दूसरे प्रकोष्ठ को पार करते हुए पीछे लौट कर देखने का अवसर नहीं मिलता।

प्रयोगात्मकता का रहस्य तथा कथानायक के व्यक्तित्व का मूलसूत्र जानने को दृष्टि से प्रथम भाग (जन्म से वकील बनने तक) अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। उनके जीवन के गुणावगुण, इच्छाशक्ति व संकल्प साधना, दृढ़ता या दुर्बलता की आधारशिला इसी भाग में रखी गई है।

हितोपदेश की प्रसिद्ध सूक्ति है- 'यन्नवे भाजने लग्न: संस्कारो नान्यथा भवेत्।' अर्थात् मिट्टी के नए पात्र पर उत्कीर्ण प्रथम संस्कार कभी मिटाए नहीं जा सकते। 'कुछ अंशों में तो यह सिद्धान्त लेखक के जीवन पर पूर्णत: चरितार्थ होता है। जैसे श्रवण की जीवनकथा सुन देखकर आजीवन पितृ-भक्ति का व्यावहारिक संकल्प, मातृभक्ति, संयम तथा उपवास क्षमता, हरिश्चन्द्र का नाटक देखकर आजन्म सत्य का पालन का कठोर व्रत धारण करना, साल्ट की पुस्तक से अन्नाहार, बेल की पुस्तक से सादगी, रस्किन की पुस्तक से सर्वोदय का विचार, तथा रामायण, गीता, बाईबल व कुरान आदि से सर्वधर्म सहिष्णुता का आचरण आदि।'

ये जीवन-विश्लेषण के प्रसंग लेखक की लेखनी के द्वारा बड़ी स्पष्टता से अंकित हुए हैं। जैसे हरिश्चन्द्र और श्रवण की कथाओं का प्रभाव उन पर आजीवन रहा, भले ही 'उनकी ऐतिहासिकता के विश्वास' में शिक्षा-प्राप्ति के साथ अन्तर आ गया था- 'मैंने मान लिया था कि नाटक में जैसी लिखी हैं, वैसी ही विपत्तियाँ हरिश्चन्द्र पर पड़ी होंगी। हरिश्चन्द्र के दु:ख देखकर, उनका स्मरण करके मैं खूब रोया हूँ। आज मेरी बुद्धि समझती है कि हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं था। फिर भी मेरे विचार में हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं।'

कुमित्र के कुसंग का दुष्परिणाम इस प्रकार है- 'इसी सोहबत के कारण मैं व्यभिचार में भी फंस जाता। एक बार मेरे ये मित्र मुझे वेश्याओं की बस्ती में ले गए। वहाँ मुझे योग्य सूचनाएँ देकर एक स्त्री के मकान में भेजा। मुझे उसे पैसे वगैरा कुछ देना नहीं था। हिसाब हो चुका था। मुझे तो सिर्फ दिल बहलाव की बातें करनी थीं। मैं घर में घुस तो गया, पर जिसे ईश्वर बचाना चाहता है, वह गिरने की इच्छा रखने हुए भी पवित्र रह सकता है। उस कोठरी में मैं तो बिल्कुल अंधा बन गया। मुझे बोलने का भी होश न रहा। मारे शरम के सन्नाटे में आकर उस औरत के पास खटिया पर बैठा, पर मुँह से बोल न निकल सका। औरत ने गुस्से में आकर मुझे दो-चार खरी-खोटी सुनायीं, और दरवाजे की राह दिखाई।'

दोष-मुक्ति का श्रेय परमपिता परमात्मा को देकर अपने पश्चात्ताप धौर प्रायश्चित्त को लेखक ने इस प्रकार प्रकट किया है। 'उस समय तो मुझे जान पड़ा कि मेरी मर्दानगी को बट्टा लगा, और मैंने चाहा कि धरती जगह दे, तो उसमें समा जाऊँ। पर इस तरह बनने के लिए मैंने सदा ही भगवान् का आभार माना है। मेरे जीवन में ऐसे ही दूसरे चार प्रसंग और आए हैं। कहना होगा कि उनमें से अनेकों में, अपने प्रयत्न के बिना, केवल परिस्थिति के कारण मैं बचा हूँ। विशुद्ध दृष्टि से तो इन प्रसंगों में मेरा पतन ही माना जाएगा। चूंकि मैंने विषय की इच्छा की, इसलिये मैं उसे भोग ही चुका। फिर भी लौकिक दृष्टि से, इच्छा करने पर भी जो प्रत्यक्ष कर्म से बचता है, उसे हम बचा हुआ मानते हैं, और इन प्रसंगों में मैं इसी तरह, इतनी ही हद तक, बचा हुआ माना जाऊँगा।'

पिता की मृत्यु के समय स्त्री-प्रसंग के

आत्म-दोष से उद्वेजित लेखक का पश्चात्ताप आत्म-प्रतारण की स्थिति तक पहुँच गया- 'सेवा के समय भी विषय की इच्छा। इस काले दाग को मैं आज तक मिटा नहीं सका, भूल नहीं सका। सेवा के समय भी मेरा मन विषय को छोड़ नहीं सकता था। यह उस सेवा में रही हुई अक्षम्य त्रुटि थी।'

इस कृति की श्रेष्ठता का एक प्रमाण यह भी है कि लेखक जिस समय समस्त भारतीय जन-मानस का प्रिय नायक बना हुआ था, उसने मान-हानि की संभावना की विद्यमानता में भी तभी सत्यता पूर्वक आत्मदोषों का उद्घाटन किया- 'मुझे ख्याल है कि पर-स्त्री को देखकर विकारवश होने और उसके साथ रंगरेलियाँ करने की इच्छा पैदा होने का मेरे जीवन में यह पहला प्रसंग था। उस रात मैं सो नहीं सका। अनेक प्रकार के विचारों ने मुझ पर हमला किया। घर छोड़ दूँ? भाग जाऊँ? मैं कहाँ हूँ? अगर मैं सावधान न रहूँ, तो मेरी गति क्या हो? '

अपने स्वभाव-दोष के साथ पत्नी पर अत्याचार करने जैसे गर्हित गार्हस्थिक अपराध को भी छुपाने की आवश्यकता न समझते हुए कथानायक ने स्पष्टता के साथ लिखा- 'विलायत जाकर भी मैं अपने ईष्यालु स्वभाव को छोड़ नहीं पाया था, हर बात में मेरा छिद्रान्वेषण और मेरा संशय वैसा ही बना रहा। और अपनी इस कमजोरी का गुस्सा मैंने पत्नी पर उतारा। एक समय तो ऐसा भी आया जब मैंने उसे उसके मायके ही भेज दिया और अतिशय कष्ट देने के बाद ही फिर अपने साथ रखना स्वीकार किया।'

वर्तमान-बोध और प्रतीत-बोध की तुलना करके तटस्थ एवं निष्पक्ष टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है- 'मैं यह वर्णन आज तटस्थ भाव से कर सकता हूँ, क्योंकि यह घटना हमारे बीते युग की है। आज मैं मोहान्ध पति नहीं हूँ। शिक्षक नहीं हूँ। कस्तूरबाई चाहे तो मुझे आज धमका सकती है। आज हम परखे हुए मित्र हैं, एक दूसरे के प्रति निर्विकार हैं।'

आत्म-विषयक सत्य विश्लेषण करने के पश्चात् लेखक को आत्मेतर विषयों की निन्दास्तुति तटस्थ भावेन करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। सन् 1915 ई. में कुम्भ के मेले में लेखक को तिक्त-मधुर अनुभव हुए तो अंधविश्वास की समीक्षा उससे इस प्रकार की- 'यहाँ मैंने पाँच पैरों वाली गाय देखी। मुझे तो आश्चर्य हुआ, किन्तु अनुभवी लोगों ने मेरा अज्ञान तुरन्त दूर कर दिया। पाँच पैरों वाली गाय दुष्ट और लोभी लोगों के लोभ की बलिरूप थी। गाय के कंधे को चीरकर उसमें जिन्दे बछड़े का काटा हुआ पैर फंसाकर कंधे को सी दिया जाता था, और इस दोहरे कसाईपन का उपयोग अज्ञानी लोगों को ठगने में किया जाता था। पाँच पैरों वाली गाय के दर्शन के लिये कौन हिन्दू न ललचायेगा? उस दर्शन के लिये वह जितना दान दे, उतना कम है। यह कहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है कि इस प्रकार की श्रद्धा आत्मा को किस हद तक ऊपर उठाती होगी।'

उसी हरिद्वार यात्रा में लछमन झूला और स्वर्गाश्रम देखकर उन्हें किंचित् कष्ट हुआ, और गुरुकुल देखकर मानसिक शान्ति मिली- 'जब मैं पहाड़ से दीखने वाले महात्मा मुंशीराम जी के दर्शन करने और उनका गुरुकुल देखने गया, तो मुझे वहाँ बड़ी शान्ति मिली। हरिद्वार के कोलाहल और गुरुकुल की शान्ति के बीच का भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्मा जी ने मुझे अपने प्रेम से नहला दिया। ब्रह्मचारी मेरे पास से हटते ही न थे। रामदेव जी से उसी समय मुलाकात हुई, और उनकी शक्ति का परिचय में तुरन्त पा गया। मुझे गुरुकुल छोड़ते हुए दु:ख हुआ।'

विषयासक्ति से उभर कर गृहस्थ में वानप्रस्थ का आदर्श उपस्थित करना, सादगी, संयम, स्वदेशी, स्वावलम्बन, अहिंसा व अछूतोद्धार आदि प्रयोगों में अपने साथ क्रमश: परिवार, आश्रमवासियों तथा देश के नागरिकों को जोड़ पाना उनकी चरम सफलता थी। यही क्यों, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म और नैतिकता के सिद्धान्तों को राजनीति पर प्रभावी बनाकर साध्य के साथ साधनों की पवित्रता पर भी बल देना तथा क्रियात्मक रूप से इन प्रयोगों के बल पर भारतीय स्वतंत्रता की उपलब्धि, उनकी चमत्कारिक सफलता के प्रमाण है।

अपने जीवन-प्रयोगों की कथा का उपसंहार करते समय लेखक ने पाठकों तथा अनुवर्त्ती साधकों को सावधान करते हुए सुन्दर आत्म-मनोविश्लेषण किया है, जिससे उनके जीवन-संघर्ष की दुर्गमता, कठिन संकल्प-साधना और सुदृढ़ इच्छा-शक्ति का परिचय मिलता है- 'मन के विकारों को जीतना संसार को शस्त्र-युद्ध से जीतने की अपेक्षा मुझे अधिक कठिन मालूम होता है। हिन्दुस्तान आने के बाद भी मैं अपने भीतर छिपे हुए विकारों को देख सका हूँ, शरमिन्दा हुआ हूँ, किन्तु हारा नहीं हूँ।'

अत: नि:संकोच भाव से कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी की आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' जो प्रथम उत्थान काल में महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय और रवीन्द्रनाथ की आत्मकथाओं के तत्काल बाद लिखी गई (और संभवत: गुजराती में लिखित प्रथम आत्मकथा है) श्रेष्ठ आत्मकथाओं की प्रतियोगिता होने पर प्रथम पंक्ति में आने की योग्यता रखती है। सत्य कथन, तथ्य प्रतिपादन, आत्म-विश्लेषण, प्रतीत-पर्यालोचन एवं वर्तमान बोध के प्रस्तुतीकरण आदि की दृष्टि से भी यह श्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण आत्मकथा है।

इस प्रकार प्रथम उत्थान काल में भारतीय लेखक महात्मा गाँधी की अनूदित आत्मकथा, आत्मकथा की परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। आत्मकथा के मानदण्डों पर पूरी उतरने वाली उच्चस्तरीय तथा आदर्श आत्मकथा है। इस पर पूर्ववर्ती आत्मकथाओं का प्रभाव हो या न हो परवर्ती आत्मकथाकारों को निश्चित ही इसने प्रेरणा प्रदान की है।

000

संदर्भ-

गाँधी, महात्मा, सत्य के प्रयोग, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ.- 9, वही पृ.- 7-8, वही पृ.- 8, वही, पृ.- 432, वही, पृ.- 5, वही, पृ.- 19, वही, पृ.- 19, वही, पृ.- 25, वही, पृ.- 62, वही, पृ.- 78, वही, पृ.- 239, वही, पृ.- 339, वही, पृ.- 340, वही, पृ.- 433

(शोध आलेख)

विज्ञापन के बदलते आयाम

शोध लेखक : डॉ. अनिल कुमार गुप्ता

वर्तमान युग भौतिकवाद की छाया में पल्लवित हो रहा है। आज मानव हर क्षेत्र में प्रतिस्पलर्धा का सामना कर रहा है। दैनिक जीवन में भौतिक सुविधाओं की नित नई जरूरतों ने मानव के जीवन को बहुआयामी बना दिया है। इस कारण भौतिक संसाधनों का एक बहुत विशाल बाजार तैयार हो गया है। जिसमें कई उत्पादों की खरीदी-बिक्री होती है, जिसमें विज्ञापन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आज विज्ञापन मानव जीवन का एक हिस्सा बन गया है। मानव जीवन में खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन, फैशन आदि विज्ञापन से प्रभावित होते हैं। मनुष्यं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी विज्ञापन से प्रभावित होती हैं।

विज्ञापन शब्द दो शब्दों के योग से बना है-वि + ज्ञापन। 'वि' उपसर्ग है और उसका अर्थ होता है-'विशेष' तथा 'ज्ञापन' शब्द का अर्थ सूचना का ज्ञान या प्रस्तुपत करने से है। इसका मिश्रित अर्थ सामान्य रूप में 'किसी वस्तु या तथ्य की विशेष जानकारी देना' या 'किसी वस्तु या तथ्य के विषय में विशेष प्रकार से प्रस्तुत करने से है'। अंग्रेजी में इसे एडवरटाइजमेंट कहा जाता है, जो लैटिन-भाषा के 'एडवर्टर' से बना है जिसका अर्थ किसी ओर मुड़ना, किसी के प्रति या किसी ओर आकर्षित होना या किसी को आकर्षित करने से है।

विज्ञापन के बारे में कहा जाता है कि टकसाल के अलावा यदि कोई सिक्का ढाल सकता है तो वह विज्ञापन है। अर्थशास्त्र की भाषा में किसी वस्तु को क्रय करने के लिए व्याक्ति के पास तीन चीजें होना आवश्यक होता है, एक उस वस्तु की आवश्यभकता, दूसरा उस वस्तु को खरीदने के लिए पैसे तथा तीसरी उस वस्तु को खरीदने के लिए तत्परता। अमूमन लोगों को वस्तु की आवश्यकता भी होती है तथा पैसा भी होता है फिर भी वह उस वस्तु को नहीं खरीद पाता है क्यों कि उस वस्तु को खरीदने की तत्पयरता नहीं होती है। इसलिए विज्ञापन उस तत्परता को सक्रिय कर देता है और इसी के दृष्टिगत विज्ञापन तैयार किए जाते हैं।

विज्ञापन संचार का सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ आसानी से प्रसारित होती हैं। विभिन्न प्रकार के व्यापार, सेवा तथा उत्पाद इसके माध्यम से बेचे जाते हैं। व्यापार, संस्था और व्यक्ति इसके माध्यम द्वारा संवाद करते हैं। विज्ञापन प्रचार का ऐसा साधन है, जो बिना किसी राजनीतिक, धार्मिक या सांप्रदायिक दबावों के जनता या उपभोक्ता में अपने लिए आवश्यकता या रुझान उत्पन्न करता है तथा अपनी उत्तमता और उपयोगिता की बातें दुहराकर उपभोक्ता की क्रय शक्ति का विकास करता है।

विज्ञापन का उद्देश्य नए उत्पादों के बारे में ग्राहकों को सूचना देना, नए उत्पादों या नए विचारों को प्रोन्नत करना, उत्पादों की विशेषताओं की ओर ग्राहकों को आकर्षित करना, अपने उत्पादों के संबंध में अपने मत की पुष्टि करना, अपने मत की पुष्टि के लिए उचित वातावरण तैयार करना, अपने विरोधियों के तर्कों को गलत बताना, जनमत जाग्रत करना, उत्पाद की बाज़ार में पूर्व-निर्मित छवि को सँभालकर रखना, कड़ी स्पर्धा के कारण बाज़ार में लुप्त होते उत्पाद को पुन: स्थापित करना, उपभोक्ताओं की आदतों को अपने उत्पाद के पक्ष में बनाए रखना, उत्पाद के प्रति दीर्घ अवधि तक विश्वास पैदा करना एवं उसे लंबे समय तक बनाए

डॉ. अनिल कुमार गुप्ता,
ए-117, सागर प्रीमियम टावर्स, फेज-2,
कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)
पिन- 462042,
मोबाइल- 9425003646
ईमेल- anil9425003646@gmail.com

रखना आदि है। विज्ञापन अपने ज्ञान, विचार, उत्पाद, अनुसंधान खोज एवं आविष्कारों के प्रदर्शन का वह सार्थक मंच है जो न केवल उपभोक्ताओं, पाठकों, दर्शकों अथवा श्रोताओं को उस मूलभूत वस्तु, ज्ञान अथवा उत्पाद की जानकारी प्रस्तुत करता है अपितु उसे संबंधित बाज़ार में उपलब्ध अभी तक की श्रेष्ठतम कृति बताते हुए बदले में अधिक आर्थिक प्राप्ति अथवा खरीद हेतु पाठक, श्रोता अथवा उपभोक्ता को प्रेरित करता है।

विज्ञापन के भी वही माध्यम हैं जो संचार के माध्यम होते हैं। विज्ञापन के लिए सूचना-संचार के सभी तरह के माध्यम अपनाए जाते हैं जैसे- मुद्रण माध्यम-समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, इलेक्ट्रॉ निक माध्यम- रेडियो, मुनादी, टेलीविज़न तथा इंटरनेट आदि। इसके अलावा फिल्म, आउट डोर, होर्डिंग, पर्चे, पोस्टर, बैनर, प्रदर्शनी, स्टीकर, उपहार, डायरी, कलैंडर आदि। इन सभी संचार माध्यमों से विज्ञापन किया जा सकता है। विज्ञापन के विभिन्न प्रकार होते है जैसे- अनुनय विज्ञापन, सूचनाप्रद विज्ञापन, संस्थानिक विज्ञापन, औद्योगिक विज्ञापन, वित्तीय विज्ञापन, वर्गीकृत विज्ञापन आदि। विज्ञापन के इन प्रकारों का उपयोग आवश्योकतानुसार किया जाता है।

मनुष्य की जरूरतों, लिंग, आयु, क्षेत्र, वर्ग आदि के बदलने पर विज्ञापन के मायने बदल जाते हैं जैसे- युवाओं के लिए अलग प्रकार के विज्ञापन बनाए जाते है क्योंसकि उनके उपयोग की वस्तुएँ अलग होती है, महिलाओं के लिए उनके उपयोग के हिसाब से विज्ञापन बनाए जाते हैं। इसी तरह उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग के लिए तथा ग्रामीण व शहरी पृष्ठभूमि के लिए विज्ञापन के तरीके अलग-अलग हो जाते हैं। विज्ञापन के लिए संचार माध्यमों का चयन सबसे महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसके लिए यह देखा जाता है कि उत्पाद के लिए उपभोक्ता किस प्रकार का है, उसी हिसाब से संचार माध्यमों का चयन, उसका प्रदर्शन किया जाना उचित होता है अन्यथा उपभोक्ता के लिए विज्ञापन का कोई अर्थ नही होता है।

उदाहरण के तौर पर यदि कोई लिपिस्टिक के उत्पाद का विज्ञापन है तो यह तो तय हो जाता है कि यह विज्ञापन महिलाओं के लिए है, अब यह देखा जाता है कि यह लिपिस्टिक शहरी क्षेत्र की महिलाएँ और उनमें भी यदि अधिक कीमत की है तो वह उच्च आर्थिक स्थिति की महिलाएँ ही उसे उपयोग कर पाएँगी। इसलिए विज्ञापन के लिए उन संचार माध्यमों का प्रयोग किया जाएगा जिसका उपयोग वे महिलाएँ करती हों। जैसे- टेलीविजन अर्थात टेलीविजन उस उत्पाद के विज्ञापन के लिए उचित होगा क्योंकि वे महिलाएँ टेलीविजन का उपयोग करती होगी। अब यह देखना होगा की टेलीविजन पर विज्ञापन का प्रसारण किस समय किया जाना उचित होगा। चूंकि अधिकांश महिलाएँ दोपहर के समय दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर टेलीविजन पर आने वाले धारावाहिक देखना पसंद करती है, इसलिए दोपहर का समय विज्ञापन के लिए उचित समय होगा। इसी तरह विज्ञापन के कंटेंट तय किए जाते है जैसे महिलाओं की पसंदीदा अभिनेत्री को उस लिपिस्टिक का उपयोग करते हुए दिखाया जाए तो महिलाएँ ज्यादा प्रभावित होंगी। इस प्रकार से विज्ञापन के कंटेंट, संचार के माध्यम, उनके प्रसारण का समय तथा लक्ष्य, समूह के हिसाब से ही विज्ञापन तय किए जाते हैं।

यदि देखा जाए तो पूर्व में दीवारों पर लेख, मुनादी, हरबोले, लोककला आदि के माध्य म से विज्ञापन किए जाते थे, समाचार पत्रों के प्रकाशन होने के बाद समाचार पत्र विज्ञापन का सबसे अच्छा माध्यम बन गया। रेडियो के अविष्कार के बाद रेडियो पर विज्ञापन का प्रसारण होने लगे तथा टेलीविजन आ जाने पर विज्ञापन की गहरी छाप लोगों पर देखने को मिली क्योंकि दृश्य एवं श्रव्य माध्यम होने के कारण टेलीविजन लोगों में ज्यादा लोकप्रिय हुआ है। उदाहरण के तौर पर वाशिंग पावडर निरमा के विज्ञापन देखकर लोगों ने वाशिंग पावडर का नाम ही निरमा रख दिया और जब लोग वाशिंग पावडर खरीदते तो कहते कि निरमा दे दीजिए। टेलीविजन आ जाने से विज्ञापनों में प्रतिस्पर्धा होने लगी यहाँ तक कि विज्ञापन कंपनियाँ अपने उत्पाद को श्रेष्ठ बताने के लिए दूसरे उत्पादों को खराब बताने लगी, जो एक प्रकार से उचित नहीं है। वर्ष 1998 से 2017 तक रेडियो और टेलीविज़न विज्ञापन के प्रमुख माध्यम थे। समय के साथ इंटरनेट आ जाने से अब विज्ञापन का स्वरूप बहुआयामी हो गया है। एक ही प्रोडक्ट के विज्ञापन को कई तरीके से देखा जाने लगा है। सोशल मीडिया व इंटरनेट से विज्ञापनों में और अधिक प्रतिस्परर्धा होने लगी है। यहाँ तक कि अब आम व्यक्ति इसमें भ्रमित हो जाता है कि वह कौन सा उत्पाद खरीदें।

वर्तमान में ऑनलाइन विज्ञापन ज्यादा प्रभावी दिखायी देते हैं तथा उनके तरीके हर दिन बदल रहे हैं। आज सभी कंपनियाँ अपने विज्ञापन संदेश को संपादकीय विषयवस्तु या अन्य महत्त्वपूर्ण सेवाओं में शामिल करने की माँग कर रही हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से भी विज्ञापन तेजी से हो रहा है। पहले की तुलना में आज ऑनलाइन विज्ञापन पर खर्च अधिक किया जा रहा है, क्योंकि इंटरनेट की पहुँच इतनी नहीं थी न ही पहले इतना लोकप्रिय था। अब इंटनेट तकनीकी सभी चीजों को प्रभावित कर रही है। इसलिए विज्ञापन के तरीके भी इससे प्रभावित हो रहे हैं। ऑनलाइन विज्ञापनों में डिसप्ले विज्ञापन, वेब बैनर, फ्रेम विज्ञापन, पॉप्स अप/पॉप अंडर विज्ञापन, फ्लोटिंग विज्ञापन, एक्स्पेंडिंग विज्ञापन, ट्रिकी बैनर तथा न्यूज़फीड विज्ञापन का उपयोग किया जाता है। डिसप्ले विज्ञापन में टेक्स्ट, लोगो, एनीमेशन, वीडियो, फोटोग्राफ का उपयोग कर इंटरनेट द्वारा विज्ञापन किया जा रहा है।

ये विज्ञापन अपने उपयोगकर्ता के कुछ गुणों की जानकारी उसके इंटरनेट उपयोग से प्राप्त करते हैं। फिर उपयोगकर्ता के ऑनलाइन खोज के आधार संबंधित विज्ञापन उसे दिखाते हैं। ऑनलाइन विज्ञापन में कुकीज का उपयोग किया जाता है। इसलिए जब हम इंटरनेट पर किसी सूचना को सर्च करते है तो कई वेबसाइट तभी खुलती है जब हम कुकीज को स्वीकार कर लेते है और इसी से ये कुकीज

उपयोगकर्ता द्वारा खोजे गए वस्तुओं का पता लगा कर, संबंधित वस्तु के ही विज्ञापनों को दिखा कर उन्हें आकर्षित करते है। विज्ञापन निर्माता ऑनलाइन उपयोग करने वाले के सभी ब्राउजरों तथा वेबसाइटों से उसकी ऑनलाइन गतिविधियों का डेटा तैयार कर प्रोफाइल बनाते हैं। फिर उस व्यक्ति के व्यवहार से संबंधित विज्ञापनों का प्रदर्शन कर लोगों को प्रभावित करते हैं। उपयोगकर्ता के आईपी एड्रेस से उसके जगह की जानकारी ले कर, उपयोगकर्ता के भौगोलिक स्थिति या स्थान के आधार पर भी ऑनलाइन डिसप्ले विज्ञापन दिखाया जाता है। वेब बैनर विज्ञापन का उपयोग ऑनलाइन ग्राफिकल विज्ञापन करने के लिए किया जाता है। यह विज्ञापन सर्वर द्वारा उपभोक्ता को भेजा जाता है। यह विज्ञापन एडोब फ़्लैश, जावा, एचटीएमएल तथा अन्य प्रोग्रामों का उपयोग कर श्रव्य, दृश्य-श्रव्य, एनीमेशन, बटन, फॉर्म्स तथा अन्य इंटरेक्टिव अप्लिकेशन द्वारा किया जाता है। फ्रेम विज्ञापन वेब विज्ञापन का प्रथम स्वरूप था। वेबसाइट प्रकाशक इस विज्ञापन को अपने वेबसाइट पर फ्रेम में निश्चित स्थान पर प्रदर्शित करता है। पॉप-अप विज्ञापन नए वेब ब्राउजर विंडो में प्रदर्शित होता है जो वेबसाइट विजिटर की प्रारंभिक वेब ब्राउजर में खुलता है। फ्लोटिंग या ओवेरले विज्ञापन अधिक मीडिया तत्त्वों से बना विज्ञापन है जो एक निश्चित समय सीमा के बाद गायब हो जाता है। यह टेक्स्ट,वीडियो, फोटोग्राफ तथा ऑडियो वाला एक समृद्ध मीडिया विज्ञापन कहलाता है। ऑनलाइन विज्ञापन में ट्रिक बैनर तथा न्यूज़ फीड विज्ञापन का उपयोग होने लगा है। ट्रिक विज्ञापन एक बैनर विज्ञापन है जो उपयोगकर्ता के स्क्रीन को अनुशरण करता है। इस प्रकार आज इंटरनेट पर विज्ञापन अधिक प्रचलन में आ चुका है, यह विज्ञापन का आसान तरीका भी है। परन्तु इसके लिए उपयोगकर्ता को इंटरनेट का उपयोग करना होगा तभी वह विज्ञापन देख सकता है।

आज के इस सूचना प्रौद्योगिकी के दौर में मीडिया के आयाम बदलने के साथ-साथ विज्ञापन के आयाम भी बदले हैं। लोगों की जरूरतें भी समय के साथ बदली है। एक समय विज्ञापन के लिए संचार का सबसे अच्छान माध्ययम रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र तथा मुद्रित मीडिया हुआ करते थे परन्तुच आज इंटरनेट के आ जाने से सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, ट्वीटर, लिंकडिन तथा इंटरनेट आदि विज्ञापन के सशक्त माध्यम बन गए हैं। इससे अधिक क्रांतिकारी परिवर्तन ऐन्ड्राइड मोबाइल फोन आ जाने के कारण विज्ञापन की दुनिया मोबाइल में सिमट कर रह गई है। क्योंकि आज समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो, सोशल मीडिया सब कुछ मोबाइल में उपलब्ध हैं। इसके अलावा समय के साथ लोगों की जरूरतों की प्राथमिकताएँ भी बदली है इस कारण विज्ञापन का प्रकार व स्वरूप भी बदल गया है।

पहले लोगों की जरूरत में कास्मेटिक सामग्री, साबुन, तेल, वाशिंग पावडर, अण्डर गारमेंट, मोटर साइकिल आदि हुआ करते थे परन्तु आज मोबाइल फोन, कार, फेशन के ब्रांडेड वस्त्र, होटल, डिलेवरी करने वाली कंपनी, सामान बेचने वाले मार्ट, मोबाइल एप्लीकेशन आदि के विज्ञापन ज्यादा देखने को मिलते है। उत्पाद निर्माता कंपनियों की संख्या अधिक होने से प्रतिस्पर्धा के कारण विज्ञापनों का प्रचलन भी बढ़ गया है। अब उत्पाद निर्माता कंपनियाँ विज्ञापन के माध्यपम से उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विज्ञापन पर अधिक पैसा खर्च करने लगी है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विज्ञापन का स्वरूप तथा प्रकार दिन-प्रतिदिन बदल रहा है और जैसे-जैसे उत्पाद निर्माता कंपनियों की संख्या बढ़ रही है व उनमें प्रतिस्पर्धा हो रही है, उससे विज्ञापन की महत्तता और भी अधिक उपयोगी होती जा रही है। विज्ञापन की डिजाइन, उसके कंटेंट, भाषा, पात्र आदि का स्वरूप भी बदल गया है साथ ही विज्ञापन के माध्यम भी बदलते जा रहे हैं। इसके अलावा इंटरनेट और सोशल मीडिया के प्रभाव ने विज्ञापन को और अधिक बहुआयामी बना दिया है।

000

नई पुस्तक

(उपन्यास)

पंख से छूटा

लेखक : प्रज्ञा पांडेय

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

अपने अलग तरह के गद्य के लिए चर्चित लेखिका प्रज्ञा पांडेय का यह पहला ही उपन्यास है। 2012 में पहली कहानी 'जीने से पहले' 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित। वर्तमान में अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं कथादेश, ज्ञानोदय, दूसरी परम्परा, समकालीन साहित्य, आउट लुक, पुनर्नवा आदि में एक दर्जन से अधिक कहानियां प्रकाशित। स्त्री से सम्बंधित लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'ऑफ व्हाइट' शीर्षक से एक कहानी संग्रह। आबूधाबी से, निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका 'निकट' में लगभग आठ वर्षों तक सम्पादन कार्य का अनुभव। प्रज्ञा पांडेय ने इस उपन्यास में स्त्री मन को गहरे उतर कर जानने की कोशिश की है। उपन्यास के पात्रों के माध्यम से स्त्री की दुनिया के अनछुए तथ्यों को रौशनी में लाने का प्रयास किया है। प्रज्ञा पांडेय का यह पहला उपन्यास नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन द्वारा लाए जा रहे सेट में शामिल है तथा शिवना के स्टाल पर उपलब्ध रहेगा।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

शिक्षक-शिक्षिकाओं के जेंडर स्टीरिओटाइप्स का उनके शिक्षण-कार्य पर पड़नेवाले प्रभाव का अध्ययन

शोध लेखक : डॉ. आइ. एम मेमन
एसोसियेट प्रोफ़ेसर

डॉ. आइ. एम. मेमन
एसोसियेट प्रोफ़ेसर
श्री एम.एन.पटेल एम.एड कॉलेज
विजयनगर
हेमचंद्राचार्य नॉर्थ गुजरात युनिवर्सिटी
पाटण

अध्ययन की पृष्ठभूमि - स्त्री और पुरुष के बीच सदियों से गहरी खाई विद्यमान है और समय-समय पर इस समस्या को हल करने के प्रयास भी होते रहे है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने हेतु "महिलाओं के लिये एक दशक (1976-1985)" की घोषणा भी की गई। इसी प्रकार C.E.D.A.W. (Convention on the Elimination of all Forms of Discrimination Against Women, 1981) ने भी लिंगके आधार पर होने वाले भेदभाव और शिक्षा व्यवस्था में जेंडर आधारित पूर्वाग्रह से ग्रस्त शिक्षण विधि की आलोचना की C.E.D.A.W. के अनुच्छेद 4 और अनुच्छेद 10 इस तथ्य का दृढ़ता से समर्थन करने वाले बुनियादी अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 4 पुरुषों और स्त्रियों के बीच वास्तविक समानता लाने के लिये अस्था ई सकारात्मक कार्यवाही करने का प्रस्ताव रखता है। अनुच्छेद 10 में उल्लिखित है कि, शिक्षा के क्षेत्र में सभी राष्ट्र निम्नलिखित तथ्य सुनिश्चित करने के उचित उपाय करेंगे; रोजगार और व्यावसायिक मार्गदर्शन के समान अवसर,शिक्षा के एक समान अवसर, एक समान पाठ्यक्रम से शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार, एक समान शिक्षण सुविधा एँ और मानक,स्त्री और पुरुष से सम्बंधित पूर्वाग्रहों को दूर करना, छात्रवृति के समान अवसर,सतत शिक्षा,खेलकूद और शारीरिक शिक्षा के समान अवसर (Ifegbesan,2010) समकालीन समाज और शिक्षा व्यवस्था के लिये सामाजिक व्यवस्था में लैंगिक समानता लाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस प्रकार सभी स्तरों पर विद्यालयों और शिक्षक-शिक्षिकाओं को आगे आनेवाली पीढियों को संवेदनशील बनाने में प्रमुख भूमिका निभानी है।

सम्प्रत्ययात्मक विश्लेषण- स्टीरियोटाइप्स: 'स्टीरियोटाइप' शब्द का प्रयोग Lippman ने 1922 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Public Opinion' में कुछ विशेषताओं के आधार पर इंसानों के वर्गीकरण की व्याख्या करने वाले शब्द के तौर पर किया। Lippman ने 'स्टीरियोटाइप' के चार पहलुओं की चर्चा की है- 1. सामान्य : स्टीरियोटाइप्स सच्चाई से भी ज्यादा 'सामान्य' होते हैं जिनका विवरण केवल दो से तीन वाक्यों में किया जा सकता है। 2. दूसरों से अर्जित : इंसानों इसे दूसरे स्टीरियोटाइप्ड लोगों से प्राप्त अनुभवों से सांस्कृतिक रूप से ग्रहण किया जाता है। 3. त्रुटिपूर्ण : सभी स्टीरियोटाइप्स गलत होते हैं। कुछ कम गलत होते हैं तो कुछ ज्यादा गलत होते हैं। इसी प्रकार कुछ कम हानिकारक होते हैं तो कुछ ज्यादा। स्टीरियोटाइप्स यह दावा करते हैं कि किसी विशेष समूह के सभी सदस्य एक सामान्य विशेषताओं से युक्त होते हैं। जबकि 'प्रत्येक इंसान दुसरे इंसान से अलग होता/होती है" के सिद्धांत के अनुसार यह तार्किक रूप से असंभव है। 4. परिवर्तन-रोधी : दशकों या सदियों बाद भी पुराने स्टीरियोटाइप्स हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित, निर्मित करते हैं।

स्टीरियोटाइप्स समूहों के प्रति ऐसे गलत सामान्यीकरण हैं जो बिना किसी ठोस जाँच-पड़ताल के लोगों पर थोप दिए जाते हैं साथ हीइंसानों द्वारा बिना सोचे-समझे अपना भी लिए जाते हैं। ऐसा करते समय स्टीरियोटाइप्स किसी समूह के स्टीरियोटाईप्स पर आधारित विशेषताओं को देखने के नजरिये को इतनी मजबूती से किसी इंसान में विकसित करते हैं कि सामान्य तौर पर (स्टीरियोटाइप्स से ग्रस्त हुए बिना) वह इंसान अगर उसी समूह का निरीक्षण करे तो उसे वे विशेषताएँ नहीं दिखाई पड़ेंगी। स्टीरियोटाईप्स से ग्रस्त इंसान किसी समूह से कुछ निश्चित विशेषताओं को जोड़ देती हैं - उदाहरण के लिए, पुरुषवादियों द्वारा एक विशेष प्रयत्न से यह मान्यता स्थापित की जा सकती है कि महिलाएँ अच्छी खिलाड़ी (Sports person) नहीं होती हैं।

स्टीरियोटाइप्स की परिभाषाएँ: (Jones & Colman,1996) के अनुसार, स्टीरियोटाइप्स किसी विशेष समूह या वर्ग के इंसानों की प्रति असामान्य और निश्चित विश्वास या मत (Belief) हैं। दूसरे शब्दों में स्टीरियोटाइप्ड इंसान का यह विश्वास या मत होता है कि किसी निश्चित समूह, प्रजाति या सम्प्रदाय के सभी सदस्य एक सामान विशेषताओं से युक्त होते/होती है, जबकि ऐसा होता नहीं है।

(Lippman, 1922) का मत है कि, स्टीरियोटाइप्स का ढांचा प्राकृतिक नहीं होता है। यह केवल सच्चाई के भ्रम से सम्बन्धित ताजगी से भरपूर, चर्चा को प्रतिस्थापित करने का रास्ता ही नहीं है। यह केवल मंजिल तक पहुँचने का एक छोटा रास्ता ही नहीं है। यह ये सभी चीजों का मिश्रण है और इससे भी ज्यादा है। यह हमारे आत्म-सम्मान की निश्चितता है,संसार पर हमारे अपने मूल्यों की अनुभूति, हमारी अपनी स्थिति और हमारे अपने अधिकार का प्रक्षेपण है। स्टीरियोटाइप्स अपने साथ जोड़ने की भावना के विकास में उच्च स्तरीय रूप से सक्षम होते हैं। ये हमारी परम्पराओं के किले होते हैं, इसकी नीरस या शुष्क किलेबंदी के पीछे हम अपनी अर्जित स्थिति के दायरे में खुद को सुरक्षित महसूस कर सकते/सकती हैं।

उक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, स्टीरियोटाइप्स ऐसे मत हैं जिनके अनुसार किसी समूह के/की सभी सदस्य एक समान या एक तरह की विशेषताएँ या गुण रखते/रखती हैं। ये विश्वास या मत उस समूह या उस समूह से सम्बन्धित इंसान के प्रति अल्प जानकारी के आधार पर पनपते और विकसित होते हैं। साथ ही स्टीरियोटाइप्स किसी मजबूत समूह द्वारा प्रतिपादित किये जाते हैं जिसे दूसरे कमजोर समूह असहमत होने के बावजूद मानने के लिए बाध्य और प्रशिक्षित किये जाते हैं। इस प्रकार सभी स्टीरियोटाइप्स गलत होते हैं। कुछ कम गलत होते हैं तो कुछ ज्यादा गलत होते हैं। इसी प्रकार कुछ कम हानिकारक होते हैं तो कुछ ज्यादा।

जेंडर स्टीरियोटाईप्स को स्थापित करने वाली अभिकरण- परिवार: परिवार वो अभिकरण है जहाँ इंसान के 'समाजीकरण' की सर्वप्रथम शुरुआत होती है। परिजनों का व्यवहार बच्चों में उनके लिंग पर आधारित पारंपरिक भूमिकाओं के विकास का माध्यम बन सकता है। अक्सर परिजनों द्वारा यह उम्मीद की जाती है कि उनके बच्चों के साथ औपचारिक शैक्षणिक संस्थाओं में किसी प्रकार का लैंगिक-भेदभाव नहीं किया जाएगा, लेकिन उनके द्वारा (परिजनों द्वारा) अपने घर में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह से लैंगिक-भेदभाव किया जाता है और लैंगिक-भेदभाव को पोषित किया जाता है।

निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर इस तथ्य का विश्लेषण किया जा सकता है; 1. परिवार के/की विभिन्न सदस्यों द्वारा लैंगिक आधार पर अपनाये गए या प्रदत्त पारम्परिक रूप से प्रचलित व्यवहारों और जिम्मेदारियों के प्रदर्शन को देखकर बच्चों में जेंडर स्टीरियोटाईप्स का विकास होता है। 2. बच्चों से लैंगिक-भेदभाव पर आधारित व्यवहार करने, खेलों, कपड़ों और अन्य क्रियाओं का लैंगिक-भेदभाव के आधार पर विभाजन द्वारा भी उनके मस्तिष्क में जेंडर स्टीरियोटाईप्स स्थापित होता है। बच्चों को सुनाई जाने वाली कहानियों से भी यह कार्य होता है। कहानियों के लैंगिक-भेदभाव पर आधारित कार्यों और भूमिकाओं समाजीकरण द्वारा भी बच्चों के मस्तिष्क में जेंडर स्टीरियोटाईप्स स्थापित किया जाता है। 3. परिवार के/की सदस्यों समाजीकरण द्वारा लैंगिक-भेदभाव पर आधारित पारंपरिक संस्कृतियों से सम्बंधित व्यवहारों के प्रदर्शन द्वारा भी बच्चों के मस्तिष्क में जेंडर स्टीरियोटाईप्स को स्थापित किया जाता है। 4. परिवार के/की सदस्यों द्वारा सम्प्रेषण हेतु प्रयुक्त भाषा के माध्यम से भी जेंडर स्टीरियोटाईप्स स्थापित किया जाता है।5. घर के/की सदस्यों को लैंगिक-भेदभाव के आधार पर रहने का स्थान वितरित करने से भी जेंडर स्टीरियोटाईप्स स्थापित होता है। भारतीय परिवारों में लड़कियों को 'पराया धन' और 'कुछ दिन की मेहमान' माना जाता है, इस विचारधारा के आधार पर उन्हें घर में रहने के लिए अधिकांश परिवारों में बहुत कम स्थान प्रदान किया जाता है। हालाँकि शिक्षा के प्रसार समाजीकरण द्वारा जागरूकता में वृद्धि होने के कारण इस स्थिति में लगातार सुधार जारी है।

शिक्षा-व्यवस्था: बच्चों के शुरूआती उम्र में ही विद्यालय उनके समाजीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगते हैं। अधिकांश बच्चों के दिन का 8से 10 घंटा लगभग प्रतिदिन उनके विद्यालय में गुजरता है। बच्चों में जेंडर स्टीरियोटाईप्स स्थापित करने में विद्यालय के दो पहलुओं का ज्यादा प्रभाव होता है। 1. कक्षा कक्ष-सामग्री 2. शिक्षक-शिक्षिकाओं का शिक्षण-व्यवहार

प्राथमिक विद्यलयों में लैंगिक-असमानता के कई उदाहरणों की पहचान आसानी से की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर लैंगिक-भेदभाव पर आधारित खिलौने। विद्यलयों के पुस्तकालयों में उपलब्ध अधिकांश पुस्तकें लैंगिक-भेदभाव से ग्रस्त तथ्यों से प्रभवित होती हैं। इन किताबों में मौजूद पात्रों को सौंपी गई विभिन्न भूमिकाएँ जेंडर स्टीरियोटाईप्स से प्रभावित होती हैं। जैसे झाड़ू लगाती हुई महिला की तस्वीर, हाथ में बैग लेकर नौकरी करने जाते पुरुष की तस्वीर, हाथ में बन्दूक लिए खड़े पुरुष-सैनिक की तस्वीर, साड़ी पहनकर घर में खाना बनाती या स्वेटर बुनती महिला के चित्र वाली पुस्तकें। हालाँकि NCERT द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली किताबों में अब इस तथ्य को ध्यान में रखकर उन्हें जेंडर स्टीरियोटाईप्स से मुक्त करने का लगातार प्रयास किया जा रहा है। इसी प्रकार कक्ष-सज्जा में प्रयुक्त चार्ट्स में मौजूद सामग्रियाँ भी जेंडर स्टीरियोटाईप्स से ग्रस्त होती हैं।

इसी प्रकार बच्चों से जेंडर स्टीरियोटाईप्स से ग्रस्त व्यवहार करने की शिक्षक-शिक्षिकाओं द्वारा अपेक्षा की जाती है। जैसे लड़कियों से सहयोगी प्रवृति का होने की अपेक्षा की जाती है तो लड़कों से प्रतियोगी स्वभाव का होने की अपेक्षा की जाती है। इसी प्रकार लड़कियों से साहित्य और कला के विषय में तो लड़कों से गणित और विज्ञान के विषय में निपुण होने की अपेक्षा की जाती है और इसी आधार पर शिक्षण-कार्य एवं व्यवहार भी किया जाता है। लड़कियों को खो-खो, रस्सी-कूद जैसे खेलों के लिए तो लड़कों को फूटबाल, क्रिकेट, दौड़ जैसे खेलों के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी जेंडर स्टीरियोटाईप्स पर आधारित भूमिकाएँ बच्चों को सौंपी जाती हैं। अगर सांस्कृतिक कार्यक्रम में कोई अतिथि आते/आती हैं तो उनके लिए

'स्वागत-गान' गाने का कार्य लड़कियों को सौंपा जाता है। इसी प्रकार लड़कियों को रंगोली बनाने का कार्य तो लड़कों को बाजार से सामान खरीद कर लाने का कार्य सौंपा जाता है।

धर्म एवं संस्कृति- धर्म और संस्कृति सामाजीकरण के महत्त्वपूर्ण अभिकरण हैं। धर्म एवं संस्कृति द्वारा स्त्री और पुरुषों को जेंडर स्टीरियोटाईप्स पर आधारित भूमिकाएँ और कार्य सौंपे जाते हैं। साथ ही किसी धर्म एवं संस्कृति के पुरातनवादी और कट्टरपंथी अनुयायियों द्वारा जेंडर स्टीरियोटाईप्स को दूर करने के प्रयासों का विरोध भी किया जाता है। विभिन्न धर्म एवं संस्कृतियों द्वारा अधिकांशत: स्त्रियों को आश्रित और पुरुष को वर्चस्वशाली के रूप में स्थापित किया गया है। जेंडर स्टीरियोटाईप्स के आधार पर अपेक्षित व्यवहारों का प्रदर्शन न करने वाले सदस्यों को धर्म एवं संस्कृति के पैरोकारों द्वारा दण्डित भी किया जाता है। सम्बन्धित पदों की कार्यपरक परिभाषा- जेंडर: जेंडर 'लिंग' के सांस्कृतिक चर का एक पदानुक्रमित युग्म के रूपमें विस्तार है। जेंडर 'लिंग' से अलग है और इंसान के सामाजिक विशेषताओं के लिये संदर्भित है, ना कि जैविक। यह निश्चित करता है कि, सामाजिक संरचना के अनुसार स्त्री और पुरुष को समाज-संस्कृति के कौन से मूल्य और शक्तियाँ प्राप्त होंगी।

स्टीरिओटाइप्स: किसी समूहको कुछ विशेषताओं के आधार पर चिन्हित करने और उन्हें मूल रूप से कम कर के आँकना 'स्टीरिओटाइप्स' कहलाता है।

जेंडर स्टीरिओटाइप्स: जेंडर स्टीरिओटाइप्स व्यक्तिनिष्ठ आकलन हैं, जो यह निश्चित करते हैं कि स्त्री या पुरुषको क्या होना चाहिए या लोगों को कैसा व्यवहार करना चाहिए।

शिक्षण-कार्य: प्रस्तुत अध्ययन में 'शिक्षण-कार्य' से अभिप्राय शिक्षक-शिक्षिकाओं के कक्षागत-व्यवहार से हैं। अध्ययन के उद्देश्य- 1-माध्यमिक विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं में जेंडर-स्टीरियोटाइप्सके स्तर का निम्नलिखित चरों के आधार पर अध्ययन करना- क) लिंग, ख) सहशिक्षा और एकल शिक्षा पर आधारित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर, ग) विभिन्न परिषदों से सम्बंधित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर।

2 - माध्यमिक विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं के शिक्षण-कार्य पर जेंडर-स्टीरियोटाइप्स के प्रभावका अध्ययन करना।

2.1.माध्यमिक विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं के विचारों परजेंडर-स्टीरियोटाइप्स के प्रभाव का निम्नलिखित चरोंके आधार पर अध्ययन करना- क) लिंग, ख) सहशिक्षा और एकल शिक्षा पर आधारित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर, ग) विभिन्न परिषदों से सम्बंधित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर।

2.2.माध्यमिक विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं के कक्षागत व्यवहार परजेंडर-स्टीरियोटाइप्स के प्रभाव का निम्नलिखित चरोंके आधार पर अध्ययन करना- क) लिंग, ख) सह शिक्षा और एकल शिक्षा पर आधारित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर, ग) विभिन्न परिषदों से सम्बंधित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर।

शून्य परिकल्पनाएँ- माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं में निम्नलिखित आधार पर जेंडर स्टीरियोटाइप्स के स्तर में सार्थक अंतर नहीं है- क) लिंग, ख) सह शिक्षा और एकल शिक्षा पर आधारित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर, ग) विभिन्न परिषदों से सम्बंधित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर माध्यमिक विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं के शिक्षण-कार्य पर जेंडर स्टीरियोटाइप्स के प्रभाव के स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

माध्यमिक विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं के विचारों पर जेंडर स्टीरियोटाइप्स के प्रभाव के स्तर में निम्नलिखित आधार पर सार्थक अंतर नहीं है- लिंग, ख) सह शिक्षा और एकल शिक्षा पर आधारित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर, ग) विभिन्न परिषदों से सम्बंधित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर।

2.2 माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं के कक्षागत व्यवहार पर जेंडर स्टीरियोटाइप्स के प्रभाव के स्तर में निम्नलिखित आधार पर सार्थक अंतर नहीं है- क) लिंग, ख) सह शिक्षा और एकल शिक्षा पर आधारित विद्यलय के प्रकार के आधार पर, ग) विभिन्न परिषदों से सम्बंधित विद्यलयों के प्रकार के आधार पर।

निश्चित रूप से परिवार किसी भी इंसान की प्रारम्भिक जिंदगी की आधारशीला है लेकिन अन्य संस्थाएँ भी इन्सान के जीवन में उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी इंसान की जिंदगी में इसी तरह की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है "शिक्षा व्यवस्था"।

शोध अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ- उपर्युक्त परिणामों एवं उन पर आधारित निष्कर्षों की विवेचना के आधार पर निम्नलिखित शैक्षिक निहितार्थों की संस्तुति की जाती है- 1. सहशिक्षा, बालक एकल शिक्षा एवं बालिका एकल शिक्षा के विद्यलयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं में लिंग के आधार पर व्याप्त जेंडर स्टीरियोटाइप्स की पहचान करके उन्हें समाप्त करने या निम्नतम करने हेतु शिक्षण-विधियों एवं नीतियों के निर्माण तथा विकास में सहायक होगा। 2. सहशिक्षा, बालक एकल शिक्षा एवं बालिका एकल शिक्षा के विद्यालयों के शिक्षक-शिक्षिकाओं में लिंग के आधार पर जेंडर स्टीरियोटाइप्स की पहचान करके उन्हें समाप्त करने या निम्नतम करने हेतु शिक्षण-विधियों एवं नीतियों के निर्माण तथा विकास में सहायक होगा। 3. संचालक बोर्ड के आधार पर यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.ई. बोर्ड के विद्यलयों के आधार पर व्याप्त शिक्षक-शिक्षिकाओं के जेंडर स्टीरियोटाइप्स की पहचान करके उन्हें समाप्त करने या निम्नतम करने हेतु शिक्षण-विधियों एवं नीतियों के निर्माण तथा विकास में सहायक होगा। 4. शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिला-पुरुष प्रशिक्षुओं में से जेंडर स्टीरियोटाइप्स और उनके प्रभावों को समाप्त करने में सक्षम पाठ्यक्रम एवं प्रशिक्षण के क्रियान्वयन में सहायक होगा।

000

(शोध आलेख)

प्रेमचंद के साहित्य में प्रेम का स्वरूप

शोध लेखक : डॉ. रमेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी
चौधरी मनीराम गोदारा राजकीय महिला महाविद्यालय

डॉ. संजय आर पटेल
हिन्दी विभाग
आंणद इन्स्टीट्युट ऑफ़ पी.जी. स्टडीज इन आर्टस, आणंद, गुजरात

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं का विशेष योगदान रहा है। इन महिला लेखिकाओं में मन्नुभंडारी, उषा प्रियंवदा, शिवानी, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, अमृता प्रितम, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी गद्य साहित्य में चित्रा मुद्गल का नाम प्रमुख स्थान पर है। आधुनिक कथा साहित्य में चित्रा मुद्गल ने बहुत चर्चित उपन्यास लिखे हैं। चित्रा मुद्गल ने अपने जीवन में जो अनुभव किया उसे अपने साहित्य में स्थान दिया है। चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना में सामाजिक परंपराओं तथा रुढ़ियों पर प्रहार किया है। साथ ही समाज में फैले स्त्री के प्रति, वृद्धों के प्रति अनादर का भाव प्रस्तुत किया है।

चित्रा मुद्गल ने अपने विचार को प्रस्तुत करने के लिए कथा-साहित्य को ही असरकारक माध्यम कहा है।-

"उन्हें कही गहरे अनुभव होने लगा था कि अनवरत प्रश्नाकुलता और क्षुब्ध बेचैनी की गहरी सघन अभिव्यक्ति के लिए कविता अनुकूल माध्यम नहीं है। ... तभी तो 'राम की शक्तिपूजा' लिखनेवाले महाप्राण निराला को 'बिल्लेसूर बकरिहा' लिखना पड़ा नरेश महेता, नागार्जुन, रघुवीर सहाय, महादेवी वर्मा, बच्चन आदि ने भी समय- समय पर गद्य को अभिव्यक्ति का माध्यम चुना।"

चित्रा मुद्गल ने अपने कथा-साहित्य में चार उपन्यास और आठ कहानी संग्रह लिखे हैं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास में 'एक ज़मीन अपनी', 'गिलिगडु', 'आँवा' और 'पोस्ट बॉक्स नं. 2030 नाला सोपारा' लिखा है। कहानी संग्रह में- जहर ठहरा हुआ, लाक्षागृह, अपनी वापसी, इस हमाम में, ग्यारह लंबी कहानियाँ, चर्चित कहानियाँ, दिहाइना एक अदर शार्ट स्टोरीज, मामला आगे बढ़ेगा अभी आदि।

चित्राजी का 'गिलिगडु' तीसरा उपन्यास है, जो सन् 2002 में प्रकाशित हुआ था यह उपन्यास तेरह दिन की कहानी है। इस उपन्यास में दो वृद्धों की कहानी है। इस उपन्यास में प्रमुख पात्र बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी है। इस उपन्यास में बाबू जसवंत सिह कानपुर के सेवानिवृत इंजीनियर थे। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अकेले हो जाते हैं। वे अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने बेटे नरेन्द्र के पास दिल्ली जाकर रहते हैं। पर बेटे नरेन्द्र का दुव्यवहार देखकर जसवंतसिह दु:खी होते हैं। नरेन्द्र और उनकी पत्नी जसवंतसिह के प्रति कोई आदर, प्रेम नहीं है। पर जसवंत सिह की वसीयत और कुछ गहनों की लालच में नरेन्द्र जसवंत सिह को अपने पास रखते हैं। जसवंत सिह नरेन्द्र के दुर्व्यवहार के लिए नरेन्द्र को नहीं दोष देते वे

कहते हैं कि- "बुद्धि-विकास की आड़ में बड़ी ख़ूबसूरती से... संवेदना-न्यून किया जा रहा है। इतना कि बच्चे कभी परिवार में लौट ही न सकें न कभी अपना परिवार गढ़ सकें।"

नरेन्द्र और उसकी पत्नी जसवंत सिंह को अपमानित करने का कोई भी मौका नहीं चूकते थे। जसवंत सिंह अपने बेटे के घर में भी बेगाना होकर रहते थे। उन्हे अपने भी बेघर की तरह लग रहा था। उनके साथ पशु जैसा व्यवहार किया जाता था। जसवंत सिंह को अपने पास रखने की नरेन्द्र को मजबूरी थी। उसके साथ कुत्ते जैसा व्यवहार करते थे। जसवंतसिह कहते हैं कि-

"इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं- एक टोमी और दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह। टोमी की स्थिति निसंदेह उसकी बनिरबन मजबूरी है। उसकी इच्छा अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता था पूरा घर उनके लिए किसी को यहाँ रहना ज़रूरी नहीं लगता। टोमी अच्छी नस्ल का कुत्ता था। सोसायटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उसके चलते उनका रुतबा कलंकित होता है।"

एक दिन जसवंत सिंह की मुलाकात कर्नल स्वामी से हो जाती है। जसवंत सिंह कर्नल स्वामी को अपनी स्थिति के बारे में बताते हैं। जसवंत सिंह को नए शहर में एक अच्छा मित्र मिल जाता है, जो उन्हें दिल्ली घुमाता है। जूते खरीदकर देता है रेस्त्राँ में डिनर, शराब, बहुत ख़ुश रखता है।

जसवंत सिह ऐसा मानते हैं कि कर्नल स्वामी के घर में कर्नल स्वामी का मान, सम्मान आदर होता है। उसकी मरज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता होगा। तेरह दिन हो जाने के बाद भी कर्नल स्वामी जसवंत सिंह को मिलने नहीं आए थे। जसवंत सिंह को बहुत चिन्ता होती थी और वे कर्नल स्वामी को मिलने के लिए उनके घर पर पहुँच जाते हैं। जब वे कर्नल स्वामी के घर पर जाते हैं तो उन्हें पता चलता है कि तेरह दिन पहले सीढ़ियों से फिसल जाने से दिल का दौरा पड़ जाता है। और उनकी मृत्यु हो जाती है। पड़ोसियों से पूछताछ से पता चलता है कि कर्नल स्वामी का पुत्र श्री नारायरण स्वामी उनके साथ जानवर जैसा व्यवहार करता था। कई बार पैसों की लालच में आकर उनकी पिटाई भी करता था। अपने पोते को मिलने के लिए भी होस्टल छुपकर जाना पड़ता था। कर्नल स्वामी के पड़ोसी मिसिस श्रीवास्तव कहती है- "ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। इमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई औलाद नहीं।"

जब यह बात जसवंत सिंह को पता चलती है तो उसका मन भी बैठ जाता है। जसवंत सिंह समझते है कि कर्नल स्वामी की स्थिति उससे भी बुरी थी। जसवंत सिह कानपुर लौट जाने का विचार करते हैं। और अपनी वसीयत भी सनगुनिया के बेटे के नाम कर देते हैं। अग्निदाह का अधिकार भी वे नरेन्द्र को न देकर सनगुनिया के बेटे अभिषेक के नाम कर देते हैं।

चित्राजी का यह उपन्यास समाज में बदलते जीवन मूल्यों को, किस प्रकार नई पीढ़ी अपने बुज़ुर्गों के साथ प्रेम, आदर, सहानुभूति के बदले पशु जैसा व्यवहार करते हैं। इस उपन्यास में चित्राजी ने वृद्धों की स्थिति को केन्द्र में रखा है।

आज हमारे समाज की यह सब से बड़ी समस्या है कि जो जीवन भर काम करते हुए अपने परिवार के पोषण करने में कोई कसर नहीं रखता वह जब वृद्ध हो जाने पर उसके साथ पशु जैसा व्यवहार किया जाता है। वृद्ध वह वटवृक्ष के समान है जब वह हराभरा होता है तो छाया देता है। और सूख जाने पर उसकी लकड़ी भी हमारे काम आती है। आज के नए युग में वृद्धों के लिए नई दृष्टिकोण की ज़रूरत है। वृद्धों का मान, आदर साथ-साथ सहानुभूति देना आवश्यक है।

"बूढ़ों के साथ लोग कहाँ तक वफा करें बूढ़ों को भी मौत न आए तो क्या करें।"

000

संदर्भ - 1.चित्रा मुद्गल का कथा साहित्य, डॉ. कल्पना पाटील पृ-23, 2.चित्रा मुद्गल के कथासाहित्य का अनुशीलन है। गोरक्ष थोरात, पृ-24, 3.वही, पृ-24, 4.वही, पृ-25,

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

डोर अंजानी सी

लेखक : ममता त्यागी

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

प्रवासी कथाकार ममता त्यागी का यह नया कहानी संग्रह शिवना प्रकाशन द्वारा नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में लाए जा रहे सेट में शामिल है। स्वयं ममता त्यागी इस संग्रह की कहानियों को लेकर कहती हैं- 'कितने ही विचार आकर मेरे सृजन में सहायक होने लगे। जीवन का सुदीर्घ अनुभव और अपनों का साथ मेरी लेखनी को गति देने लगा। जीवन चलायमान है, अंधेरे उजाले इसके साथी हैं। पर निराशा का अंधकार यदि जीवन पर छाने लगता है तो सकारात्मक सोच ही ऐसे समय में इस अंधकार से बाहर निकालकर उजाले की ओर ले जाने में सहायक होती है। इसी सोच को मैंने अपने पात्रों के जीवन में उतारने का प्रयास किया जो जीवन के हर उतार चढ़ाव को झेलते हुए स्वयं को मज़बूत रख आगे बढ़ते रहे। यह तो पता नहीं कि मैं सृजन में कहाँ तक सफल हुई हूँ, पाठकों के मन के द्वार तक मेरी भावनाएँ दस्तक देंगी या नहीं पर हाँ इन्हें शब्दों की रेत पर उकेर कर एक संतोष अवश्य मिला है। इन कहानियों को रचने के बाद प्रसव पीड़ा के बाद मिले संतोष की अनुभूति सी हुई।'

000

(शोध आलेख)

प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन के कथा साहित्य में धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना

शोध लेखक : डॉ. देवेंद्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर

डॉ. देवेंद्र कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी अध्ययन एवं शोध केंद्र,
किशोरी रमण स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

शोध-पत्र- जिस संसार में हम रहते हैं, उस संसार की जानकारी रखना शिक्षा का पहला उद्देश्य माना जाता है। कोई तकनीकी दक्षता हासिल करना, जिसे प्राप्त करने के पश्चातहम अपनी आजीविका कमा सके, शिक्षा का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है। आज भी संपूर्ण विश्व में इन दोनों उद्देश्यों को शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्यों के रूप में जाना जाता है। भारत देश की शिक्षण संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा में ऐसा अलग क्या है जो इसे दूसरे देशों में दी जाने वाली शिक्षा से अलग और महत्त्वपूर्ण बनाता है। भारत देश में दी जाने वाली शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है- धार्मिक चेतना और सांस्कृतिक चेतना। प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन का कथा-साहित्य अपने आप में विलक्षणताओं को समेटे हुए है।

बीसवीं शताब्दी का कथा-साहित्य, हिन्दी-साहित्य का विविधताओं से भरा, अनेक उपलब्धियों को समेटे अनूठा साहित्य है। हिन्दी कथा-साहित्य में अनेक महिला कथाकारों ने अपनी असाधारण लेखनी प्रतिभा से हिन्दी कथा-साहित्य को गरिमा और वैभव प्रदान किया है। प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन की चालीस साल की साहित्यिक यात्रा हिन्दी कथा-साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना विशिष्ट स्थान और पहचान रखती है।

धर्म क्या है? धर्म को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने तरीकों से परिभाषित किया है। सामान्य तौर पर धर्म का अर्थ होता है धारण, अर्थात् जिसे धारण किया जा सके,गुणों को जो प्रदर्शित करे, वही धर्म है। धर्म को गुण भी कहा जा सकता है। धर्म शब्द संस्कृत भाषा के 'धृ' धातु से बना हुआ है। जिसका शाब्दिक अर्थ है 'धारण करना'। 'धार्यते इति धर्मः' अर्थात् जो धारण करते हैं वही धर्म कहलाता है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि लोक और परलोक के सुखों की सिद्धि के लिए सार्वजनिक पवित्र गुणों व कर्मों को धारण करना ही धर्म माना गया है। "वह आचरण या वृत्ति जिससे जाति या समाज की रक्षा और सुख-शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में अच्छी गति मिले।"1 हमारे महापुरुषों ने ज्ञान और कर्म के क्षेत्र में जो कुछ भी किया है, उसी धरोहर का नाम संस्कृति है। प्रत्येक राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। जहाँ तक भारतीय संस्कृति की बात है तो संपूर्ण विश्व में उदारता और समन्वय के लिए भारतीय संस्कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती है। सभी धर्मों में धार्मिक यात्रा का विशिष्ट स्थान है। धार्मिक यात्रा का उद्देश्य कहीं न कहीं उस परमात्मा को जानना है जो अव्यक्त है, अविनाशी है औ रसारी सृष्टि का मूल आधार है।

'अनुगूँज' उपन्यास के भारतीजी अपनी पत्नी को साथ लेकर मथुरा चले जाते हैं। छवि भी, भारतीजी और उनकी पत्नी के साथ घूमने मथुरा चली जाती है। छवि पहले ही मथुरा से परिचित थी।2 वह पुरानी यादों में खो जाती है, "मेरे बचपन का मथुरा.....स्टेशन से सड़क सीधी घर जाती थी- धूल भरी संकरी गलियों का मथुरा.....रिक्शा वालों की झिक-झिक.....मंदिरों के घंटे.....पूजा का स्वर और.....दीवारों पर काली स्याही से लिखे बड़े-बड़े विज्ञापन.....वेटेरिनरी कालेज और हमारा वह घर।"3

प्रकृति में शुभ-अशुभ कोई नहीं होता है। मनुष्य घटित प्रसंग के आधार पर वैसी धारणा बनाता है। लेखिका ने विज्ञान युग की वास्तविकता को स्वीकार करने पर बल दिया है।4

'बोज्यू' उपन्यास में ग्रह-नक्षत्रों का भारतीय समाज में कितना गहरा प्रभाव है, इसे चित्रित

किया गया है। मुक्ता की माँ ने पूछा, "राहुल की माँ,तुम्हारे यहाँ भी दहेज लेने की प्रथा है?"5

सुनीता जैन अपने रचे कथा-साहित्य में भारतीय जनमानस की उस सोच से भी परिचय कराती हैं जहाँ ग्रहों की दशा की आड़ में रिश्ते तय किए जाते हैं और तोड़े भी जाते हैं। दहेज का लेन-देन कानून की दृष्टि में अपराध है लेकिन रिश्ते तय करते समय परोक्ष या अपरोक्ष रूप से दहेज की बात आ ही जाती है। 'बोज्यू' उपन्यास में बोज्यू कहती है, "नहीं माँ जी, हमारे यहाँ लेन-देन से अधिक कुल की उच्चता या समानता पर विचार किया जाता है। ग्रहों का मेल देखा जाता है। वैसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सब देते-लेते भी हैं। परदेश की तरह माँगकर दहेज लेने का रिवाज अभी हमारे यहाँ नहीं है।"6

धर्म जहाँएक तरफ अमन और शांति की बात करता है वहीं दूसरी तरफ कट्टरता और हिंसा को भी पोषित करता है। धार्मिक कट्टरता मनुष्य को मनुष्य होने से ही रोकती है। 'गुलमा बेगम' कहानी में धार्मिक कट्टरवादअपने चरम पर है। "तभी खबर आई कि हिंदुओं ने खान साहब का सारा महल फूँक दिया है और सब सामान भी लूट ले गए हैं और यह कि खान साहब बहुत गरम हो रहे हैं, वह उसी दम लाहौर जाने की तैयारी करने लगे हैं।.....यह फूल सी बच्ची कैसे काफिरों में जिन्दा रहेगी? और इसी सदमे ने उनकी पूरी जान ले ली।"7

ईश्वर की सत्ता सर्वव्यापक है और धर्म की सत्ता भी हर तरफ व्याप्त है। धर्म दरअसल वह अनुशासन है जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। यदि कोई धर्म की आड़ लेकर पाशविक कर्म करता है तो स्पष्ट है कि वह धर्म को समझा ही नहीं है। 'अनुगूँज' उपन्यास में मथुरा का सांस्कृतिक एवं धार्मिक रूप दृष्टिगोचर होता है। भारती छवि को कहते हैं, "मैं मानता हूँ छवि कि कुछ लोग धर्म के सहारे ही जी जाते हैं। शायद औरों से अच्छी तरह जीते हैं। पत्नी को देखा है? प्रकृति से जड़ है, अक्षर-ज्ञान-रहित, पर धर्म के सहारे रहती है।.....और कुछ हो न हो, इससे वह दुश्चिन्ता की शिकार नहीं है.....मुझे उससे ईर्ष्या होती है कभी-कभी, विशेषकर तब जब रात में खर्र-खर्रसोती है और मैं पड़ा करवटें बदलता हूँ।"8

"संस्कृति मानव व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है। भाषा, कला कौशल, राजनीति, अर्थनीति, दार्शनिकता,धार्मिक विचार आदि संबंधी मानदंड संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।9

डा. जगदीश नारायण दुबे के मतानुसार, "मानव के रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला, परंपरागत अनुभव, जीवनयापन की पद्धति के बोधक संस्कारों का नाम 'संस्कृति' है।10

भारतीय संस्कृति जहाँ 'सादा जीवन, उच्च विचार' की भावना में विश्वास रखती है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति 'खाओ, पिओ, ऐश करो' जैसी विलासितापूर्ण विचारधारा को पोषित करती है। आज इक्कीसवीं सदी में भूमंडलीकरण का दौर है, स्वाभाविक है कि भारतीय संस्कृति भी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो रही है। भारतीय युवा अपने कैरियर को गति देने के लिए अक्सर अपने माँ-बाप को छोड़कर विदेश चला जाता है और फिर वहीं का होकर रह जाता है। उसे सादगी भरी भारतीय संस्कृति की तुलना में विलासितापूर्ण पाश्चात्य संस्कृति रास आने लगती है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में वह कब अपनी भारतीय संस्कृति से बहुत दूर हो जाता है, उसे पता ही नहीं चलता। वो माँ-बाप जिन्होंने उसकी पढ़ाई-लिखाई के लिए अपना प्रोविडेंटफंड तक खाली कर दिया था, वृद्ध होने पर पाई-पाई तक के लिए तरस जाते हैं। बूढ़े माँ-बाप के संस्कार उन्हें अपने बेटे से पैसा लेने से रोकते हैं। वो किसी से कुछ कह नहीं पाते हैं और जैसे-तैसे अपनी जीवन-नैया को पार लगाते रहते हैं। सुनीता जैन के कथा-साहित्य में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित अनेक चरित्र देखे जा सकते हैं। 'पार्वती जब रोएगी' कहानी में इस बात का चित्रण हुआ है। मनीन्द्र एक सीधा-साधा भारतीय युवक है। लेकिन सोनिया के संपर्क में आने के कारण वह पूरी तरह से विदेशी हो जाता है और भारत लौटना भी नहीं चाहता।"11

'कमाई' कहानी में आशा अवध के साथ शादी होने के बाद भारत छोड़ अमरीका जाती है। अमरीका जाते समय वह अपने घेरे से बाहर किसी अच्छी, किसी बड़ी दुनिया का जीव खुद को मानने लगी थी।.....जानती थी कि साथिन पूछेगी, तुम कहाँ की हो और उसे कहते हुए लाज लगती है कि वह 'इंडिया' की है।12 आशा को भारतीय कहते हुए शर्म मालूम होती है।13

बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएँ मन में रखकर युवा पीढ़ी विदेश में उच्च शिक्षा, नौकरी और पैसा कमाने के उद्देश्य से जाती है और वहीं की हो बैठती है। माता-पिता भी विदेश में स्थित बेटे का मोह नहीं छोड़ पाते हैं। न ही वे विदेश में रह पाते हैं। दोनों ही इस चक्रव्यूह में फंस चुके हैं, बाहर निकलना मुश्किल है।14

प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन के कथा-साहित्य में अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं जिनके माध्यम से विदेशों में प्रवास कर रहे भारतीयों की मन:स्थिति में आए बदलाव को रेखांकित किया गया है।

000

संदर्भ- 1 (सं) नगेंद्रनाथवसु, हिन्दी विश्वकोष, पृ. - 100, 2डा. प्रविण अनन्तराव शिंदे, प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन का कथा साहित्य, पृ- 128, 3सुनीता जैन अब तक (उपन्यास), संपादन. डा. कृष्णदेवशर्मा, पृ- 156, 4 डा.प्रविण अनन्तराव शिंदे, प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन का कथा साहित्य, पृ- 132, 5सुनीता जैन अब तक, संपादन, डा. कृष्णदेव शर्मा, पृ- 67, 6वही, पृ- 67, 7वही, पृ- 115, 8वही, पृ- 158, 9डा. प्रविण अनन्तराव शिंदे, प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन का कथा साहित्य, पृ- 137, 10डा. जगदीश नारायण दुबे, भारतीय संस्कृति का स्वरूप, पृ-1, 11डा. अनन्तरावशिंदे, प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन का कथा साहित्य, पृ-146, 12सुनीता जैन अब तक (उपन्यास), संपादन, डा. कृष्णदेव शर्मा, पृ- 24, 13डा. प्रविण अनन्तराव शिंदे, प्रवासी साहित्यकार सुनीता जैन का कथा-साहित्य, पृ-146, 14वही, पृ- 148

शोध आलेख

(शोध आलेख)

दलित जीवन की गाथा : धरती धन न अपना

शोध लेखक : कविता चूर
शोधार्थी (पीएच.डी.)
हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

सारांश : स्वातंत्र्योत्तर काल के हिन्दी उपन्यासकारों में जगदीश चन्द्र अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनका जन्म पंजाब के होशियारपुर के घोड़ेवाडा नामक गाँव में एक उच्चवर्गीय परिवार में हुआ। इनके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ 'पुराने घर' नामक उर्दू कहानी से हुआ। इन्होंने एक नाटक भी लिखा परन्तु इन्होंने उपन्यास विधा में ही अधिक लेखन कार्य किया है। इनके उपन्यासों में 'यादों के पहाड़', 'धरती धन न अपना', 'आधा पुल', 'कभी न छोड़े खेत', 'मुट्ठी भर कँकर', 'टुण्डालाट', 'घास गोदाम', 'लाट की वापसी' और 'जमीन अपनी तो थी' आदि आते हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास 'धरती धन न अपना' 1972 ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास उर्दू, रूसी, पंजाबी, जर्मन और अँग्रेज़ी भाषा में भी अनूदित हुआ है। यह उपन्यास सदियों से जुल्म झेलते आ रहे ग्रामीण दलितों और भूमिहीन मजदूरों की समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। यह उपन्यास भारतीय जाति व्यवस्था में हाशिए पर धकेल दिए गए बहिष्कृतों का जीवन व्यतीत करने वाले दलितों के जीवन की त्रासदी की मार्मिक अभिव्यक्ति है। लेखक ने समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत बस्ती चमादड़ी में रहने वाले चमार जाति के लोगों की पीड़ा को यथार्थ की भूमि पर उतारा है।

बीज शब्द - दलित, चमादड़ी, अत्याचार, आर्थिक अभाव, सामाजिक विषमता, शोषक ।

'धरती धन न अपना' उपन्यास के केन्द्र में पंजाब के जिला होशियारपुर का घोडेवाहा गाँव और गाँव के बाहर चमादड़ी में रहने वाले दलित लोगों का जीवन है। उपन्यास का प्रारम्भ काली के 6 वर्ष बाद कानपुर से अपने गाँव घोड़ेवाहा लौटने से होता है। गाँव में उसकी एकमात्र संबंधी चाची प्रतापी रहती है जिसने उसका पालन पोषण किया। उसके गाँव लौटने का एकमात्र कारण उसक चाची के प्रति उसका लगाव ही है। गाँव वाले काली की शिक्षा और अच्छी आर्थिक स्थिति को देखकर उसका आदर करते हैं। गाँव आते ही वह समझ जाता है कि गाँव की स्थिति में कोई भी तब्दीली नहीं हुई है। अभी भी गाँव में दलितों का शोषण पूर्ववत् चल रहा है। जीतु के प्रौढ़ शरीर को देखकर उसे महसूस हुआ कि बचपन के बाद जीतु पर यौवन और बुढ़ापा एक साथ ही आ गया है। "उनका जीवन न केवल आर्थिक अभावों से ग्रस्त है बल्कि शारीरिक और मानसिक रूप से भी प्रताड़ित है।"1

काली चमादड़ी के चमार माखे का बेटा है। वह नई चेतना और दलितों के उद्धार की आशा लेकर छ: साल बाद गाँव लौटता है। गाँव में अभी भी जमीदारों द्वारा चमारों से बिना पैसे दिए काम करवाना, उन्हें मारना पीटना, उनका शोषण करना साधारण सी बाते हैं। और यदि कोई बिना पैसे के मजदूरी से मना करे तो उसकी पिटाई हो जाती है। इसके पीछे का एकमात्र कारण उनका निम्न जाति का होना है। इस अन्याय को लेखक ने स्पष्ट किया है - "चमादड़ी में ऐसी घटनाएँ (किसी चमार की पिटाई) कोई नई बात नहीं थी ऐसा अक्सर होता रहता था। जब किसी चौधरी की फसल चोरी से कट जाती या बरबाद हो जाती या चमार चौधरी के काम पर न जाता। फिर किसी चौधरी के अन्दर जमीन की मल्कियत का अहसास जोर पकड़ लेता तो वह अपनी साख बनाने और अपना चौधरापन मनवाने के लिए इस मुहल्लें में चला जाता।"2 दलितों की इस दशा के पीछे उनकी आर्थिक पराधीनता और सामाजिक विषमता जिम्मेवार है।

लेखक ने इस कृति में दलितों के धर्म परिवर्तन को भी रेखांकित किया है। पादरी गाँव के दलितों को ईसाई बनने के बाद मिलने वाले फायदों का लालच देकर उनका धर्म परिवर्तन करता है। अपनी निम्न जाति के कारण चमादड़ी के लोग गाँव के कुएँ से पानी नहीं भर सकते और न ही मंदिरों में प्रवेश कर सकते हैं। दलित लोग अपने जातीय पद और शोषण से मुक्ति के लिए धर्म परिवर्तन करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ईसाई बना नन्ददास काली से कहता है - "गाँव में चमार होना तो सबसे बड़ा पाप है। घोर लांछन है। दो कौड़ी का मालिक काश्ताकार अपने चमार को छट्ठी का दूध पिला देता है। ... मुझे चमार शब्द से ही नफरत है। मुझे कोई चमार कहे तो गुस्सा आ जाता है।"3 धर्म परिवर्तन के पीछे पादरी का यह स्वार्थ है कि उसके धर्म के लोगों की संख्या में वृद्धि होगी और दलित शोषण से मुक्ति के लिए धर्म परिवर्तन करने के लिए मान जाते

कविता चूर
शोधार्थी (पीएच.डी.)
हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू - 180006
ईमेल- kavitachoor920@gmail.com

हैं।

दलित जातियों की स्त्रियों का गाँव के संपन्न वर्ग द्वारा यौन शोषण एक आम बात है। गाँव के जमींदारों द्वारा उनके घरों में मेहनत मजदूरी का काम करने वाली दलित स्त्रियों की विवशता का फायदा उठाकर उनका यौन शोषण किया जाता है। वह उनपर अपना अधिकार मानते हैं। लेखक ने उपन्यास में दलित स्त्रियों के यौन शोषण को बहुत गहराई के साथ उद्घाटित किया है। आर्थिक अभावों के कारण चमादड़ी की स्त्रियाँ चौधरियों के नाजायज बच्चों की माँ भी बनती हैं। बेबे हुकमा और प्रीतो इसका उदाहरण हैं। उपन्यास में हरनाम सिंह चौधरी) का भतीजा हरदेव मंगु की सहायता से प्रीतो की बेटी लच्छो की इज्जत लूटता है। इज्जत लुटाने के बाद भी लच्छो को बासी रोटियों के अलावा हरदेव के घर से और कुछ नहीं मिलता। यौन शोषण का शिकार हुई लच्छो की मनोस्थिति का चित्रण लेखक ने किया है - "लच्छो चौंक गई और आटा गूँधती हुई सोचने लगी कि माँ घर से आटा उधार माँगने गई तो आटा ले आई। अमरु देगचा बेचकर आटा और गुड़ दोनों ले आया लेकिन वह अपना सब कुछ लुटाकर भी खाली हाथ वापस आ गई।"4 लच्छो की तरह प्रीतो, पाशो जैसी अनेक चमादड़ी की औरतें चौधरियों के भोग का शिकार बनती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में उभर आया वर्ग संघर्ष मार्क्सवाद से प्रभावित है। यहाँ उच्च वर्ग के चौधरी एवं निम्न वर्ग के चमारों के बीच वर्ग संघर्ष होता है। गाँव में भारी वर्षा के कारण नदी में बाढ़ आने पर बाढ़ से गाँव को बचाने के लिए गाँव वाले नदी के सामने वाले बाँध को तोड़ देते हैं। तभी वहाँ एक छेद हो जाता है जिसे पूरने के लिए चौधरी लोग मजदूरी की आशा देकर चमादड़ी के लोगों को काम पर लगा देते हैं परन्तु दो दिन तक उन्हें मजदूरी के पैसे नहीं दिए जाते जिससे उनमें विद्रोह की भावना धधक उठती है। तीसरे दिन वह काम छोड़कर इकट्ठे होकर बैठे तो चौधरी आकर बोलता है - "कोई दिहाड़ी नहीं मिलेगी। उठो काम करो वरना मार-मारकर एक-एक का सिर तरबूज के खप्पर जैसा बना दूँगा।"5 परन्तु शहर से गाँव वापस आया काली शहरी मजदूर संगठनों और शोषितों के अधिकारों के प्रति सचेत है। वह चौधरियों के आगे घुटने नहीं टेकता और सिर ऊँचा करके जवाब देता है कि - "मैं बिना पैसों के काम नहीं करूँगा। मैं किसी के पास गिरवी नहीं पड़ा हूँ जो बेगार करूँ।"6 जब वह पैसे नहीं देते तो वह काम छोड़कर चला जाता है और उसके पीछे बाकी लोग भी चले जाते हैं। और वे सभी संगठित होकर हड़ताल पर बैठ जाते हैं। दलितों के हड़ताल पर जाने से चौधरियों की फसलें खराब हो गई। हड़ताल के छठवें दिन चौधरियों ने शोषितों के सामने हार मान ली और हरनाम सिंह ने अपने वर्ग का निर्णय सुनाया कि - 'हर घर अपने अपने चमार को पैसे दे दे।"7

काली के गाँव लौट आने का मुख्य उद्देश्य शोषितों को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाकर अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार करना है। वह अपनी चमादड़ी में पक्का मकान बनवाकर शोषक वर्ग को चुनौती देना चाहता है। वह चमादड़ी के लोगों पर हो रहे अत्याचारों के बारे में दुकानदार छज्जू से कहता है - "मुझे तो समझ नहीं आता कि लोग मारने का हौंसला कैसे कर लेते हैं और कसूर न होते हुए लोग मार क्यों खा लेते हैं।"8 चौधरी जब मंगु को कुत्ता चमार कहता है तो जातिगत शोषण और अत्याचारों के प्रति सचेत काली क्रोधित होकर उठ खड़ा हो जाता है। लेखक के शब्दों में - "काली गर्दन झुकाए हुए सोच रहा था कि चौधरी ने मंगु को कुत्ता चमार क्यों कहा। काली अपने क्रोध को दबाता हुआ उठ खड़ा हुआ।"9

घोडेवाहा में एकमात्र काली ही है जो अन्याय, अत्याचार और शोषण के खिलाफ आवाज उठाता है। ज्ञानों भी काली को हमेशा अन्याय के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देती है। उपन्यास के अन्त में जब चौधरियों से तंग आकर काली गाँव छोड़ने की बात करता है तो ज्ञानों उसे क्रुद्ध स्वर में कहती है कि - "मैं तो समझती थी कि तूं जिगरवाला आदमी है तू आसानी से दबने वाला नहीं है। तेरे से गली के कुत्ते अच्छे हैं जो मारने पर आगे से घूरते हैं।"10

क्योंकि लेखक ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों को स्वयं देखा है इसलिए उनका समस्त कथा साहित्य भारतीय गाँव के उत्पीड़न, शोषण और गरीबी के बीच से गुजरते हुए जीवन का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है। उपन्यास लिखने की मूल प्रेरणा के विषय में लेखक स्वीकार करते हैं कि - "मैं यह सब देखकर बहुत ही उद्विग्न होता था कि आर्थिक अभावों की चक्की में युग-युगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं। जिस भूमि पर वे रहते हैं, जिस जमीन को वे जोतते हैं, यहाँ तक कि जिन छप्परों में वे रहते हैं कुछ भी उनका नहीं है। इन्हीं बातों को देखकर मेरे किशोर मन की वेदना सहसा अपने सभी बाँध तोड़कर फूट निकली और मैंने उपेक्षित हरिजनों के जीवन का चित्रण करने का संकल्प कर लिया।"11 पूँजीपति तथा जमीदारों द्वारा हो रहे अन्याय-अत्याचार एवं शोषण से घोड़ेवाहा गाँव की जनता पीड़ित है। उनमें चेतना लाने का असफल प्रयास काली के द्वारा होता है। 'धरती धन न अपना' उपन्यास के संदर्भ में रमेश कुंतल मेघ कहते हैं- "यह कृति धरती के दुखियारों का एक समाजार्थिक दस्तावेज बन गई है।"12

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उच्च वर्ग के दबाव और अत्याचारों से मुक्त होने के लिए दलितों का जागरण और नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। जब तक मनुष्य को मनुष्य न मानने वाले सामन्ती संस्कारों का अंत नहीं होता तब तक मानव और मानवता की हत्या होती रहेगी।

000

संदर्भ-

1-डॉ. जगदीश चन्द्र, धरती धन न अपना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1981,पृ. 16, 2-वही, पृ. 27, 3-वही, पृ. 190, 4-वही, पृ. 103, 5-वही, पृ. 233, 6-वही, पृ. 236, 7-वही, पृ. 260, 8-वही, पृ. 21, 9-वही, पृ. 51, 10-वही, पृ. 209, 11-वही, पृ. 7, 12-सं. तरसेम गुजराल एवं विनोद शाही - जगदीश चन्द्र : एक रचनात्मक यात्रा, पृ. 97

(शोध आलेख)

किन्नर विमर्श के विविध आयाम

शोध लेखक : पूनम पाधा
पीएच.डी. शोधार्थी, नेट, सेट
हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय

हमारा समाज स्त्री एवं पुरुष इन दो स्तम्भों पर टिका है। यह दो विपरीत लिंग मिलकर वंश परंपरा एवं मानव जाति को आगे बढ़ाते हैं। लेकिन हमारे समाज में इन दो मान्यता प्राप्त लिंगों के अतिरिक्त एक अन्य लिंग का भी अस्तित्व है। जो न तो पुरुष श्रेणी में आता है और न ही स्त्री की श्रेणी में। समाज में इसे किन्नर, नपुंसक, छक्का, थर्ड जेंडर, शिवशक्ति, मंगलमुखी आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इनकी उत्पत्ति को लेकर एक मिथक यह है कि किन्नर ब्रह्मा जी की छया से उत्पन्न हुए हैं। कश्यप ऋषि से भी इनकी उत्पत्ति मानी जाती है लेकिन इन मान्यताओं को लेकर अभी तक कोई भी मूलाधार प्राप्त नहीं हुआ है।

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार, जब भी कोई महिला गर्भवती होती है तो उसके गर्भ में पल रहे बच्चे का विकास प्रारंभ के तीन महीनों में ही हो जाता है। इस दौरान उनके शरीर में कई प्रकार के हारमोनल परिवर्तन होते हैं जिससे किन्नर बच्चे के पैदा होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। किन्नर के अंग में महिला के अंग या पुरुषों के अंग या तो अविकसित अवस्था में होते हैं या फिर महिला और पुरुष दोनों के अंग का मिलावटी स्वरूप हो जाता है। यह लोग गर्भ धारण करने में भी असमर्थ होते हैं। एक पुरुष किन्नर में स्त्रियोचित लक्षण होते हैं और स्त्री किन्नर में पुरुष के लक्षण पाए जाते हैं। ये लोग विवाह के अवसर पर, बच्चे के जन्म पर या किसी अन्य पारिवारिक अनुष्ठान में लोगों को आशीर्वाद देते हैं और इनका आशीष लोग बहुत शुभ मानते हैं। लेकिन समाज में कोई भी व्यक्ति अपने लिए उनके जैसे जीवन की कामना नहीं करता। समाज में रहकर भी किन्नर लगभग बहिष्कृत एवं शोषित हैं और दुनिया की नफरत एवं भेदभाव को झेल रहे हैं।

प्राचीन काल में राजा-महाराजाओं के यहाँ नाच-गाकर किन्नर अपना पेट पालते थे उस समय इन्हें बहुत इज्जत मिलती थी। कई किन्नर तो राजाओं के करीबी होते थे।

किन्नर समुदाय 'बेसरा माता' की पूजा करता है जो कि इनकी सर्वमान्य देवी है। जिनकी सवारी एक मुर्गा है। किन्नर नाच-गाकर जो भी पैसा कमाते हैं उसका एक हिस्सा अपने गुरु को देते हैं जिसका उपयोग ये लोग अपने सुख-दुख में करते हैं। किन्नर अपने गुरू को भगवान की तरह मानते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझते हैं। प्रत्येक किन्नर को अपने धर्म को मानने की छूट होती है।

ये लोग पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों से मिलने वाली अवहेलना के कारण निराशा एवं असुरक्षा भरा जीवन व्यतीत करते हैं जो एक साधारण स्त्री-पुरुष की समझ से परे हैं। हमारे समाज के लोग विकलांगों एवं अंधों के प्रति अपनी सहानुभूति रखते हैं, लेकिन जन्म की प्रक्रिया पूर्ण रूप से न होने पर, न ही स्त्री एवं न ही पुरुष के रूप में जन्म लेने वाले किन्नरों के प्रति

पूनम पाधा
पीएच.डी. शोधार्थी, नेट, सेट
हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006
ईमेल- p.padha94@gmail.com

साधारण मनुष्य इन्हें समाज का हिस्सा ही नहीं मानते। जिसका कारण सभी से हटकर ये लोग अपने लिये एक अलग समाज की स्थापना करते हैं। कभी-कभी परिवार वालों द्वारा इन्हें त्यागा जाता है और कई बार यह लोग स्वयं को अपने परिवार के बीच असहाय व असुरक्षित समझते हैं और ऐसे हालात में अपने घर-परिवार को छोड़कर किन्नर समुदाय के साथ रहने की विवश होते हैं।

आजकल भारतीय समाज में किन्नरों की समस्या एक सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही है। यदि साहित्यिक क्षेत्र की बात करें, तो वर्तमान समय में किन्नरों पर गहन चिंतन एवं चर्चा बड़े ही जोरों से हो रही है और विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन पर शोध कार्य हो रहा है। नीरजा माधव का 'यमदीप' (2002), प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' (2011), निर्मला भुराडिया का 'गुलाम मंडी' (2014), महेंद्र भीष्म का 'मैं पायल' (2016) आदि उपन्यासों के अतिरिक्त 'थर्ड जेंडर: हिन्दी कहानियाँ' (संपादक डॉ. एम. फ़िरोज़ खान) नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है। जिसमें अठारह कहानियाँ संगृहित हैं। मछिन्द्र मोरे का 'जाने-माने' नाटक भी किन्नरों पर छपा है।

इनके अतिरिक्त कई अन्य रचनाएँ भी किन्नर जीवन पर प्रकाशित हुई हैं। इनमें किन्नर समुदाय की समस्या, उनकी पीड़ा, दुख-दर्द, जीवन जीने की विभीषिका एवं त्रासद स्थितियों का चित्रण हुआ है। साथ ही किन्नर साहित्य समाज में इनकी निर्धारित भूमिका के अतिरिक्त इनके मनुष्य होने का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है। आम जनता के मन में किन्नरों के प्रति अलगाव एवं घृणा के व्यवहार को परिवर्तित करने में किन्नर साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

भारत की शीर्ष न्यायिक संस्था 'सुप्रीम कोर्ट' ने अप्रैल 2014 में किन्नरों को तृतीय लिंग के रूप में पहचान दी है। यह निर्णय नेशनल लीगल सर्विसेस अथारिटी की अर्जी पर सुनाया गया था। अपने पहचान पाकर कई किन्नर पढ़ लिखकर सरकारी नौकरी प्राप्त कर रहे हैं। जो अधिकार एक भारतीय नागरिक को मिले हैं, वह सब अब इन्हें भी प्राप्त हुए हैं।

सन् 2019 में उत्तर-प्रदेश के प्रयागराज में आयोजित कुंभ में भी किन्नर अखाड़े को सम्मिलित किया गया है। पहले केवल 13 अखाड़े ही शामिल होते थे परंतु अब 14वें अखाड़े के रूप में किन्नर अखाड़े को भी मान्यता प्राप्त हुई है और इस अखाड़े की महामंडलेश्वर लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी हैं।

13, मार्च 2019 छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में 15 किन्नरों ने विवाह कर अपने पारिवारिक जीवन की शुरूआत की। समाज द्वारा बहिष्कृत किन्नर अपनी शादी को लेकर बहुत खुश हैं और भविष्य को लेकर कई स्वप्न इनकी आँखों में हैं।

किन्नरों की स्थिति में बदलाव लाने के लिए भारतीय सरकार कई योजनाएँ लागू कर रही हैं। इन्हें कानूनी रूप से तीसरे लिंग का दर्जा तो मिला है लेकिन इनके जीवन में बदलाव एवं सुधार तब होगा जब सामान्य मनुष्य किन्नरों के प्रति अपने संकुचित दृष्टिकोण को बदलेगा। हम सभी को यह समझने की आवश्यकता है कि किन्नर हमसे मात्र शारीरिक रूप से अलग हैं। लेकिन उनकी भावनाएँ एक स्त्री और एक पुरुष की तरह है। समाज की घृणा झेलता हुआ यह वर्ग सामान्य मनुष्य से खुद को अलग मानता हुआ अपना जीवन जी रहा है।

यदि हम लोग सच में अपने देश का एवं अपने समाज का विकास चाहते हैं तो हमें अपनी छोटी सोच में बदलाव लाना होगा। किसी भी इंसान को उसके लिंग धर्म जाति के तौर पर देखने-परखने से पूर्व हमें उसे एक इंसान के रूप में समझना होगा, ऐसा करने से ही हमारे व्यक्तित्व समाज एवं देश का विकास होगा।

000

संदर्भ -

1. थर्ड जेण्डर अतीत और वर्तमान, डॉ. एम.फिरोज़ खान, विकास प्रकाशन। 2. भारतीय समाज में किन्नरों का यथार्थ, आशीष कुमार दीपांकर, अनुसंधान प्रकाशन। 3. किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में, डॉ. इकरार अहमद, विकास प्रकाशन।

नई पुस्तक

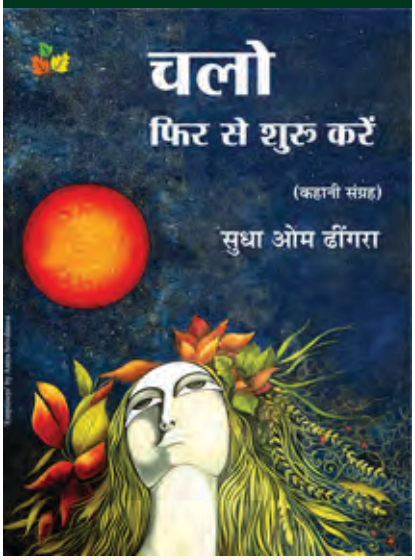

(कहानी संग्रह)

चलो फिर से शुरू करें

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार सुधा ओम ढींगरा की नयी कहानियों का यह संग्रह नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किये जा रहे नये सेट में शामिल है। यह कहानी संग्रह शिवना प्रकाशन के स्टाल पर उपलब्ध रहेगा। सुधा ओम ढींगरा की प्रकाशित कृतियाँ- दो उपन्यास, आठ कहानी संग्रह, तीन कविता संग्रह, एक निबंध संग्रह, बारह संपादित पुस्तकें और दो पुस्तकों का सह-संपादन। 150 पुस्तकों में साहित्यिक सहयोग। हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में तकरीबन 1000 कहानियाँ, कविताएँ और आलेख प्रकाशित। साहित्य पर आठ आलोचना ग्रन्थ, छह शोध ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। असामी, पंजाबी, मराठी, मलयालम और अंग्रेज़ी में कहानी संग्रह अनूदित। अमेरिका और भारत के कई विश्वविद्यालयों में कहानियाँ और कविताएँ पढ़ाई जाती हैं। इस कहानी संग्रह में सुधा ओम ढींगरा की हालिया लिखी गयी कहानियों को शामिल किया गया है। ये कहानियाँ अपनी सहजता से पाठक को बाँध लेती हैं।

000

(शोध आलेख)

प्राचीन भारतीय लिपियों का ऐतिहासिक प्रदेय

शोध लेखक : डॉ. कोमल एन. आहिर
इतिहास विभाग

डॉ. कोमल एन. आहिर
इतिहास विभाग
श्री एवं श्रीमती पी. के. कोटावाला
आर्ट्स कॉलेज, पाटण

लिपि या प्रणाली का अर्थ होता है किसी भी भाषा की लिखावट या लिखने का ढंग। लिपि प्रतीक-चिन्हों की एक व्यवस्था है जिसके तहत भाषाओं को लिखा जाता है। ध्वनियों को लिखने के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, वही लिपि कहलाती है। लिपि और भाषा दो अलग अलग चीजें होती है। भाषा वो चीज होती है जो बोली जाती है, लिखने को तो उसे किसी भी लिपि में लिख सकते है। यद्यपि संसार भर में प्रयोग हो रही भाषाओं की संख्या अब भी हजारों में है, तथापि इस समय इन भाषाओं को लिखने के लिये केवल लगभग दो दर्जन लिपियों का प्रयोग हो रहा है। और भी गहराई में जाने पर पता चलता है कि संसार में केवल तीन प्रकार की ही मूल लिपियाँ है।

चित्रलिपि : चीन, जापान एवं कोरिया में प्रयुक्त विद्यार्थी

ब्राह्मी से व्युत्पन्न लिपियाँ : देवनागरी तथा दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रयुक्त लिपियाँ

फोनेशियन से व्युत्पन्न लिपियाँ : सम्प्रति यूरोप, मध्य एशिया एवं उत्तरी आफ्रिका में प्रयुक्त लिपियाँ

ये तीनों लिपियाँ तीन अलग अलग क्षेत्रों में विकसित हुई, जो पर्वतो एवं मरुस्थलों द्वारा एक-दूसरे से अलग अलग स्थित हैं।

चाबीरूप शब्द : ब्राह्मी, खरोष्ठी, लिपि, व्युत्पन्न, फोनेशियन, मरुस्थल, धम्मलिपि, पण्णवणासूत्र

नाम की उत्पत्ति :

ब्राह्मीलिपि एसा नामाभिधान कैसे हुआ होगा ? इस विषय पर अनेकों अनुमान लगाए गए है।

(क)ब्राह्मी शब्द ब्रह्मन से लिया गया है, इसे ब्रह्म ब्राह्मण या वेद कहा गया है। इसलिए ब्राह्मणों की लिपि या आर्यो द्वारा वेदो को संरक्षित करने के लिए आविष्कार की गई लिपि को 'ब्राह्मी लिपि' के रूप में व्याख्या दी गई है।

(ब)एक जैन ग्रंथ में कहा गया है कि आदिनाथ ऋषभदेवने एक लिपि तैयार की और अपनी ब्राह्मी नामक पुत्री को पढाया इसलिये इसका नाम ब्राह्मी लिपि पडा।

(ग)चीनी बौद्ध विश्वकोश फा-युअन-युलिन में कहा गया है कि ब्राह्मीलिपि ब्रह्मा द्वारा बनाई गई थी।

लिपि की वर्णमाला :

ब्राह्मी लिपि : आज भारतवर्ष में जो लिपियाँ प्रचलित है वो सभी प्राय: ब्राह्मी लिपि से ही उभर के आई है। इन ब्राह्मी लिपियो का मुख्य पदानुक्रम (1) पूर्वकालिक ब्राह्मीलिपि, (2) उत्तरकालिन, (3) नागरी/देवनागरी का प्रचलन हुआ।

भारत के इतिहास को समझने के लिए जिन शिलालेखों को पढने का प्रयास किया गया है उनमें दिल्ली, इलाहाबाद, साँची, माथिया, राधिया, गिरनार, धोली आदि स्थानके प्राचीन शिलालेख महत्त्वपूर्ण है। इस शिलालेख इसमें 'देवोना प्रिय प्रियदर्शी राजा' का निर्देश है, कुछ बिंदु पर यह अहसास हुआ कि यह तो मौर्य सम्राट अशोक के लेख है।

ब्राह्मीलिपि से विकसित गुप्तलिपि की वर्णमाला का उपयोग करके गुप्त सम्राट समुन्द्रगुप्त ने एक शिलास्तभ बनवाया था। जो आज इलाहाबाद में सुरक्षित है।

ब्राह्मी लिपि भारत की अधिकांश लिपियों की जननी है तथा इसका प्रयोग सम्राट अशोक के लेखो में हुआ है।

5वीं सदी ईसा पूर्व से 350 ईसा पूर्व तक इसका एक ही रूप मिलता है, लेकिन बाद में इसके दो विभाजन मिलते हैं- उत्तरी धारा व दक्षिणी धारा।

ब्राह्मी की उत्तरी धारा में गुप्त लिपि। कुटिल लिपि शारदा और देवनागरी को रखा गया है। दक्षिणी धारा में तेलुगु, कन्नड, तमिल, कलिंग, मध्य देशी और पश्चिमी लिपि शामिल है। ब्राह्मी लिपि सिधु लिपि के बाद भारत में विकसित सबसे प्रारंभिक लेखन प्रणाली है।

यह सबसे प्रभावशाली लेखन प्रणालियो में से एक है, सभी आधुनिक भारतीय लिपियाँ और दक्षिण पूर्व और पूर्व एशिया में पाई जाने वाली कई सौ लिपि ब्राह्मी से ली गई है।

विश्लेषण : यह बायें से दांये की तरफ लिखी जाती है। यह मात्रात्मक लिपि है। व्यंजनों पर मात्रा लगाकर लिखी जाती है। कुछ व्यंजनों के संयुक्त होने पर उनके लिये संयुक्ताक्षर का प्रयोग जैसे प्र = प्+2। वर्णों का क्रम वही है जो आधुनिक भारतीय लिपियों में है। ब्राह्मी लिपि को धम्मलिपि नाम सम्राट अशोक ने दिया है। 1830 जेम्स प्रिंसेप द्वारा इस लिपि को समझा गया।

ब्राह्मी का विस्तरण : वस्तुत: लिपि खुद में भाषा नही है वह भाषा को लिखने का एक माध्यम मात्र है। लिपि से भारत की अस्मिता सुनिश्चित होती है और भाषा से स्थायित्व आता है।

भाषाएँ - संस्कृत, प्राकृत, तमिल, तुषारी, समय - इ.स.पूवृ 4 से 5 मी सदी से इ.स.नी 5मी सदी

ब्राह्मीलिपि के तथ्य : ब्राह्मीलिपि केवल भारतवर्ष की ही नहीं समग्र एशिया की प्राचीन लिपि है। ब्राह्मीलिपि से कई एशियाई लिपियों का विकास हुआ है। ब्राह्मीलिपि के उत्कृष्ट उदाहरण सम्राट अशोक के शिलालेख (इ.पूं.3 सदी) के रूप में अनेक स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इस ब्राह्मीलिपि को अशोक ने शिलालेख में धम्मलिपि कहा है। बौद्ध, जैन, ब्राह्मण धर्मग्रंथों के अनेक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस लिपि का नाम ब्राह्मीलिपि ही रहा होगा। ब्राह्मीलिपि के जन्मदाता 'ब्रह्मा' को माना जाता है।

बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर में 64 लिपियों के नाम दिए गए है। इनमें पहला नाम ब्राह्मी है और दूसरा खरोष्ठी। जैनो के पण्णवणासूत्र तथा समवायाँगसूत्र में 16 लिपियो के नाम है जिनमें पहला नाब ब्राह्मी (बंभी) का है। भगवतीसूत्र में भी सर्वप्रथम बंभी (ब्राह्मी) लिपि को नमस्कार करके सूत्र का आरंभ किया गया है। चीनी बौद्ध विश्वकोश 'फा-शु-लिन्' में ब्राह्मी, खरोष्ठी का उल्लेख है। व्युहलर जैसे पुरालिपिविद का मानना है कि फिनिशीद्धत लिपि के आधार पर ब्राह्मी लिपि का निर्माण हुआ है।

ओझाजी के अनुसार... ब्राह्मीलिपि की प्राचीनता और सर्वाग सुंदरता से चाहे इसका कर्त्ता ब्रह्मा देवता माना जाकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा, चाहे साक्षर समाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलायी हो, पर इसमें संदेह नहि की इसका फिनिशियन से कुछ भी संबंध नही है। एडवर्ड, टोमस और कर्निधम मानते है कि ब्राह्मीलिपि का निर्माण भारतवासियो ने ही कीया है।

सिन्धु लिपि से ब्राह्मी लिपि का विकास- एक सिद्धांत यह दावा करता है कि ब्राह्मी सिंधु लिपि से निकली है, सिंधु सभ्यता में प्रचलित एक लेखन प्रणाली जो इस सभ्यता के समाप्त होने के साथ ही उपयोग से बाहर हो गई। जो लोग इस परिकल्पना का समर्थन करते हैं वे इन लिपियों के कुछ संकेतो के बीच समानता बताते है।

सिंधु लिपि में लगभग 64 मूल चिह्न एवं 205 से 400 तक अक्षर हैं जो सेलखडी की आयातकार मुहरो, तांबे की गुटिकाओं आदि पर मिलते हैं। यह लिपि चित्रात्मक थी। यह लिपि अभी तक गढ़ी नहीं जा सकी है। इस लिपि के प्राप्त सबसे बड़े लेख में करीब 17 चिह्न हैं। अधिकतर सम्भावना यह प्रतीत होती है कि ब्राह्मी का विकास सिंधु लिपि से ही हुआ है। सिन्धु लिपि के उपलब्ध लेख ब्राह्मी लिपि से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व के हैं। सिंधु लिपि और ब्राह्मी लिपि के चिह्नो में कुछ समानताएँ है। यह प्रशंसनीय है कि 1000 ईसा पूर्व के आसपास सिंधु लिपि के आधार पर एक 'प्रैक्टो-ब्राह्मी' लिपि का उदय हुआ और समय के साथ, यह परिष्कृत ब्राह्मी लिपि में विकसित हुई।

निष्कर्ष- प्राचीन भारत की सर्वांगपूर्ण विकसित लिपि ब्राह्मी लिपि है। इस लिपि के प्राचीनतम शुरुआती उदाहरण मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेखों से पाए जाते हैं। बौद्धग्रंथ ललित विस्तार में दी गई 64 लिपियों की सूचि में ब्राह्मीलिपि प्राचीन भारत की मुख्य लिपि प्रतीत होती है। उपलब्ध विश्लेषणों का उपयोग करके सिंधु और ब्राह्मीलिपि की निकटता जाँच करते हुए यह कहा जा सकता है की ब्राह्मी लिपि की निकटता सिंधु लिपि से अधिक है।

000

संदर्भ- 1डॉ. हरिप्रसाद गं. शास्त्री, "भारतीय अभिलेखविद्या, युनि. ग्रंथ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद, प्र.सं. 1993, 2पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, "भारतीय प्राचीन लिपिमाला", खामा पब्लिशर्स, दिल्ली, 2018, 3वसिष्ठ रविन्द्र, "ब्राह्मीलिपि प्रवेशीका", कुंड भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, 4वर्मा ठाकुर प्रसाद, "ब्राह्मीलिपि का उद्भव और विकास", रामानंद विद्या भवन, नई दिल्ली, 1998, 5भट्ट वसंतकुमार मनुभाई, "संस्कृत पाण्डुलिपिओ और समीक्षित पाठ संपादन विज्ञान", सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, प्र.सं. 1994, 6डॉ. विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र, "वातायन", (भारतीय लिपिशास्त्र एवम् इतिहास के कुछ नवीन - सन्दर्भ), परिमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 2005, 7

D.D. Kosambi, "An Intorducation to the Study of Indian History", Popular Book Depot, Bombay, First Edition, Dec. 1956

(शोध आलेख)

दलित उपन्यासों के संदर्भ में जाति व्यवस्था का विरोध

शोध लेखक : डॉ. उषा कुमारी जे.बी., एसोसिएट प्रोफ़ेसर

यूरोप की वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक व सामाजिक क्रान्ति के प्रभाव में एक ओर भारतीय समाज में नई चेतना उभरने लगी तो दूसरी ओर देश की आज़ादी से भी, जमींदारों और ठाकुरों के अधीन से पिछडी जातियों को मुक्ति का अहसास नहीं मिलने लगा। जाति व्यवस्था के नाम पर मनुष्य निर्मित बन्धनों में पड़कर नरकीय जीवन बिताने वाले दलित मानवीय अधिकारों से वंचित रहे। मानवीय मूल्यों से भरे उदात्त व्यक्तियों द्वारा आयोजित दलितोद्धार योजनाओं की परिणति में दलितों को शब्द शक्ति का ज्ञान महसूस हुआ। फलत: अपने को पशुवत् जीवन बिताने विवश करने वाली सवर्ण मानसिकता के प्रति वे अपना प्रतिशोध साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने को सक्षम बने। क्रमश: दलित साहित्य और दलितोद्धारकों की प्रबल प्रेरणा में दलितों में सामाजिक चेतना अंकुरित होने लगी, जिसके बल पर वे शोषकों द्वारा उन पर दिखाने वाले अमानवीय कृत्यों पर सतत संघर्ष और विद्रोह करने में जागरूक रहने लगे।

दलित साहित्य में दलित चेतना की अभिव्यक्ति पहले कविता में हुई, फिर कथा साहित्य में, विशेषकर उपन्यास साहित्य में दृष्टिगोचर होने लगी। दलित उपन्यासकार स्वानुभूति और परानुभूति को अभिव्यक्त करके सामाजिकता का निर्वाह करते रहे। अत: दलित उपन्यासों में दलितों के सामाजिक परिवेश के साथ उनकी सामाजिक चेतना के विविध पहलुओं का प्रतिपादन सजीवता से किया गया है। सदियों से चली आ रही जातिव्यवस्था जनता की चेतना, संस्कार और पूरी सामाजिक बनावट को प्रभावित करती रही है। हिन्दू जाति वर्ण व्यवस्था के पोषक रहने के कारण, भारतीय समाज में सबसे ऊँचे स्तर पर ब्राह्मण और निचले स्तर पर शूद्र रह गए। उच्च वर्णी लोग जातीयता के आधार पर शूद्रों को सामाजिक जीवन में हर तरह की प्रताड़ना देते रहे, जिसे हिन्दी के दलित उपन्यासों में देखा जा सकता है।

जाति-पाँति की दुरवस्था से दलित समाज को बचाने के सोद्देश्य में संघर्ष रत रहने वाले दलितों के जीवन का चित्रण सत्य प्रकाश के उपन्यास 'जस तस भई सवेर' में मिलता है। पिछडी जाति के सरवन के बेटा शिवदास पढ-लिखकर बैंक में नौकरी पाता है। बैंकिग सेवाओं को गाँव तक फैलाने के सिलसिले में चौधरी देवी पाल के गाँव में एक नई शाखा खोलने पर, शिवदास स्थानांतरण में उक्त बैंक में नियुक्त हुआ। उसके आने से बस्ती भर के लोग प्रसन्न हुए। लेकिन बैंक के अन्दर का वातावरण उसकी मनोशांति पर भंग डालने वाला था। आरक्षण पर खजाँची के पद पर नियुक्त शिवदास पर, बैंक के योग्य दक्ष कर्मचारी और प्रवन्धक भी नीरस प्रकट करने लगे। उनकी दृष्टि में निम्न जाति का शिवदास उक्त पद के लिए योग्य नहीं है। शिवदास पर उनका बर्ताव निम्न स्तर का रहा। लगता था उनकी दया पर उसे नौकरी मिली है। इस संबंध में प्रबन्धक ने उससे सीधा ही कहा,"बच्चू हमसे लड़कर बैंक में नौकरी करोगे ? स्मरण रखो शिवदास, आज भी तुम्हारी नौकरी हमारी दया पर निर्भर है। सरकार तुम लोगों का चयन करके नौकरी करने भेज सकती है, परन्तु यहाँ चलेगी तो हमारी ही। जाओ चुपचाप अपना काम करो।"1

जाति के नाम पर सरकारी कार्यालय में दलित कर्मचारी पर प्रताड़ने वाले सर्वण प्रबन्धक अपनी क्षमता और अधिकार पर गर्व करते हैं कि उनके कृत्यों को पूछनेवाला कोई नहीं है। समाज और कार्यक्षेत्र में दलितों को न्याय मिलने हेतु संविधान में पारित हरिजन एक्ट को अमल किये जाने में हुए बिलंब के कारण ही शिवदास को प्रबंधक की डाँट सुननी पड़ी। तथापि दलितों के रक्षार्थ पारित 'हरिजन एक्ट' के बल पर, दलितों को प्राप्त कानूनी परिरक्षा को दृष्टि में रखकर शिवदास ने प्रवन्धक को ललकारा, "क्या अदालत में भी तुम्हारा कानून चलता है?" 2

प्रबन्धक के सामने सिर उठाकर बातें करनेवाले शिवदास में दलित चेतना का मूर्तरूप देखकर प्रबन्धक और दूसरे कर्मचारियों के बर्ताव में आमूल परिवर्तन हुआ। शिवदास के संवैधानिक और कानूनी ज्ञान के आगे प्रबन्धक का शौर्य और गर्व मिट्टी में मिल गया है।

डॉ. उषा कुमारी जे.बी.
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी कॉलेज,
टी.वी.एम. केरल

शिवदास के संघर्षशील स्वभाव के सामने कर्मचारियों और प्रबन्धक के शोषण मनोवृत्ति का अन्त हुआ। अनुनय स्तर में शिवदास से माफी माँगनेवाले प्रबन्धक के शब्दों से प्रमाणित होता है कि दलित चेतना के आगे सवर्ण अधीर बन जाता है। सवर्णों की पाखण्डता इन शब्दों में चूर चूर हो रही दीख पड़ती है, "हाँ आओ भाई शिवदास बाबू, मैं ने आपको बुलवाया था और वह इसलिए कि मैं ने उस दिन तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया, उसका मुझे अत्यन्त खेद है। मैं उसके लिए आपसे क्षमा माँगता हूँ। वैसे भी हम सब एक परिवार के भाँति है। आज कल जात-पात का ज़माना भी नहीं है।" 3

यहाँ प्रमाणित हो जाता है कि जाति-व्यवस्था के निर्मूलन के बहाने डॉ. बी.आर.अंबेडकर द्वारा संविधान में पारित 'हरिजन एक्ट' दलितों की विद्रोही चेतना पर विशेष बल देता है।

'छप्पर' उपन्यास में, जातीय वैषम्य के कारण दलितों द्वारा भोग जानेवाली समस्याएँ और उस पर दलित चेतना से प्रबुद्ध दलितों की प्रतिकियाएँ निरपेक्ष ढंग से प्रस्तुत की गई है। उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम की राय में, जहाँ सवर्ण मानसिकता के अतिक्रमण से दलितों को समाज में सबसे उपेक्षित रहना पड़ता है, वहाँ दलित जीवन में अडचन पैदा करने वाली जाति प्रथा को तोडने का साहस दलित चेतना के श्रमिक विकास का सुपरिणाम सिद्ध होता है।

सवर्ण विचार में निम्न जाति के लोग शिक्षा पाने योग्य नहीं था। अतएव उच्च शिक्षा प्राप्त करने शहर गए चन्दन की पढाई खत्म करने के उद्देश्य से सवर्णों ने पिछड़ी जाति के सूखा और रमिया की आमदनी बन्द कर दी। लगान न देने के कारण खेत से बेदखली की गई। अत: घर की गिरवी रख जाने और कोई टिकाना न पाने पर उन्हें गाँव छोडना ही पड़ा। शहर में भी कोई आसरा न पाते देखकर रमिया इस आशा में सूखा से गाँव लौटने का आग्रह प्रकट करती है कि इतने दिनों में ठाकुर - जमीदारों के मन बदल गए होंगे। उन्हें गाँव में रहने की अनुमति दी जाएगी। लेकिन निम्न जाति में जन्म लेने का आरोप लगाकर उन्हें मानवीय अधिकार से वंचित करने की सवर्ण मन की दुष्वृत्ति पर सूखा क्रुद्ध होता है, "जिन लोगों ने कहीं का नहीं छोडा हमको, जिनकी बर्बरता और अत्याचारों के कारण आज यह हालत हुई हमारी। मनुष्यता के इन हत्यारों से दया की उम्मीद करते है तू, पूरे कसाई है ये तो खून में रंगे हुए हैं उनके हाथ। ये हलाल तो कर सकते हैं, बहाल नहीं।"4

सूखा के शब्दों में सवर्णों की अमानवीयता का भयानक रूप उतर आता है। पुराने ज़माने से मानवीय अधिकारों से वंचित दलित इनकी हिंसात्मक वृत्तियों के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाते थे। लेकिन आज दलितोत्थान के जरिए उनको इतनी ताकत और उम्मीद मिल गई कि वे उनके दमन का शमन करने को काबुल बन गए है। सवर्ण-मानसिकता से, दलित जीवन के भोगी उपन्यासकार की सशक्त प्रतिक्रिया यहाँ सूखा के शब्दों में उद्दीप्त रहती है।

समाज में व्यवस्थित जाति-पाँति की तीव्रता और पीडित दलित जनों की सचेतनता मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास 'मुक्तिपर्व' में कई उदाहरणों से प्रस्तुत की गई है। जातिपाँति की दुष्करता दलित जीवन को जितना अधिक पीडित बना देती है, वे उतने अधिक सजग और सतर्क रहते हैं।

पाँचवीं कक्षा में सबसे अधिक अंक पाये सुनीत को आगे पढ़ाने की इच्छा में पिता वंशी उसके साथ बस्ती से थोड़ी दूर पर स्थित हाइस्कूल गए। सुनीत के मुँह से निकेतन प्राइमरी स्कूल का नाम सुनकर मास्टर समझ गए कि इसने अब तक चमारों के स्कूल में पढा था। सुनीत ने गर्व के साथ बस्ती के स्कूल का नाम कहा तो मास्टर ने अनमने ढंग से कहा- "समझ गया बच्चू समझ गया, चमारों के स्कूल से आए हो, यही ना।"5

मास्टर जी के कथन में दलितों के प्रति सवर्ण मन की घृणा निहित थी। यहाँ व्यक्त हो जाता है कि दलितों की स्कूली शिक्षा में जाति अड़चन बन जाती है तथा सवर्ण- स्कूल में उन्हें भर्ती देने को वे तैयार नहीं होते।

छठी कक्षा के पहले दिन स्कूल से लौट आए सुनीत के मुँह से वंशी जान गया कि पहले दिन ही स्कूल में सुनीत, चमार जाति के होने के कारण मास्टर जी और विद्यार्थियों से अपमानित हुआ। इन घटनाओं से, समाज में अपने अस्तित्व की माँग वंशी को महसूस हुआ। देश की आज़ादी के बाद भी, जाति भेद और छुआछूत की समस्या ज़ारी रखने से वंशी बेचैन रहा।

दलित जीवन को त्रस्त करने वाली समस्याओं से दलित समाज को मुक्त कर देने का उपाय उसने रात भर सोचा, प्रभात की वेला में सूरज की किरणों के फैलाव के समान, उसके मन में समाज सुधार की भावनाएँ उभर उठीं। यों दलित मुक्ति चाहने वाले दलित मन का संघर्ष उपन्यासकार के शब्दों में प्रभावी रहता है, " जैसे लुहार लोहे के टुकडे को आग में से निकाल - निकाल कर बार-बार उस पर चोट करना है। लोहे का टुकड़ा चोट सहता है और दहकता है। उसका वजूद भी तो दहकने लगा था। उसकी जात के लोग कब तक इन चोटों को सहन करते रहेंगे? वह आवेग से भरा हुआ था। घायल भावनाएँ उसे और भी बुरी तरह उद्वेलित कर रही थीं।"6

इन शब्दों में दलित मन की मनोवृत्ति परोक्षत: दृष्टिगत होती है। शोषकों द्वारा दी जानेवाली यातनाएँ दलित मन में आक्रोश का रूप धारण कर लेती हैं। इस उद्वेग में वे सब दुराचारों, रूढ़ीगत प्रथाओं और जाति के भेदभाव को इस दुनिया से मिटाकर सबके बीच बराबरी स्थापित करने को उतारू रहते। दलित साहित्य, विशेषकर दलित उपन्यास यह प्रमाणित कर देता है। दलित उपन्यासों में जाति व्यवस्था के विरुद्ध अभिव्यक्त दलित विद्रोह में डॉ. बी. आर अम्बेडकर के चिन्तन मनन का प्रभाव पूर्ण रूप से विद्यमान है।

000

संदर्भ-

1. जस तस भई सवेर - सत्य प्रकाश - पृ सं-87, 2. वही - पृ सं - 87, 3. वही - पृ सं-87, 4. छप्पर - जयप्रकाश कर्दम -पृ सं-93, 5. मुक्तिपर्व - मोहनदास नैमिशराय- पृ सं - 57, 6. वही- पृ सं - 66 पृ. 245., 20. वही, पद 338, पृ. 86

(शोध आलेख)

प्रेमचंद के साहित्य में प्रेम का स्वरूप

शोध लेखक : डॉ. रमेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी

हिन्दी साहित्याकाश में प्रेमचन्द का उदय एक दैदीप्यमान नक्षत्र के रूप में हुआ है। भारतीय संस्कृति के सच्चे वाहक के रूप में उन्होंने सहित्य सृजन किया। उनके द्वारा रचित साहित्य में प्रेम के उज्ज्वल पक्ष के साथ-साथ कलुषित व विकृत रूप का वर्णन भी यथा संभव हुआ है। उनके अनुसार जब प्रेम-भाव में ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट, स्वार्थ, क्रोध आदि चरित्र के अशुभ पक्ष प्रवेश कर जाते हैं तो वे प्रेम के विकृत रूप को प्रकट कर देते हैं। विकृत रूप केवल शारीरिक या मानसिक स्तर पर ही रहता है तथा उसके पीछे कोई ना कोई स्वार्थ छिपा होता है। सच्चे प्रेम में स्वार्थ के स्थान पर त्याग, बलिदान, सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा का भाव ही रहता है।

'वरदान' उपन्यास में प्रेमचंद कहते हैं, " सच्चे प्रेम का कमल बहुधा कृपा के प्रभाव में खिल जाया करता है। जहाँ रूप, यौवन संपत्ति और प्रभुता तथा स्वाभाविक सौजन्य प्रेम का बीज बोने में अकृत कार्य रहते हैं, वहाँ प्राय: उपकार का जादू चल जाता है। कोई हृदय ऐसा वज्र और कठोर नहीं हो सकता, जो सत्य सेवा से द्रवीभूत न हो जाए।"1 सच्चे प्रेम में स्वार्थ का नामोनिशान नहीं होता। सच्चा प्रेम पूर्णतया निस्वार्थ होता है। स्वार्थ में ही यह कलुषित होकर अपने विकृत रूप को धारण करता है। प्रेमचंद ने विशेष रूप से कहानियों में, जो संख्या में काफी कम है इस प्रकार के विकृत रूप का अंकन किया है। स्वार्थ स्वेच्छाचारिता व प्रतिहिंसा को विवेचित करते हुए प्रेमचंद ने साहित्य सृजन में विकृत प्रेम का वर्णन किया है।

'दारोगा जी' कहानी में उच्छृंखलता से विकृत-प्रेम का वर्णन किया है। इस कहानी में दरोगा जी की प्रेमिका लैली एक स्वेच्छाचारिणी है। वह मीर और दारोगा जी को ही एक साथ अपने प्रेमजाल में एक साथ फँसाए रखती है। वह इतनी व्यवहार कुशल है कि अपने पति के प्रति एकनिष्ठ होने का सफल ढोंग करती है। प्रेमचंद जी को ऐसी नारी बिल्कुल ही असहनीय है। इसलिए वह इस घृणित कार्य को बंदकर तुरंत ही घटनाओं का जाल-सा बुन देते हैं। एक दिन मीर लैली के पास आया हुआ था। उसकी उपस्थिति में अचानक ही दारोगा जी भी आ जाते हैं। भेद खुल जाने के भय से लैली मीर को एक कोठरी में छिपा देती है। दारोगा जी को इसका आभास भी नहीं होता,परंतु जब दारोगा जी के होते हुए उसका पति आ जाता है तो वह घबराकर दारोगा जी को भी इस कोठरी में छिपा देती है, जिसमें उसने पहले मीर को छिपाया होता है। दरवाजा खुलने में हुई देरी भीतर से आने वाली आवाजों से पति को लैली पर शक हो जाता है। लैली का पति कोठरी का दरवाजा तोड़ देता है। दरोगा जी खुद को मीर का साथी बताकर बच निकलते हैं, परंतु लैली का क्रोधित पति मीर की नाक काट देता है। इस प्रकार का विकृत प्रेम, जो स्वेच्छाचारिता से उत्पन्न होता है की परिणति त्रासदी में ही होती है। यह मात्र मानसिक विकृति की ही उपज होता है।

ऐसा ही एक उदाहरण हमें 'ज्वालामुखी' की नायिका में भी देखने को मिलता है। ऐशगढ़ की रूपवती विलासिनी स्वामिनी विज्ञापनों के माध्यम से रोजगार के लिए भटकने वाले युवाओं को सहज ही आकृष्ट कर लेती है। वह उन्हें प्रेम-पत्रों के उत्तर लिखने का कार्य देती है। बदले में वह वेतन देती है। इसके साथ-साथ वह उन्हें काम-वासना की तृप्ति का साधन भी बनाए रखती है।

डॉ. रमेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी
चौधरी मनीराम गोदारा राजकीय महिला महाविद्यालय
भोडिया खेड़ा (फतेहाबाद) हरियाणा

पूरी तरह भोगने के बाद वह उन्हें असहनीय कष्ट देने के लिए तहखाने में फिंकवा देती है। कहानी का नायक भी इसके जाल में फँस जाता है। एक दिन एक वृद्ध उसे तहखाने का दृश्य दिखाते हुए उसे शीघ्र ही वहाँ से बच निकलने की सलाह देता है। वृद्ध की सलाह पर युवक वहाँ से बच निकलने में सफल हो जाता है।

यहाँ पर भी लेखक आदर्श की सीमा नहीं लाँघता बल्कि नैतिकता व मर्यादा का पालन करता है। कहानी प्रेमचंद जी की कल्पना सृष्टि है। वृद्ध उसकी अंतरात्मा का प्रतीक है। तहखाना भोगवादी प्रवृत्ति का दुष्परिणाम है। अत: यह कहानी पूर्णत: प्रतीकात्मक है। प्रबुद्ध पाठक इस कहानी से प्रेरणा लेकर भोगवादी प्रवृत्ति से दूर रहकर चरित्र निर्माण कर सकते हैं। प्रेमचंद ने नारी के प्रति पूर्ण उदार सहृदय दृष्टिकोण रखा है, इसलिए उनकी स्वेच्छाचरिता के लिए भी युवा वर्ग की भोग-विलास प्रवृत्ति को दोषी मानते हैं, फिर भी नारियों की इस वृत्ति को प्रेमचंद जी अच्छा नहीं मानते। सच्चे प्रेम में बदले की भावना व प्रतिहिंसा के लिए कोई स्थान नहीं होता।

पवित्र व उज्ज्वल प्रेम तो त्याग, निस्वार्थ सेवा कर्त्तव्यनिष्ठा के भावों से ही पुष्ट होता है। प्रेमचंद जी ने प्रतिशोध में प्रतिहिंसा युक्त प्रेम को अपनी कहानी 'फातिहा' में चित्रित किया है। इस कहानी की नायिका अफ्रीदी 'तूरया' पिता द्वारा धन प्राप्त करने के लिए कैद किए गए मेजर हिम्मत सिंह से प्रेम करने लगती है। वह हिम्मत सिंह से उसके संगीत के कारण प्रेम करने लगती है। 'तूरया' का पिता मेजर से धन प्राप्त करना चाहता है, परंतु अपेक्षित धन प्राप्त में होने पर वह उसे अँधेरे कुएँ में डाल देता है तथा जान से मारने की धमकी देता है। अपने प्रेमी की दुर्गति से 'तूरया' बेचैन हो उठती है। मेजर उसे अपने बारे में सब कुछ बता देता है। वह तो 'तूरया'को बताता है कि उसके दो बच्चे हैं, परंतु वह पत्नी के जीवित होने की बात छिपा लेता है।

'तूरया' को बच्चों की पीड़ा का एहसास होता है।वह अपने पिता से मेजर को छुड़वा देता है क्योंकि वह मेजर से अपने पिता के सामने रुपया भेजने का वादा कर देती है। मेजर 'तूरया' से उसके पास आने का वादा भी करता है, परंतु तीन वर्ष तक न लौटने पर भी वह काबुली औरत के वश में उसके पास निकाह के लिए कहने जाती है तो उसे पत्नी के साथ देखकर क्रोध व प्रतिहिंसा से भर उठती है। वह उसकी पत्नी की हत्या कर देती है। वह कहती है," अब पहचान ले मैं 'तूरया' हूँ। मैं आज तेरे घर में रहने के लिए आई थी, सब कुछ छोड़ दिया था लेकिन तू झूठा व मक्कार है तो अब अपनी बीवी के नाम को रो, मैं आज से तेरे नाम को रोऊँगी।"2

मेजर उससे अनेक प्रकार से अनुरोध करता है, परंतु वह उसके अनुरोध को अस्वीकार कर देती है। प्रेमचंद ने नारी की इस प्रतिहिंसा के लिए पुरुष के विश्वासघात को ही उत्तरदायी माना है। नारी जहाँ प्रेम के लिए अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हो जाती है, वहीँ वह सत्य भावना व विश्वासघात के लिए पुरुष का सर्वस्व लूटने की क्षमता भी रखती है। 'तूरया' मेजर के बच्चों को पूर्ण ममता प्रदान करती है परंतु मेजर के प्रणयानुरोध को पूरी दृढ़ता से ठुकरा देती है। प्रेम पवित्र उच्च आदर्शो से युक्त होता है इसमें स्वार्थ का कोई स्थान नहीं होता। जब प्रेम में स्वार्थ की कलुषित वृत्ति प्रविष्ट हो जाती है तो यह विकृत हो जाता है। किसी स्वार्थ को सिद्ध करने वाली स्त्रियाँ प्रेम को भी विफल व विकृत बना देती है।

प्रेमचंद प्रेम में किसी भी प्रकार का स्वार्थ या अनुबंध स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार तो प्रेम का बीज एक बार हृदय में पड़ जाने पर बिना जलवायु या प्रकाश के बढ़ता ही जाता है। विपरीत परिस्थितियों में तो प्रेम का अंकुर बड़ी ही तीव्र गति से बढ़ता है। प्रेमचंद जी ने इस प्रकार के प्रेम से दूर रहने की सलाह प्रबुद्ध पाठकों को भी दी है।इस प्रकार के विकृत प्रेम को लेखक ने 'कैदी' कहानी में चित्रित किया है। इस कहानी की राष्ट्रभक्त, संगीत-प्रेमी, नायिका हेलेन मास्को के समृद्ध व शराब और सुंदरियों में डूबे रहने वाले युवक से प्रेम करती है। भिन्न रुचियाँ भी उनके प्रेम में बाधा नहीं बन सकती। हेलेन अपने प्रेम से प्रेमी को भी राष्ट्रभक्ति व राजनीतिक संग्राम में भाग लेने वाला बना देती है। वह उक्रायेन प्रांत के अत्याचारी, अन्यायी व आतंकवादी गवर्नर रोमनाफ़ की हत्या करने के लिए स्वयं उससे प्रेम का अभिनय करती है और ऐसे समय में आइवन द्वारा उसकी हत्या करने की योजना बनाती है। आइवन को इसके लिए तैयार भी कर लेती है।

जब उसका अभिन्न वास्तविक प्रेम का रूप ले रहती है तो वह रामनाथ को हत्या करने वाले स्थान से हटाने का प्रयास भी करती है किंतु इसमें सफल नहीं हो पाती। आइवन को रोमनाफ़ की हत्या के प्रयास में असफल रहने पर गिरफ्तार कर लिया जाता है। हेलेन रोमनाफ़ से विवाह करके उसके साथ रहने लग जाती है, परंतु वह आइवन को याद करती रहती है। कारावास से मुक्त होकर जब आइवन हेलन को उसके किए की सजा देने पहुँचता हो तो उसकी अर्थी सजी मिलती है।

रोमनाफ़ द्वारा हेलन के पश्चाताप की बात सुनकर वह उसे क्षमा करके स्वयं भी प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। "दुनिया का सबसे अनमोल रतन" की नायिका दिलफर अपने प्रेमाकांक्षी युवक के दिलफिगार को दुनिया का सबसे अनमोल रतन लाकर देने पर ही अपना प्रेम पत्र बनाना स्वीकार करती है। दिलफिगार द्वारा लाए गए सभी उपहार उसके लिए निरर्थक होते हैं। अंत में भारत भूमि की रक्षा करते हुए वीरगति पानी वाले वीर के रक्त की अंतिम बूँदें लाने पर ही वह उसे अपना प्रेमपात्र बनती है और उसकी मल्लिका बनने को तैयार होती है। "मैं उसे धर्मवीर की ब्याहता हूँ, जिसने हिंदू जाति का मुख उज्ज्वल किया है। तुम समझते हो कि वह मर गया। यह तुम्हारा भ्रम है,वह अमर है। मैं इस समय भी उसे स्वर्ग में बैठा देखती हूँ।"3

वह एक तख्ती पर लिखवा कर टाँग देती है "खून का वह आखिरी कतरा, जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज़ है।"4 "आज से तू मेरा मालिक है और मैं तेरी लौंडी।"5

इस प्रकार का प्रेम नायिका का अनुबंध प्रेम है। यह नायक में किसी विशेष अनुबंध को

पूर्ण करने पर नायक का उसकी होना स्वीकार करने पर पूर्ण होता है। प्रेमचंद को अनुबंधित प्रेम भी स्वीकार्य नहीं है। 'जिहाद' कहानी की श्यामा स्वस्थ व सुंदर धर्मदास से प्रेम करती है। दुर्बल खजानचन्द को पति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। पठानों से गिर जाने पर स्वस्थ धर्मदास द्वारा धर्म परिवर्तन को स्वीकार करने पर वह उससे विरक्त हो जाती है। दुर्बल खजानचंद द्वारा धर्म परिवर्तन स्वीकार न करके पठानों से लड़कर मर जाने पर वह उसकी प्रेमिका के रूप में जीवन जीने का संकल्प करती है, परंतु धर्मदास के परिणय निवेदन को कठोरतापूर्वक अस्वीकार कर देती है। धर्मदास आत्महत्या कर लेता है। अनुबंध होने के कारण ही यह प्रेम असफल होता है। 'नया विवाह' कहानी की नायिका आशा पौरुषहीन वृद्ध डेंगामल से उसकी संपत्ति के कारण विवाह करती है, किंतु अपनी काम-वासना की तृप्ति महाराज के सुंदर युवक पुत्र जुमल से करती है।

अत: यह प्रेम का विकृत रूप है। 'मेरी पहली रचना' की चंपा का प्रेम भी धन के कारण है। वासना की पूर्ति के लिए वह प्रेम का नाटक करती है। धनाभाव के कारण किया गया यह प्रेम भी लेखक की दृष्टि में विकृत है। 'सती; कहानी की नायिका की शर्त है," मेरा हृदय उस पुरुष सिंह के चरणों पर अर्पित हो सकता है, जो प्राणों की बाज़ी खेल सकता हो।"6

वह ऐसा पुरुष न मिलने पर आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने की प्रतिज्ञा करती है।अपनी सेना के एक बुंदेला योद्धा रतन सिंह की वीरता से वह प्रभावित होती है। रतन सिंह भी उसके प्रति प्रेम का भाव रखता है, परंतु दोनों में से कोई भी इसके एक दूसरे के प्रति व्यक्त नहीं कर पाते। चिंता देवी को मारने आए तीन व्यक्तियों को रतन सिंह ही मार गिराता है और स्वयं भी घायल हो जाता है। घायल रतन सिंह की सेवा कर चिंता देवी उसे स्वस्थ कर लेती है और उसे पति के रूप में स्वीकार कर लेती है, बाद में वह रतन सिंह में उन गुणों का अभाव होने पर चिता में जलकर सती हो जाती है। इस चिता में रतन सिंह भी जलकर अपने प्राण दे देता है। इस प्रकार यह अनुबंध प्रेम भी प्रेमचंद ने विफल ही दिखाया है।

प्रेम किसी भी प्रकार की शर्तों में बाँधा नहीं जा सकता।'शेख मखमूर' कहानी के नायिका किसी साहसी ईमानदार व जवान मर्द से विवाह करने के लिए कुछ शर्ते रखती है। मसऊद उसके प्रश्नों के पुरुषोचित उत्तर देता है, परंतु अंत में गिरफ्तार कर लिया जाता है। मल्लिका को उससे प्रेम हो जाता है। अंत में मल्लिका कहती है "मसूद मैं एक नाचीज़ तोहफा तुम्हारे लिए लायी हूँ और वह मेरा दिल है।"7

प्रेमचन्द किसी भी प्रकार से असामाजिक प्रेम को उचित नहीं मानते। प्रेम के सामाजिक संदर्भ को वे बखूबी जानते हैं। जाति, धन, धर्म दूषित सामाजिक-व्यवस्था, रूढ़ि, अंधविश्वास आदि प्रेम की विफलता का मूल मानते हुए उन्होंने साहित्य के माध्यम से इस प्रकार के प्रेम-संबंधों से यथासंभव बचने की सलाह पाठकों को दी है। इस प्रकार के प्रेम-संबंध अंतत: असफल ही होते हैं। प्रेमचंद ने साहित्य में स्वार्थ, सेवा रहित, त्याग रहित, प्रतिशोधयुक्त या प्रतिहिंसायुक्त अनुबंध प्रेम को विकृत प्रेम के रूप में विफल ही अंकित किया है।

जहाँ प्रेम के विवेचन को जाति-भेद, धार्मिक संकीर्णता, अंधविश्वास आदि संकीर्णताओं से संबद्ध कर दिया गया वह मुख्य प्रतिपाद्य से ही अधिक उभरा है। अंत में प्रेमचंद ने साहित्य में प्रेम के सात्विक रूप अर्थात् आदर्श रूप का अंकन किया है। जहाँ एकनिष्ठता के अभाव तथा त्याग बलिदान, कर्त्तव्यनिष्ठा रूप का अंकन किया है।प्रेमचंद जी प्रेम के विपरीत रूप का वर्णन करने में पूर्णत: सफल हुए हैं।

000

संदर्भ- 1 प्रेमचंद, वरदान, पृ. 85, 2 प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-7,पृ. 167, 3 प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-7,पृ. 154, 4 प्रेमचंद गुप्तधन भाग-1, पृ. 9, 5 प्रेमचंद गुप्तधन भाग-1,पृ. 8, 6 प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-7,पृ.69, 7 प्रेमचंद गुप्तधन भाग-1,पृ. 22

नई पुस्तक

(कहानी संग्रह)

ज़ोया देसाई कॉटेज

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार उपन्यासकार पंकज सुबीर का यह नौवाँ कहानी संग्रह है। यह नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कर लाये जा रहे सेट में उपलब्ध है। पंकज सुबीर की अभी तक प्रकाशित पुस्तकें हैं- उपन्यास- ये वो सहर तो नहीं, अकाल में उत्सव, जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था, रूदादे-सफ़र। कहानी संग्रह- ईस्ट इंडिया कम्पनी, महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ, कसाब डॉट गांधी एट यरवदा डॉट इन, चौपड़े की चुड़ैलें, होली, प्रेम, रिश्ते, हमेशा देर कर देता हूँ मैं। ग़ज़ल संग्रह- यही तो इश्क़ है। व्यंग्य संग्रह- बुद्धिजीवी सम्मेलन। संपादन- नई सदी का कथा समय, विमर्श- नक़्क़ाशीदार केबिनेट, बारह चर्चित कहानियाँ, विमर्श दृष्टि- सुधा ओम ढींगरा का साहित्य। पंकज सुबीर की इन नयी कहानियों में विषय की विविधता है, सांप्रदायिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श के साथ ही अपने समय के सरोकारों पर भी पंकज सुबीर ने इन कहानिया में बात की है। यह संग्रह पुस्तक मेले में उपलब्ध रहेगा।

000

(शोध आलेख)

हिन्दी साहित्य में चित्रित आदिवासी समाज : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोध लेखक : मीनाक्षी

आदिवासी साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों के जीवन और समाज का चित्रण हो। संजीव, रमणिका गुप्ता, रणेन्दर, भगवान दास मोरवाल आदि कवियों ने आदिवासी लोगों के जीवन को अपने साहित्य में चित्रित किया है। उनके रहन-सहन, रीति - रिवाज त्यौहार, खान-पान संस्कृति, धार्मिक मान्यता, अशिक्षा और इन पर हो रहे अत्याचार को पाठकों के सामने स्पष्ट किया है। यह लोग सभी अधिकारों से वंचित हैं। इनको समाज की मुख्य धारा से अलग माना जाता है।

साहित्य में आदिवासी विमर्श चर्चा का केंद्र बना हुआ है। डॉ. प्रमोद चौधरी लिखते हैं -

"आदिवासी विमर्श से तात्पर्य है उनके अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श।"1

आदिवासी का अर्थ है वन या जंगल में रहने वाले आधुनिक युग जिसे हम विज्ञान का युग कहते हैं आज के समय में भी यह लोग जंगल,पहाड़ और नदियों को ही अपनी संपदा मानते हैं। जंगल से यह लोग फल और जड़ी बूटियाँ प्राप्त करते हैं और नदियों से मछली पकड़ कर अपना जीवन यापन करते हैं। स्वभाव से यह शांत होते हैं और कोई भी वस्तु संग्रहित करके नहीं रखते। आज के समय में भी वस्तु की आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया को ही अपनाते हैं। इनके औज़ारों और रहने के स्थान से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी अभिलाषाएँ और आकांक्षाएँ बहुत सीमित है। धीरे-धीरे यह जातियाँ कृषि कार्य को अपना रही है। नट एक घुमक्कड़ जाति है यह एक गाँव से दूसरे गाँव में लोगों का मनोरंजन करने के लिए घूमते रहते हैं। इसी कारण यह कृषि तकनीक से अनभिज्ञ हैं शैलुश में सावित्री कहती हैं-

"नट खेती करना नहीं जानते। मैं चाहती हूँ कि हमारी जमीन पर गर्मी में होने वाले धान की नर्सरी बन जाए। मतलब यह है कि सारा काम धाम करवाना आपको पड़ेगा और करना नटों को।"2

जिन नटों की यह जमीन थी उनसे छीन कर पूँजीपतियों और उद्योगपतियों ने कब्जा कर लिया है और उन्हीं नटों से खेतों में मजदूरी करवा रहे हैं। आदिवासी प्रकृति पर निर्भर होते हैं। सूखा पड़ने से वह दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं। खाने के लिए उनके पास बहुत कम भोजन सामग्री होती है। रथ के पहिए में कंजरिया के काली मिट्टी अपने हाल पर लज्जित थी- "अकाल तो पहले भी पड़े थे, पर यह अकाल तो पहले के अकालों पर भारी था।" 3

आदिवासियों की गरीबी, जीवन यापन के लिए संसाधनों का अभाव उन्हें बेगारी करने को मजबूर करते हैं। यह समाज की मुख्य धारा से कटे हुए हैं यह लोग जंगलों में ही अपना जीवन यापन करते हैं। प्रकृति के गोद में पलते और बड़े होते हैं। यही इनका छोटा सा आशियाना होता है। परंतु साधन संपन्न लोगों से इनका सुख देखा नहीं गया और धीरे-धीरे इन लोगों ने उनकी जमीन पर अपना कब्जा कर लिया। अपने स्वार्थ हेतु उद्योगपतियों और पूँजीपतियों ने वहाँ पर बड़े-बड़े उद्योग धंधों का निर्माण कर लिया। आदिवासी जीवन के संघर्षों को स्पष्ट करती हुई रमणिका गुप्ता लिखती हैं-

"जंगल माफिया कीमती पेड़ उससे सस्ते दामों पर खरीदकर,ऊँचे दामों पर बेचता है और करोड़पति बन जाता है। पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड भरता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने की बजाय पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।" 4 "आदिवासी विमर्श एक ऐसा विषय है जिसमें उनके समाज की अस्मिता संस्कृति परंपरा और रहन-सहन की चर्चा की जाती है। जातिगत भेद और वर्ण व्यवस्था

मीनाक्षी सुपुत्री श्री रामस्वरूप सैनी
मकान नंबर 345 हुडा सेक्टर 3
फतेहाबाद 125050
मोबाइल -9254642753
ईमेल- minaksh1988saini@gmail.com

के कारण इन्हें पहाड़ों और जंगलों की ओर खदेड़ा गया है। शिक्षा के अभाव और पिछड़ेपन के कारण यह समाज से दूरी बनता चला गया है। रमणिका जी द्वारा लिखित काव्य संग्रह 'पूर्वांचल एक कविता यात्रा' में उन्होंने नागा जाति के बारे में अपने विचार रखे हैं- लोग अभी-अभी अपने घरों से बाहर आए हैं उनकी पत्नियों चरखे पर सूत काट रही है दूसरी और चावल से बनी शराब उबाल रही है इनके लड़का लड़की घरों के आसपास हमें देखते ही एकत्र हो गए हैं।

"अंदर ही अंदर / कहीं फूँकार रहा नागा / रहना का फण उठाये विष उगलता / अपनी खोज से बाहर आ गया। यतिम्बा की सफेद फेण पूरे उबाल पर करघे पर धागे सफेद पूरे कसाव पर चरखे पर पुनी के सूत तन गए इबो घर और इबे घर पूरे सज गए।"5 रमाणिका जी ने आदिवासी समाज के दुर्दशा का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। ये लोग कर्म को सर्वोपरि मानते हैं, बहस करना इन्हें आता नहीं। जंगल में पाए जाने वाले वस्तुओं से अपना और परिवार का पेट भरते हैं- "लकड़ियाँ काटते हाल नाधते रोपनी निकोनी कटनी करते / झूम सजाते महुआ चुनते / सुखुए के बीज बटोरते / कुसुम फूल बीनते / झीझाते / बाँसो का जंगल का जंगल / सुपों और टोकरियों में / बिन डालते / पर वह बोलते नहीं थे।"6

इन्हें शिक्षा प्राप्त नहीं है। इनसे केवल पशुओं की तरह काम करवाया जाता है। उनकी भावनाओं को कोई नहीं समझना चाहता। उनके जंगलों को नष्ट किया जा रहा है और दर-दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिया गया है। इनको अपने बसेरे से विस्थापित करने के कारण इनका जीवन बड़ा ही कष्टकारी बन चुका है। जब यह अपनी जमीन और घर के हक के लिए लड़ते हैं तो इन्हें माओवादी नक्सलवादी घोषित करके उन्हें जान से मार दिया जाता है। भगवान दास मोरवाल ने काला पहाड़ में 'मेव' जाति का वर्णन किया है। जिसमें वहाँ की लोक संस्कृति का चित्रण भी मिलता है उनके शब्दों में- "काला पहाड़ ऐसे ही बुरे समय में डैने फैलाकर उन निरीहों को आश्रय देता है जो उसकी ओर लपके हुए आते हैं। सच अगर आज भी यह काला पहाड़ आश्रय प्रदान नहीं करता तो पता नहीं तब यह खाकी वर्दी और कितना जुल्म ढाती।"7 आज आदिवासी लोग भयंकर स्थिति से गुजर रहे हैं। पानी, धरती,जंगल उनकी सबसे बड़ी समस्या है। यह लोग कड़ी मेहनत करके जंगलों को साफ करके उसे खेती करने योग्य बनाते हैं इससे इनका आत्मा रिश्ता जुड़ जाता है यह लोग जमीन को ही अपनी पहचान का हिस्सा मान लेते हैं-"आदिवासी के अस्मिता का प्रश्न जहाँ उनके नाम की परिभाषा से गहरा संबंध रखता है वही वह उसकी सामाजिक संरचना और जीवन यापन के साधन जल,जंगल, जमीन से जुड़ा है। इसका उद्गम उसकी पहचान को पुष्ट करता है तो उसके विरासत,भाषा, शिक्षा, संस्कृति और जीवन शैली पहचान को जिंदा रखती है। इनकी रक्षा के बिना उसके अस्मिता की रक्षा नहीं हो सकती।"8 विकास के नाम पर सरकार द्वारा कुछ घोषणाएँ की जाती है और इनसे इनके संसाधन छीन लिए जाते हैं सभ्यता की रोशनी के नाम पर इन्हें कदम-कदम पर धोखा छल ही मिलता है। यह लोग अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का विरोध करते हैं। यह विरोध वन विभाग के कर्मचारी, ठेकेदारों, जमींदारों और महाजनों की लूट व अत्याचार के खिलाफ है और अपने-अपने अधिकारों के लिए एकजुट होकर संघर्ष कर रहे हैं। हरिराम मीणा इनके अस्तित्व पर मंडरा रहे संकट के बारे में लिखते हैं "आदिवासियों की मूल समस्या अंततः अस्तित्व का संकट ही बन चुकी है। आदिवासियों को तो यह भी पता नहीं कि उन पर यह अस्तित्व का संकट क्यों है। वे भौंचक्का हैं,किंतु मौन।"9 इनके अस्तित्व और सम्मान का संकट मीना जी ने अंडमान में देखा है उसे व्यक्त किया है- "जिन्होंने हमें गोलियों से भूना / वे इंसान थे / जिन्होंने हमें टापू से इधर-उधर खदेड़ा / वे इंसान है / और जो हमारे नस्ल को उजाड़ेंगे / वो इंसान होंगे।"10

आदिवासियों को प्रकृति से ही जीने के लिए सभी साधन प्राप्त होते हैं वे जंगल मेरी झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं स्वतंत्रता के कितने वर्षों के बाद भी यह लोग स्वतंत्र नहीं हो पाए जब यह लोग अपने अधिकारों की माँग करते हैं तो प्रशासन इन्हें नक्सलवादी घोषित कर देती है। इनके ऊपर हो रहे अन्याय का चित्रण करते हुए सोनू रूद्र मांडवी लिखते हैं-"मेरा आदिवासी होना ही काफी है मेरी हत्या के लिए, नक्सलवादी व मुखबिर होना तो बस बहाना है।"11 उनकी जमीनों पर उद्योग और कारखाने लगाए जा रहे हैं। इनको रोजगार देने के सपने दिखाए जाते हैं। परंतु रोजगार तो दूर की बात इनसे इनका घरौंदा तक छीन लिया जाता है और इन्हें विस्थापित कर दिया जाता है सोनू रूद्र मांडवी लिखते हैं "मैं जंगलों में रहकर उसी के रूप में ढलने लगा प्रकृति के आँगन में मुस्कुराकर पलने लगा पर उनकी क्रूर नजर से बच नहीं सका। मेरी माटी मेरा मन साथ रख न पाया, चंद कौड़ी के लालच में लुट गई मेरी माटी और वन, छोड़ अपनी मातृभूमि किया मेरा विस्थापन।"12 बहुत से लोग अपने पूर्वाग्रहों के चलते आदिवासी समाज को ठीक रूप से समझ नहीं पाते हैं इनका अपना एक अलग जीवन और संसार है। इन्होंने प्रकृति के साथ एक सुंदर सामंजस्य स्थापित किया हुआ है। यह प्रकृति को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते। परंतु स्वतंत्रता के बाद जंगलों की कटाई बहुत अधिक बढ़ गई कभी कोयला खनन तो कभी फैक्ट्रियाँ लगाने के लिए सरकार द्वारा बहुत अधिक वनों का विनाश किया गया है। विकास के नाम पर लोगों ने अब इनका आशियाना छीन लेना बड़े हृदय विदारक समस्या है। जिन लोगों को आत्मीय संबंध जंगलों के साथ हैं वह अपना आसरा लुट जाने पर बहुत बुरी तरह टूट जाते हैं रमणिका गुप्ता के शब्दों में- "सरकार ने विकास के नाम पर बड़े-बड़े बाँध बनाए जिसमें लाखों लोग विस्थापित हुए, हमारे देश की विकास नीति का लक्ष्य होना चाहिए था विकास में सबको समान अधिकार की प्राप्ति, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विकास तो हुआ पर कुछ चुनिंदा लोगों का, असंख्या लोगों की कीमत पर। खासकर आदिवासियों की कीमत पर। राष्ट्रीयता के नाम पर आदिवासी लोगों

की जमीन अधिग्रहित कर उन्हें विस्थापित ही नहीं किया गया बल्कि उनके संदर्भ में संविधान मूल अधिकारों का उल्लंघन भी किया गया। इन विकास परियोजनाओं से इन आदिवासी प्रदेशों अथवा क्षेत्र का आर्थिक संतुलन भी बिगड़ गया।"13

आज के समय में भी इन्हें गरीबी, शिक्षा, बेरोजगारी और विस्थापन की भयंकर समस्या को झेलना पड़ता है। जहाँ हम विज्ञान की उन्नति के कारण एक और चाँद के दक्षिणी ध्रुव तक पहुँच गए हैं वहाँ यह लोग दो समय के भजन के लिए संघर्ष करते हुए नजर आते हैं। रमेश उपाध्याय लिखते हैं- "वर्तमान व्यवस्था विकास के नाम पर आदिवासियों की इन उन्नत, सुंदर और टिकाऊ सभ्यता, संस्कृति का समूल नष्ट करने पर तुली है। देसी विदेशी कर कॉरपोरेट, बिल्डर, भू माफिया, मीडिया, खदान कंपनियाँ और केंद्र तथा राज्य सरकारी सभी आदिवासियों की जमीन, जंगल और जल हड़पने उनके पहाड़ों में छपी संपदा को लूटने तथा उन्हें मारपीट कर उजाड़ने और दरिद्र बनाने पर तुले हुए हैं।" 14

आदिवासी वह है जिनको वनवासी या जंगली का दर्जा दिया जाता है। सदियों से इनका शोषण चला आ रहा है और अब एक नहीं समस्या उनके सामने खड़ी हो गई है विस्थापन की इनका शोषण भारी शक्तियों के साथ-साथ आंतरिक उपनिवेशवादियो ने भी खूब किया है। संविधान में इनके संरक्षण और आरक्षण का प्रावधान किया था। बाबासाहेब अंबेडकर ने भी उनकी समस्याओं की ओर सबका ध्यान खींचा था। इन की स्थिति के बारे में मधु कांकरिया लिखती हैं- "आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वास रीति- रिवाज, लोक नृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी बूटियाँ से संपन्न एक जन समाज में रहता आया है। वह अपने पुश्तेनी, पारिवारिक,पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों में पारंगत था। पर आज खुले बाजार के अर्थव्यवस्था में सदियों से चले आए उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधो को छोटा कर डाला है।"15

अल्मा कबूतरी उपन्यास 'कबूतरा जनजाति' को आधार बनाकर लिखा गया है। ये समाज के वृत पर डेरा डालकर रहते हैं। अंग्रेजों द्वारा उन्हें अपराधी घोषित कर दिया गया था। संजीव के उपन्यास पाँव तले की दूब में झारखंड के आदिवासियों के दुख- दरिद्रता और कष्टों का वर्णन किया गया है। यहाँ पर आदिवासी बढ़ते हुए उद्योगों के कारण विस्थापित हो रहे हैं। उनके जीवन के संकट को इस प्रकार व्यक्त किया है- "पर अन्याय देखो आदिवासियों को जिनकी जमीन पर यह कारखाने लग रहे हैं, उन्हें टोटली डिप्राइव किया जा रहा है। इस संपत्ति में उनकी भागीदारी खत्म की जा रही है, उन्हें जमीन से भी बेदखल किया जा रहा है, मुआवजा भी अफसर के पेट में।"16

आदिवासी जाति में सभी लोग मेहनत और श्रम को सर्वोपरि मानते हैं चाहे पुरुष हो या महिला या बच्चे। संजीव का 'धार' उपन्यास आदिवासी जीवन की गरिमा और उनकी उपलब्धियों को उजागर करने वाला उपन्यास है। इसमें बिहार की संथाल परगना जो कोयल की खदानों में काम करने के लिए मशहूर है उनका वर्णन किया गया है। यह जमीन से कोयला निकालने के लिए जमीन के भीतर ही भीतर गर्तो में चले जाते हैं, जिससे हजारों आदिवासी लोग मारे जाते हैं।

इस उपन्यास के बारे में डॉ. बी के कलासबाजी का मत है, "मजदूर वर्ग का शोषण और संघर्ष में जीवन इसमें पूर्ण रूप से उभरा है। परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न नई चेतना से विकसित होती हुई यह कृति अंततः राष्ट्रीय चेतना तक पहुँचती है।" 17 परंतु आज आदिवासी शिक्षित हो रहे हैं, जिससे वह अज्ञानता की बेड़ियों को काट सकते हैं। वे अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करने के लिए सजग हुए हैं। आदिवासी साहित्य में उनके जीवन के तनावों, यातनाओं के बीच जिंदा रहने की स्थिति और संघर्ष को दर्शाया गया है। आज यह समाज केवल जल जंगल और जमीन के लिए ही संघर्ष नहीं कर रहा बल्कि अपने शोषण से मुक्ति की ओर अग्रसर हुआ है। हरिराम मीणा लिखते हैं- " बस्तरिया आदिवासी भी अब / जानने लगे हैं / चुप्पी का दर्द / विद्रोह का सुख / वे समझने लगे हैं / अनपढ़ असंगठित रहने की पीड़ा।" 18

निष्कर्ष - निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या है अपनी संस्कृति को बचाना, अपने आप को बचाना क्योंकि उनकी संस्कृति और सभ्यता का पतन होता जा रहा है। यह समाज हाशिये पर पहुँच गया है। इसे मुख्य धारा से जोड़ना बहुत जरूरी है। इसी से इनकी सभ्यता और संस्कृति को नए प्राण मिल सकते हैं या नया जीवन मिल सकता है। इनको भी शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए जिससे कि यह अपनी पहचान को कायम रख सके।

000

संदर्भ- 1 आदिवासी केंद्रित हिन्दी उपन्यास, डॉ. प्रमोद चौधरी पृ. 9, 2शिव प्रसाद सिंह शैलेश, पृ.250, 3 रथ के पहिए देवेन्द्र सत्यार्थी पृ. 17, 4 आदिवासी विकास से विस्थापन रामणिका गुप्ता राधाकृष्णन प्रकाशन नई दिल्ली पृ.12, 5 पूर्वांचल एक कविता यात्रा, रमणिका गुप्ता पृ. 20, 6विज्ञापन बनता कवि रमन गुप्ता, पृ.41, 7 काला पहाड़, भगवान दास मोरवाल पृ.139, 8 आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, रमणिका गुप्ता, पृ.35, 9 आदिवासी दुनिया, हरिराम मीणा पृ.203, 10 -वही-, 11 विचारों का सांझा मंच, 12 -वही-, 13 रमणिका गुप्ता,दीपक कुमार, देवेन्द्र चौबे :आदिवासी अस्मिता के प्रश्न पृ.357 -358, 14 लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय पृ.110, 15 रामणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी पृ. 10 - 11, 16 संजीव जनधर्मी कथाशिल्पी डॉ.गिरीश काशिद, डॉ.जयश्री शिंदे पृ.138, 17 हिन्दी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ.बी के कलासवा, पृ. 174, 18 हरिराम मीणा, पृ.202

शोध आलेख

(शोध आलेख)

निर्मल वर्मा के कहानियों में जनजातीय परिवेश और मानव जीवन में एकाकीपन

शोध लेखक : अमर टैगोर पी-एच. डी. शोधार्थी (हिन्दी)
शोध निर्देशक : डॉ. मंजू भट्ट (सहायक प्राध्यापक)
भाषा विभाग, डॉ. सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय

अमर टैगोर
पी-एच. डी. शोधार्थी (हिन्दी)
भाषा विभाग, डॉ. सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश - मानव समाज और सभ्यता के विकास में परिवेश का मुख्य भूमिका रहा है। आदिकाल से लेकर वर्तमान तक मानव का विकास विविध परिवेश में होता आया है। निर्मल वर्मा का प्रारंभिक जीवन शिमला के परिवेश में बीता इसी वजह से उनकी कहानियों में शिमला एवं हिमाचल की जनजातिय परिवेश का दर्शन होता है। इनकी कहानियों में हिमाचल का जनजातीय पहाड़ी परिवेश दूर से दिखलाई पड़ता है। निर्मल वर्मा आधुनिक कथाकार हैं, इनकी कहानियों के केन्द्र में मनुष्य का एकाकीपन परिलक्षित होता है। निर्मल वर्मा जी ने अपने जीवन का एक लम्बा हिस्सा विदेशों में बिताया है, विदेशी परिवेश एवं वहाँ पर जीवन की क्षणभंगुरताएँ उनके कथाओं में विद्यमान हैं। एकाकीपन मानव जीवन की एक प्रमुख समस्या है, जो मानव के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं तथा समूह में रहते हैं, इसके बाद भी वह मानसिक रूप से अकेला है। मानव मन में नित्य ही अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। अजनबीपन, एकाकीपन, आत्मनिर्वासन की भावना इनकी कहानियों में सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। अभावों से ग्रसित निराशा से अधीर होकर व्यक्ति अकेलेपन का जीवन जीने को विवश हो गया है।

बीज शब्द- आदिवासी, जनजाति, मानव समाज, संस्कृति, परिवेश, एकाकीपन, अस्तित्व, दर्शन, जीवन शैली, प्रकृति

प्रस्तावना- आदिम जातियों और जनजातियों के लिए 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से ही किया जाता रहा है। इन्होंने अपनी सभ्यता और संस्कृति की धरोहरों को युगों से संजोया हुआ है इसीलिए ये राष्ट्र के असली वारिस कहे जा सकते हैं। सभ्यता और संस्कृति के विकास में इनकी भूमिका मुख्यधारा से अधिक प्राचीन व वास्तविक है। फिर भी आज ये लोग मुख्य धारा से विलग अस्तित्व की पहचान के संकट से जूझ रहे हैं। इसका कारण वर्तमान विकासवादी प्रक्रिया के साथ ही इनका अंधविश्वास, जड़ता व रूढ़िवादी परंपराएँ रही है। यह समाज आज भी अभावग्रस्त रूप से मुख्य समाज से दूर पहाड़ों व दूरदराज के इलाकों में आधुनिक सुख-सुविधाओं के अभाव में दमन व शोषणकारी परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहा हैं।

आदिवासी कौन है यह प्रश्न वर्षों से विचार-विमर्शों और संगोष्ठियों का मुख्य विषय रहा है। विनायक तुकाराम के अनुसार "वर्तमान स्थिति में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगल, पहाड़ों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को सँभालकर रखने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर उनके सामाजिक दु:ख तथा नष्ट हुए संसार पर दु:ख प्रकट किया जाता है।"1 उनके प्रश्नों तथा समस्याओं पर जी तोड़कर बोला जाता है। यदि आप किसी विशेष लेखक या उनकी रचनाओं के बारे में पूर्व ज्ञान रखते हैं और उनसे संबंधित जानकारी चाहते हैं, तो कृपया उस लेखक या उनकी रचनाओं का नाम उल्लेख करें ताकि मैं आपको उचित जवाब दे सकूँ।

लेखक की असली चुनौती अपने अनुभवों को ईमानदारी के साथ संप्रेषित करने में है। इस चुनौती का, अपनी रचनाओं के ज़रिए, सामना करने वाले आधुनिकता-दौर के अग्रणी रचनाकार हैं- निर्मल वर्मा। उनके अपने शब्दों में यह बात स्पष्ट हो उठती है कि उनकी रचनाएँ अपने भोगे हुए यथार्थ का आत्मिक संप्रेषण हैं, "मुझे लगता है कि अब तक जो लिखता आ रहा हूँ उसमें मेरा आत्मजीवन ही सबसे अधिक रूपान्तरित होकर आता रहा है।"2

निर्मल वर्मा की संवेदनात्मक बनावट पर हिमांचल की पहाड़ी छायाएँ दूर तक पहचानी जा सकती है। हिन्दी कहानी में आधुनिक-बोध लाने वाले कहानीकारों में निर्मल वर्मा का अग्रणी स्थान है। उन्होंने कहानी की प्रचलित कला में तो संशोधन किया है साथ ही, प्रत्यक्ष यथार्थ को भेदकर उसके भीतर पहुँचने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी के महान साहित्यकारों में से अज्ञेय और निर्मल वर्मा जैसे कुछ ही साहित्यकार ऐसे रहे हैं, जिन्होंने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर भारतीय और पश्चिम की संस्कृतियों के अंतर्द्वन्द्व पर गहनता एवं व्यापकता से विचार किया

है।

निर्मल वर्मा जी साठोतरी कहानी साहित्य के चर्चित हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियों में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से नवीनता देखी जाती हैं। भाषा तकनीक एवं विषय के प्रस्तुतीकरण में भी नवीन प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं। इनकी कहानियों का अंत निष्कर्ष रहित हैं। पात्रों के द्वंद्व व रिश्तों को चित्रित कर कहानी का अंत ऐसे बिंदु पर खत्म करते है कि लगता है कहानी अधूरी है। पर यही तो नई कहानी की विशेषता है कि उसके अंत का अनुमान पाठकों पर छोड़ दिया जाता हैं। वर्मा जी की कहानियों का मूल स्वर रोमानी प्रेम के तन्तुओं से निर्मित हैं। उसमें अवसाद की गहन छाया विद्यमान है और अनुभूति की गहन मधुरता तथा विकलता है। निर्मल वर्मा की परिंदे एवं प्रेमी कहानियाँ इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

आज़ादी से पहले और तब से लेकर आज तक आदिवासियों की मूल समस्याएँ वनोपज पर प्रतिबंध, जंगलों से खदेड़ा जाना, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस प्रशासन की जाततियाँ आदि हैं। सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और ज़मीन छीनकर उन्हें बेदखल तो किया ही है साथ ही प्रकृति को भी नष्ट किया है। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई है। इस प्रक्रिया में उनके सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान व अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है। आदिवासी समाज प्रकृति पूजक है तथा प्रकृति का अपमान उनके लिए असहनीय है। इसीलिए अपने अस्तित्व और अस्मिता के साथ प्रकृति को बचाने के लिए आदिवासी विमर्श और चिंतन की आवश्यकता इस समाज द्वारा अधिक महसूस की जाने लगी है। आदिवासी समाज की संस्कृति, जीवन शैली प्रकृति के साथ तालमेल पर आधारित है।

निर्मल वर्मा की कहानियों में आदिवासी अवसाद की गहन छाया व्याप्त है। उसमें अनुभूति की गहन मधुरता एवं विकलता है। मेरी प्रिय कहानियाँ पुस्तक की भूमिका में वर्मा लिखते हैं। आज सोचता हूँ तो मुझे स्वयं अपनी कहानियों की परिस्थितियाँ ज्यादा स्पष्ट रूप में याद नहीं आती, केवल एक धुँधली सी स्मृति छाया की तरह हर कहानी के साथ जुड़ी रह गई हैं। ये कहानियाँ या इनमें से अधिकांश अलग-अलग टुकड़ों में काफी लम्बे अंतरालों के बीच लिखी गई थी।

पहाड़ी मकानों की एक ख़ास निर्जन किस्म की भुतैली आत्मा होती हैं। शायद इसे वही समझ सकते हैं। जिन्होंने अपने अकेले साँय-साँय करते बचपन के वर्ष, बहुत से वर्ष एक साथ पहाड़ी स्टेशनों पर गुजारे हों। इस कथन से यही प्रतीत होता है कि निर्मल वर्मा ने पहाड़ी स्थलों में काफी अधिक समय व्यतीत किया हैं। तभी तो परिंदे, अँधेरे में एवं डेढ़ इंच ऊपर ऐसी कहानियाँ हैं जिसमें पहाड़ी वातावरण अधिक चित्रित हुआ हैं।

'परिन्दे' निर्मल वर्मा का पहला कहानी संग्रह है। इस संग्रह की प्रमुख कहानी 'परिन्दे' की नायिका लतिका इस अकेलेपन की शिकार है। उसके जीवन में अपने काम को लेकर कहीं कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी देती। लतिका कभी भी छुट्टियों में घर नहीं जाती। वह उन पहाडियों पर अकेली ही अपनी छुट्टियाँ बिताती है। जैसे वह इस अकेलेपन का आदी हो गई है, "पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था- अब आदी हो गई हूँ .... पता भी नहीं चलता कि छुट्टियाँ कब शुरू हुई थीं, कब खत्म हो गई।"3 लतिका अपने को इस अकेलेपन में सुरक्षित पाती है। इसलिए वह इस पहाड़ी इलाके के अकेलेपन की सुरक्षा को तोड़ना नहीं चाहती, "अब वह सुरक्षित थी, कमरे की चहारदीवारी के भीतर उसे कोई नहीं पकड़ सकता। दिन के उजाले में वह गवाह थी, मुजरिम थी, हर चीज़ का उससे तकाज़ा था, अब इस अकेलेपन से कोई गिला नहीं, उलाहना नहीं सब खींचातानी खत्म हो गई है, जो अपना है वह बिल्कुल अपना सा हो गया है, जो अपना नहीं है, उसका दु:ख नहीं, अपनाने की फुरसत नहीं।"4 इस प्रकार वह किसी से भी जुड़ नहीं पाती।

कभी कभी ये पात्र अपने परिवार के सदस्यों तक से एक प्रकार का अलगाव महसूस करते हैं। यहाँ तक कि अपने माता-पिता से भी दूरी महसूस करते हैं। 'अंधेरे में' कहानी की बच्ची इसका सशक्त उदाहरण है। अपने पिता से वह मन की बात नहीं कह पाता, "मैं उनसे डरता हूँ, कोई भी फरमाइश करते समय मेरा दिल धड़कने लगता है, कभी खुलकर उनसे मैं ने अपने मन की बात नहीं की।"5 'मायादर्पण' की तरन भी इसी स्थिति है। "उसे बाबु से एक विचित्र - सा भय लगता था, जिसे मिटाना कभी संभव नहीं हो पाता।"6 इस प्रकार परिवार में ही अलगाव होने के कारण ये पात्र अकेलेपन के शिकार बन जाते हैं। इस स्थिति में ये पात्र अपने आपको बिल्कुल अकेला पाते हैं। 'अंधेरे में' का बच्चा सोचता है, "और तब उस क्षण मुझे लगा कि मैं बहुत अकेला हूँ।"7 'मायादर्पण' की तरन भी लतिका की तरह अपने अकेलेपन को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाती है। वह अन्त में फैसला लेती है, "वह अकेली रहेगी किन्तु बाबु की छाया से बँधी हुई। और बाबु का अकेलापन हमेशा, ज़िन्दगी भर उससे जुडकर रहेगा।"8 ये पात्र लोगों से मिलना तो चाहते हैं लेकिन मिल नहीं पाते। अत: किसी अकेले कोने में अपने आप को सिमट कर रखते हैं। 'दूसरी दुनिया' कहानी का 'मैं' इस तरह का पात्र हैं। 'मैं' हमेशा लाइब्रेरी में अकेला बैठता है। लाइब्रेरी का अपना वह कोना ही वह पसन्द करता हैं, "मैं ने जूते पहने। अखबार और चिट्टियाँ जेब में रख दीं। अभी समय काफी है, मैं ने सोचा। एक -दो घंटे लाइब्रेरी में बिता सकता हूँ। पार्क के जादू से अलग अपने अलग कोने में।"9 ये पात्र अपने अकेलेपन के इतने आदी हो गए हैं कि दूसरों से मिलने में एक प्रकार का डर दिखायी देता है।

'अंतराल' का पात्र कुछ इस प्रकार का है, "कोई बुलावा आता, तो उनका नहीं, उनके लिए नहीं। इस शहर में उनके कोई जान-पहचान के मित्र नहीं थे। इसलिए किसी शाम मेरे दोस्त आते, तो वह दबे पाँव मेरे कमरे में आते फुसफुसाते हुए कहते, तुमसे कोई मिलने आया है और इससे पहले मैं बाहर निकलूँ, वह इतनी तेज़ी से अपने कमरे में चले जाते, कि

आनेवाले को सिर्फ एक उड़ती हुई झलक मिल पाती। मुझे इतना मौका ही न मिल पाता कि मैं किसी से उनका परिचय करवा सकूँ।"10 उनकी यह स्थिति देखकर उनके परिवारवालों को लगता है कि क्या कोई इस तरह अपने को सारी दुनिया से काट लेता है? कभी-कभी हम कुछ ऐसे पात्रों को भी देख सकते हैं जो कि अपने अकेलेपन के क्षणों को किसी और के साथ काटने को तैयार होते हैं। 'खाली जगह से' के पात्र कुछ इस तरह के हैं, "माँ जो दिल्ली के भरे-पूरे कुटुम्ब परिवार से आई थी, शिमला के एकाकीपन में अपने को, छूटे हुए संसार से कितने विरही और वंचित पाती होंगी?"11 शायद इसलिए उस निर्जन वीरानी में, वे बाहर की दुनिया से, पहाड़ों के पीछे से कोई साधु-सन्यासी कोई भिक्षुक-भिखारी आता था तो वे फिर बिना संकोच या भय के उनके साथ अपना अकेलेपन बाँटने बैठ जाती थी। बाहर जाने की आकांक्षा मानो बाहर से आनेवालों में संपूर्ती पा लेती थी। उनका भटकता मन एक थाह पाकर स्थिर हो जाता इन कहानियों के ज़्यादातर पात्र पराए शहर के हैं। यह परायापन अन्त तक उनकी ज़िन्दगी में खटकता रहता है। यही परायापन उन्हें अपने आप में नितान्त अकेला बना देता है। निर्मल वर्मा के ही शब्दों में, "मैं पहचाना सा प्रवासी हूँ, जो लैट आया है, एक अजनबी सा भारतीय, जो हर जगह सन्दिग्ध है - खुद अपने सामने सबसे अधिक।"12

आदिवासी साहित्य में मूल स्वर विद्रोह का होता है परंतु इसके साथ ही आदिवासी जीवन की वेदना, संवेदना, आकांक्षा और संभावना को भी साहित्यकार अपने साहित्यिक कृति में अभिव्यक्त करता है। आदिवासी साहित्य केवल आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का साहित्य नहीं है यह तो आदिवासियों के जीवन संघर्ष से प्रेरित है। आदिवासी साहित्य से आदिवासी लोगों में चेतना जागृत हुई है। आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुये हैं। आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करता है तथा आदिवासी संस्कृति को बचाए रखने में सहयोग देता है। यह आदिवासियों के समक्ष उपस्थित समस्याओं जैसे आर्थिक शोषण, विस्थापन, स्वास्थ्य, गैर आदिवासी समाज के हस्तक्षेप से उत्पन्न समस्या आदि से परिचय करवाता है। आदिवासी साहित्य अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध साहित्य है। आदिवासी समाज अपने हितों व अस्तित्व के लिए लड़ाई वर्षों से लड़ता आ रहा है परंतु कोई विमर्श तभी विमर्श बनता है जब सभ्यता, संस्कृति, भाषा व क्षेत्र की अस्मिता की पहचान हाशिए पर चली जाए। आदिवासी विमर्श आदिवासी साहित्य के संदर्भ में आदिवासियों के अस्तित्व की रक्षा व जीवन जीने के अधिकार की पैरवी करता है। 'साहित्य समाज का दर्पण है' का प्रचार-प्रसार तो काफी हुआ लेकिन आदिवासी चिंतन के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की परिणति व्यावहारिक रूप में नहीं हुई। विवेचनात्मक रूप से आदिवासी समाज जितना उपेक्षित रहा उतना उनका साहित्यिक विमर्श भी। इसलिए आदिवासी साहित्य को आदिवासी समाज व संस्कृति के धरातल पर विकसित व परिमार्जित करने की आवश्यकता है।

उपसंहार- आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता व संस्कृति को वैश्विक परिदृश्य पर प्रस्तुतकर्ता जनजातीय समाज है जिसने लोक संस्कृति व जीवन को बनाए एवं बचाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज इसी सभ्यता व संस्कृति की पहचान के लिए उसे सरकार व मुख्यधारा से संघर्ष करना पड़ रहा है। जिससे आदिवासी विमर्श की आवश्यकता ने जन्म लिया और साहित्य के क्षेत्र में एक नई विधा आदिवासी साहित्य की आवश्यकता महसूस हुई। आदिवासी वर्ग के उत्थान, जीवन परंपरा व सभ्यता को बनाये रखने के लिए उनमें फैले विषाक्त अंधविश्वास, जड़ता से उनके जीवन को बाहर निकालने की महती आवश्यकता है। साथ ही उनके अधिकारों व आधुनिक सभ्यता, संस्कृति से उन्हें परिचित करवाना आवश्यक है। आदिवासी साहित्य वर्तमान समय की आवश्यकता है इसीलिए इसकी प्रत्येक विधा पर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लेखन किया जा रहा है जिससे वे स्वयं अपनी सामाजिक-आर्थिक व शैक्षणिक परिस्थिति से अवगत हो सकें तथा अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर अपने विकास की ओर अग्रसर हो सकें। आदिवासी साहित्य आदिवासी समाज व संस्कृति संरक्षण में नींव का प्रस्तर है। राष्ट्र निर्माण की नीतियों में जल, जंगल, ज़मीन से बेदखल कर इनके अस्तित्व का जो संकट खड़ा हुआ है उसे सरकार द्वारा इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति व शैक्षणिक स्तर में सुधार कर समायोजित किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य द्वारा ही आदिवासी विमर्श और चिंतन को विस्तृत किया जा सकता है। आदिवासी साहित्य का महत्त्व इस कारण भी बढ़ जाता है कि आदिवासी साहित्य आदिवासियों को सम्मान से जीने, उन्हें अपनी पहचान बनाने, अपनी लड़ाई खुद लड़ने, अपने हक तथा अधिकारों के लिए लड़ने, अपने संगठन को बचाये रखने के लिए प्रेरित करता है। आदिवासी साहित्य आदिवासी समुदाय की अस्मिता, संस्कृति तथा संघर्ष के लिए नवीन चेतना जागृत करता है तथा यह साहित्य आदिवासियों को उनके अधिकारों के प्रति सजग कर उनके अस्तित्व को प्रकट करता है।

000

संदर्भ-

1उमा शंकर चौधरी (सं.) : हाशिये की वैचारिकी; विनायक तुकाराम : आदिवासी कौन, 2008, अनामिका पब्लिशर, नई दिल्ली, पृ. 251, 2सं.) अशोक वाजपेयी निर्मल वर्मा, पृ. 39, 3निर्मल वर्मा परिन्दे - परिन्दे, पृ. 143, 4निर्मल वर्मा परिन्दे - परिन्दे, पृ.154-155, 5निर्मल वर्मा परिन्दे - अंधेरे में, पृ. 78-79, 6निर्मल वर्मा - जलती झाडी मायादर्पण, पृ. 33, 7निर्मल वर्मा परिन्दे अंधेरे में, पृ. 79, 8निर्मल वर्मा - जलती झाड़ी-माया दर्पण, पृ. 40, 9निर्मल वर्मा - कव्वे और कालापानी दूसरी दुनिया, पृ. 23, 10निर्मल वर्मा सूखा तथा अन्य कहानियाँ- अंतराल, पृ. 15, 11निर्मल वर्मा - सूखा तथा अन्य कहानियाँ- अंतराल, पृ. 20, 12निर्मल वर्मा - सूखा तथा अन्य कहानियाँ- खाली जगह से, पृ.202

(शोध आलेख)

भारत में जनजातियों पर आधुनिकता का प्रभाव

शोध लेखक : प्रो. डॉ. नंदादेवी बोरसे

प्रो. डॉ. नंदादेवी बोरसे
क्रां.व्ही.एन.नाईक शिक्षण प्रसारक संस्था,
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान
महाविद्यालय,नाशिक
नाशिक - 422008
ईमेल- nandadeviborse@gmail.com

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है,हमारे देश भारतवर्ष में विभिन्न धर्म, जाति एवं समुदाय तथा पंथ के लोग निवास करते है। जाति और वर्ग के बीच के संदर्भ में यह तथ्य आवश्यक है कि भारतीय समाज में पद अनुक्रमता के दो स्तर है। प्रथम जिसमें ब्राम्हण सर्वोपरि और जनजाति निम्न स्तर पर। दूसरा स्तर राजनीतिक एवं आर्थिक स्तर पर इसमें सर्वोपरि स्तर पर भूस्वामी तथा निम्न स्तर पर भूमिहीन एवं श्रमिक। इसमें प्रथम स्तर व्यवस्था के स्वरूप का प्रतिरूप है और दूसरा इसकी हकीकत। इन दो उच्च वर्गों ने मिलकर असमानता कि एक अद्‌भुत रचना की है। इसे ही हम जाति व्यवस्था के नाम से जानते और समझते है। इस संदर्भ में दार्शनिक गेल ओमवेत ने इस जाति व्यवस्था की व्याख्या इसप्रकार की है - "जाति जमीनी हकीकत है, इसकी बुनियाद जमीनी है। यह केवल एक स्वरूप (फार्म) भर नहीं,बल्कि ठोस वस्तु (कंटेंट) है। इसमें भारतीय समाज के आधार को रूप - आकार प्रदान किया है और आज भी आर्थिक स्तर पर यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।" 1

जाति शब्द का अर्थ इसप्रकार है - "(स्त्री.सं.) जन्म, उत्पत्ति, वंश,गोत्र, जीवनश्रेणी, कुल वर्ण या योनि का भेद सूचित करनेवाला वर्ग, वर्ण, वंश, भाषा, देश, इतिहास, संस्कृति आदि की समानता रखनेवाला समुदाय। हिन्दुओं के विभिन्न वर्णों के अंतर्गत परस्पर रोटी - बेटी का संबंध रखनेवाला और सामान्यत: एक ही धंधा करनेवाला जन्मकृत जन समुदाय, वर्ग विशेष के

विभिन्न व्यक्तियों में पाया जानेवाला समान धर्म तथा आकृति, स्वभाव, परम्परा आदि की समानता रखनेवाला मानव समूह जैसे मंगोल जाति।" 2

जनजाति का अर्थ इसप्रकार किया गया है -"जनजाति (स्त्री) (ट्राइब) जंगलों या पहाड़ी स्थानों आदि में रहनेवाले ऐसे लोगों का समूह जो शिक्षा, सभ्यता आदि में समीपवर्ती स्थानों के लोगों से कुछ पिछड़े हुए हो और जो अपने - अपने मुखियों या सरदारों के आदेशों के अनुसार चलने के आदी हों।"3 कुछ विद्वानों ने जनजाति को 'आदिवासी' समुदाय की भी संज्ञा प्रदान की है। उपरोक्त कोशीय अर्थ भी इसी आदिवासी शब्द का निर्देश करता है।

हमारा देश अंग्रेजों की गुलामी से आजाद हो चुका है फिर भी हमारे देश में वर्तमान समय में भी करोड़ों की संख्या में जनजातियाँ दीन - हीन स्थिति में अपनी संस्कृति एवं विविधताओं कों सुरक्षित रखकर जीवन यापन हेतु संघर्ष करती हुई दृष्टिगोचर होती है। यह तथ्य निर्विवाद सत्य है कि जन जातियाँ ही नहीं अपितु अन्य आर्थिक स्थिति से निम्न स्तर के वर्गों ने भी यदि बदलते परिवेश के साथ - साथ शिक्षा को महत्त्व दिया है उन्होंने निश्चितरूप से प्रगति की है। खेद इस बात का है कि आज भी कुछ जन जातियाँ

पहाड़ों, वनों एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलायमान स्थिति में अस्थायी रूप से अपना बहुमूल्य जीवन व्यतीत कर रही है।

आदिकाल से ही सामाजिक समुदायों (वर्गों) में सत्ता के आधिपत्य हेतु संघर्ष होता रहा है। सदा से आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग सत्ता कि कुर्सी पर बैठकर अपने अनुसार समाज का संचालन करता रहा है। स्थितियाँ कुछ इस तरह कि रही है कि निम्न वर्ग अपना श्रम देकर अपना जीवन चलाता रहा है। कुछ काल उपरांत स्थितियों में परिवर्तन हुआ और भारतीय संस्कृति में धर्म निरपेक्ष स्वरूप भिन्न संस्कृतिक समूह एक लंबे समय से आपस में वस्तु - विनिमय करने लगे।

पं. रामनरेश त्रिपाठीजी इन जन जतियों के संदर्भ में अपनी काव्य पंक्तियाँ इसप्रकार स्पष्ट करते है, यथा - "अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है उद्यम कान उपाय। / वन भी नहीं और टिकने को, कहाँ जायँ, क्या खाएँ। / लाखों नहीं करोड़ों कि है, सुख से हुई न भेंट। / मिलता नहीं जन्म भर उनको, खाने को भरपेट।"4

हाड़ - तोड़ परिश्रम करने के बावजूद भी ये अपना और न ही अपने परिवार का ठीक से पेट भर पाते है और न ही पहनने को वस्त्र जुटा पाते है। चिरकाल से शोषित यह जन जाति पता नहीं मजबूरी में अपनी दिनचर्या कैसे गुजारती है। इनके लिए शायद अशिक्षा ही शाप के रूप में इनकी इस स्थिति की जिम्मेदार है। परंतु अब समय निकट आ गया है जब यह जन जाति शिक्षित होकर अपने विगत जीवन पर गंभीर रूप से विचार करके अपनी निर्धनता के मूल कारणों को जानते हुए आगे बढ़ने की प्रयत्नशीलता में साहसिक कदम उठाएँगे। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ये अरण्यवासी और गुफावासी बड़े उद्यमशील एवं श्रमशील है। हमारी सरकार इनके कंटक भरे मार्ग को सुगम बनाने के लिए भरपूर प्रयास कर रही है।

सामाजिकता कि दृष्टि से जाति प्रथा सामाजिक संस्तरण और खंड विभाजन कि एक व्यवस्था है जिससे सदस्यता परंपरागत रूप में जन्म पर आधारित होती है। प्रत्येक जाति का सदस्य अपनी जाति या उप जाति में ही वैवाहिक संबंध स्थापित करता है। कहने का अर्थ यह है कि संरचनात्मक पहलू में सामाजिक संस्तरण समाज का खंडनात्मक विभाजन, अंतर्विवाह तथा जन्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रमुख तत्व है। वर्तमान समय में इन तत्वों में कुछ हद तक परिवर्तन कि प्रक्रिया निरंतर गतिशील है। परिवर्तन कुछ मुद्दों के आधार पर है और ये मुद्दे जन जाति प्रथा में इसप्रकार है -

प्रथम परिवर्तन सामाजिक वर्गों के माध्यम से है। इस संबंध में डॉ. धुरिये ने अपना मत इसप्रकार व्यक्त किया है। यथा - "जाति प्रथा ने भारतीय हिन्दू समाज को पूर्णरूपेन विभिन्न खंडों में विभाजित कर दिया है और पूरी सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक खंड के सदस्यों की दशा, पद, स्थान एवं कार्य भी सुनिश्चित हैं।"5 इस खंड विभाजन का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए डॉ. धुरियेजी ने यह भी स्पष्ट किया है कि जाति प्रथा के अंतर्गत समग्र समुदायों के प्रति ही नहीं अपितु अपनी ही जाति के प्रति जाति के सदस्य अधिक निष्ठावान होते है और अपनी ही जाति के सदस्यों के प्रति उनमें सामुदयिक भावना भी उनमें अधिक प्रबल होती है, लेकिन समयानुसार विभिन्न परिस्थितियों के दबाव अथवा प्रभाव से उक्त स्थिति में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। आज एकाधिक क्षेत्रों में विभिन्न जतियों ने सदस्यों की सामुदायिक भावना या कर्त्तव्यबोध अपनी - अपनी जाति सीमाओं को पर कर चुका है और जातीय भावना से कहीं अधिक विस्तृत रूप से आज वह अविभक्त है।

द्वितीय परिवर्तन जातीय संस्तरण में परिवर्तन है। समाज जातीयकरण के ढाँचे में ऊँच - नीच इन दो खंडों में विभाजित था। जातिगत संस्तरण में उच्च वर्ग की स्थिति पूर्व की ही भाँति जैसे की तैसे है परंतु विशेषाधिकार पूर्व की अपेक्षा कुछ कम हुआ है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कुछ हद तक वर्तमान समय में जनजातियों की भी हिस्सेदारी बढ़ी है। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण से अनेक व्यवसायों एवं नौकरियों में जनजाति के सदस्यों को अपनी कुशल कारीगरी और दक्षता को प्रकट तथा प्रत्यक्षीकरण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। इससे जन्मजात अवधारणा को ठेस पहुँची है। जनजातीय समाज से संबंधित सदस्य वर्तमान समय में अपनी कुशलता एवं दक्षता की शक्ति पर उन्नति के शिखर को छूने में समर्थ हो रहा है, जिससे इस समाज में भी परिवर्तन की लहर जाग्रत हुई है।

जनजातियों पर सर्वाधिक आधुनिकता के प्रभाव के रूप में शिक्षा का घटक अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीनकाल में शिक्षा का अधिकार कुछ जातियों को ही था क्योंकि यह सामाजिक व्यवस्था रुपी महल की नींव बहुत ही सुदृढ़ और मजबूत थी। जिसे गिराना या अन्य महल का निर्माण करने का अर्थ था समाज व्यवस्था में आमूल - चूल परिवर्तन जो उस कालखंड में 'लोहे के चने चबाने' के

समान था। परंपरागत यही अवस्था मध्यकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। जो कसर बाकी थी वह ब्रिटिश शासन काल में पूर्ण बनकर अपनी यौवनावस्था में पहुँच गई। ब्रिटिश शासन काल से पूर्व शिक्षा की पद्धति दो प्रकार की थी। प्रथम पद्धति में शिक्षा का अधिकार पूर्णरूपेण मूल स्थिति में धार्मिक था। इसमें समाज का अन्य वर्ग प्रवेश नहीं प्राप्त कर सकता था क्योंकि वह अस्पृश्य था। इस बात का इतिहास साक्षी है की 16 वीं शताब्दी तक ब्राम्हनों, क्षत्रियों और कायस्थों को छोड़कर अन्य जातियाँ विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने की अधिकारिणी नहीं थी। द्वितीय घटक यह था कि जनजातियों कि शिक्षा का अर्थ पेशे से संबंधित शिक्षा ही था जो कि उन्हें अपने परिवार में ही मिल जया करती थी। इस पेशेवर शिक्षा को ग्रहण करने के लिए उन्हें किसी विद्यालय या शिक्षण संस्थान में जाने की आवश्यकता ही नहीं थी। शिक्षा का अधिकार न पाने का कारण जनजाति समाज की आर्थिक तथा रुढ़िवादी शिक्षा प्रणाली ही पूर्णरुपेण जिम्मेदार थी।

ब्रिटिश शासन प्रणाली स्थापित होने पर सम्पूर्ण व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। अंग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली कुछ हद तक धर्म निरपेक्ष थी। धर्म निरपेक्षता के कारण और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा होने के कारण ऐसा संयोग बना कि हमारा संपर्क दुनिया से हो गया। वर्तमान समय में सामाजिक योग्यता की अपेक्षा व्यक्तिगत योग्यता अधिक महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति की सामाजिक विशेषता इस तथ्य पर अब आधारित नहीं है कि उसके पूर्वज क्या और कौन थे ? बल्कि इस तथ्य पर निर्भर है कि वह स्वयं क्या है ? प्रशासनिक अधिकारी, सरकारी से (निदेशक, लिपिक, चपरासी एवं अन्य पद) अथवा किसी कार्य का दक्ष या कुशल तकनीकिज्ञ आदि। व्यक्तिगत योग्यता कि वृद्धि के लिए वर्तमान समय में शिक्षा का तत्व अनिवार्य तत्व है। आजकल प्रत्येक शिक्षार्थी को यह ज्ञात है कि समाज में ऊँचा उठने के लिए जातीय नियमों का पालन करने की अपेक्षा शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत योग्यता में वृद्धि करना आवश्यक है।

वर्तमान समय में जनजातियों की जीवन प्रणाली में जो आधुनिकता का प्रभाव है उसके लिए हमारे देश के कुछ नेताओं एवं महान पुरुषों को भी जाता है। महात्मा गाँधी के 'हरिजन आंदोलन' ने न केवल स्वस्थ जनमत का ही निर्माण किया बल्कि सरकार को भी इन जन जातियों के उत्थान के सन्दर्भ में प्रयत्नशील बनाना। उन्होंने अस्पृश्यता का भेदभाव समाज से मिटा दिया। दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहन राय आदि महान नेताओं ने समाज की कुप्रथाओं और कुरीतियों को समाप्त करके इन जातियों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करके इन जातियों पर आधुनिकता के प्रभुत्व को स्थापित करने का स्तुत्य कार्य किया है।

'जन जातियों पर आधुनिकता का प्रभाव' सर्वाधिक सिनेमा जात के माध्यम से हुआ है। वर्तमान समय में मोबाइल क्रांति ने तो आधुनिकता के स्तर को अन्तिम चरमबिन्दु (ब्रम्हलोक) तक पहुँचा दिया है। दूर संचार व्यवस्था की प्रणाली सर्वप्रथम तार (Telegraph) से आरंभ होकर (वर्तमान समय में तार प्रणाली Telegraph Systam) सम्पूर्ण विश्व से समाप्त हो चुकी है) टेलीफोन, फैक्स, मैसेज, कंप्यूटर, मेल, बेब, विज्ञापन, वाट्सअप एवं वीडिओग्राफी तथा वीडियो कॉलिंग पर आकर निरन्तर गतिशीलता के क्रम पर अग्रसर है।

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा प्रणाली के माध्यम से जन जातियों की जीवन प्रणाली पर आधुनिकता का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व का जन जातीय समुदाय अपनी जीवन स्तर के प्रत्येक पहलू को परिवर्तित करने में निरन्तर प्रयत्नशील है।

000

सन्दर्भ- 1जाति समाज में पितृ सत्ता - उमा चक्रवर्ती, पृ. 22, 2बृहत हिन्दी कोश - कालिका प्रसाद, पृ. 417, 3वही पृ। 404, 4वनवासी भील और उनकी संस्कृति - श्रीचन्द्र जैन, पृ. 84, 5भारत में जाति व्यवस्था - शिवानी गुप्ता, पृ.118 - 119

नई पुस्तक

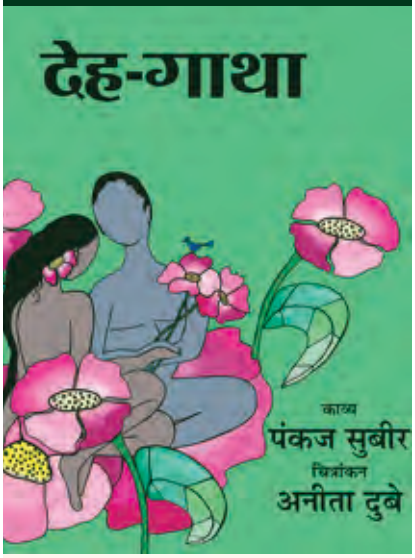

(काव्य चित्र संग्रह)

देह-गाथा

लेखक : पंकज सुबीर, अनीता दुबे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

अपने आप में एक अनूठी पुस्तक का प्रकाशन शिवना प्रकाशन द्वारा किया गया है। नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में यह पुस्तक शिवना प्रकाशन के स्टाल पर उपलब्ध रहेगा। इस पुस्तक में कवि कथाकार पंकज सुबीर की एक लम्बी कविता पर चित्रकार अनीता दुबे ने चित्र बनाए हैं। अनीता दुबे का एक कविता संग्रह- एक और सुबह, बाल कविताएँ- बचपन, अंकुरित होती हैं स्त्रियाँ। लेख, कविताएँ,कहानी एवं बाल साहित्य विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं ब्लॉग पर प्रकाशित। प्रस्तर कला के माध्यम से महात्मा गांधी के जीवन की पूरी कहानी प्रस्तुत की है, जिसका कई जगह प्रदर्शन हो चुका है। पंकज सुबीर की यह लम्बी कविता एक किशोर के अनुभव पर आधारित है। इस कविता में उस किशोर ने जीवन के प्रथम प्रणय को विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। हर छंद के साथ अनीता दुबे ने एक रेखांकन बनाया है। कविता और चित्र की यह जुगलबंदी अपने आप में अनूठी है। थोड़े बोल्ड विषय के कारण यह पुस्तक अलग बन पड़ी है।

000

(शोध आलेख)

जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक चित्रण

शोध लेखक : डॉ. प्रियंका कुमारी
पूर्व रिसर्च स्कॉलर हिन्दी विभाग
शोध निर्देशक : डॉ. त्रिविक्रम नारायण सिंह, भीमराव अम्बेडकर यूनीवर्सिटी, मुजफ्फरपुर-842001, (बिहार)

जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी जीवन के नए दृष्टिकोण प्रस्तुत हुए हैं। इनमें नारी का मनोविज्ञान नवीन विचारों एवं निजी धारणाओं के साथ प्राप्त होता है। भारतीय समाज की संरचना आदिकाल से पुरुष प्रधान रही है। जिसमें नारी को दोहरा जीवन जीना पड़ा है। आधुनिक युग में दाम्पत्य जीवन की विषमताओं को लेकर भी परिवार के प्रति नारी की मानसिकता में परिवर्तन आया है। पति उपेक्षा अधिकार-भावना, अविश्वास, कलह, नए और पुराने विचारों का संघर्ष, पतिव्रता एकांगी आदर्श आदि इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कारण कहे जा सकते हैं जो परिवार के प्रति नारी असहिष्णुता की भावना भरते हैं। नारी-पुरुष समाज के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं। एक की मनश्चेतना दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। आधुनिक नारी युग-परिवेश के प्रति पूर्णत: जागरुक है तथा नारी अधिकारों एवं सामाजिक सुधारों के प्रति सतत प्रयत्नशील है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन प्रेम एवं दाम्पत्य से ऊपर उठकर देश-देशान्तर की बात कही है।

त्याग पत्र की मृणाल को बचपन से माता-पिता का प्यार नहीं मिलता। इसे भाभी के कठोर अनुशासन का बंधन सहना पड़ता है। वह सहज पारिवारिक स्नेह भाव चाहती है। इसके अभाव में सामाजिक व्यवस्था के प्रति मन ही मन में किंचित अवहेलना का भाव आ जाता है। इसीलिए उसे भाभी के कोप का भाजन बनना पड़ता है। बचपन में ही माँ-बाप से वंचित और बड़े भाई की देखरेख में पलने को विवश मृणाल, अपनी भाभी से कष्ट सहन करना सीख चुकी थी। कालान्तर में पति से उपेक्षित और यौन असंतुष्टि ने भी उसे अधिकाधिक कुंठित और वर्जनाग्रस्त बना देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वह केवल अचेतन जगत जिजीविषा के आधार पर जीवित रहती है। जब कोयलेवाले ने उसके सामने सहायता के लिए हाथ बढ़ाया तो वह बिना सोचे समझे उसे ग्रहण कर लेती है। वह उसके साथ इस तरह से रहने लगती है कि उसके सामने कुल, मान, मर्यादा या पद की कोई चिंता नही रहती। वह समाज से डरती नहीं क्योंकि उसके अंत:करण के अनुसार कोयलेवाले के साथ रहकर भी वह पतिव्रता है। उसका विश्वास है '....जब तक पास है, तब तक वह पुरुष अन्य नहीं है। मेरा सब कुछ उसी का है। उसकी सेवा में मैं त्रुटि नहीं कर सकती। पतिव्रत धर्म यही तो कहता है।'1

समाज द्वारा उपेक्षित होकर मृणाल अधम श्रेणी के लोगों में जा कर रहने लगती है। इस अधम श्रेणी के लोगों के समाज में बहस आडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं है। कुलीन समाज की मर्यादाओं का यहाँ कोई मूल्य और महत्त्व नहीं है। सभी लोग मन के भावों के अनुरूप सच्चा व्यवहार करते हैं। बनावटी और दिखावे के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है। मृणाल का भतीजा प्रमोद प्रतिष्ठित समाज का सदस्य है। अत: वह अपनी बुआ को इस नरक से निकालना चाहता है। मृणाल प्रमोद को नरक में रहने वाले उन सभी लोगों के उद्धार की बात कहती है। वह प्रमोद के अहंकार को झकझोरना चाहती है- 'प्रमोद तुमने महाभारत तो पढ़ा होगा। युधिष्ठर जी स्वर्ग गए तो कुत्ते को नहीं छोड़ गए थे। यह बता तेरा घर कितना बड़ा है-इन सब लोगों को ले चलेगा? ये कुत्ते नहीं है और इनका मुझ पर बड़ा उपकार है।'2 मृणाल अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपनी तुलना युधिष्ठर के साथ करती है। जिसने अपने सहयोगी कुत्ते के लिए स्वर्ग का मोह त्याग दिया था।

मृणाल की कहानी वास्तव में भारतीय नारी की मुक्ति कहानी है। मृणाल को उपन्यासकार ने सामाजिक संस्कारों से जकड़ी हुई भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है। मृणाल परम्परागत रूढ़िवादी संस्कारों से मुक्ति पाने का प्रयत्न करती है। वह जीवन साथी के चयन में पुरुष जैसी स्वतंत्रता की आकांक्षा करती है। बंधन से उसका मन ऊबने लगता है। इसके लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करती है। ईश्वर प्रदत्त स्वतंत्रता के मार्ग में समाज के दकियानूसी विचार बाधा बनकर उसके सामने खड़े हैं। वह सामाजिक बंधनों को चेतावनी के रूप में स्वीकार करती है और अंत में संघर्ष करती हुई इस संसार से विदा हो जाती है। उपन्यासकार ने उसके मृत्युबोध को मनोवैज्ञानिक आधार देते हुए मृणाल से कहलावा है- 'जिसके सहारे में उस मृत्यु के अधर्म से बची, उन्हीं को छोड़ देने को मुझसे कहते हो? मैं नही छोड़ सकती। पापिनी हो सकती हूँ? पर

डॉ. प्रियंका कुमारी
पूर्व रिसर्च स्कॉलर हिन्दी विभाग,
भीमराव अम्बेडकर
यूनिवर्सिटी, मुजफ्फरनगर- 842001
(बिहार)
ईमेल- 1983kumaripriyanka@gmail.com

उसके ऊपर क्या बेहया भी बनूँ? क्यों मुझे तंग करते हो?'3

कल्याणी उपन्यास की कल्याणी विलायत से डॉक्टरी पास एक कुशल लेडी डॉक्टर है। उसका सम्पर्क जाली डिग्रीधारी डॉक्टर असरानी से बढ़ जाता है। प्रारम्भ में वह डॉक्टर असरानी के असली रूप से अनभिज्ञ रहती है। बाद में वह डॉक्टर असरानी के झूठे प्रपंचों में फंसकर न चाहकर भी उसके साथ रहने लगती है। डॉक्टर असरानी समाज में उसकी बदनामी का भय दिखाकर उसे अपने साथ विवाह करने के लिए विवश करता है। कल्याणी यंत्रवत उसके कथानुसार आचरण करने लगती है। डॉक्टर असरानी मनमाने ढंग से उस पर अत्याचार करता है। ऐसी स्थिति में कोई भी उच्च शिक्षिता नारी अपने पति के अमानवीय व्यवहार के प्रति विद्रोह अवश्य करती है। विद्रोह की ऐसी स्वाभाविक स्थिति में पहुँचकर भी वह सहनशील बनी रहती है। कल्याणी को स्थानीय नारी कहा और उसके प्रति सहानुभूति रखने वाले लोग डॉक्टर असरानी के अमानवीय व्यवहार के प्रति विद्रोह करने की सलाह देते हैं।

असरानी की व्यापारी मन:स्थिति और धन लोभ की साधन, सामग्रियों की सीमा से वह स्वंय को अलग नहीं देख पाती है। उसको भी असरानी अपने धनोपार्जन का एक समर्थ उपकरण मात्र समझ लेता है तो अदंर ही अदंर उसका अहम् जाग उठता है। असरानी उसके सम्मुख नारी उद्धार का दम भरता हुआ कल्याणी को जलील करता है-'तुम जानती हो तुम्हारी क्या हालत थी, जब मैंने तुमसे विवाह कर तुम्हें बचाया। तुम्हारा कुलीन विवाह असम्भव था। माँ बाप की तुम गल-ग्रह थी। मैंने ही तुम्हारा उद्धार किया। यह यूरोप नहीं कि बड़ी उम्र तक तुम कवाँरी रहो और समाज में स्थिति पा सको। आज दर-दर की तुम होती, यह सब अब तुम भूल जाती हो। अपनी हैसियत का ख्याल रखना। तुम्हारे कुल तक पर धब्बा है।' 4 असरानी की व्यापारी मन:स्थिति और मनुष्य हीन बनावटी व्यवहारों तथा कल्याणी की स्वत्व स्थापना के बीच का संघर्ष तब से शुरू हो जाता है। असरानी के प्रवचनापूर्ण व्यवहारों और कपट प्रेम वचनों के नीचे छिपा रहने वाला यथार्थ कल्याणी को बहुत जल्दी विदित हो जाता है। वह देखती है कि 'असरानी खुले में दूसरों के सामने उसकी तारीफ करता है, उसकी कविता को अच्छा ठहराता है। उसकी डाक्टरी की कुशलता की सराहना सुनाता है और अपनी पत्नी के उत्कर्ष के लिए किये जाने वाले कार्यों का वर्णन करके पत्नी के प्रति अपने प्रेम, श्रद्धा और परवरिश से दूसरों को प्रभावित करती है। लेकिन घर की चहारदीवारी के अंदर वह उसे भला बुरा कहता है। अपने जीवन का अभिशाप ठहराता है, उसकी निंदा करता है। उसे अपने गले पर टंगी बला कहकर उसका अपमान करता है, पीटकर शारीरिक दण्ड से उत्पीड़ित करता है।'5 'पति के चरित्र के इस दोहरे स्वभाव को जानने पर भी वह कुल वधु की हैसियत से पति का समर्थन करती है।' 6

इस नारी पात्र में सर्जनात्मक प्रतिभा अहंभाव के कारण खण्डित हो जाती है। खण्डित अहम के कारण उसके व्यवहार में अस्थिरता दिखाई देती है। मानसिक दृष्टि से वह हीन-भावना से पीड़ित रहती है। प्रारम्भ में वह प्रत्येक कार्य को बड़े उत्साह के साथ करती है, लेकिन उस कार्य को अंत तक निबाहने की क्षमता उसमें नही होती। वह डिस्पेन्सरी खोलती है, जगन्नाथ जी के मंदिर का ट्रस्ट बनाती है। भारतीय तपोवन की स्थापना करती है। सभा सोसाइटियों में जाती है, वहाँ अभिनन्दन-पत्र लेने की तैयारी करती है। इतने कार्य प्रारम्भ करने पर भी कोई उपलब्धि उसे नहीं होती है। कल्याणी सर्जनात्मक कार्य की अपनी अतृप्त इच्छा के साथ इस संसार से विदा हो जाती है।

सुनीता उपन्यास की सुनीता रूप-गुण सम्पन्न शिक्षिता नारी है। उसका पति श्रीकांत उसके रूप और गुणों पर मोहित है। पति-पत्नी दोनों स्वस्थ एवं सुन्दर हैं। घर में सुख-सुविधाएँ है लेकिन फिर भी घर में उदासी का वातावरण बना रहता है। सुनीता परम्परागत भारतीय नारी के रूप में घर को ही अपना सब कुछ मानती है। इसके लिए परम्परागत पति-धर्म का पालन करना अनिवार्य है। इसीलिए वह उच्च शिक्षिता होने पर भी चौके बर्तन और पति की आज्ञा का पालन तक ही अपने को सीमित रखती है। सुनीता पर हरि प्रसन्न के सुधार का दायित्व जब समर्पित होता है तब उसका मन इसलिए उत्साहपूर्वक स्वीकार कर लेता है कि संतानहीन दाम्पत्य जीवन से उत्पन्न एकान्तता और अकेलापन उसके अस्तित्व को नीरस ही नहीं बना रहे थे बल्कि निरर्थकता की शून्यता से उत्पीड़ित भी कर रहे थे। 'श्रीकांत जिस तरह की जिन्दगी में पड़ गया है उसमें अब भी उसके पंख गढ़े नहीं है। वहाँ वह अपने को भूला-भूला सा पाता है- अकेला, अमित्र, ऊपरी। सुनीता उसमें आ मिली है अवश्य,अवश्य दोनों ने एक घर बना दिया है, लेकिन वह घर ही उन दोनों के सयुंक्त अस्तित्व को अपने में चुका डालता है।'7

सुनीता के माध्यम से जैनेन्द्र कुमार नारी के नवजागरण का आधुनिक बोध प्रकट करना चाहते हैं। उनकी मान्यता है कि नारी तब तक सम्पूर्ण नही मानी जा सकती तब तक वह 'स्व' और 'पर' में भेद मानकर चलेगी। काम और प्रेम को वह भय के स्तर से ग्रहण करेगी तो उसका व्यक्तित्व कुठित बनकर रह जाएगा। निर्भय होकर अपने व्यक्तित्व का प्रसार करना नारी के नवजागरण का मूल बिन्दु है। व्यक्तित्व के इस प्रसार में से ऐसी बुध्दी विकसित होती है जिसमें तथाकथित नैतिकता और अश्लीलता का भय नहीं रहता है। अपने अंदर अनुभूत इस यौन वर्जना और तज्जनित असन्तुष्टि ही परोक्ष रूप में हरि प्रसन्न के आगमन पर सुनीता को उत्साहित करती है। वस्तुत: 'श्रीकांत और सुनीता के परस्पर संयुक्त जीवन में इधर कुछ प्रमाद, जड़ता और बंधन का बोध आ चला था। उस शांत अलस तल पर हरि प्रसन्न आविर्भूत हुआ। वहाँ लहर उठी लहरी। नींद जागी। प्रशांतता अशांत हुई। किन्तु इससे उस संयुक्त जीवन के अतरंग को कुछ हर्ष और रसास्वाद की ही अनुभूति प्राप्त हुई।'8

सुनीता ने नारी नवजागरण के आधुनिक बोध को ग्रहण करके कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया है। वह हरिप्रसन्न (पर) से माध्यम से ही 'स्व' को प्राप्त करती है। 'स्व' से यहाँ अभिप्राय

श्रीकांत और स्वयं सुनीता से है। सुनीता रात भर हरिप्रसन्न के साथ निर्जन जंगल में रहती है। वह पति के आदेश का पालन करती हुई यंत्रवत हरिप्रसन्न के मनोकूल आचरण करती है। श्रीकांत को सुनीता इन घटनाओं के विषय में बताना चाहती है, लेकिन पति एकदम विश्वास के साथ उसे बाहों में लेकर क्षमा नहीं करता, अपितु कृतज्ञ अनुभव करता है। इस प्रकार सुनीता में घर और बाहर में कोई नहीं टूटता है। 'स्व' और 'पर' दोनों के परस्पर मिलन से घर-बाहर सुरक्षित हुआ है। सुनीता पति के अधिक निकट पहुँच गई है। मानसिक क्लेश नष्ट हो जाता है। परायापन दूर हो जाता है और घर में नई बहार आ जाती है।

सुखदा उपन्यास की सुखदा सम्पन्न माता-पिता की इकलौती संतान है। वह लाड प्यार में पली है। माता-पिता ने उसकी हर इच्छा को पूरा करने का प्रयास किया है, जिसके कारण उसे किसी वस्तु के अभाव की अनुभूति नहीं होती है। अपने विवाह के विषय में वह कई बार सोचती है। उसके मन में विवाह को लेकर ऊँची कल्पनाएँ हैं। विवाह की सुखद कल्पनाओं में खोई सुखदा का विवाह विलायत जाने वाले एक सम्पन्न घराने के युवक के साथ निश्चित हो जाता है। किन्हीं अज्ञात कारणों से यह संबंध पूरा नहीं हो पाता है। इस संबंध के टूट जाने से सुखदा की भावी कल्पनाओं में कोई अतंर नहीं आता है। वह विवाह के उपरान्त पति द्वारा प्राप्त करवायी जाने वाली सुख सुविधाओं की स्मृति में खोई रहती है। पति के स्तुति बंधनों से वह हर्षित तो होती है, सौन्दर्य गर्व के अनुभव में भी इठलाने लगती है। लेकिन आगे बढ़कर उसकी इच्छा के विरुद्ध अभावों का अनुभव होने लगता है। वह धीरे-धीरे कुंठा के गड्डे में पड़ जाती है। वह कहती है- 'लेकिन थोड़े दिन बाद ही मुझे गृहस्थी में बहुत-सी बातों का अभाव दिखाई देने लगा। वेतन का कुछ भाग गाँव में शहगुर को भेजा जाता था, सो क्यों? हम लोग कितनी तंगी में रहते हैं, फिर भी उन सब को रुपया पहुचाया जाता है। यह बिलकुल ठीक नहीं। इन बातों को लेकर अनबन होने लगी।' 9

सुखदा के कभी न झुकने वाले अहम् का अनावरण तब देखने को मिलता है, जब क्रांतिकारी लाल अपने आदेशानुसार काम करने की जिद्द करता है। यही नहीं सुखदा से मिलने के लिए उसके घर आने वाला जब शिष्टाचार के विरुद्ध अपने पति को अनदेखा कर उसके सामने सुखदा के साथ अतिरेक स्वतंत्रता दिखाकर व्यवहार करता है तो सुखदा के अंदर की पत्नी जाग उठती है। लाल का व्यवहार सुखदा को अपने पति की अवहेलना और अपमान मालूम होता है। उसे पत्नीत्व पर किया गया बलात्कार सा लगने लगता है। इस पर उसका नारीत्व इतना क्षुब्ध हो उठता है कि वह अपने मान की रक्षा जिस पति के साथ अनुभव करती है उसने उस अशिष्ट व्यवहार को रोकने का प्रयास नहीं किया। यद्यपि पति में वह दोषों और कमियों का अनुभव करती है, कुठांग्रस्त होती है, फिर भी वह अपनी लाज की सुरक्षा उसी पति के साथ ही पाती है। जब पत्नीत्व से जुड़ा यह नारीगत अहम खंडित हो जाता है, वह उसके लिए सबसे घातक एवं मर्मभेदी सिद्ध होता है। वह अपना अहम् इस शब्दों में व्यक्त करती है-'तुम मेरे स्वामी हो, लेकिन तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, क्यों? नाराज होकर मुझे खुली छोड़ देना चाहते हो कि कोई धूर्त आए और ... तुम क्या चाहते हो?' 10

सुखदा महत्वाकांक्षी नारी है। वह समाज में मान-प्रतिष्ठा के साथ रहना चाहती है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसका भावी पति उसे ये सब साधन उपलब्ध करवाएँ। वह ऐसे पति की कल्पना करती है जो सर्वगुण सम्पन्न हो। लेकिन सुखदा का जीवन विडम्बना बनकर रह जाता है। वह क्षय-रोग से पीड़ित होकर सैनोटोरियम पहुँच जाती है। वहाँ वह अपने विगत जीवन का पुनरावलोकन करती हुई अपनी कहानी को लिपिबद्ध करती है। वह अपने व्यवहार से दुखी है और प्रायश्चित करती है। सुखदा को प्रेरणा प्राप्त होती है। 'वह आत्मपीड़न की अग्नि-परीक्षा में अपने अहं को गलाने के लिए कटिबद्ध है। अपने को पीड़ित करके ही उसे त्राण मिलता है। मानसिक रोग के कारण ही वह इस शारीरिक रोग से पीड़ित होती है। इक पीड़ा को वह प्रायश्चित के रूप में स्वीकार करती है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही वह कहती है- 'अस्पताल में हूँ, अकेली हूँ। बस एक नौकर साथ है। बच्चे हैं, स्वामी हैं, पर के सब दूर हैं। उनकी याद, करते डर होता है। किस मुँह से याद करुँ? उन्हें अपने ही हाथों मैंने हटा कर दूर किया है, अपने ही हाथों मैंने अपना अभाग्य बनाया है। कभी मेरी सोने की गृहस्थी थी, अब ठौर का भी ठिकाना नहीं है। सब उजड़ चुका है और अपने ही कार्यों से मैंने उजाड़ा है। आज यद्यपि में जानती हूँ कि मुझे छोड़ और कुछ भी नहीं बिगड़ा है, वही गृहस्थी लहलहाती हुई आज भी जुड़ सकती है, पर हाय मैं उसी के योग्य होती तो।'11

निष्कर्षत: जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारी पात्र मानसिक रूप से जीवन के विविध स्वरूपों से गुजरती है। उनके उपन्यासों में नारी अहम् एवं नारी चेतना विषय उजागर होता है। जैनेन्द्र की वैयक्तिक सत्ता में नारी के श्रद्धामय, प्रेरणादायक, ममता पूर्ण, सेवारत, समर्पित, पत्नीत्व, प्रेमिका के सभी अंग व्यापक रूप से स्पष्ट होते हैं। इनकी नारियाँ क्रांतिकारी, संघर्षशील एवं अतृप्त जीवन को भी जीनेवाली है। वे मानसिक रूप से कुठिंत, घृणित, विद्रोही एवं अकेलेपन से ग्रसित होते हुए भी जीने की लालसा रखती है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान का विवेचन युग सापेक्ष में करते हुए सकरात्मक जीवन को स्पष्ट करने का कार्य किया है।

000

संदर्भ-

1. त्यागपत्र-जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 58, 2. वही, पृ. 96, 3. वही, पृ. 58-59, 4. कल्याणी-जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ. 86, 5. वही, पृ. 29, 6. वही, पृ. 30, 7. सुनीता- जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृ. 23, 8. वही, पृ. 56, 9. सुखदा-जैनेन्द्र कुमार, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रा.लि., शाहदरा, दिल्ली, 2000, पृ. 12, 10. वही, पृ. 129, 11. वही, पृ. 3, 12. परख-जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 21

(शोध आलेख)

संजीव के उपन्यासों में जनजातीय जीवन-विमर्श

शोध लेखक : पटेलिया हरिशभाई बी.
शोध निर्देशक : डॉ.वी.जी.चौधरी
हेमचंद्रचार्य उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी पाटन

पटेलिया हरिशभाई बी.
आर्ट्स कोलेज सतलासणा हेमचंद्रचार्य
उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी पाटन

आदिवासी महिला सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिका जिम्मेदारी के साथ बखूबी निभाती है। पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र तथा कलाओं के क्षेत्र में आदिवासी नारी संघर्ष करती हुई आगे बढ़ रही है। प्रस्तुत अध्याय में इन क्षेत्रों में नारी स्थिति और उसकी समस्याओं के विविध आयामों का चित्रण किया गया है। पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्रो में विविध आयाम और उनकी समस्याओ को इस अध्याय के माध्यम से दर्शाया गया है।

पारिवारिक क्षेत्र में- आदिवासी परिवारों को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है- एकांकी अथवा केन्द्रीय, संयुक्त तथा विस्तृत 'हो' आदिवासियों में एकाकी परिवार मिलते है, जिनमें पति-पत्नी एवं अविवाहित बच्चे होते हैं। खड़िया आदिवासियों में विस्तृत परिवार मिलते हैं। भील, नागा, गौंड आदि आदिवासियों में बहुविवाही परिवार पाए जाते है। बहुविवाही परिवारों में एक से अधिक पत्नियाँ उनके बच्चे होते हैं। वर्तमान समय में आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न आदिवासियों में ही यह परम्परा पाई जाती है। बहुपातित्व परिवार व्यवस्था के उदाहरण खस, टोडा आदि आदिवासियों में मिलते हैं। वर्तमान में सामान्यतया यह माना जाता है कि एकाकी परिवार से नारियों की स्थिति में सुधार आया है। जबकि बहुविवाही परिवारों में उनकी स्थिति में गिरावट आई है, परंतु आदिम समाजों का सामान्य अवलोकन करने पर यह धारणा गलत प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए बहुपतित्व परिवारों में नारियों की स्थिति अन्य प्रकार के आदिवासी परिवारों की तुलना में अधिक अच्छी पाई जाती है। मात्र बाँझपन अर्थात् बच्चे पैदा न होने की

स्थिति में ही उसकी सामाजिक स्थिति में गिरावट पाई जाती है।

आदिवासी परिवारों में कन्या के विवाह के समय वर पक्ष से धन लिया जाता है, जिससे नारियों को उच्च एवं सम्मानजनक स्थान मिलता है। यह परम्परा कुछ ही आदिवासी परिवारों में प्रचलित है।

आदिवासी औरतों की दिनचर्या निम्नलिखित तरीके से शुरु होती है- सबेरे उठकर घर में झाड़ू देना, लीपा-पोती करना, चूल्हा जलाना, दूर-दराज झरनों, जल स्त्रोतों, नदियों व गहरें कुओं से पानी भरकर लाना। कई बार तो दोने से पानी उलीचकर एक घैला; घड़ा पानी भरने में एक घंटा लगता है। खाना बनाना भी इन्हीं के जिम्मे है। इस बीच मर्द दातुन करने के सिवाय कोई काम नहीं करता। अपने मर्द, बच्चों तथा बूदों को खाना परोसने के बाद खाना खाना, बरतन माँजना परिवार में स्त्रियों का नियम होता है। अगर गाय-गोरु घर में हो तो उनकी देखभाल करने का काम भी औरतों को ही करना होता है। घर के काम से निपटकर वे मर्द के साथ काम की तलाश में निकल जाती हंअन्यथा जंगलों में मर्द के साथ लकड़ी काटने के लिए जाती हैं। दोनों मिलर लकड़ी काटते हैं और औरत उस लकड़ी को सिर पर लादकर बेचने के लिए बाजार जाती है। उसके बाद रात को आकर औरत को खाना बनाना पड़ता है। मर्द सोने के बाद सोने जाना तथा मर्द के उठने के पहले उठ जाना भी औरतों की दिनचर्या में शामिल है। "ये सभी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ एक स्त्री निभाती है। स्त्री कहीं-कहीं पर अपनी मर्जी से नहीं बल्कि परिवार की खुशी के लिए भी सब कुछ करती है। वीणा सिन्हा के 'सपनों के बाहर' उपन्यास में श्रीमती सिंह जब लड़कियों के पढ़ने का विरोध करती है और उन्हें पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए कहती है, तब निशिगंधा कहती है- "यह रानी का मान पाकर औरत और भी अधिक गुलाम हो जाती है? साधारण गुलाम तो मालिक के डर से गुलामी करते है, परंतु औरत तो स्वेच्छा से भावात्मक गुलामी करती है। इस व्यवस्था में महिलाओं को पूरी तरह गुलाम बनाने की साजिश है। उन्हें घुट्टी में पिलाया जाता है कि उनके चरित्र के आदर्श पुरुषों के आदर्श से बिल्कुल अलग है। उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि दूसरों की अधीनता स्वीकार करने में ही सार्थकता है। सभी नैतिकताएँ स्त्री-स्वातंत्र्य के खिलाफ है। "स्त्री जो भी करती है स्वयं अपनी इच्छा से करती है। परिवार के काम करने में उसे संतुष्टि होती है। पुन्नी सिंह के 'सहराना' उपन्यास में सोमा और चंपा प्रेम विवाह करते है। चंपा के माँ-बाप इसीलिए उससे मिलने नहीं आते। वह अपने ससुराल के साथ-साथ मायके के सम्बन्धों को भी निभाना चाहती है। चंपा के माँ-बाप एकदिन उससे मिलने आ जाते हैं तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। इसका वर्णन देखिए।

आज तक एक बात का मलाल उसको खाये जा रहा था। वह किसी के सामने अपने माँ-बाप की चर्चा करने में सकुचाती थी। सहराने की औरतें जब भी इकट्ठी बैठतीं, तब अपने-अपने पीहर की बड़ाई करती नहीं थकती थीं, लेकिन ऐसे मौके "तेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी औरत है, कि उसकी माँ से अच्छी रसोई कोई पका नहीं सकता, कि उसकी माँ से अच्छी कथड़ी कोई सी नहीं सकता। एक-एक टाँका इतना सधा होता था मानो मशीन से लगा हो, कि उसकी माँ के हाथ माँडना देख देवता किसी और स्थान पर विराज ही नहीं सकते थे, कि उसके हँसने-भर से फूल कुछ ज्यादा ही महकने लगते थे, कि बापू के गीतों में माँ की आत्मा बोलती थी।"१

सामाजिक क्षेत्र में- आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करने के लिए सामाजिक क्षेत्र में उनकी स्थिति को देखना चाहिए। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं जैसे-विवाह, परिवार, धार्मिक एवं राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी कहाँ तक है, इसी से इनकी सामाजिक स्थिति का पता चलता है। "आदिवासी स्त्री पति को ईश्वर नहीं समझती। उनके ये मूल्य नहीं है। ईश्वर मानकर या धन के लोभ से सभी सन्त्रास सहन किया जाए, ऐसी परम्परा आदिवासियों में नहीं है। पति के सताए जाने और सास-ससुर द्वारा तंग किए जाने पर घुट-घुट कर मर जाने की अपेक्षा उस पति को छोड़कर दूसरा साथी या दूसरा पति चुनना और अपनी पसन्द के पति के साथ जीना, आदिवासी स्त्री को अधिक पसन्द है। इस व्यवहार को आदिवासी समाज मान्यता देता है, उसका बहिष्कार नहीं करता। "आदिवासी समाजों में सामान्यतया विवाह एक धार्मिक संस्कार के रूप में कम तथा एक समझौते के रूप में अधिक है। जीवनसाथी के चुनने का तरीका तथा विवाह के स्वरूप उनकी स्थिति के द्योतक के रूप में है। ये तरीके सर्वाधिक बर्बरता से लेकर पर्याप्त विकसित मानव समाजों के जीवन साथी के चयन के तरीकों तक समानता रखते है। जहाँ एक ओर कतिपय आदिवासी समाजों में विवाह योग्य लड़के तथा लड़कियों को जीवनसाथी के चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है, वही विवाह की सभी तैयारियाँ माता-पिता द्वारा की जाती है। अपहरण तथा क्रय द्वारा किया जाने वाला विवाह स्त्रियों की दयनीय स्थिति की ओर संकेत करता है। भील, गौड आदि आदिवासियों में इस प्रकार से देखा जा सकता है। अधिकतर समाजों में स्त्रियों को जीवन साथी चुनने की आजादी होती है। आदिवासियों में विवाह के लिए अलगअलग नियम होते है। एम. वीरप्पा मोयिलि के 'कोट्टा' उपन्यास में कोरग आदिवासियों में विवाह के लिए जूठन इकट्ठा करना होता। जितना ज्यादा जूठन इकट्ठा किया जाता है, उस परिवार में लकड़ी देना अच्छा माना जाता है। पीचलु के पिता मल्लय्या को बताते है कि- "यहाँ के ब्राह्मण हमें अपनी जूठन उठाने के लिए कहला भेजते हैं। यह प्रथा हमारे बाप-दादाओं के जमाने से चली आई है। इस सबको उठाकर हम इसे पानी में धोकर पत्थर पर सुखाते हैं और लड्डू बनाकर रख लेते हैं। यही हमारे लिए छह महीने का आहार है। हमारे जमाने में जो इसका ज्यादा से ज्यादा संग्रह करके रखता था उसे कोट्टा वाले अपनी लड़की देना ज्यादा पसन्द करते थे। थारु आदिवासियों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं। वहाँ पर स्त्री को सिर्फ खरीदा-बेचा जाता है। उसे देह-व्यापार की वस्तु समझा जाता है।"२

महिला की सामाजिक स्थिति का पता उसकी परिवार में स्थिति पति-पत्नी के अधिकार और कत्र्तव्य, विवाह के पूर्व कन्या के अधिकार और कत्र्तव्य आदि बातों से चलता है। अपवाद तो सभी समाज में होते है, सामान्य रूप से आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति पुरुष से कम नहीं है।

पुत्र-पुत्रियों के अधिकार लगभग समान होते हैं और पुत्रों के समान पुत्रियों को भी घूमने-फिरने की स्वतंत्रता होती है। जहाँ कुमार गृहों की संस्था है वहाँ लड़के लड़कियाँ सभी कुमार गृहों में रहते हैं और उनके कार्यों में कुछ अन्तर होने पर भी उनकी स्थिति में अन्तर नहीं होता। जनजातीय स्त्री को विवाह में स्वतन्त्र चुनाव करने की भी स्वतंत्रता होती है। इसी प्रकार तलाक के नियम भी स्त्री-पुरुष दोनों के लिये एक से ही होते हैं। कुवेद की प्रथा से तो सन्तानोत्पत्ति के समय पति भी पत्नी के समान कठोर जीवन व्यतीत करता है। यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता के विषय में भी स्त्री पुरुषों के लिये एक से नियम होते हैं।" आदिवासी समाज में बहुत सी ऐसी बाते हैं, जिनसे स्त्रियों को आगे बढ़ने से रोका जाता है। पुरुषवादी समाज में उसे कोई अधिकार नहीं दिए जाते हैं। आज आदिवासी समाज में औरतों को लेकर सोच में परिवर्तन होना चाहिए। तभी उन्हें बराबरी का हक मिलेगा।

राजनैतिक क्षेत्र में- सदियों पहले महिलाओं को राजनीति में प्रवेश करने पर पाबंदी थी। राजनीति में उनके प्रवेश की बात आते ही, विरोध में बुजुर्गों की भवें तन जाया करती थीं और उन्हें यह कहकर रोक दिया जाता था कि औरते तो बस मुर्गियों की तरह हैं, पुरुषों के क्षेत्र में उनका भला क्या काम! पर बीसवीं सदी के आगमन के साथ-साथ महिलाओं ने राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरु कर दिया। समय बदलने के साथ-साथ स्त्रियाँ राजनीति में अपनी भूमिका निभाने लगी है। जिससे समाज में उनकी दशा सुधरी है। महिला का सृष्टि-कृत्रि के रूप में प्रत्येक समाज में सदैव अग्रणी स्थान रहा है तथा भारतीय समाज में सदैव महिलाओं को विशेष स्थान प्रदान किया जाता रहा है। वैदिक काल में तो महिलाओं को इतना उच्चस्थ स्थान प्राप्त था कि इन संदर्भ में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि नारी शक्ति की पुंज है, इस काल में भारतीयों के सभी आदर्श स्त्री के रूप में पाये जाते थे, जो प्रतिकात्मक रूप में आज भी है।

विद्या का आदर्श 'सरस्वती' में, धन का 'लक्ष्मी' में, शक्ति का 'दुर्गा' में, सौंदर्य कारति' में पवित्रता का 'गंगा' में इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी 'जगत् जननी'के नाम से सुशोभित किया गया। स्वयं ब्रह्मा ने स्वीकार किया है कि देवी ही इस ब्रह्माण्ड को धारण करती है। वैदिक काल की यह परम्परा प्राचीन भारतीय इतिहास में देखी जा सकती है तथा महिलाओं की सम्मानजनक स्थिति सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में बनी रही। इस सम्मान एवं उच्च स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव मध्यकाल में विदेशी आक्रांताओं के आगमन से शुरु हुआ जो निरन्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक बना रहा। महिलाओं के सम्मान और चरित्र की रक्षा हेतु उन पर परम्पराओं के नाम पर शिकंजा शुरु कर दिया गया। महिलाओं की शिक्षा पर रोक लगायी गई और सार्वजनिक कार्यक्रमों में उनके भाग लेने में भी सीमित कर दिया गया। इन सब सामाजिक बंधनों के कारण महिला की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया। यद्यपि इन बन्धनों के बावजूद इस युग में कुछ महिलाओं ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। यथा-रजिया सुल्तान, दुर्गावती, चाँद बीबी, नूरजहाँ, ताराबाई आदि।

आदिवासी महिलाएँ राजनीति में भी परम्परागत रूप से भागीदारी निभाती रही हैं। "थारु जनजाति की पंचायत में स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष भागीदार रही हैं तथा थारु पुरुष अनेक मामलों में स्त्रियों की राय लेना श्रेयस्कर समझते हैं। इसी प्रकार 'साँसी' जनजीय पंचायत में स्त्रियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। वे स्वतंत्र रूप में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करती थीं तथा अपनी राय देती थीं। इसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था लेकिन कुछ मामले पर्याप्त पेचीदगीयुक्त होते थे, अत: इस क्षेत्र में पुरुषों का ही अधिपत्य रहा तथा स्त्रियाँ इस क्षेत्र में गौण मानी गई।"३

जो स्त्रियाँ पंचायतों में मुखिया और सरपंच चुनी गई है उनमें से अधिकांश अभी भी बूंघट में है। उनकी जगह वास्तविक मुखियागिरी उनका पति, पुत्र या कोई अन्य पुरुष ही करता है। "भारत में आज बराबरी का अधिकार मिलने के बावजूद कुछ अपवाद छोड़ कर अधिकांश औरतें वोट का इस्तेमाल तक भी पति, पुत्र, पिता व भाई की मर्जी से करती हैं। आज तक भारत में औरतों को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता नहीं मिल पाई है। भारतीय संसद में औरतों की संख्या लगातार घटती ही जा रही है। स्त्रियों को संसद में ३३ प्रतिशत आरक्षण देने के बिल को किसी-न-किसी बहाने टालने के लिए लगभग सभी पुरुष सांसद एकमत हैं। विकृत सामाजिक रुढ़ियों के कारण भी भारतीय स्त्रियाँ भयंकर शोषण का शिकार होती रहती है। इस पुरुषवादी सोच से स्त्री को अलग होना पड़ेगा, तभी जाकर राजनीति में अपनी भागीदार सुनिश्चित कर सकती है।

आदिवासी समाज में औरत की आर्थिक स्थिति पुरुष से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। वे अर्थोपार्जन की क्रियाओं में पुरुष के साथ मिलकर काम करती है। आदिवासी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या है, काम के स्थान पर उनका यौन शोषण। इनके समाज में यौन-सम्बन्धों को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता है, लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि इनसे कोई भी यौन संबंध बना ले। उपर्युक्त सभी बातों से स्पष्ट होता है कि आदिवासियों में स्त्री को एक वस्तु समझा जाता है। दु:ख की बात तो यह है कि इन सभी कार्यों में एक महिला ही पुरुषों का साथ देती है। जिस समाज में महिला की स्थिति सम्मानजनक नहीं होगी वह समाज कभी उन्नति नहीं करेगा।

000

संदर्भ- 1 संजीव, रह गईं दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ संख्या 224 और 225, 2. वही, पृ.सं. 279, 3. संजीव: "धार" (उपन्यास), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2990, पृ 40

(शोध आलेख)

वर्तमान परिदृश्य में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

शोध लेखक : ललिता देवी
पीएच.डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय

भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में आर्थिक उदारीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय अर्थतंत्र पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की दिशा में निरंतर अग्रसर हैं। आज भारतीय मीडिया भी भूमण्डलीय प्रभाव से अछूता नहीं है। भूमंडलीय मीडिया के दबाव ने आज भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के समूचे परिदृश्य में भारी उलट-फेर किया है। उलट-फेर के इस क्रम में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में आए त्वरित बदलावों, नित नए जुड़ते विविध आयामों ने 'मनोरंजन' और 'सूचना संचार' को अकल्पनीय, मनमोहक तथा मायावी रूप दिया है। भूमंडलीकरण के दौर में शक्तिशाली राष्ट्रों का मीडिया-आक्रमण नई-नई चुनौतियाँ खड़ी कर रहा है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और परिवारिक स्तर पर भूमंडलीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के दबाव के कारण मनुष्य के मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। बच्चों, किशोरों और नवयुवकों पर टेलीविजन के नकारात्मक प्रभाव को लेकर चिंता पनप रही है। टेलीविजन के इस खतरे को भांपकर सही दिशा देने के लिए कदम उठाने की योजना बनाई जानी चाहिए। मगर भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भूमण्डलीय मीडिया के कारण पश्चिम की विकृत मानसिकता, वहाँ की संस्कृति विकासशील देशों में तेजी से पनप रही है और लोगों पर उसका मनोवैज्ञानिक असर पड़ रहा है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का असर छपे हुए शब्दों से अधिक गहरा होता है। ये माध्यम व्यक्ति के मनोविज्ञान को बदलने की शक्ति रखते हैं। इसलिए उसके कार्य-व्यवहार को संचालित करने की ताकत भी इनमें निहित है।

ललिता देवी
पीएच.डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू - 180006
ईमेल - sharmalalita0781@gmail.com

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम मनुष्य के मन-मस्तिष्क को झकझोरकर उसके समूचे मनोविज्ञान को पलटकर रख देने की शक्ति के कारण मनुष्य की आंकाक्षाओं, इच्छाओं, उसकी अनुभूतियों और उसके व्यवहार की सहज प्रक्रियाओं को प्रभावित कर रहे हैं। आज बच्चों, किशोरों और नवयुवकों का मानसिक आवेग तथा संवेग इन्हीं से पूरी तरह संचालित व नियंत्रित हो रहा है। उनकी बुद्धि की सारी प्रक्रियाएँ वहीं से ही अपना रास्ता पा रही हैं।

आज की गतिशील जिंदगी में बड़ों के पास समय का अभाव है। समय की कमी उन्हें बच्चों के साथ बैठकर बहुत कुछ बाँटने का अवकाश नहीं देती। ऐसे में बच्चे या तो स्वयं या माँ-बाप के द्वारा जाने-अनजाने टी.वी. की ओर धकेल दिए जाते हैं। टी.वी ही उनका माता-पिता बन बैठता है। आज उनकी प्राथमिक पाठशाला का दायित्व भी वही सँभालता है।

मनोवैज्ञानिकों की राय में आज टी.वी. एक तरह से बच्चों का 'काइंड ऑफ माईंड कंट्रोल' हो गया है। आज बच्चे अपने आस-पास के परिवेश को नहीं, टी.वी. पर दिखाए जा रहे परिवेश को सच समझकर उसी के अनुरूप अपनी इच्छाशक्ति को जागृत कर अपने कर्म को अंजाम देते हैं। बच्चे अपने घर में इस छोटे से परदे से, फिल्मों से या रेडियो पर सुनी चीजों से सकारात्मक कम, नकारात्मक प्रभाव अधिक ग्रहण करते हैं। विशेषतौर पर इलेक्ट्रॉनिक छवियाँ उन्हें हिंसक, उग्र, आक्रामक और ईर्ष्यालु बना देती हैं।

अधिकतर मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि टी.वी. आज बच्चों की संवेदनशील तंत्र-प्रणाली पर गहरा असर डाल रहा है। बच्चों की स्वाभाविक काल्पनिक उड़ान और उनकी उत्सुकता का अपहरण किया जा रहा है जिससे उनकी उत्कंठा मर जाती है। उनका कोमल मन-मस्तिष्क टी.वी. के परदे पर अथवा फिल्मों में अंकित गड्डमड्ड बेतुके चित्रों और बेतरतीब विज्ञापनबाजियों में उलझ सा जाता है। कुछ बच्चे खोए-खोए से रहने लगते हैं और चेहरे की चमक उड़ जाती है। उनकी उन्मुक्त उछल-कूद सुस्त पड़ने लगती है जिससे उनका शारीरिक विकास प्रभावित होने लगता है।

नई सूचना टेक्नॉलाजी ने बच्चों के सामने कम उम्र में ही न जानने योग्य सूचनाओं और जानकारियों के ढ़ेर लगा दिए हैं। फिल्में, विडियो, रेडियो और टी.वी. अपने-अपने तरीके से ज्ञान चक्षुओं को खोलते हैं। टी.वी. रिमोट उठाने पर उनके सामने मनोरंजन की दुनिया का जो लबालब पिटारा खुलता है, उसमें हत्या और खून-खराबे वाले दहशत से भरे धारावाहिक भी हैं। उदाहरण के लिए सोनीपल चैनल पर 'सी.आई.डी. धारावाहिक इसके अतिरिक्त, आहट, श ... श, कोई है?, फियर फाईल्स', दहशत, क्राईम अलर्ट, सावधान इण्डिया के अतिरिक्त कुछ समाचार चैनलों के कार्यक्रम जैसे सच्ची घटना, सनसनी में दिखाए गए दृश्यों में हत्याओं, बलात्कार और खून-खराबे के खौफनाक मंजर, खून जमाने वाले नजारे, हिंसा के क्रूर दृश्य बच्चों को जटिल ग्रंथि का शिकार बना देते हैं।

बच्चे आज मीडिया के बदलते परिदृश्य के कारण समय से कुछ पहले ही परिपक्व होने लगे हैं। कुछ बच्चों का सामान्य ज्ञान किसी सामान्य व्यक्ति के औसत ज्ञान से ज्यादा होता है। लेकिन उसको कलम और सुलेख के जरिए प्रस्तुत करने की कला के अभाव में अनजाने में ही अतिज्ञान या अतिसक्षम होने का मनोवैज्ञानिक भाव उसके भीतर भरता जाता है। सीखने की प्रचलित प्रणाली की एक प्रक्रिया होती है और उस प्रक्रिया की कई कड़ियाँ होती हैं, कई स्तर होते हैं, कई स्थल होते हैं, मगर आजकल के बच्चे सीखने और ज्ञान अर्जित करने की प्रक्रिया की कई कड़ियों से अछूते रह जाते हैं। इसलिए व्यावहारिक जीवन में ऐसे बच्चे कड़े परिश्रम के दौर को झेल नहीं पाते, हार-जीत के दौर को भी वे नहीं समझ पाते और कईं तरह के मनोरोगों के शिकार होने लगते हैं।

आजकल के बच्चों की दुनिया में खेल के मैदान का अस्तित्व उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना टी.वी. का, वही उनका संगी साथी है। उसके परदे की रूपहली, सुनहरी और चमत्कारों वाली कथावस्तु बच्चो की आँखों में अनगिनत सपने भर देती है। दूरदर्शनी चरित्र उनके आदर्श चरित्र बनने लगते हैं। कठिनाई तब पैदा होती है, जब टी.वी के परदे की वास्तविकता को समझे बिना बच्चे उसी दुनिया को इस पृथ्वी पर उतार लाने की मुहिम छेड़ बैठते हैं। उदाहरण के लिए कुछ समय पहले शक्तिमान धारावाहिक और अब कॉर्टून चैनलों पर दिखाए जाने वाले 'सुपरहीरो' जैसे स्पाईडरमैन, छोटा भीम, बारबी, बालवीर, मोटू-पतलू, शिवा, डोरेमोन जैसे चरित्र जिन्हें देखकर बच्चे उनकी वास्तविकता को जाने बिना उनकी नकल करने की कोशिश करते हैं और हादसों का शिकार हो जाते हैं।

जी. न्यूज के समाचार चैनल पर दिखाए जाने वाले डी.एन.ए. के ऐंकर सुधीर चौधरी ने एक सर्वे में बताया कि भारत के 90 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे वर्तमान समय में वीडियो गेम, फोन, कॉर्टून चैनलों को देखने के आदि हो चुके हैं और 'ब्लू-वहेल' नामक एक वीडियो गेम को देखने वाले बच्चे उसकी वास्तविकता को जाने बिना उसके दुष्प्रभाव में आकर आत्महत्या तक करने पर उतारू हो जाते हैं। जिससे भारत में चार बच्चों की जान भी जा चुकी है। अत: हम कह सकते हैं कि बच्चों का इस प्रकार का नकारात्मक व्यवहार दिन-प्रतिदिन सब की चिंता का कारण बनता जा रहा है।

इतना ही नहीं आज के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने हमारे किशोरों और युवाओं को भी बहुत प्रभावित किया है उनके सामने सफलता की कसौटी नहीं होती, सफलता के पीछे का क्रूर इतिहास नहीं होता। उनके सम्मुख टी.वी. और फिल्मों के परदे पर दर्शायी गई सफलता का ग्लैमर होता है। अत: संघर्ष करने वाले हजारों-हजार लोगों के वास्तविक दर्शन उन्हें नहीं होते। उनके सामने किसी कामयाब वास्तविक चरित्र का चित्र उपस्थित नहीं होता, क्योंकि आज मीडिया के बदलते चकाचौंध और ग्लैमरस चरित्र के कारण अधिकतर धारावाहिक सामयिक यथार्थ से

सीधा-सच्चा साक्षात्कार नहीं कराते। इन धारावाहिकों में आमतौर पर संवेदित युगबोध के स्थान पर फैशन और ग्लैमर की दुनिया से जुड़े उच्चवर्ग या उच्च-मध्यमवर्ग के प्रेम संबंधों के मनगढ़ंत किस्से कहानियों से कथा को विस्तार दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'जिंग चैनल' पर दिखाया जाने वाला धारावाहिक 'इमोशनल अत्याचार' जिसमें असफल प्रेम कहानियों को नमक-मिर्च लगाकर प्रस्तुत किया जाता है। 'स्टार भारत' चैनल पर 'क्या हाल मि. पांचाल' नामक धारावाहिक में नायक की पाँच पत्नियाँ हैं। इसके अतिरिक्त 'कलर्स' चैनल के धारावाहिक 'द कपिल शर्मा शो' में हंसी-मजाक अश्लीलता की हद तक पहुँच जाता है और इसी चैनल के धारावाहिक 'बिग-बॉस' में अश्लीलता, लालच, अकर्मण्यता, संवेदनहीनता को बढ़ावा दिया जा रहा है।

इस तरह के धारावाहिकों से युवा पीढ़ी में संवेदनहीनता बढ़ती है और वे नैतिक-अनैतिक का भेद भूलकर उन्हीं का अनुसरण करने लगते हैं जिन दुश्चरित्रों को मीडिया नायक बनाकर प्रस्तुत करता है। भूमंडलीय मीडिया में दर्शाए गए मूल्य उसे प्रभावित करने लगते हैं। वह इलेक्ट्रॉनिक छवियों से अपना रागात्मक-भावात्मक संबंध स्थापित करने की कोशिश करता है। इस समूची प्रक्रिया में उसके जीवन का अपना अनुभव उसके लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहता। इसलिए आज के किशोर और युवा पीढ़ी के सामने जो स्वप्निल दुनिया मीडिया ने रची है उसके कारण उनमें 'डिफेंस मैकेनिज्म' और जीवन की समस्याओं से संघर्ष करके उनसे निकलने का माद्दा कम होता जा रहा है। वह इलेक्ट्रौनिक मीडिया द्वारा पैदा किए गए चरित्रों की तरह बिना मेहनत, लगन और परिश्रम के एक झटके में सब कुछ पा लेने के लिए आतुर है। जीवन की वास्तविक चुनौतियों से जब ऐसे किशोर और युवा टकराते हैं तो उनके मन में भयंकर निराशा और अवसाद छा जाता है। वह कई बार उनमें बिना लड़े अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं और इस प्रकार वे कुंठित होने लगते हैं।

आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का जादुई असर केवल बच्चों, युवक-युवतियों और किशोरों पर ही नहीं, बड़ों पर भी हो रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति सभी को भोग के मोहपाश में बाँध रही है। उपभोक्तावाद इस सीमा तक प्रभावी हो रहा है कि अनावश्यक चीजें भी आवश्यक लगने लगी हैं। उपभोक्तावाद की समूची विचार-सरणि तरह-तरह के रूपों में लोगों का मन परिवर्तन कर रही है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के 'आक्रामक विज्ञापन' तरह-तरह की अपीलों के जरिए उपभोक्ता की निर्णय-प्रक्रिया के प्रमुख कारक बन जाते हैं।

कभी-कभी विज्ञापनों की असरदार अपील व्यक्ति की आकांक्षाओं व इच्छाओं को फैलाव देती है। उपभोक्तवादी संस्कृति का आदर्श चुंबकीय शक्ति की तरह व्यक्ति को बरबस खींचता चला जाता है। उदाहरण के लिए धारावाहिकों के बीच में विज्ञापन, समाचारों के बीच विज्ञापन, अलग से ही कितने विज्ञापनों के चैनल हैं जैसे 'होम शॉप 18', 'शाप सी.जे.', 'नापतोल' जिसमें उनके शापिंग गाईड तरह-तरह के प्रलोभन देकर उपभोक्ता से धन ऐंठने के हथकंडे अपनाते हैं। धारावाहिकों में मध्यवर्गीय, उच्च-मध्यवर्गीय घरों के सुख-सुविधा संपन्न वातावरण को आज हर व्यक्ति अपने जीवन में उतार लाना चाहता है। इसके लिए वह उपभोक्तवाद से जन्मी तथाकथित आधुनिक जीवन-शैली अपनाने के लिए धनलोलुप होता जा रहा है। धन का अभाव उसके व्यक्तित्व में हीनता, कुंठा और क्षोभ भर देता है। इस तरह उपभोक्तावाद का दंश उसके व्यक्तित्व को बौना बना देता है।

अत: हम कह सकते हैं कि इस तरह जन-संचार का इलेक्ट्रॉनिक माध्यम आकांक्षाओं और इच्छाओं का ऐसा संजाल निर्मित कर रहा है जो व्यक्ति के मन को निराशा और अवसाद की ओर धकेलने में अपनी प्रभावकारी भूमिका निभा रहा है। घनघोर निराशा का भाव उन्हें 'मानसिक असंतुलन' की स्थिति में ले जाता है। यह मानसिक असंतुलन जीवन में कभी भी कोई खतरनाक मोड़ भी ला सकता है।

अत: निष्कर्षत: मीडिया से जुड़े लोगों को ही नहीं, बल्कि हमारे देश के समूचे प्रबुद्ध वर्ग को संपूर्ण परिदृश्य को देखते हुए भूमंडलीय मीडिया के खतरों को भांपकर इसे कम करने के यथासंभव प्रयास करने चाहिए। आकाशकीय उपग्रह से हो रहे टी.वी. प्रसारण के प्रवेश को रोकना भले ही हमारे वश में न हो; लेकिन इन सबके बावजूद अगर हममें दृढ़ संकल्प और निष्ठा हो तो मन-मस्तिष्क को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करने वाले कार्यक्रम प्रसारित किए जा सकते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को कॉर्टून चैनलों की वास्तविकता से अवगत कराकर उन्हें खेल-खेल में सीखने जैसे धारावाहिकों की ओर रूझान पैदा करें युवा पीढ़ी को भी पारिवारिक स्तर पर सही-गलत का भेद कराकर उन्हें स्वस्थ्य मनोरंजन की ओर अग्रसर किया जा सकता है। क्योंकि आज के बच्चों और युवावर्ग पर ही हमारे देश का आने वाला भविष्य टिका हुआ है। अगर वे ही मनोरोगों का शिकार होंगे तो स्वस्थ्य भारत की कल्पना कैसे की जा सकती है।

000

संदर्भ- 1-योगेश कुमार गुप्ता, मीडिया के विविध आयाम, आवि"कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर (राज.), प्रथम संस्करण, 2006, 2-डॉ. अजय कुमार सिंह, इलेक्ट्रानिक पत्रकारिता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2014, 3-डॉ. इन्द्रजीत सिंह, मधुलिका शर्मा, टेलीविजन पत्रकारिता सिद्धान्त एवं तकनीक, कनिष्क पाब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, 4-कालू राम परिहार, मीडिया के सामाजिक सरोकार, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, 5-पी.के. आर्य, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रतिभा प्रति"ठान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, 6-सुधीश पचौरी, नया मीडिया और नए मुद्दे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, 7-https://zeenews.india.com

(शोध आलेख)

जातीय शोषण एवं विद्रोह संदर्भ - मदारीपुर जंक्शन

शोध लेखक : मन्नू देवी
पीएच.डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय

सभ्यता के साहित्य में जाति शब्द का प्रयोग विशेष प्रचुरता तथा अनेक प्रकार से किया गया है। सामाजिक क्षेत्र में जातिवाद एवं जातीयता एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। विद्वानों ने जाति शब्द की व्युत्पति 'जन' धातु से मानी है। इसका अर्थ प्रजाति जन्म और भेद लिया जाता है। अंग्रेजी शब्द 'कास्ट' जो जाति के लिए प्रयुक्त होता है। वस्तुत: पुर्तगली शब्द 'कास्ट' से लिया गया है जिसका अर्थ नस्ल, प्रजाति और जन्म है।

केतकर के अनुसार - "जाति एक समूह है जिसकी दो विशेषताएँ हैं। समूह की सदस्यता उन लोगों तक सीमित होती है जो सदस्यों की सन्तान है और इस प्रकार पैदा हुए सभी व्यक्ति इसमें सम्मिलित होते हैं। सदस्य अक्षम्य सामाजिक नियम द्वारा समूह के बाहर विवाह करने से वर्जित होते हैं।"1 अत: जाति से आशय है अन्तर्विवाही समूह जिसका एक नाम एवं सदस्यता आनुवंशिक होती है।

भारतीय हिन्दू समाज में शोषित-उत्पीड़ित, दबली-कुचली तथा वर्ण व्यवस्था से बहिष्कृत जातियों को दलित जाति माना गया है। गाँधी जी ने इन्हें 'हरिजन' की संज्ञा दी है जिसका अर्थ है 'ईश्वर की संतान'। फिर भी इन जातियों को अधिकत: सामाजिक व सांस्कारिक अशुद्धि से परिपूर्ण माना गया है, साथ ही इनके धन्धे नियामक श्रेणीक्रम में निम्नतम माने गए हैं। इसी कारण इन जातियों को शहरों और गाँवों में पृथक आवास की परम्परा को बल मिलता गया।

भारत में अस्पृश्यता का बहुत पुराना इतिहास है। यद्यपि इसका जन्म और प्रचलन अस्पष्ट और अज्ञात है। दलितर वर्ग की परिभाषा इस प्रकार की गई है - "वे हिन्दू जातियाँ जिनके सम्पर्क में आने पर उच्च जाति के हिन्दुओं को शुद्धीकरण करना पडें है।"2 अस्पृश्यों को सामाजिक कलंक इस सीमा तक माना गया है कि उन्हें मन्दिरों में प्रवेश से रोका जाता है, ब्राह्मणों की सेवाओं से वंचित कर दिया गया है, साथ ही उन्हें उच्च जाति हेय की दृष्टि से देखती है। वे अशुद्ध जम्मते हैं और अशुद्ध ही जीवन भर जीते हैं। अस्पृश्यों को स्थाई रूप से उच्च वर्ग आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधीनता में ही रखते हैं।

प्रारम्भिक काल से ही दलित कहे जाने वाली अनुसूचित जातियों पर अनेक कठोर प्रतिबन्ध लगाये जाते रहे हैं। उनके खान-पान, उठने-बैठने, वेश-भूषा, पहनावे, स्थान आदि के नाम पर उन्हें उच्च जाति के लोगों ने पूर्णरूपेण बाँध दिया गया है, राज्य द्वारा सुधारात्मक उपायों तथा

मन्नू देवी
पीएच.डी. शोधार्थी हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू- 180006
ईमेल- simarandevi865@gmail.Com

कल्याण सेवाओं और संरक्षण ने कुछ हद तक इनके जीवन में परिवर्तन लाया है। इसके बावजूद आज भी समाज की अदृश्य शक्तियों द्वारा अस्पृश्यता के वेश में उन पर उसी प्रकार अत्याचार हो रहे हैं। आज के समय में भी अनुसूचित जातियों के प्रति अत्याचारों और नृशंसताओं में वृद्धि हो रही है। उनकी जमीन हड़प कर, उन्हें कम मजदूरी देकर और उन्हें बन्धुआ मजदूर बनाकर इनका शोषण किया जाता है।

दलित जाति कल्याणकारी योजनाओं, वित्तीय प्रोत्साहन और शैक्षिक आरक्षणों की सहायता से अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। बालेन्दु दिव्वेदी का उपन्यास 'मदारीपुर जंक्शन' पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों में दलित और सवर्ण संघर्ष की गवाही देता है। निचली जाति का अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होना और सवर्ण जाति के प्रति विद्रोह करना ही उपन्यास का मुख्य बिन्दु है।

उपन्यास का दलित पात्र चइता कबीरपन्थ का अनुयायी है। अरसे से समाज की सड़ी-गली मान्यताओं के विरुद्ध अपनी बिरादरी के लोगों को जगाने के लिए संघर्ष करता है। वह अपनी जाति के अस्तित्व के लिए उच्च वर्ग के विरुद्ध विद्रोह करता है। विवेच्य उपन्यास में चइता सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधितत्त्व करता है। छेदरी बाबू, बैरागी बाबू के वोटों में सेंधमारी के लिए हरिजन टोले से चइता को और केवटोली से भगेलूराम को परधानी के चुनाव में खड़ा करता है। चइता जो लम्बे समय से अपनी जाति के लोगों के दुखों को दूर करने के लिए संघर्षरत था। इस अवसर को अनुकूल जान चइता साधिकार अपनी परधानी की उम्मीदवारी की घोषणा करके, अपनी बिरादारी के लोगों के बीच बैठकों का सिलसिला शुरू करता है। चइता सदैव ही अपने लोगों के बीच चेतना का प्रतीक बनाता है। वह अपने टोले के लोगों के भीतर के अन्तरतम को झकझोर-झिंझोड़ कर उन्हें उनके मनुष्य होने का एहसास कराता रहता है। चइता अपनी जाति के लोगों को उनके वास्तविक अधिकारों के बारे में जागृत करने के लिए सभाओं का आयोजन करता है।

ऊँची जाति के लोग पिछड़ी जाति के वोट लेकर उन पर राज करते हैं और उन्हें मुर्ख समझते हैं। लेकिन चइता उनकी इस साजिशों को भली-भांति समझ जाता है और अपने लोगों की सहायता से उनका तख्ता पलटने का साहस करता है - "आज आप सब मिलकर केवल इस बात की खसम खाइए कि हम्म अपना नेता खुदै चुनेंगे। देखिएगा! आगे से पट्टी का कोई आदमी इस गाँव का परधान नहीं होगा। आप सब तय कीजिए कि अब किसी भी रूप में उनका जोर-जुलम अत्याचार सहन नहीं किया जाएगा।"3

शिक्षा, सार्वजनिक सेवाओं में प्रवेश, राजनीति में प्रवेश तथा ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में प्रवजन से ही इनके साथ हो रहे भेदभाव में अन्तर सम्भव हुआ है। सदियों से अत्याचार को झेलते रहे लेकिन आज अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखते हैं। आलोच्य उपन्यास में चइता अपनी बिरादरी के लोगों को जागरुक कर रहा है। सदियों से गुलामी सहते-सहते अब पिछड़ी जाति थक चुकी है। अब वह गुलाम बनकर नहीं जीना चाहते इसलिए वह संघर्ष करते हैं। सवर्ण जाति वाले लोगों ने पिछड़ी जाति को कोई अधिकार नहीं दिया। चइता अपने लोगों को समझता है कि अब अपने उपर हो रहे अत्याचारों के प्रति आवाज़ उठानी होगी। क्योंकि मंदिरों में जाने की अनुमति नहीं है। दलितों के साथ का छुआ भोजन, पानी नहीं लेते। लेकिन उनकी औरतों का शोषण करते हैं, बहू-बेटियों की इज्जत लूटते हैं। चइता कहता है - "बड़कऊ लोगों ने हमारा बहुतै नोकसान किया है। उनके पुरखों ने वेद लिखा और उसमें सबसे ऊपर बइठ गए। हमसे कहा कि हमारे पैर दबभों तभी मोछ मिलेगा। कहा कि यह तुम्हारा करतब्ब है। अपने लिए बढ़िया-बढ़िया काम बीछ लिया अउर हमको अपने दरवाजे पर गोबर काढ़ने वाला काम दे दिया। ऊ बेद पढ़ें तो पुन्न अउर हम पढ़ें तो अपराध ...। ऊ पढ़ें तो फूल बरसा अउर हम पढ़ें तो कान में सीसा ...! यही है तुम्हारा बेद? तब तो हमको मोछ नहीं चाहिए।"4

जमाना तेजी से बदल रहा है। बड़ी जाति के लोग हैरान हैं कि छोटी जातिर के लोग पहले उकने सामने बैठने की हिम्मत तक नहीं करते थे। उनके आदेशों के विरुद्ध कोई चूं तक नहीं करता था। लेकिन आज वे सिर उठाकर बोलने और अपना हक माँगने लगे हैं। उन्होंने सदियों बाद अनुभव किया कि जाति आधारित जो उन पर शोषण हो रहा है वह ईश्वरीयन विधान नहीं बल्कि वर्चस्ववादियों ने अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए योजनाएँ बनाई हैं। और शोषण के सिलसिले को कायम रखा है। "कम अत्याचार नहीं किया है हम पर ...! टोले की बहन-बेटियों की कोई इज्जत ही नहीं बची। कानून हमारे पच्छ में है, लेकिन कहीं कोई सुनवाई नहीं ...।"5 चइता का उपर्युक्त कथन लोगों में आक्रोश पैदा करता है और उनमें मनुष्य होने का भाव जागृत होता है। स्पष्ट है कि जब कानून उनकी सहायता नहीं करता, सरकार कठोर हृदय रखती है और पुलिस भी उन्हें सुरक्षा प्रदान करने में असफल रहती है और उन्हें तंग करती है। ऐसे में दलितों का शोषकों के विरुद्ध हथियार उठाना स्वभाविक बात है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा हेतू हर प्रयास कर रहे हैं - "सब कुछ सम्भव है भाई लोग! केवल हम एकजुट हो जाएँ। जब तक हम बंटे रहेंगे तब तक कोई छेदी, कोई बैरागी, कोई रमई हम पर सासन करता रहेगा। केवल टोपी बदलती रहेगी, पर अत्याचार कम नहीं होगा।"6

चइता अपनी बिरादरी में एकजुट करना चाहता है। साथ ही लूट और शो"ाण को पहचानने के लिए उनमें चेतना का स्वर फूँकता है।

छेदी बाबू ने चइता को चुनाव में इसीलिए खड़ा किया था कि बैरागी के खाते में जाते वोट को अपनी तरफ मोड़े और अन्त में सारे वोट छेदी के वोट में कन्वर्ट करे। लेकिन राजनैतिक दृष्टि से दलित इस तथ्य को समझने लगे हैं कि राजनैतिक संदर्भ में उन्हें अपनी अधिक संख्या का लाभ उठाना है। इसीलिए चइता खुद को असल उम्मीदवार मान कर अपने साथियों के साथ मिलकर प्रचार करता है। किन्तु जब छेदी बाबू को पता चलता है तो वह आपे से बाहर हो जाता है। अपने आदमियों को

भेज कर चइता को फौरन हाजिर होन का आदेश देता है। छेदी बाबू चइता को उसकी ओकात दिखाते हुए धमकी देता है और उससे उम्मीदवारी वापिस लेने को कहता है। लेकिन चइता ने अपनी बिरादरी से जो वादे किए हैं उनके खिलाफ नहीं जाता। छेदी बाबू से प्रश्न करता है कि - "का हुआ मालिक ...। जो दो बड़मनईन के बीच एक दलित भी परधानी में खड़ा हो गया? क्या एक दलित का लोकतन्तर में चुनाव लड़ने का हक नहीं? उसे परधान बनने का अधिकार नहीं?"7

तमाम कोशिशों के बाद भी चइता अपने लक्ष्य से नहीं भटकता। उसके समाज के भीतर एक नया विद्रोह जन्म ले लेता है। सवर्ण समाज उस आँधी को रोकने में असमर्थ है। क्योंकि इस विद्रोह का जन्म सवर्णों से अपने अधिकार वापिस लेने के लिए होता है। सदियों से छोटी जाति के लोगों को धर्म के नाम पर डरा-धमका कर अपने झंडे नीचे दबाकर रखा था। उन्हें असभ्य समझा जाता था। उनके प्रतिबिम्ब तक को स्वयं के ऊपर पड़ने नहीं देते थे। महात्मा गाँधी ने लिखा है - "सामाजिक दृष्टि से वे कोढ़ी है। आर्थिक दृष्टि से वे गुलामों से भी बदतर है।"8 लेकिन दलितों की नई पीढ़ी इस गुलामी में जीने से साफ इनकार करती है। अचरज होता है कि यह लोग आज तक कैसे अपने साथ होने वाले अन्याय को बरदास करते रहे। लेकिन अब दलित उच्च प्रशासनिक पदों पर आसीन है। अपने हक को पाने की लड़ाई में कुरबानियाँ देने को तैयार है।

चइता भी अपनी जाति पक्की करने की कोशिश में ऐड़ी-चोटी का जोर लगाता है। किन्तु उसकी इस कोशिश को सवर्ण समाज कुचल देता है। बिजई अपने और परधानी के बीच चइता को काँटा मानने लगता है। वह चइता की हत्या कर देता है। इस प्रकार चइता किसी गहरी साज़िश का शिकार हो जाता है। उसके साथी कहते हैं - परधानी का सौख चर्राया था उसको ...। सट्टा का दीवान हो गया था। हम लोगन की जिनगी बनाने का ठेका लेना चाहता था। सबको सरग का मारग दिखना चाहता था। उसको मालूमें नहीं था कि हमेशा बड़कियों मछरिया छोटकी मछरिया को खाती हैं।"9 चइता की हत्या के बाद मेघिया (पत्नी) उम्मीदवार बन कर चुनाव में खड़ी होती है। चइता ने अपनी बिरादरी में अधिकार और अत्याचार के विरुद्ध लोगों में अलक जगाई थी उसे वे कायम रखते हुए अपनी लड़ाई को जारी रखते हैं। किन्तु छेदी और बैरागी बाबू यह बात हजम नहीं कर पाते कि एक नारी वह भी दलित जाति की परधानी का चुनाव लड़े। वह भिखारीलाल के द्वारा मेघिया से चुनाव छोड़ने को कहते हैं। लेकिन उनकी यह योजना सफल नहीं हो पाती। दलितों का साहस, आत्मविश्वास बढ़ता ही जाता है। सारी अनिश्चितताओं और आंशकाओं के बावजूद हरिजन बस्ती में वोटरों ने वोट डाला। वह अपनी बिरादरी को सता में लाना चाहते थे। जिसके लिए न केवल सारे बड़े बुजुर्ग गतिशील दिखाई दे रहे थे, बल्कि उनके घरों की सभी बहू-बेटियाँ-महिलाएँ वोट डालने जाती हैं। इसके पहले शायद ही कभी चौखट से बाहर नहीं निकली थी।

छेदी बाबू समझ जाते हैं कि अब इन छोटी जाति के लोगों पर हकूमत करनी सम्भव नहीं है। क्योंकि ग्रामीण जीवन के सभी छोटे लोग महन्त कर के आगे बढ़ते जा रहे हैं। अब वह सवर्णों के आधीन नहीं रहे हैं। वह उनके साथ बराबरी कर रहे हैं। बल्कि उनसे भी आगे निकल रहे हैं। अब उन्हें रोका नहीं जा सकता। इसी के फलस्वरूप भेड़ियाधसान की लंगीमार लड़ाई में मेघिया मदारीपुर के दोनों धुरन्धर को पीछे छोड़ मुखिया का चुनाव जीत जाती है। मेघिया को न केवल हरिजन बस्ती, बल्कि केवटोली के लोगों ने भी वोट देकर जिताया था। चइता ने गाँव में जिस नई और सामूहित चेतना का आगाज किया था, यह उसका ही परिणाम था कि मदारीपुर की नई मुख्य दलित स्त्री (मेघिया) बनती है।

सामान्यत: अब अस्पृश्य समूह यह समझने लगे हैं कि उनकी समस्या केवल प्रभावी राजनैतिक कार्यवाही से ही हल हो सकती है। संसद, विधान सभाओं, विभिन्न सेवाओं, शैक्षिक संस्थाओं में पदो के आरक्षण तथा सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य विशेषाधिकारों के कारण, निम्न सांस्कारिक प्रस्थिति के व्यक्ति के पास उच्च आर्थिक व राजनैतिक प्रस्थिति प्राप्त करने में अच्छे अवसर हैं।

यद्यपि आज अनेक दलितों ने जाति आधारित परम्परागत पेशों को त्याग दिया है लेकिन अभी भी ग्राम में काफी संख्या में वे गन्दे पेशों में लगे हुए हैं। गन्दे पेशों में परिवर्तन तथा विविधता ने न केवल अस्पृश्यता का कलंक समाप्त किया है बल्कि अनेक लोगों को वर्ग गतिशीलता में उठने के योग्य बनाया है। सरकार द्वारा प्रदत्त अनेक आर्थिक लाभों को ले रहे हैं। सार्वजनिक कुंओं व मंदिरों के प्रयोग के मामले में भेदभाव अब इतने अधिक नहीं हैं जितने पहले थे। लेकिन विवाह, चिकित्सा, प्रशासन, प्रबन्धन, उच्च शिक्षा, न्याय और विधि आदि आधुनिक पेशों में हरिजनों के प्रवेश से उनके सहयोगी गुप्त रूप से ईर्ष्या करते हैं। ऐसे कुछ तो रूढ़िगत घृणा के कारण और कुछ उनके पक्ष में किए जाने वाले संरक्षात्मक भेदभाव के कारण उत्पन्न ईर्ष्या और स्पर्धा के कारण।

अत: आचरण की पवित्रता से ही समाज में प्रतिष्ठा होती है। गाँव-गाँव में ऐसा ही समाज बनाना चाहिए जिसमें शुद्ध आचरणवाले का ही आदर हो और मलिन स्वभाव वाले लोग ही चाहे वे किसी जाति में भी हों - शुद्र या अछूत माने जाएँ। इसी तरह उन लोगों का भी सुधार हो सकेगा जो अपने को ऊँची जाति का कहने में नहीं लजाते, मगर गन्दगी में अछूतों को भी मात करते हैं। यहाँ इतना ही ध्यान रखना है कि सुधार हमेशा मिठास से होता है, घृणा से नहीं।

000

संदर्भ- 1-भारतीय ग्रामीण समाज - वागेश्वरी सिंह परिहार, पृ. - 142, 2-भारतीय समाज, राम आहूजा, पृ. - 77, 3-बालेन्दु दिव्वेदी, मदारीपुर जंक्शन, पृ. - 149, 4-वही, पृ. - 149, 5-वही, पृ. - 150, 6-वही, पृ. - 150, 7-वही, पृ. - 160, 8-ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ. रामेश्वरलाल रायपुरिया, पृ. 49, द्वितीय खण्ड, 9-बालेन्दु दिव्वेदी, मदारीपुर जंक्शन, पृ. - 181

(शोध आलेख)

'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में किसानों की दयनीय स्थिति

शोध लेखक : सुरजीत कौर
पीएच.डी. शोधार्थी (हिन्दी)

भारत किसानों का देश है। यहाँ 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में बसती है और जिनकी आजीविका का मुख्य आधार कृषि है। दिन-रात परिश्रम करने के पश्चात् ही किसान अपने परिवार के लिए दो जून की रोटी जुटा पाता है और यदि कारणवश उनकी फसल नष्ट हो जाती है तो उसका खामियाजा पूरे परिवार को भुगतना पड़ता है। मौसम कब कौन-सी करवट बदल दे, इसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता, जिस कारण प्राकृतिक आपदाओं से पूरी मेहनत मिट्टी में मिल जाती है। इस प्रकार यह निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है कि किसानों की दशा बड़ी ही शोचनीय है।

किसानों की दशा में सुधार हेतु सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ बनाई गईं जैसे - पंचवर्षीय योजना, फसल बीमा योजना, किसान निधि योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना आदि। इनमें से पंचवर्षीय योजनाओं की बात करें तो सरकार का ध्यान केवल संस्थानों और उद्योगों के विकास पर ही अधिक रहा। केवल प्रथम और छठी योजनाएँ ही ऐसी थीं जिसमें कृषि-व्यवस्था पर विचार किया गया। इसी कारण किसान को इन योजनाओं का विशेष रूप से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। सरकार की कृषि संबंधी विभिन्न योजनाओं का लाभ किसानों को न मिल पाने का एक कारण उनकी निर्धनता एवं अशिक्षा है। आर्थिक अभाव और अशिक्षित होने के कारण वे उन्नत बीज, कृषि के आधुनिक तथा उच्च वैज्ञानिक तरीकों से वंचित रह जाते हैं जिस कारण किसान आत्महत्या करने को विवश हो जाते हैं। यहाँ आए दिन किसानों की आत्महत्या के अनेक किस्से सुनने को मिलते है। 29 अक्टूबर 2011 के 'द हिंदू' अखबार में पी. साईनाथ के लेख में दिए गए आँकड़ों के अनुसार, "भारत में हर रोज किसान आत्महत्या कर रहे है। किसानों की आत्महत्या की जो गति है उसे देखते हुए यह अनुमान अतिरंजित नहीं होगा कि अब तक आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या दो लाख साठ हजार से बहुत अधिक हो गई होगी। पी. साईंनाथ के लेख में किसानों की आत्महत्या का जो आँकड़ा है वह भारत सरकार के राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एन.सी.आर.बी.) द्वारा प्रस्तुत किया गया है। किसानों की आत्महत्या का यह आँकड़ा सोलह वर्षों का अर्थात् 1995 से 2010 तक का है। इन वर्षों में प्रतिवर्ष किसानों की आत्महत्या की संख्या पर ध्यान दीजिए तो यह मालूम होगा कि आत्महत्या की संख्या प्रतिवर्ष लगातार बढ़ रही है।"1 इसी प्रसंग में समकालीन लेखक एम.एम. चन्द्रा ने 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास की रचना की जिसमें किसानों की दयनीय दशा को दर्शाया गया है। हाल ही में प्रकाशित यह उपन्यास मूलत: सन् 1998 से 2008 के मध्य घटी एक सत्य घटना पर आधारित है। उपन्यास में भारत के समृद्ध गाँव नंगला की कहानी है जो आधुनिक विकास की बलि चढ़ जाता है।

यह उपन्यास खेती पर लिखे गए अन्य उपन्यासों से भिन्न है क्योंकि यह किसानों की

सुरजीत कौर
पीएच.डी. शोधार्थी (हिन्दी), नेट, सेट
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू - 180006
ईमेल - skour1635@gmail.com

समस्याओं की बात करते हुए केवल कर्जे की, कर्जे माफी की और ऐसा न होने पर किसानों के आत्महत्याओं की बात नहीं करता बल्कि सक्रिय किसान जागरण के लिए, उनकी समस्या के समाधान के लिए सशक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले आधुनिक संगठन जो युवाओं के हाथ हो, का समर्थन करता है। इसके साथ ही यह उपन्यास किसान विरोधी नीतियों की जमकर खबर लेता है और किसानों को उनसे निपटने के लिए रूढ़ियों से मुक्त ओकर संघर्ष करने के लिए भी प्रेरित करता है।

उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' का केन्द्रीय पात्र अघोघ है। उसके पिता फतह सिंह शहर की एक मिल में काम करते थे और किसी कारणवश मिल में तालाबंदी होने के कारण 23 साल बाद अपने परिवार समेत गाँव वापिस लौटते हैं। अघोघ अपने परिवार में सबसे अधिक पढ़ा है। गाँव आने की उसे कोई विशेष खुशी नहीं है लेकिन परिस्थितियों के सामने विवश है। गाँव आने पर वह देखता है कि किस प्रकार सरकार की गलत नीतियों के कारण गाँव का विकास नहीं हो पाया है। गाँव में शिक्षण संस्थानों का अविकास, निजीकरण को प्राथमिकता, लघु उद्योगों का ठप्प होना इन सबके लिए वह सरकार को ही जिम्मेदार ठहराता है। अघोघ अपने पिता फतह सिंह को इस सच्चाई से साक्षात्कार कराते हुए कहता है - "हाँ, इसे भी सरकार की नीतियों ने ही बंद किया। सरकार ने बड़ी कंपनियों को बचाने के लिए छोटे-छोटे मंझले उद्योगों की बलि चढ़ा दी। ये भी भेंट चढ़ गया है।"2

उपन्यास में अघोघ एक चेतनशील युवक है। उसके पिता फतह सिंह शहर में एक मिल में काम करते थे इसलिए वह आन्दोलन के प्रति जागरुक था। गाँव आने पर उसे पता चलता है कि देश के समृद्ध गाँव नंगला में पंचायत सभा हो रही है। गाँवो में किसानों की स्थिति और सरकार की नीतियाँ अघोघ के अंतर्मन को आन्दोलित करती हैं। यही कारण था कि वह किसान सभा बनाने का निर्णय लेता है। अघोघ जानता था कि किसान आंदोलन से अधिक किसान संगठन मजबूत होना चाहिए तभी किसानों की आवाज सरकार तक पहुँच पाएगी और किसान सभा किसी भी राजनीतिक पार्टी के बहकावे का शिकार नहीं होगी। अपने दोस्त कुक्कू, सलीम और राजेश को भी किसान सभा के लिए तैयार करता है। अप्रत्यक्ष रूप में अघोघ ही 'किसान सभा' का नेता था चूंकि राजेश एक किसान का बेटा था, उसे नेता के रूप में चुन लिया जाता है। अघोघ के अनुसार - "... किसानों का नेता किसानों के बीच का हो सकता है। मैं किसान नहीं हूँ।"3

किसान आन्दोलन तो पहले भी हुए लेकिन उसका परिणाम किसानों को आश्वासनों के सिवाय कुछ नहीं मिला क्योंकि किसान आन्दोलन भटकाव के शिकार थे। यही कारण था कि अघोघ 'किसान सभा' बनाने के साथ ही किसान संगठन पर ज्यादा बल देता है - "दोस्तों, किसान संगठन बनाने का हमारा पहला मकसद जैसे ही पूरा होगा, हम किसान आन्दोलन भी करेंगे। खेती-किसानी के हर मुद्दे पर संघर्ष भी करेंगे। लेकिन अभी सिर्फ संगठन बनाने के लिए मजबूती के साथ डटा जाए।"4 चारों मित्र किसानों के सामने अपनी रणनीति रखने के लिए एक सम्मिलित परचा तैयार करते हैं। 'किसान सभा' के लिए उन्होंने सबसे पहले 'आँखू गाँव' को चुना। पंचायत करते समय वहाँ के किसानों को विश्वास दिलाते हुए अघोघ कहता है - "हम किसान सभा बनाने की तरफ बढ़ रहे हैं। जिसके लिए हम गाँव-गाँव जाकर किसान समिति बनाएँगे। यह पहला गाँव है, जहाँ से हमने अपनी शुरूआत की है। प्रत्येक गाँव मे गठित किसान समिति का एक सक्रिय किसान 'किसान सभा' का सदस्य बनेगा। ... आपसे अनुरोध है आप भी हमें अपने अनुभव से अवगत कराएँ।"5

हरित क्रांति जो सातवें दशक में आरंभ हुई थी। इस क्रांति ने शुरूआत में तो सफलता प्राप्त की परंतु समय के साथ-साथ इसकी नाकामियाँ भी सामने लगी और इसका सबसे अधिक नुकसान बड़े किसानों को उठाना पड़ा। इससे पहले पारम्परिक कृषि ज्यादात्तर देशीय उपकरणों पर निर्भर थी जिसमें कार्बोनिक खादों, साधारण हलों, पारम्परिक औजारों, बैलो आदि का प्रयोग होता था। इसके विपरीत हरित क्रांति ने आधुनिक तकनीकों जैसे रासायनिक उर्वरक कीटनाशक, बीजों की उन्नत किस्मों, कृषि मशीनरी, विस्तृत सिंचाई और विद्युत शक्ति आदि के प्रयोग पर जोर दिया। इससे कृषि में अर्थात् फसलों के उत्पादन में बदलाव आए। नई तकनीक ने किसान को बाजार प्रेरित बना दिया है। अपने उत्पादन की माँग के लिए किसान बाजार पर अधिक निर्भर हो गया है, जिससे कृषि में ऋण की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी हुई है। जिसके अनुरूप किसानों ने खेती करनी प्रारंभ की जिससे खर्च अधिक आता है, क्योंकि नकदी फसलों के उन्नत बीज, फिर उन पर कीटनाशकों का छिड़काव, रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अधिक होता है। उपन्यास में बताया गया है कि उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए बल्ली सिंह मल्टीनेशनल कम्पनी से बढ़िया बीज खरीदता है ताकि फसल अच्छी होने पर पुराना कर्ज उतार सके। लेकिन इसके विपरीत वह कर्ज में डूब जाता है क्योंकि - "बढ़िया बीज के साथ, उसी कम्पनी का महँगी कीमत पर खाद और कीटनाशक भी खरीदना पड़ेगा, क्योंकि अन्य खाद और कीटनाशक एक ही कम्पनी से खरीदना बल्ली की जरूरत नहीं, मजबूरी थी, अब बाजार खेती किसान के बीज बोने से लेकर फसल बेचने तक दाम तय करने लगा।"6

दूसरी तरफ हम देखते हैं कि 1990 के बाद जब नई आर्थिक नीतियाँ पूरे देश में लागू हुई तब सबसे पहले मजदूर वर्ग को इसने अपना निशाना बनाया और किसानों को अपने चंगुल में फंसा लिया, जिससे निकलने की नाकाम कोशिश किसान करता रहा। किसानों के लिए सरकार ने जो रियायतें दी वे भी किसानों की जिन्दगी को बदहाल होने से न बचा सकीं। इसका नतीजा यह हुआ कि देश में किसानों की आत्महत्या का दौर शुरू हुआ, जो आज तक जारी है। उपन्यास का पात्र बल्ली सिंह, जो गाँव में बड़ा किसान है, आर्गेनिक ढंग से खेती करने का नुकसान एक बार तो झेल गया किन्तु फसल का लागत

मूल्य प्राप्त न होने पर और सामाजिक प्रतिष्ठा से बचने के लिए वह ट्यूबवैल पर जाकर आत्महत्या कर लेता है। "शाम तक पूरे गाँव में खबर फैल गई, बल्ली ने अपनी ट्यूबवैल पर खुदखुशी कर ली। पूरे गाँव में जैसे मातम छा गया। पहली बार इस गाँव में ही नहीं इस राज्य में एक बड़े किसान ने आत्महत्या की थी।"7

लेखक एम.एम. चन्द्रा ने किसान की समस्याओं का उल्लेख कर इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि किस प्रकार दिन-रात परिश्रम करके भी इनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता। उपन्यास का नायक अघोघ जब खेत में काम कर रहे मजदूर से पूछता है कि इस बार की फसल बहुत अच्छी है तो वह कहता है कि "हाँ बेटा! मेहनत तो कर रहे हैं। लेकिन फसल के अच्छे होने से हमारी जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आने वाला।"8

उपन्यास में मोड़ तब आता है जब ऑर्गेनिक खेती करने से धीरे-धीरे नंगला गाँव की धरती बंजर होने लगी। इस लिए 'किसान सभा' के सदस्य आन्दोलन करने का निश्चय लेते हैं। सबसे पहले उन्होंने 'किडनी आन्दोलन' से शुरूआत की। लेकिन किडनी आन्दोलन को असफल हाते देख 'चुनाव बहि"कार' का निर्णय लिया गया। जब किसानों ने इस आन्दोलन में भाग लेना कम कर दिया तो किसान सभा के सदस्यों के लिए यह एक चिंताजनक विषय बन गया। अघोघ ने किसान सभा के सदस्यों के समक्ष 'यह गाँव बिकाऊ है' के नारे का प्रस्ताव रखा। देश में यह पहली घटना थी जब किसानों ने अपने गाँव को बेचने का इश्तहार दिया। इस घटना से अन्य गाँवों के किसानों ने भी प्रभावित होकर आंदोलन करना आरंभ कर दिया। पत्रकार कबीर सिंह भी नंगला गाँव के आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि वह भी एक किसान का बेटा था। स्थानीय सांसद हुकुम सिंह को नंगला गाँव के किसानों द्वारा निरन्तर किये जा रहे आन्दोलनो से रू-ब-रू कराता है। पत्रकार द्वारा पूछे जाने पर पटवारी बताता है कि उन्हें यह नारा क्यों उठाना पड़ा - "सरकार की नीतियों के कारण किसान मौत के मुहाने तक पहुँच गया है जब खेती किसानी एक परिवार का पेट नहीं भर सकते तो उसको रखकर हम करेंगे भी क्या? कम से कम जमीन बेचकर कोई दूसरा काम धंधा तो देख लेगें।"9

समाज में ऐसे अनेक कारण हैं जिसकी वजह से किसान आन्दोलन सफल नहीं हो पाते। इसलिए समाज की समस्याएँ जसतस बनी हुई हैं। उपन्यास का पात्र अघोघ भी किसान आन्दोलन को अंत तक ले जाना चाहता है लेकिन किसान सभा के सदस्यों के आपसी मतभेदों के चलते आन्दोलन बिखर जाता है। पत्रकार कबीर सिंह जब नंगला गाँव आता है तो पटवारी से बात करते हुए उसे पता चलता है कि - "जिन चारों दोस्तों का किसान सभा एक मिशन था आज भी एक ही मिशन है लेकिन मतभेदों के चलते उन्होंने खुद को एक दूसरे से अलग कर लिया है।"10

वर्तमान समय में किसानों के पास जितनी समस्याएँ हैं तथा उन समस्याओं से लड़ने के लिए सरकारी/गैर-सरकारी जितनी योजनाएँ बनी हुई हैं, अगर सरकार उसमें अपना स्वार्थ अह्म आदि को छोड़कर ठीक से उन योजनाआं को किसानों तक पहुचाएँ तो किसानो की दशा एक हद तक बेहतर बन सकती है। दूसरे, किसान आंदोलन का संगठन मजबूत होना चाहिए ताकि वह किसी भी तरह के षडयंत्र का हिस्सा न बन सकें और न ही उनमें पारस्परिक मतभेद उत्पन्न हो सके। स्पष्ट रूप से हम कह सकते हैं कि आज भी समाज में अघोघ जैसे नौजवानों की आवश्यकता है जो किसानों की दशा में सुधार लाने के लिए अन्य युवाओं को संगठित कर किसान आंदोलन को उसके लक्ष्य तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकें।

000

संदर्भ- 1-कथादेश पृ. 761, विशेषांक मई 2012, 2-एम.एम. चन्द्रा, यह गाँव बिकाऊ है, वर्ष 2019, पृ. 23, 3-वही, पृ. 116, 4-वही, पृ. 134, 5-वही, पृ. 104, 6-वही, पृ. 48, 7-वही, पृ. 56, 8-वही, पृ. 30, 9-वही, पृ. 179, 10-वही, पृ. 182

नई पुस्तक

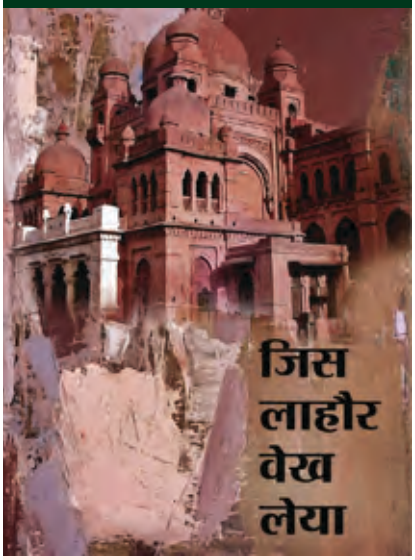

(यात्रा संस्मरण)

जिस लाहौर वेख लेया

लेखक : प्रितपाल कौर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार प्रितपाल कौर की पाकिस्तानी यात्रा का यह संस्मरण शिवना प्रकाशन से नयी दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित होकर आ रहा है। इस संस्मरण में प्रितपाल कौर ने अपनी साहित्यिक यात्रा के अनुभवों को पाठकों के साथ साझा किया है। प्रितपाल कौर का 2012 में पहला अंग्रेज़ी उपन्यास 'हाफ मून' प्रकाशित। अब तक पाँच उपन्यास- 'हाफ मून', 'ठग लाइफ', 'राहबाज़', 'इश्क़ फरामोश' और 'साल चौरासी'' प्रकाशित। तीन कहानी संग्रह 'लेडीज आइलैंड', 'मर्दानी आँख' और 'लोक नगर की इकतीस कहानियाँ' प्रकाशित, एक कविता संग्रह 'अफसाना लिख रही हूँ' प्रकाशित। एक कहानी संग्रह (हिंदी में) का संपादन, दो आत्मकथाओं का (अंग्रेज़ी में) संपादन। कला पर दो पुस्तकों का हिंदी से अंग्रेज़ी में अनुवाद। साहित्य अकादमी के लिए नीरज दइया की राजस्थानी की बाल पुस्तक का हिंदी में अनुवाद। अपने अलग तरह के गद्य के कारण यह यात्रा संस्मरण पाठकों को अपने साथ बाँध लेगा।

000

(शोध आलेख)

अंधश्रद्धा से संकटग्रस्त बचपन : उसके हिस्से की धूप

(राष्ट्रीय मानवाधिकार पुरस्कृत बाल मनोविज्ञान आधृत उपन्यास)

शोध लेखक : जितेंद्र शर्मा, शोधार्थी महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध निर्देशक : डॉ. कृष्णा देवी एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

जितेंद्र शर्मा
शोधार्थी
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में साधिकार लेखनी चलाने वाली, प्रखर चिंतक, शिक्षाविद् एवं विदुषी, साहित्यकार उषा यादव का उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। इस उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वास से संकटग्रस्त बचपन को दिखाकर मनुष्य की भयानक और कुत्सित सोच को उजागर किया गया है। आधुनिकता बोध के चलते मूल्यों का अवमूल्यन होता जा रहा है जिसमें मनुष्य में इंसानियत का लोप हो रहा है जिससे बच्चों का भविष्य संकटग्रस्त है।

भारत में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' वाला यह देश जहाँ पर नारी के देवी रूप को मूर्ति रूप में पूजा जा सकता है लेकिन जीती-जागती हाड़-मांस की नारी समाज को स्वीकार नहीं है। इस उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वास से कन्या जाति के ऊपर किए जाने वाले अत्याचार और उसकी त्रासद स्थितियों का वर्णन वृंदा नाम की अबोध बालिका के द्वारा किया गया है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय का मत है कि "अंधविश्वास हर समाज में मिलते हैं। जिन समाजों का इतिहास बहुत पुराना है उनमें अंधविश्वास की स्थिति और भी अधिक है। उनका एक कारण है। कई बार अंधविश्वास पुराने सामाजिक रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज, धार्मिक आस्थाएँ आदि के अविवेकी रूप में या बचे हुए प्रभाव के रूप में समाज में जीवित रहते हैं।"1

"हर समाज में ज्ञान-विज्ञान का नया विकास उदीयमान और कृषि से जुड़ा हुआ है। जो वर्ग या जो समुदाय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े हुए हैं वे अपने जीवन के कर्म और व्यापक अर्थ में जीवन के धर्म के लिए नई दृष्टि रखते हैं। विकास के बदले पुरानी दृष्टि से काम चलाने वाले मानक हैं। इस कारण भी अंधविश्वास पैदा होते हैं।"2

"अंधविश्वासों को बनाए रखना में दो तरह के तत्त्व काम करते हैं। एक तो वे लोग जो समाज में किसी तरह का परिवर्तन करना नहीं चाहते बल्कि यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं। अपने लाभ के लिए इन सामंती रूढ़ियों और रूढ़ियों को बनाए रखना चाहते हैं, वे सभी लोग अंधविश्वास को बढ़ावा देते हैं।"3 इस उपन्यास में ऐसा ही लालची पात्र है मास्टर हरी सिंह जो धार्मिक अंधविश्वास के चलते गाँव वालों को मूर्ख बनाकर उनके आगे अपनी बेटी वृंदा को देवी के समान दर्जा देकर उससे आने वाले चढ़ावे से धनाढ्य होना चाहता है। वृंदा जोकि मास्टर हरि सिंह की छठवे नंबर की पुत्री है। मास्टर हरि सिंह ने वृंदा को गर्भ में ही नष्ट करने का प्रयास किया था लेकिन उसकी माता सुनीता की होशियारी से वह बच गई। वृंदा से पहले सुनीता ने पाँच पुत्रियों को जन्म दिया था। उसी कारण से मास्टर हरि सिंह को बहुत कुलबुलाहट होने लगी थी। एक दिन वह योजना बनाकर सुनीता को आगरा घुमाने के बहाने पिनाहट में स्वास्थ्य परीक्षण के

लिए ले जाता है। वहाँ डॉक्टर से सुनीता के जबरन गर्भपात की बात करता है जिस अस्पताल में मास्टर हरि सिंह सुनीता को लेकर जाता है उन्होंने लिंग जाँच परीक्षण के कोड वर्ड बना रखे हैं। लड़का होने पर उसे 'पेड़ा' बताया जाता है और लड़की होने पर 'बर्फी'।

मास्टर हरि सिंह पैसे का लालची आदमी है। वह जल्द धनाढ्य होना चाहता है और उसके लिए वह नई योजना बनाता है कि वर्षा के लिए होने वाले निराहार-निर्जल तप में-तीन वर्ष की वृंदा को बैठाया जा सकता है। बच्चियों की उम्र में सबसे छोटी होने के कारण अखबारवालों का ध्यान वृंदा की तरफ जाएगा और अगर वर्षा हो जाती है तो वृंदा को देवी रूप में चमत्कृत किया जा सकता है।संयोगवश वर्षा हो जाती है। हरि सिंह सुनीता को कहता है "जभी तो मैंने अपनी बिंदो को तप पर बैठाया था। अरे, एक दिन थोड़ा काया-कष्ट हो गया, तो छोरी कोई माटी का ढेला थोड़े ही है, जो पानी में गल गई? आस-पास के गाँवों तक उसके चमत्कार की ऐसी चर्चा पहुँची है कि सबकी आँखों में वह देवी का प्रतिरूप बनकर समा गई है। दूसरी चार बच्चियाँ तो पहले भी तप पर बैठ चुकी हैं। तब इंद्र भगवान ने उनकी विनती सुनी थी क्या? अपनी विंदो पहली बार बैठी और कुछ ही देर में झमाझम पानी बरस गया।"4

इसके बाद मास्टर हरि सिंह वृंदा को देवी रूप में घोषित करने के लिए नए-नए षड्यंत्र रचने लगा। वह गाँववालों को वृंदा की भविष्यवाणी से अपनी पत्नी के गर्भ से बेटा होने की बात करता है। इस विषय में सुनीता कहती है "पत्नी के मुँह से गर्भधारण की बात सुनी और दौड़कर पूरे गाँव में पहुँचा दी। लड़का ही होगा, इस बात को गर्भ का दूसरा माह लगते ही पूरे विश्वास के साथ कौन कह सकता है? पर इस शख्स को कुछ भी भौंकने में कोई लाज नहीं है। कल को यदि जुबान गिरी, तो क्या करेगा? जब घर में एक बार सात बेटियाँ जन्म ले सकती हैं, तो आठवीं सन्तान भी बेटी क्यों नहीं हो सकती? पर इस शख्स को इस सच्चाई का तनिक भी अहसास नहीं। वृंदा सिर्फ सवा तीन साल की अबोध बच्ची है। उसके नाम से कोई भी मनचाही भविष्यवाणी कर देना क्या निंदनीय आचरण नहीं, पर इस आदमी को कौन समझाए ?" 5

लेकिन मास्टर हरि सिंह के दिमाग में कुछ और योजना चल रही थी। वह वृंदा को देवी बनाकर उस पर आने वाले चढ़ावे और संपदा से खुद को अमीर बनाना चाहता था। उसी स्वार्थ के चलते वह वृंदा को देवी रूप में प्रचारित करना चाहता है। संयोगवश सुनीता को पुत्र प्राप्ति हो जाती है तो मास्टर हरि सिंह को उसकी चाल में एक और सफल आयाम मिल जाता है। उसके बाद मास्टर हरि सिंह वृंदा से "मैं देवी हूँ" बुलवाने के लिए जंगल ले जाकर अभ्यास करवाना शुरू कर देता है और उसे प्रताड़ित करता है। वृंदा, मास्टर हरि सिंह को कहती है "बापू, मुझे गंड़ासे से मत काटना। मैं तुम्हारी हर बात मानूंगी।"सच कहती है?"'हाँ। बिल्कुल सच कहती हूँ और इस सत्यवाचन के तहत बच्ची ने पिता का सिखाया पाठ हृदयंगम कर लिया। 'कौन है तू?' पूछने पर यंत्रवत बोलने लगी, 'मैं देवी हूँ।"6

इस प्रकार वृन्दा मास्टर हरि सिंह के डर से खुद को सबके सामने देवी बोलने लग जाती है।

इसके बाद गाँव में संयोगवश तीन घटनाएँ और होती हैं जो वृंदा को देवी रूप में और भी ज्यादा प्रचारित करती हैं जिसमे पहली हरी सिंह का शहर न जाना और रेल दुर्घटना से बच जाना। दूसरी घटना ग्राम प्रधान के कुरूप बेटे का विवाह हो जाने की और तीसरी घटना अमरपुरा गाँव के किसी रिश्तेदार की बकरी खो जाने की। इन सभी घटनाओं के जवाब वृंदा ने खेल-खेल में दिए थे जो परिस्थिति वश सत्य साबित हो जाती हैं। इसके बाद ग्राम प्रधान राधा माधव और हरि सिंह धन बटोरने के उद्देश्य से वृंदा को मंदिर में देवी रूप में स्थापित करने की योजना बनाते हैं। उसके लिए ग्राम के मंदिर का जीर्णोद्धार किया जाता है और वहाँ वृंदा के रहने के लिए कमरे आदि बनवा दिए जाते हैं। नवरात्र के दौरान वृंदा को देवी बनाकर मंदिर में स्थापित कर दिया जाता है। अमरपुरा गाँव की अबोध बालिका वृंदा अब 'वृंदा मैया' हो चुकी है। डॉ उषा यादव इस विषय में लिखती हैं कि "हरी सिंह ने उसे इस 'तपस्या' के लिए शारीरिक-मानसिक रूप से मजबूत बनाने की महीनों कोशिश की थी, पर बच्ची अन्ततः अपने भीतर एक मासूम जान रखती थी। उससे इस फौलादी व्यक्तित्व की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए थी, कि घंटों एक ही मुद्रा में बैठी रहेगी और चेहरे पर शिकन तक न लाएगी।"7

लालच के मोह में धँसे मास्टर हरि सिंह को पाँच वर्षीय अबोध बालिका वृंदा की मार्मिक स्थिति नजर नहीं आती। लेखिका धार्मिक अंधविश्वास के चलते वृंदा के संकटग्रस्त बाल बचपन की हृदय विदारक तस्वीर दिखाती हुई लिखती है कि "केश-सज्जा, कुछ नकली आभूषण और कुछ फूलों के गहने, कलाई भर चूड़ियाँ और पाँवों में आलता लगवाते वक्त तक उसका उत्साह बना रहा, पर इसके बाद रथ पर बैठाकर पूरे गाँव में देवी माँ की सवारी निकाले जाने के उपक्रम में उसका कोमल चेहरा कुम्हला गया था। धूप की तेजी बढ़ने के साथ-साथ प्यास से गला सूखने लगा था और आँखों के आगे सितारे से छिटकने लगे थे। रथ के साथ-साथ चलती सुनीता अपनी बेटी की हालत देखकर कष्टित तो थी, पर स्वयं को उसके कष्ट निवारण में असहाय पा रही थी। ले-देकर उसके पास सिर्फ हरी सिंह के लिए कोसा-काटी थी, पर इससे भी क्या हासिल होना था? उसकी आँखों के सामने उसका पति बत्तीसी काढ़े चल रहा था।"8

हरि सिंह अपनी चाल के अनुसार आस-पास के गाँव में वृंदा मैया का प्रचार करता है जिससे नवरात्रों में मंदिर में खूब चढ़ावा और धनराशि आती है लेकिन दूसरी तरफ वृंदा की हालत नाजुक हो जाती है। कई घंटों तक एक ही मुद्रा में बैठने के कारण उसकी दोनों टांगे कमजोर हो जाती है। दुविधा तो तब हो जाती है जब वृंदा को सहारा लेकर चलना पड़ता है। उसका निर्दयी बाप हरि सिंह उसे किसी डॉक्टर के पास चिकित्सा परामर्श हेतु नहीं जाने देता। हरि सिंह के शब्दों को उजागर

करती हुई उषा जी लिखती हैं "कहा न, उसे एक आम बच्ची की तरह किसी चिकित्सक के पास ले जाना मुझे मंजूर नहीं है। इस तरह तो वह मर जाएगी।'(सुनीता का कथन) तो मर जाए, लेकिन जब तक जिएगी, देवी की तरह जिएगी और जब मरेगी तो कहा जाएगा कि देवी ने स्वेच्छा से देवलोक प्रस्थान किया है। हरी सिंह एक शातिर खिलाड़ी की तरह बोला।"9

दिन-प्रतिदिन वृंदा के बिगड़ते स्वास्थ्य के मद्देनजर मास्टर हरि सिंह को भी पता है कि चिकित्सा परामर्श के लिए डॉक्टरी जाँच के दौरान वृंदा की असल स्थिति स्पष्ट हो जाएगी कि यह आम मामूली बच्ची वृंदा है ना कि वृंदा मैया। डॉक्टरी चिकित्सा से निजात पाने के लिए और मंदिर में आने वाले चढ़ावे और धनराशि को यथावत जारी रखने के लिए मास्टर हरि सिंह वृंदा के पृथ्वी लोक से जाने और जलमग्न समाधि लेने की बात प्रसारित करता है जिसमे देवी रूप धरती पर नौ साल तक ही रहता है। उसके बाद वह जल में समाधि लेकर अलौकिक हो जाता है। मास्टर हरि सिंह की साजिश और प्रताड़ना के दबाव के कारण वृंदा गाँववालों के सामने कहती है "'हाँ, मैं जल समाधि लूँगी। जल की लहरों पर पाँव धरते हुए देवलोक की ओर प्रस्थान करूँगी। मुझे लेने के लिए विमान सजाया जा चुका है। मेरे स्वागत में गायन-वादन प्रस्तुत करने की तैयारी हो चुकी है। राधामाधव, कोई संशय मत करो। चैत्र नवरात्रि को प्रतिपदा को मुझे हंसी-खुशी देवलोक वापस भेज दो।"10

उसके बाद अमरपुरा गाँव के ग्राम प्रधान राधा माधव, मास्टर हरि सिंह तथा अंध श्रद्धा में लीन ग्रामीणों द्वारा वृंदा को जल समाधि देने की तैयारी की जाती है। गाँव के पास लगते थाने में स्थित पुलिस वालों को दावतनामे के नाम पर चुप रहने की नसीहत दे दी जाती है।

परंतु माँ की ममता सुनीता को हिम्मत प्रदान करती है, सुनीता में सशक्त बनकर भावना का विस्फोट होता है। उसे गाँव में आई सखी संस्था के द्वारा बताई गई बातें याद आती है कि "लड़कियाँ अब किसी बात में लड़कों से पीछे नहीं रही है। ऊँची पढ़ाई करके ऊँची से ऊँची नौकरी हासिल कर रही हैं। डाक्टर, वकील, प्रोफेसर और ऊँची अफसर बन रही हैं। खेल जगत हो या शिक्षा जगत, चिकित्सा क्षेत्र हो या प्रशासनिक क्षेत्र या अन्तरिक्ष ही क्यों न हो, उनके पाँव बड़ी तेजी से अब सब जगह पड़ रहे हैं। उनकी कामयाबी का डंका चारों तरफ बज रहा है, पर...." 11

इसके बाद वह रात के अंधेरे में घर से भागकर पिनाहट थाने में पहुँच जाती है। वहाँ पर अपने पति मास्टर हरि सिंह और ग्रामप्रधान राधा माधव की सच्चाई इस्पेक्टर अविनाश के सामने उजागर करते हुए कहती है "मेरी बच्ची को बचा लो साहब। गिने-चुने घंटे बचे हैं साहब सूरज की पहली किरण के साथ वे लोग उसे तालाब में डुबो देंगे। जान से मार डालेंगे। बहुत जालिम बाप है साहब। बेटी पर कतई रहम न करेगा।"12

इंस्पेक्टर अविनाश अपने पुलिसिया दल-बल के साथ गाँव की नाकाबंदी कर देता है। वृंदा को हरि सिंह के द्वारा पानी में धक्का दिए जाने से पहले माइक पर घोषणा करता है कि " यह जल-समाधि नहीं, एक जीती-जागती नौ साल की बच्ची को जबरदस्ती पानी में डुबोकर हत्या करने की साजिश है। यह बच्ची यदि आपकी बेटी होती, तो क्या इसे इस तरह मर जाने देते?" 13

इसके बाद ग्राम प्रधान राधामाधव और मास्टर हरि सिंह को हथकड़ी लगा दी जाती है। मौके पर बुलाए गए डॉक्टर्स की टीम से वृन्दा की जाँच करवाई जाती है तो डॉक्टर बताते हैं "'बच्ची बिल्कुल ठीक है। सिर्फ खाना-पीना न मिलने के कारण अतिशय कमजोरी है और कमजोरी की वजह से इसकी यह हालत है। लगातार पालथी मारकर बैठाए रखने से पैर टेढ़े हो गए हैं, जिनकी दवाइयों और कुछ खास कसरतों के द्वारा सही हो जाने की पूरी उम्मीद है।"14

इसके बाद इंस्पेक्टर अविनाश के द्वारा पुलिस प्रशासन के उच्च अधिकारियों को रिपोर्ट दिए जाने पर राधा माधव के दावत में शराब और पैसे के लोभ में आए पुलिसकर्मियों को सस्पेंड कर दिया जाता है।

निष्कर्ष- अंततः "उसके हिस्से की धूप" उपन्यास धार्मिक अंधविश्वास के चलते बालमन की इच्छाओं, दमित कुंठाओं और मनोवृतियों का सुव्यवसित ताना-बाना है। आधुनिक समय में हर वर्ग का बच्चा संकटग्रस्त है। गरीब का बच्चा श्रम के कारण और अमीर परिवार का बच्चा बस्ते के बोझ में। प्रारंभिक पाठशाला उसका परिवार होती है। जैसे संस्कार उसे परिवार से मिलते हैं वह बड़ा होकर उन्हीं का अनुसरण करता हुआ जीवनयापन करता है। यह उपन्यास आमजन को सीख देता है कि इस कोमल और अबोध बचपन को फूलों की तरह महकने और चिड़ियों की तरह चहकने दिया जाए क्योंकि यह बचपन सभी को ईश्वरीय सौगात के रूप में मिलता है। आज का यह अबोध बचपन ही आने वाले कल का भविष्य होगा जिसके कंधों पर देश की संपूर्ण व्यवस्था का ढांचा टिका होगा इसलिए भविष्य के गर्भ को सँभालने के लिए बच्चों पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वास के तहत संकटग्रस्त बचपन के अलावा लेखिका ने रूढ़िवादिता, अशिक्षा के कारण दुष्परिणाम झेलती हुई नारी, आधुनिकता बोध में विघटित व्यक्तिगत संस्कार, भ्रष्ट कानून व्यवस्था, जल्द धनाढ्य होने के लिए किए जाने वाले कुकर्म, कन्या भ्रूण हत्या जैसी घातक विचारधारा पर लेखनी के माध्यम से कड़ा प्रहार कर समाज को आईना दिखा सचेत करने का प्रयास किया है।

000

संदर्भ- 1मैनेजर पाण्डेय, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्कार 1998, पृष्ठ 109, 2वही, पृष्ठ संख्या 110, 3वही, पृष्ठ संख्या 111, 4उषा यादव, उसके हिस्से की धूप, सामयिक पेपरबैक्स प्रकाशन,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ 55, 5वही, पृष्ठ संख्या 74, 6वही, पृष्ठ संख्या 85, 7वही, पृष्ठ संख्या 139, 8वही, पृष्ठ संख्या 139, 9वही, पृष्ठ संख्या 168, 10वही, पृष्ठ संख्या 184 , 11वही, पृष्ठ संख्या 192, 12वही, पृष्ठ संख्या 228, 13वही, पृष्ठ संख्या 239, 14वही, पृष्ठ संख्या 240

(शोध आलेख)

वैदिक राजनैतिक व्यवस्था

शोध लेखक : डॉ. शीतल ए. अग्रवाल

वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि समाज में मत्स्यन्याय की प्रवृत्ति राजा अथवा मुखिया को जन्म देती है। समाज में मत्स्यन्याय की प्रवृत्ति "अकाल" के फलस्वरूप उत्पन्न है।1 जब कभी अकाल पडता है तो बलवान दुर्बल को दबोच लेता है क्योंकि पानी ही न्याय है अर्थात वर्षा के अभाव में दुर्भिक्ष होने पर जब समाज में अव्यवस्था फैलने लगती है तो इसी समय में समाजिक नेता का प्रादुर्भाव होता है। कौटिल्य के अनुसार जब दण्ड का प्रयोग नहीं होता तब मत्स्यन्याय से अभिभूत होकर लोगो ने वैयस्वत मनु को राजा बताया था।2 मनु के अनुसार जब सभी त्रस्त होकर इधर-उधर दौडने लगे और विश्व में कोई रक्षक न था तब भगवान ने इस संसार की रक्षा के निमित्त राजा की सृष्टि की।3

महाभारत के एक प्रसंङ्ग के अनुसार राजाविहिन देश में धर्म, जीवन, सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रहती, यह विचारकर देवताओं ने प्रजा के रक्षार्थ राजा की भावरपलती अनुभव की देवतानो ने ब्रह्मा ने मनु भी राजा बताया, राजा मनु ने जब शासन व्यवस्था सँभालने में असमर्थता व्यक्त की तो प्रजा ने एकस्वरूप से अन्न, पशु, धर्म आदि में हिस्सा देने को कहा इस पर मनु ने सहमत होकर राजपद को स्वीकार किया।

राजा की उत्पत्ति दैवी थी परन्तु सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उसका चुनाव भी होता है। कालातर में राजाओं ने अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर संपत्ति के लिए भी इस पद को सुलभ बना दिया था।

इस प्रकार राजपद के उद्‌भव में परिवार तथा पारिवारिक आवश्यकताओं को मलकरन एवं सामाजिक अव्यवस्था को उसका विकास करने वाला कहा जा सकता है। वस्तुतः परिवार में मुखिया का पद उसकी शक्ति का घोतक है समाज की प्रथम समुदाय जिस समय याम का रूप धारण कर लेता है तो सभी परिवारों के मुखिया मिलकर पूरे गाँव का एक मुखिया चुन लेते है। वह सभी परिवारों के मुखिया को गृहपति भी कहते थे। इस प्रकार प्रत्येक घर में राजा होते थे और घर ही उनका राज्य अर्थात शासन क्षेत्र था, परिवार के सदस्य ही उसकी प्रजा थी।

राजनैतिक जागृति- वेदिक काल में ही समाज पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था। इस युग में सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का विकास हुआ। जिसमें राजनीति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। वेदों में राजा सभा, समिति राजकृत, राजा का चुनाव राजा को पदच्युत करना आदि के उल्लेख से उस समय की राजनैतिक जागृति का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। उस समय में राजा का प्रजा पर पर्याप्त नियंत्रण रहता था। प्रजा में भी पूरी राजनैतिक जागृति थी। राजा का चुनाव सभा व समिति करती थी। वेदकालीन यह राजनैतिक विकास उत्तरोत्तर बढ़ता गया और उत्तर वैदिककाल तक सुविकसित शासन प्रणाली, विभिन्न शासन संस्थाएँ व संविधान तथा पदविषयक कितने ही राजनैतिक सिद्धान विकसित हो गए थे।

डॉ. शीतल ए. अग्रवाल
इतिहास विभाग
आर्ट्स कॉलेज, पाटण

राजनैतिक इकाइर्या और संस्थाएँ- वेदकालीन आर्यो की अनेक राजनैतिक इकाइयाँ व संस्थाए थी जिन इकाइयों के समुदाय में राज्य का प्रादुर्भाव होता है। राज्य की व्यवस्था संचालन के लिये अनेक संस्थाएँ भी होती थी। इन संस्थाओं का निर्माण आर्यो के जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तो को कार्यान्वित करने के लिए हुआ था। तत्कालीन राजनैतिक इकाइयों मंे प्रमुख जन, विशु, कुल्पा और वाज्रपति, ग्रामणी और स्थपति, दूत्य (चर) स्पर्श, भामात्य थे। यहाँ इनका परिचय संक्षेप में स्पष्ट किया जा रहा है।

जन- जन का अर्थ है मनुष्यगण अर्थात मनुष्यो के समुदायो को गण कहते है, ऋग्वेद में जनशब्द तथा वश्वजन आदि का प्रयोग अनेक जगह मिलता है जन का सर्वोपरि सत्ताधीश राजा होता था।

विश- वैदिक साहित्य में विश शब्द का अर्थ जनता लोक आदि होता है परन्तु कुछ विद्वान ग्रामों के समूह के अर्थ में भी इसका प्रयोग करते है।3 ग्राम के सदस्यों द्वारा अथवा वयस्क नर सदस्यो द्वारा इसका चयन होता था। विश के सर्वोपरि सत्ताधीश को विश्पति कहा जाता था।4

कुलवा और व्राजपति- वैदिककाल में ग्राम की सेना में एक सेनानी (नेता) होता था जिसको व्राजपति कहते थे और कुल के संरक्षक को 'कुलपा' कहते थे। सत्ता स्तरीकरण की दृष्टि से व्राजपति का स्थान कुलवा से उँचा होता था।5

ग्रामणी और स्थपति- वैदिक राजनीतिक अधिकारियों के अन्तर्गत ग्रामणी कैसा हो इसे ऋग्वेद से एक मन्त्र में कहा गया है कि ग्रामणी कल्पनायुक्त हो वह प्रभूत धन देने वाला मन्त्र है, उसकी दक्षिणा सूर्य से प्रतिद्धन्दिता करे। जिसके साथ आमवात होकर शक्ति को प्राप्त किया। इन दोनो के कार्य ग्राम की देखभाल करना तथा ग्राम की जनता की समस्याओं को सुलझाना था। ग्राम में होते छोटे-छोटे झगडो का निपटारा भी ग्रामणी करता था।

दुत्य- दूत शब्द का अर्थ होता है 'गुप्तचर' या 'संदेशवाहक' ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर 'दूत्य' और 'दूत' दोनो का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में अग्नि को दूत कहा गया है, राज्य व्यवस्था को सुगठित या सुचारु रूप से चलाने के लिए दूत की भी आवश्यकता होती थी वैदेशिक सम्बन्धों में दूत की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

स्पश- दोत्य-कर्म के रूप में ही ऋग्वेद में 'स्पश' शब्द प्राप्त होता है। स्पश शब्द का धावर्थ - ''देखने वाला'' वरुण के पास सर्वाधिक गुप्तचर है। वह हमेशा गुप्तचरों से घिरा रहता है। अग्नि के शत्रु द्रोही है अत: अग्नि हमेशा अपने शत्रुओ को दम्ध करता रहता है।

मन्जी- ऋग्वेद संहिता में मन्जी शब्द का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है किन्तु पुरोहित शब्द का अनेक बार प्रयोग मिलता है। व्राजसनेयि संहिता (16/11) में एक स्थान पर ''नमोमन्त्रिणेवागिजाप'' अवश्य मिलता है जो वाणिज्य का विशेषण मात्र है। यही घर के अनुसार कुशल आलोचक भी मन्जी कहते है ऋग्वेद के अनुसार पुरोहित राजा का मुख्य साथी होता था। राजा की शिक्षा-दीक्षा, समुजित पथ प्रदर्शन और उसका सर्वाधिक कल्याण पुरोहित अधीन था। साथ ही सेनानी और ग्रमीण भी राजा के अन्य सहायक होते थे। इस प्रकार पुरोहित, सेनानी और ग्रमीण राजा के प्रमुख सलाहकार (मन्जी) एवं सहायक थे

विदंथ- वैदिक आर्यो की संस्थाओं में विद्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसमें विद्या एवं ज्ञान संबंधी आर्यो को लिया जाता था। ऋग्वेद में विद्थ का उल्लेख अनेक प्रसंङ्गो में आया है।

वैदिक समिति- वैदिक काल में राष्ट्रो का शासन राजा ही नही करता था, अपितु उसकी सहायता के लिए समिति और सभा की दो संस्थाएँ भी होती थी इन दोनों संस्थानो ने मनुष्यों के जीवन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था वैदिक आर्यो के जीवन में समिति और सभा दोनो ही उपयोगी संस्थाएँ थी। वेदों में समिति को सभा की ममजलगिती और प्रजापति की दुहिता कहा गया है। 'समिति' नामक संस्था का प्रादुर्भाव सृष्टि के साथ हुआ था। ऋग्वेद कालीन ऋषियों ने समिति को अपने समय की महत्त्वपूर्ण एवं सक्रिय उपयोगी संस्था के रूप में चित्रित किया है।

वैदिक सभा- समिति के समान ही राजनैतिक दूसरी संस्था की सभा में इस संस्था को 'नरिष्ठा' इस संज्ञा से अभिनिहित किया गया है। नरिष्ठा शब्द का तर्त्प है कि सभा में अनेक लोग मिलकर जो निर्णय करते थे वे सभी के द्वारा अनुलनीय होता था। सभा का शाब्दिक अर्थ एकत्रीकरण, समाज सार्वजनिक ग्रह आदि।

राजपद का निर्वाचन- वैदिक काल में राजा का वरण निश:, पा प्रजा करती थी। यदि राजा का पुत्र प्रजा की सम्मति में राजा के पद के योग्य हो तो प्रजा उसे ही राजा के रूप में वरुण कर लेती थी। अन्यथा उसे अधिकार था कि वह राजवंश के किसी अन्य व्यक्ति का या कुलीन परिवारों के किसी व्यक्ति को राजा के पद के लिए वरण करती थी। इस काल में प्रजा जिस व्यक्ति को राजा के पद पर वरण करती थी उससे यह आशा रखती थी कि बहुत दिनों तक रहकर राज्य का शासन करे। उसे किसी निश्चित अवधि के लिए राजा नही बनाया जाता था। जब राजा का निर्वाचन हो जाता था तो वह जनता के सामने शपथ भी ग्रहण करता था।

राज्याभिषेक- वैदिक काल में आर्य राज्यों में राज्य पद प्राप्त कर लेने बाद भी वह यथार्थ में राजा नहीं माना जाता था। जब वह राज्यपूर्व यज्ञ का सम्पादन कर लेता था तभी वह राजा माना जाता था। राजसूर्य यज्ञ के बिना कोई व्यक्ति राजा के पद को प्राप्त नही कर सकता था और सम्राट पद प्राप्त करने के लिए ''वाजपेय'' यज्ञ करना आवश्यक था।

राजा का कर्त्तव्य- राजा का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य अपने अधीन प्रजा के सार्वजनिक कल्याण का तात्पर्य है कि इस लोक में जब तक मनुष्य जीवित रहे, उसका प्रत्येक प्रकार का कल्याण होता है। राजा अपनी प्रजा को मातृ-स्नेह के समान स्नेह करता था। वह अपनी प्रजा के कल्याण के लिए हर सम्भव, प्रजा के रक्षण के लिए तथा राष्ट्र के निपजन के लिए एवं उसकी अभिवृद्धि के लिए युद्ध भी

करता था। इस तरह वह अपने कर्त्तव्य का सर्वाशत: पालन करता था।

राज्य के कार्यकर्ता- वैदिक साहित्य के युग में राज्य का संचालन अकेला राजा ही नहीं करता था अनेक पुरुषो के सक्रिय सहयोग को भी लेता था।

सेनानी- राज्य के विरुद्ध बाह्य आक्रमणकारियों का दमन करने के लिए एवं आन्तरिक उपद्रवों को शांत करने के लिए और प्रजा की रक्षा करने के लिए राजा सेना का संगठन करता था सेना के संचालन हेतु एक विशेष पदाधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। इस सर्वोच्च अधिकारी की देखरेख में सेना रहती थी। तथा उसके निर्देशानुसार कार्य करती थी। इस प्रकार वैदिक आर्य राज्यों में राज्य का सर्वोच्च सैनिक अधिकारी सेनानी होता था।

पुरोहित- वैदिककाल में आर्य राजाओं के यहाँ धार्मिक कृत्य कराने के लिए एक ब्राह्मण रखा जाता था। इसे ही पुरोहित कहा जाता था। पुरोहित ही राजगुरु माना जाता था। पुरोहित आवश्यतानुसार समय-समय पर राजा को परामर्श एवं मंत्रणा देता था। युद्धकाल में राजा के साथ पुरोहित भी जाता था और वह राजा की विजय कामना हेतु ईश्वर से प्रार्थना करता था।

सूत- वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर सूत का उल्लेख मिलता है। युद्ध में राजा के रथ को संचालन करने वाले को सूत कहते है। सूत युद्ध में योद्धा के रूप में कार्य नहीं करता।

ग्रामणी- राज्य के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ताओं में ग्रामणी की गणना की जाती थी। ग्रामणी की वैदिक राजा के रत्नो में गणना की जाती थी। यह राजा के हित में सर्वश्रेष्ठ कार्यो को सम्पन्न करता था।

क्षत्रा- राजा के क्षत्र को धारण करने वाले अथवा उसकी रक्षा का भार ग्रहण करने वाले क्षत्रिय को वैदिक कार्य क्षत्रा कहते है।

संग्रहीता- यह अर्थविभाग का विशेष पदाधिकारी होता था। यह राज्य के प्रमुख कार्यताओं में से एक था और वस्तुओं का संकलन करना इसका प्रमुख कार्य रहा।

भागदुह- राज्य की प्रजा से भाग संचय (करसंचय) करने वाला कर्मचारी होता था यह भी संग्रहीता की तरह अर्थ विभाग का अधिकारी होता था।

वैदिक शासन पद्धति- वैदिक काल में शासन संबंधी विभिन्न संविधान प्रचलित थे जिनके द्वारा राज्य का शासनकार्य सम्पन्न किया जाता था।

वेदकालीन राज पूर्णतया निरंकुश नही था। उस समय में भी राजपद को संचालित व निपजित करने के लिए सभा, समिति आदि संस्थाओं की स्थापना की गई थी।

प्रजातन्त्र तथा राजतन्त्र- प्रजातंत्र के अर्न्तगत भोज्य स्वराज्य, वैराज्य आदि आते है, इससे प्रतीत होता है कि वैदिककाल में भी राजतन्त्रात्मक और प्रजातन्त्रात्मक दोनो प्रकार के संविधान थे।

राजतंत्र- वैदिककाल के राजनैतिक जीवन में राजतन्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान था। विभिन्न राज्यों का शासन साधारणतया राजाओं द्वारा ही होता था। राजाओं के कर्त्तव्यो व उत्तरदायित्वों को सामान्यतया दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम राज्य की आन्तरिक व्यवस्था, प्रजाहित, पालन आदि से सम्बन्धित कर्त्तव्य राज्य की वैदेशिक नीति से संबंधत कर्त्तव्य है। इस प्रकार वेदकालीन राजाओ की शासन व्यवस्था का परिचय ऋग्वेद के द्वन्द्व व वरुण सुक्तो से मिलता है सुव्यवस्थित शासन प्रणाली के दर्शन होते है जिसमें गुप्तचर इत, रथ वाहन व सेना युद्ध आदि का भी परिचय भलीभाँति मिल जाता है।

000

संदर्भ- 1शतप्रथ ब्रा. 11/6/25, 2अर्थशास्त्र 1/4/1/16, 3अराजक हि लोकेडस्मिन् सर्वतोविदते भयात्। रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजतप्रभु। भनु: 4/6/4, 4मेक्डानल व कीथ वैदिक इन्डेक्स, भाग। पृ. 245, 5अन्ना वो विशपति: पितापुराणो अनुपेनति ऋ 10/135/1, 6गोमति व्रजे 7/32/10, 7परेवानां मित्रमह: पुरोहितोडन्तरेयासिद्दव्यम। ऋ. 1/44/12, आशु इतविवस्वत:, 8वरुणोवस्तनिविजिम्। परिस्वशोनिषेदिरे। तदैव 1/25/16, 9प्रतिस्पशो विसृज वृणितिमो भवा।

नई पुस्तक

(उपन्यास)

चुप क्यों हो बसंती

लेखक : जयंती रंगनाथन

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

कथाकार पत्रकार जयंती रंगनाथन का यह उपन्यास शिवना प्रकाशन द्वारा नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित किया जा रहा है। जयंती रंगनाथन इस पुस्तक के बारे में अपनी भूमिका में लिखती हैं- 'चुप क्यों हो बसंती लिखने के कुछ वक्त बाद मैंने अपना पहला उपन्यास (जो राजकमल से प्रकाशित हुआ था) आसपास से गुजरते हुए लिखा था। उस उपन्यास की नायिका वो सबकुछ थी जो बसंती नहीं थी। बसंती बीज थी अनु को संवारने का और शायद मुझे भी लेखिका बनाने का। 'चुप क्यों हो बसंती' की भाषा, बुनाव, विस्तार सब उस वक्त का है, उसमें आज की तलाश करना ना मेरे लिए सही है ना आपके लिए। पढ़ते समय कई बार लगा कि क्या मुझे इस भाषा को सही करना चाहिए? फिर लगा कि नहीं, यही सही है। हर दौर को कहने का तरीका अलग होता है। वक्त, उम्र और परिवेश पर निर्भर करता है, इस बात पर भी कि मैंने यह सीरीज महिला पत्रिका के लिए लिखा था। बसंती को किसी भी तरह मैं अपने से अलग ना कर सकती हूँ ना कर रही हूँ।'

000

(शोध आलेख)

सांख्यायन ब्राम्हण में प्राणविद्या

शोध लेखक : डॉ. रीटा एच. पारेख
श्री और श्रीमती पी.के. कोटावाला आर्ट्स कोलेज, पाटण

सारांश : प्राण के संबंध में मानव सर्वदा जागरूक रहा है। प्राणविद्या रहस्यात्मक है। प्राण और आत्मा में क्या संबंध है ? जन्म और मृत्यु का प्राण से क्या संबंध है ? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर शरीर-विज्ञान और शास्त्रों के संदर्भ में चर्चा की गई है। मुख्य रूप से श्वासोच्छवास (वायु) का प्राण से साक्षात् संबंध है। शास्त्र और विज्ञान दोनों ही इस तथ्य को स्वीकार करते है।

प्राणों के संदर्भ में सामान्यत: विचार करने पर प्राण शब्द से हमारा ध्यान श्वास-प्रश्वास की सामान्य गति की ओर जाता है। श्वास का नासिका पुटों में गमन प्राण है परन्तु यह प्राण क्या है ? कहाँ से उत्पन्न होता है? कहाँ निवास करता है? इसका स्वरूप क्या है ? आदिसे सम्बन्धित जिज्ञासाओं पर चिन्तन करना ही प्राणविध्या का प्रतिपाध्य विषय है। सांख्यायन ब्राम्हण में अनेकत्र प्राण का उल्लेख "यत् पिण्डे तत् ब्रम्हाण्डे" की अवधारणा को चरितार्थ करते हुए पिण्ड में व्याप्त प्राण की समानता ब्रम्हाण्ड में हो रहे महान याग के साथ प्रदर्शित की गई है। प्राण को परिभाषित करते हुए महर्षि यास्क लिखते है -अपि वा असुरिति प्राण नाम। अस्त: शरीरे भवति।1 असु - प्राणवाची शब्द है क्योंकि वह प्राण शरीर में अस्त क्षिप्त रहता है।

प्राण का स्वरूप : प्राण क्या है यह बताते हुए प्रकृत ब्राम्हण ग्रन्थ में कहा गया - "प्राण आत्मा के साथ लगी हुई छाया है जिसका अस्तित्व बिना आत्मा के अस्वीकार्य है।" सांख्यायन ब्राम्हण के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है - स्तोत्रियानुरूपौ प्राणा वालखिल्या अनन्तहिता उ हेमे प्राणस्तदाहु:- कस्माद्वालखिल्या: इति यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिलमिति वै तदाचक्षते वालमात्र उ हेमे प्राणा अंसिभिन्ना: ।2

ये प्राण आत्मा से पृथक नहीं है। ये प्राण केशमात्र है और असंभिन्न है। प्राण की उत्पत्ति के विषय में प्रशोपनिषद मं: एक प्रसंग आता है जहाँ अश्वल ऋषि के पुत्र कौशल्य पिप्पलाद ऋषि से पूछते है कि यह प्राण जो सब जगत के पदार्थों को धारण कर रहा है, स्वयं कहाँ से उत्पन्न होता है ? ऋषि उत्तर देते हुए कहते हैं कि प्राण आत्मा से अलग नहीं रहता - आत्मन: एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे हायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिन्छरीरै ।3

आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है। जैसे पुरुष के साथ छाया लगी है, इसी प्रकार आत्मा के साथ प्राण लगा है। पुरुष से छाया की उत्पत्ति है। आत्मा से प्राण की उत्पत्ति है। आत्मा के शरीर में प्रवेश करते ही प्राण गतिशील हो जाता है।

प्राणति वायु: के अनुसारप्राण एक वायु का प्रकार है अत एववायु के अदृश्य स्वरूप वाला होने से वायु भी स्वरूप शून्य है। उपनिषद में प्राण को 'वाण' शब्द से अभिव्यक्त किया गया है वा

डॉ. रीटा एच. पारेख
श्री और श्रीमती पी.के. कोटावाला
आर्ट्स कॉलेज, पाटण

का अर्थ है -'शायद'। इस जड़- चेतन जगत को कोई इस प्रकार धारण करता है जैसे छप्पर को नीचे गिरने से एक वल्ली रोके रहती है वैसे ही प्राण इस शरीर को वल्ली के समान धारण करके रखता है। वेदवाणी इस संदर्भ में सुन्दर प्रकाश डालते हुए कहते है - पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चित:। समुद्रे अन्त: कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधस:।।4

अर्थात् प्राणरूपी पक्षी को हृदयस्थ इच्छा से और मन से विद्वान जन जानते हैं आध्यात्म कर्म के विधाता योगीजन रश्मियों पर सूर्य की भाँति जीवन शक्तियों या चित्तवृत्तियों के ऊपर विराजमान प्राणी या जीवात्मा को चाहते हैं, खोजते हैं। विश्व के समुद्ररूप परमात्मा के अन्दर अपने आत्मा को अनुभव करते हैं।

पतङ्गो वाचं मनसा विभर्ति तां गन्धर्वोऽवदग्दर्भ अन्त:। तां ध्योतमानां स्वर्यं मनिषामृतस्यपदे कवयो नि पान्ति।।5

वाणी को मनन वृत्ति से धारण करता है। उस वाणी को प्राणवायु अपने अंदर बोलता है। उस प्रगट होती हुई वाणी को मेघावी जन ज्ञान के स्वर वाले प्राप्तव्य पद पर नियत रखते हैं। अर्थात् जीवात्मा अपनी मनन शक्ति से वाणी को धारण करता है, ध्यान में लाता है। पुन: प्राणवायु उसका अन्दर से उत्थान करता है, जब वह बाहर प्रगट होती है तो मेघावी जन ज्ञान के स्वर वाले पद पर उसे सुरक्षित रखते हैं। अर्थात् ज्ञान के उपयोग में लाते हैं। यहाँ पर स्पष्ट रूप में वाणी को प्रगट होने में प्राण की महत्ता को दर्शाया है। प्राण जब मूलाधार से वायु को ऊपर की ओर फेंकता है, वही प्राणवायु जब कण्ठय कूपादि से टकराते हुए मूर्धा, कण्ठ और तालु आदि स्थानों को स्पर्श करती है तब शब्द उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्राणवायु नासिका के साथ - साथ वागे न्द्रिय को संचालित करने में अपना महत्त्वपूर्ण किरदार निभाता है।

यह प्राण इस शरीर में विभक्त होकर रहता है इसके अनेक रूप भिन्न- भिन्न कार्य है क्योंकि एक प्राण सभी कार्यों को अकेले सम्पादित नहीं कर सकता है, जिस प्रकार एक राजा समस्त शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए कार्यों को अपने अधीनस्थ मन्त्रिगणों में बाँट देता है उसी प्रकार प्राण अन्य प्राणों को अपने-अपने कार्यो में विनियुक्त करता है- यथा साम्राडेवाधिकृतान्विनियुक्ते एतान्ग्रामानधितिष्ठस्येवमेवैष प्राण इतरान्प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते।6

प्राण किस प्राणवायु को किस कार्य में विनियुक्त करता है इसका वर्णन अगली ऋचा में वर्णित है -पायूपस्थेऽपानं चक्षु: श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राण: स्वयं प्राप्तिष्ठते मध्ये तु समान:। एष ह्येतद्भुतमन्नं समं नयति तस्मादेता: सप्तार्चिषो भवन्ति।

पायु एवं उपस्थ में अपानवायु की स्थिति है जिसे आधुनिक विज्ञान में Alimentary System कहा जाता है। ऑंख, कान, नासिका और मुख से स्वयं प्राण का प्रगटन होता है, जिसे Respiratory System कहा जाता है। शरीर के मध्य भागमें समान नामक प्राणवायु प्रतिष्ठित होता है। समान वायु के द्वारा ही आहुति के रूप में पडा हुआ अन्न समान करके शरीर को रस के रूप में पहुचाता है। इसे ही आधुनिक भाषा में Digestive System के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रसंगानुचित इनका उल्लेख सांख्यायन ब्राम्हण में अनेक बार देखा जा सकता है। तध्यथा - अपश्यं गोपार्मानपध्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्नीची: स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्त:।।

रश्मि मार्गों से नासिका - पथों से शरीर में आते हुए तथा शरीर से जाते हुए इन्द्रियों के अधिष्ठाता प्राणवायु को मैं जानता हूँ। वायु प्राण है और वह इन तीन मंत्रों से वायु के लिए स्वाहाकार करता है।

प्रस्तुत प्रसंग में प्राण एवं अपान की चर्चा की जा रही है। इसे अन्य प्रमाणों के माध्यम से भी समझा जा सकता है, तध्यथा - अग्निर्वै देवानामवराध्यों विष्णु: पराध्यस्तध्यश्चैव देवानामवराध्यों तत्सर्वा: देवता: परिगृह्य सलोकतामाप्नोति। अस्मात्कामं पूर्वो दीक्षित्वा संसनुयात्पूर्वस्य ह्यस्य देवता: परिगृहीता भवन्ति शरीराभि: प्राणदिक्षाभिर्दिक्षते प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजा।

प्रयाज और अनुयाज से चलना मानो प्राण और अपान को दीक्षित करते हुए नि:श्रेयस के मार्ग पर गमन। जब कि हविष का अनुकरण करते हुए शरीर को दीक्षित करना, सभी कामनाओं को प्राप्त करना, अभ्युदय की प्राप्ति, सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है जब कि दीक्षित प्राण और अपान से लोकों की सलोकता के साथ सभी देवताओं का सायुज्य प्राप्त करता है।

अन्यत्र भी कहा है - प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजास्तस्मात्समा भवन्ति समाना हीमे प्राणापानास्तदाहु: कस्मात्।7

प्राण प्रयाज है, अपान अनुयाज है इससे ये दोनों समान होते है, क्योंकि प्राण अपान समान है। प्राण सूर्य के समान ऊर्ध्व में विराजमान है जब कि अपान पृथिवी के समान ध्रुव अधोस्थान में विराजमान है किन्तु पृथिवी एवं द्यौ के समान दोनों का महत्त्व समान है। दोनों की समानता के उपरान्त भी प्राण अमृत है। जैसे - अमृतं वै प्राणा: अमृतेन तन्मृत्युं तरति तद्यथा वशेन वा मर्त्येन वा गर्तं संक्रामेदेवं तत्प्राणवेन संक्रामति ब्रह्म वै प्रणवो ब्रम्हणैव तदब्रम्होपसंतनोति।8

प्राण अमृत है वह अमृतत्व से मृत्यु को पार करता है। जैसे कोई बाँस या किसी मिट्टी की दीवार से गड्ढे को पार करता है, इसी प्रकार प्राण के सहारे प्रणव से वह इस लोक को पार करता है क्यूंकि प्रणव ब्रम्ह (दैवीशक्ति) है। प्रणव की साधना के लिए प्रथम प्राण की साधना - सिद्धि आवश्यक है। अत एव आगे इसी प्रकरण में प्राणों की रक्षार्थ प्रार्थना की गई है -

प्राणं मे पाहि प्राणं मे जिन्व: स्वाहा त्वा ..... ।9

हे प्रभु ! मेरे प्राणों की रक्षा करो। जिस प्रकार ब्रम्हाण्ड में सूर्य ओम कार यजन कर रहा है, उसी प्रकार पिण्ड में प्राण ओम कार का गान कर रहा है। इसलिए प्रस्तुत ग्रंथ में प्राणों का सूर्य के साथ तारतम्य बताते हुए एक आहुति सूर्य के उदित होने से पूर्व देने का विधान किया गया है। इस प्रकार प्राण और अपान दोंनो साथ होने पर भी पृथक है।

तौ वा एतौ प्राणापानावेव

यदुपांश्चन्तर्यामौ तयोर्वा उदितेऽन्यमनुदितेऽन्यं जुह्वतिमावेव तत्प्राणापाणौ वितारयति।10

अब उसी प्राण के अनेक रूपों का वर्णन करते है - स वा अयं त्रेधा विहित: प्राण: प्राणोऽपानो व्यान इति षड् ऋतुनेति यजन्ति प्राणमेवध्यजमाने दधति चत्वार ऋतुभि: दिक्रृतूनेत्युपरिष्टाद् व्यानमेव तध्यजमाने दधति।11

वही प्राण तीन स्वरूपों में - प्राण, अपान और व्यान के रूप में जाना जाता है। आत्मा और प्राण की तारतम्यता बनाये रखने के लिए अपान को मन से संयुक्त करता है, वह प्राण में अपान को रखता है, वह व्यान को प्राण में रखता है। प्राण की स्थिति ऊर्ध्व भाग में श्वासों की अविरत गति के रूप में जानी जाती है। शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर प्राणों की अवस्थिति शिर प्रदेश में है - एतद्वै शिर: समृद्धं यस्मिन्प्राणो वाक्चक्षु:श्रोत्रमिति। प्रायणीयेन वै देवा: प्राणमाप्नुवन्नुदपनोयेनोदानं तथो एवैतध्यजमान:।12

यह प्रदेश कुछ विद्वान मध्यमस्थानी हृदय प्रदेश में मानते है। प्रायणीय यज्ञ से देवों ने प्राण को प्राप्त किया तथा उदनीय यज्ञ से उदान को, इसी प्रकार निश्चय ही यजमान प्रायणीय से प्राण तथा उदनीय से उदान को प्राप्त करता है। उदान वायु का कार्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जैसा कि इस शब्दसे स्पष्ट होता है - उद+आन = ऊपर या नीचे की ओर चलना उदान कहलाता है। हृदय से एक नाड़ी ऊर्ध्व देश को अर्थात् मस्तिष्क की ओर जाती है, अत: सामान्यत: प्राणों की ऊपर की ओर गति ही उदान वायु का कार्य है।

व्यान वायु हृदय से रक्त लेकर सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहमान करती है, इसे रक्त संचारिणी अथवा आधुनिक भाषा में रक्तवाहिनी (ब्लड सर्क्युलेट) नाम से जाना जाता है। हृदय प्रदेश में 101 नाड़ियाँ है जिनमें से प्रत्येक में से 100-100 शाखाएँ फूटी है, उन शाखाओं में भी अलग-अलग प्रत्येक से 72000 प्रतिशाखाएँ प्रस्फुटित होती है। इन सब को गतिमान रखने का कार्यभार व्यान वायु निर्वहन करती है। समान का कार्य श्वास-नि:श्वास रूपी गति से सम्पूर्ण शरीर को गतिशील रखना है। प्राण को शरीर में मध्यमस्थानी स्वीकार किया गया है। प्राणाकी मध्यमस्थानीता को निरूक्त में भी अभिव्यक्त किया गया है। मध्यमस्थानीय देवताओं के वर्णन प्रसंग में महर्षि यास्कजी ने लिखा है - बुध्नमन्तरिक्षम् बध्धा अस्मिन् धृता आप इति वा। इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेवा बध्धा अस्मिन् धृता: प्राणा इति।13

बुध्न अंतरिक्ष को कहते है क्योंकि इसमें जल बंधे रहते हैं या धरे रहते हैं। यह शरीर वाचक बुध्न इसी से कहलाता है। इस शरीर में प्राण धरे हुए है, जिस प्रकार समस्त अंतरिक्ष में जल व्याप्त है वैसे ही समस्त शरीर में भिन्न-भिन्न रूपों में प्राण व्याप्त है। प्राण स्वयं मध्यमस्थानी है वह प्राण सुपर्ण है। ऋग्वेद की ऋचा में कहा गया है - एक: सुपर्णो स इदं समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे। तं पाकेन मनसाऽपश्यमन्तितस्तं माता रेड्ढि स उ रेड्ढि मातरम्।।14

एक सुपर्ण नामक प्राण है वह हृदय - अंतरिक्ष में प्रविष्ट है, उसको कभी वाणी ग्रहण करती है कभी वह वाणी को ग्रहण करता है। सांख्यायन ब्राम्हण में प्राण का निवास स्थान बताते हुए कहा -प्राणो मे प्राणेन दिक्षितां स्वाहेति तृतीयाँ मध्ये प्राणमाह मध्ये ह्यं प्राण:। मेरा प्राण प्राण से दीक्षित हो प्राण को वह मध्य में कहता है क्योंकि यह प्राण मध्य में है। इत्यादि उदाहरणों के माध्यम से मध्यमस्थानी स्वीकारा गया है।

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान के अतिरिक्त प्राणवायु के प्रकार संक्षेप में यहाँ वर्णित है - नाग प्राणवायु को मुख से हृदय तक स्वीकारा गया है, इसका कार्य डकार एवं हिचकीलाना है ये क्रियाएँ भी अपने आप में महत्त्वपूर्ण है इनकी अधिकता भी जीवन निवृत्ति का कारण बन सकतीहै।

कूर्म प्राणवायु को पलकों को गतिशील बनाने के लिए माना जाता है। इनका विशद रहस्य अभी भी शोध योग्य है।

कृकल वायु कण्ठस्थानीय जलतत्व प्रधान है। इसका कार्य क्षुधा, तृषा को उत्पन्न करने का है तथा जृम्भाजंभाई लाना है।

देवदत्त वायु नासिका स्थानीय है, यह छींक लेने में भूमिका निभाता है।

धनंज्य वायु समस्त शरीर में व्याप्त है इसका कार्य मरण पश्चात् एवं जीवन काल में शोथ उत्पन्न करना है।

इस प्रकार यह दश प्रकार वाला प्राण है, कौषीतकि में स्पष्ट किया गया है - दशर्चं भवति दशमे प्राणा:,प्राणानेव तध्यज्ञे च यजमानेषु च दधाति।15

यह दश ऋचाओं का है। ये प्राण दश है इस प्रकार वह यज्ञ तथा यजमानों में इन प्राणों को स्थापित करता है।

इस प्रकार प्राणविध्या के अंतर्गत 10 प्रकार के वायु एवं 11 वॉं जीवात्मा का ग्रहण होता है। प्राण है तो शरीर में ऊष्मा है, धमनियों में रक्त का स्पन्दन है प्राण निकल गया तो शरीर ठण्डा पड जाता है, हाथ-पैर निष्चेष्ट हो जाता है, व्यक्ति कहता है -सारा शरीर ठण्डा पड गया अब कुछ नहीं हो सकता अर्थात् प्राण है तो शरीर में अग्नि तत्व भी है। मृत्यु पश्चात यही 11 रूद्र रोदन कराने वाले होते है। कौषीतकि ब्राम्हण के सन्दर्भ में यध्यपि ये प्राण विभिन्न दिशाओं मं प्रवाहित होते है पर पृथक नहीं होते है।

प्राण इस विश्व का धारक है। प्राण की शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी तरह सबसे बडे प्राणी से लेकर चोटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत है। यदि प्राण नहीं होते तो इस विश्व का जो यह महान संस्थान हमारे नेत्रों के सामने सतत आश्चर्य पैदा किया करता है वह कभी भी नहीं रहता।

000

संदर्भ-

1. निरूक्त दैवतकाण्ड 10.2, 2. सांख्या. ब्रा. 3.2, 3. प्रश्नोपनिषद, 4. ऋ.सं. 10.177.1, 5. एजन 1.177.2, 6. सांख्या. ब्रा. 3.5, 7. कौषी.ब्रा. 10.3, 8. सांख्या. ब्रा. 11.4, 9. एजन 12.4, 10. एजन 12.5, 11. एजन 7.5, 12. एजन 10.29, 13. निरूक्त दैवतकाण्ड 10.29, 14. ऋ. 10.114.4, 15. कौषी.ब्रा. 7.4

शोध आलेख

(शोध आलेख)

हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास (सन् 1826 से 1874)

शोध लेखक : डॉ. प्रियंका श्रीवास्तव
पोस्ट डॉक्टरल फेलो, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद

शोधसार- भारत में आधुनिक पत्रकारिता की शुरुआत पुर्तगाली मिशनरियों द्वारा सन् 1550 में प्रिंटिंग प्रेस स्थापित करने के साथ हुई। यहीं से भारत में आधुनिक पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी समाचार पत्र की शुरुआत अंग्रेजी, फारसी, बंगला एवं उर्दू समाचार पत्रों के बाद हुई। हिन्दी समाचार पत्र प्रकाशन में एक लम्बा अंतराल लगा। इस अन्तराल के बाद भारत में हिन्दी समाचार पत्रों के युग की शुरुआत कलकत्ता से 30 मई 1826 को उदंत मार्त्तंड के प्रकाशन के साथ हुई। पंडित युगल किशोर इस समाचार पत्र के सम्पादक और प्रकाशक थे। यह समाचार पत्र प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता था। यह समाचार 1 वर्ष 7 महीने ही चला। इसके बाद धन की कमी के कारण नहीं चल पाया।

बीज शब्द- पत्रकारिता, समाचार पत्र, प्रेस, पत्रिका, पत्रकारिता, संपादक, प्रकाशक

शोध प्रविधि- अंतर्वस्तु विश्लेषण एवं विवरणात्मक अनुसंधान का प्रयोग किया गया है।

भारत में आधुनिक पत्रकारिता की शुरुआत पुर्तगाली मिशनरियों द्वारा सन् 1550 में प्रिंटिंग प्रेस स्थापित करने के साथ हुई। यहीं से भारत में आधुनिक पत्रकारिता का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंत मार्त्तंड था जिसका प्रकाशन कलकत्ता से 30 मई 1826 को हुआ। पंडित युगल किशोर इस समाचार पत्र के सम्पादक और प्रकाशक थे। यह समाचार पत्र प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता था। यह समाचार 1 वर्ष 7 महीने ही चला। हिन्दी का अगला समाचार पत्र बंगदूत था जो 10 मई 1829 को कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन राजा राममोहन राय ने किया था और इसके संपादक नीलरतन हलदार थे। यह मूलत: बंगला समाचार पत्र था लेकिन यह अंग्रेजी, फारसी और हिन्दी में भी निकलता था। बंगदूत प्रत्येक रविवार को प्रकाशित होता था और दो रूपये मासिक मूल्य पर ग्राहकों को मिलता था। कलकत्ता से 9 जून 1834 को प्रजामित्र समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। यह हिन्दी भाषा में था।

सन् 1835 में शिमला अखबार का प्रकाशन बाबू शिवप्रसाद ने शिमला से किया। अपने आरम्भ में यह समाचार पत्र उर्दू लिपि में होता था, बाद में यह पत्र देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने लगा, क्योंकि उस क्षेत्र में हिन्दी भाषा का उपयोग ज्यादा होता था। सर हर्बर्ट एडवर्ड को इस अख़बार का संरक्षण प्राप्त था। जनवरी 1845 में काशी से बनारस अखबार का प्रकशन हुआ। इसके प्रकाशक राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द थे और संपादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे। यह साप्ताहिक समाचार पत्र था। उदंत मार्तंड की सूचना से पहले इसे ही हिन्दी का समाचार पत्र माना जाता था। समाचार पत्र मार्तंड का प्रकाशन कलकत्ता से 11 जून 1846 को हुआ। यह समाचार पत्र सन प्रेस से छपता था तथा यह अंग्रेजी, फारसी, बंगला उर्दू भाषा में छपता था। 11 जून 1846 को कलकत्ता से जगदीपक भास्कर निकला। यह बंगला, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और फारसी में प्रकशित होता था। सन् 1846 को ज्ञानदीपक का प्रकाशन कलकत्ता से हुआ। 17 अप्रैल 1847 को काशी से सुधाकर अख़बार का प्रकाशन हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था जिसकी लिपि देवनागरी और भाषा उर्दू होती थी। तारामोहन इसके संपादक थे।

सन् 1849 में मज़हरूल सरूर समाचार पत्र का प्रकाशन भरतपुर से हुआ। इसे भरतपुर के राजा का सहयोग प्राप्त था। यह हिन्दी और उर्दू भाषा का समाचार पत्र था। इस समाचार प्रकाशन के साथ ही राजस्थान में पत्रकारिता की शुरुआत हुई। यह एक साप्ताहिक पत्र था। मालवा अखबार का प्रकाशन 6 मार्च 1849 को इंदौर से निकला। इसके प्रकाशक प्रेमनारायण तथा सम्पादक धर्मनारायण थे। यह हिन्दी और उर्दू का साप्ताहिक समाचार पत्र था। सामदंड का प्रकाशन सन् 1850 में पं. युगल किशोर ने किया। यह कलकत्ता से प्रकशित होने वाला साप्ताहिक हिन्दी पत्र था। पंडित युगल किशोर शुक्ल ने 23 वर्ष बाद सामदंड का प्रकाशन किया। इस समाचार पत्र के संपादक नंद कुमार कविरत्न थे। अक्टूबर 1851 में नरुल विशाल प्रेस से मुंशी सदा सुखलाल ने बुद्धि प्रकाश का प्रकाशन आगरा से किया।

अखबार ग्वालियर का प्रकाशन महाराज सिंधिया की रुचि के कारण 1 जनवरी 1852 को प्रकाशित हुआ। यह समाचार पत्र ग्वालियर से प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं

डॉ. प्रियंका श्रीवास्तव
पोस्ट डॉक्टरल फेलो, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद
मोबाइल- 9013273821
ईमेल- oceanhabitats@gmail.com

में प्रकाशित होता था। उर्दू में हिन्दी का अनुवाद छापा जाता था। इसके संपादक और प्रकाशक लक्ष्मण दास थे। 11 जनवरी 1905 में 'अखबार ग्वालियर', जयाजी प्रताप के रूप में प्रकाशित होने लगा। इसके पहले संपादक श्रीलाल बी. ए. हुए। यह एक साप्ताहिक पत्र था। कलकत्ता से समाचार सुधावर्षण का प्रकाशन जून 1854 को प्रकाशित हुआ। यह बंगला तथा हिन्दी भाषा का समाचार पत्र था। यह एक दैनिक समाचार था लेकिन रविवार को इस पत्र का प्रकाशन नहीं होता था। इसके संपादक श्यामसुंदर थे। सन् 1855 में सर्वहित कारक समाचार पत्र आगरा से निकला। यह एक साप्ताहिक पत्र था। इसके प्रकाशक शिवनारायण थे। इसमें दो भाषाएँ हिन्दी और उर्दू होती थीं।

जयपुर से 1 अक्टूबर 1856 में राजपूताना अख़बार का प्रकाशन हुआ। यह हिन्दी-उर्दू का द्विभाषी पत्र था। उर्दू में इसे रोजत-उल-तालीम के नाम से जाना जाता था। इसके संपादक प्रधान अध्यापक कन्हैया लाल थे। इस समाचार पत्र में अंग्रेजी समाचार पत्रों के समाचार को प्रकाशित किया जाता था।

दिल्ली से फरवरी 1857 में पयाम-ए - आजादी समाचार पत्र निकला। प्रसिद्ध क्रांतिकारी अज़ीमुल्लाह खां इसके संपादक और बेदाग बढ़त प्रकाशक थे। शुरुआत में यह उर्दू भाषा का समाचार पत्र था बाद में यह हिन्दी और उर्दू में प्रकाशित होने लगा। इस समाचार पत्र का प्रकाशन सप्ताह में कभी एक बार तो कभी दो बार होता था। यह पत्र सन् 1857 की क्रांति के समय देश की जनता को हिन्दू और मुस्लिम एकता बनाए रखने तथा अंग्रेजों की चलाकिओं से आगाह करने के लिए निकला। इसके बाद इस समाचार पत्र के संपादक को फांसी दी गई तथा इसकी प्रति रखने वालों को भी मौत के घाट उतार दिया गया। सन् 1859 में अहमदाबाद से धर्मप्रकाश पत्र प्रकाशित होता था। इसके संपादन मनसुखराम थे। यह एक मासिक पत्र था। सन् 1861 में प्रजाहितैषी समाचार पत्र का प्रकाशन आगरा से हुआ। इसके संपादक तथा प्रकाशक राजा लक्ष्मण सिंह थे। सन् 1862 में साप्ताहिक पत्र अंजुमन-ए-हिन्द नामक संस्था से हिन्दी पत्र भारत पत्रिका का प्रकाशन हुआ। 1 जनवरी 1863 में लोक मित्र पत्र का प्रकाशन आगरा से किया गया। यह इसाई धर्म प्रचार के लिए निकलता था। यह शुद्ध हिन्दी में मासिक पत्र था। इसके संपादक क्रिश्चियन बने हिन्दू थे। आगरा से भारतखंडामृत समाचार पत्र सन् 1864 में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशक और संपादक पंडित वंशीधर वाजपेयी थे। यह एक धार्मिक समाचार पत्र था तथा हिन्दी और उर्दू में निकलता था। उर्दू में इसका नाम आबेहयात था। सन् 1865 में आगरा से सर्वोप्रकाश पत्र का प्रकाशन हुआ। यह एक स्वतंत्र हिन्दी समाचार पत्र था। सन् 1864 में बरेली से तत्त्व बोधिनी समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके संपादक और प्रकाशक गुलाब शंकर थे। यह समाचार पत्र ब्रम्ह समाज के सिद्धांतों का प्रचार करता था। सन् 1865 में मिर्ज़ापुर से खैर खाहे हिन्द समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके प्रकाशक डॉ आर.सी. माथुर थे। यह हिन्दी और उर्दू का समाचार पत्र था। ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका का प्रकाशन लाहौर से मार्च 1866 में हुआ। इसके संपादक पंडित मुकुंद राम थे तथा सहायक संपादक नवीन चन्द्र थे। यह मासिक पत्रिका थी। इसमें शिक्षा और विज्ञान से सम्बंधित लेख प्रकाशित होते थे। सन् 1866 में मुंबई से सत्यदीपक का प्रकाशन हुआ।

मारवाड़ प्रदेश में राव राजा मोती सिंह की स्वीकृति से दो पत्र निकले। एक था मरुधर मित्र जो जोधपुर से सन् 1866 में प्रकाशित हुआ। यह पत्र हिन्दी और उर्दू भाषा में था। दूसरा पत्र सन् 1866 में ही मारवाड़ गज़ट था जो जोधपुर से प्रकाशित हुआ। इसके संपादक हीरालाल एवं डोरीलाल हुए। इसमें सरकारी सूचनाओं के साथ साथ कांग्रेस की गतिविधियाँ भी प्रकाशित होती थी।

सन् 1867 में वृतांत विलास समाचार पत्र का प्रकाशन जम्मू नगर से हुआ। यह एक मासिक पत्र था। सन् 1867 में सर्वजनोपकारक का प्रकाशन आगरा से हुआ। जनवरी 1867 में रत्नप्रकाश का प्रकाशन रतलाम से हुआ। रत्नप्रकाश साप्ताहिक पत्र था। यह हिन्दी और उर्दू में निकलता था। इसके संपादक किशोरी लाल नागर तथा स्वामी सैयेद मोहमद निजामुदीन थे। सन् 1867 में जम्मू से बुद्धि विलाश नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था। इसके संपादक वेंकट राम शास्त्री थे। यह प्रत्येक शनिवार हिन्दी और उर्दू में निकलता था। 15 अगस्त 1867 कवि वचन सुधा का प्रकाशन काशी से हुआ। इसके प्रकाशक भारतेंदु हरीश चन्द्र थे। यह एक मासिक पत्रिका थी। सन् 1868 में वृतांत दर्पण पत्र का प्रकाशन प्रयाग से हुआ। इसके संपादक सदासुख लाल थे। विभिन्न विषयों वाला यह पत्र दो वर्ष बाद कानून का पत्र बन गया। कलकत्ता से ही दीप्तिप्रकाश का प्रकाशन सन् 1868 में हुआ। यह साहित्य का साप्ताहिक पत्र था। इसके संपादक बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री थे। इसका नाम सन् 1872 में परिवर्तित होकर दीप्तप्रकाश हो गया और यह साप्ताहिक की जगह मासिक हो गया।

सन् 1869 में मंगल समाचार मेरठ से प्रकाशित हुआ। इसके संपादक ठाकुर गिर प्रसाद सिंह थे। यह हिन्दी और उर्दू का पत्र था। सन् 1869 जगत समाचार आगरे से प्रकशित हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था। जगदानंद पत्र सन् 1869 में आगरे से प्रकशित हुआ। इसके संपादक ठाकुर सिंह थे। सन् 1869 में पापमोचन पत्र आगरे से प्रकशित हुआ। इसके संपादक कृष्णचंद थे। ये हिन्दी और उर्दू भाषा का पत्र था। सन् 1869 में जगतप्रकाश पत्र का प्रकाशन मुरादाबाद से हुआ। सन् 1869 में विद्या दर्श का प्रकाशन मेरठ से हुआ। इसमें ज्ञान पर ही चर्चा होती थी। सन् 1869 में नैनीताल से समय विनोद का प्रकाशन हुआ। यह पाक्षिक पत्र था लेकिन हर दो महीने पर इसका प्रकाशन होता था। इसके संपादक जैदत्त जोशी थे। सन् 1869 में आगरे से एजुकेशन गज़ट का प्रकाशन होता था। यह हिन्दी-उर्दू भषाओं में होता था। इसके संपादक युसूफ अली और अमिरुद्दीन थे। जनवरी 1969 में राजपूताना अखबार का प्रकाशन अजमेर से हुआ। यह सन् 1856 में

जयपुर से निकले वाले राजपूताना अखबार से भिन्न था। यह एक साप्ताहिक पत्र था और प्रत्येक बुधवार को प्रकाशित होता था। इसके संपादक वजीर अली एवं प्रकाशक दीवान बूटा सिंह थे। उदयपुर गज़ट का प्रकाशन सन् 1869 को उदयपुर से हुआ। सन् 1879 में यह सज्जन कीर्ति सुधाकर के नाम से निकले लगा। सज्जन कीर्ति सुधाकर नाम मेवाड़ के शासक महाराजा सज्जन के नाम पर पड़ा। यह पूर्णरूप से हिन्दी में प्रकाशित होने वाला शासकीय गज़ट था। इसमें सम सामयिक, पुरातात्विक, ऐतिहासिक तथा रजवाड़ो से संबंधित सूचना एवं लेख प्रकाशित होते थे। दिल्ली से सन् 1969 में इन्द्रप्रस्थ प्रकाश का प्रकाशन हुआ। यह हिन्दी एवं उर्दू का भाषा का साप्ताहिक पत्र था। सन् 1869 में ब्रम्हज्ञान प्रकाश का प्रकाशन बरेली से हुआ।

आर्यदर्पण का प्रकाशन जनवरी 1870 में शाहजहाँपुर से हुआ। यह एक मासिक पत्र था। मुंशी बख्तावर सिंह इसके सम्पादक थे। यह पत्र आर्यसमाज के आन्दोलन को बढ़ाने के लिए निकला। मित्रविलाश समाचार पत्र का प्रकाशन सन् 1870 में हुआ। यह 20 वर्ष तक प्रकाशित होता रहा। सन् 1870 में नागपुर गज़ट समाचार पत्र का प्रकाशन नागपुर से हुआ। यह हिन्दी, उर्दू और मराठी में निकलता था। अल्मोड़ा अखबार का प्रकाशन 1 अप्रैल 1871 में हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था। इसके पहले संपादक बुद्धि बल्लभ पन्त थे। यह सन् 1918 तक निकला। सन् 1870 में जोधपुर से मुहब्बे मारवाड़ एवं ललितपुर से बुंदेलखंड अखबार प्रकाशित हुआ।

सन् 1870 में मनोबहार पत्र का प्रकाशन बम्बई से हुआ। यह हिन्दी, मराठी, गुजराती और संस्कृत में प्रकाशित होता था। कृष्णा जी पशुराम इसके प्रकाशक थे। सन् 1872 में बिहारबन्धु का प्रकाशन कलकत्ते से हुआ। बिहारबन्धु सन् 1874 से कलकत्ता की जगह पटना से निकलने लगा। यह एक साप्ताहिक अखबार था। कलकत्ता से निकले बिहारबन्धु के प्रकाशक केशवराम भट्ट और मदन मोहन भट्ट थे। मुंशी हसन अली इसमें संपादक थे। सन् 1872 में बोधासमाचार और होलकर समाचार पत्र निकला। लेकिन इसके बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है। सन् 1872 में लाहौर से उर्दू पत्र मतलए अनवर निकला। इसमें हिन्दी भी होती थी। पाक्षिक प्रेमपत्र का प्रकशन सन् 1872 में आगरा से हुआ। पंडित रूद्रदत्त शर्मा संपादक थे।

आगरा से जनवरी 1873 में मर्यादा परिपाटी समाचार पत्रिका का प्रकशन हुआ। यह एक धार्मिक पत्रिका थी। इस पत्रिका में हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होता था। इसके प्रकाशक दुर्गाप्रसाद शुक्ल थे। मार्च 1873 में जबलपुर से जबलपुर समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। यह जबलपुर से प्रकाशित होने वाला पहला समाचार पत्र था। यह मासिक पत्र था तथा हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित होती थी। इसका मुद्रण काशी में मेडिकल हाल प्रेस में होता था। कृष्णराव इसके संपादक थे। होलकर सरकार गजट का प्रकाशन 21 अप्रैल 1873 को इंदौर से हुआ। यह एक साप्ताहिक समाचार पत्र था। इसमें सरकारी आदेश, विज्ञापन, बाजार भाव, पंचाँग आदि प्रकाशित होते थे। यह मराठी, अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं का गजट था। 15 अक्तूबर 1873 को काशी से हरिश्चंद्र मैगजीन का प्रकाशन हुआ। इसके संपादक और प्रकाशक भारतेन्दु हरिश्चंद्र थे। यह एक मासिक पत्रिका थी। इसमें पुरातत्त्व, उपन्यास, कविता, आलोचना, ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक, दार्शनिक एवं राजनीतिक लेख प्रकाशित होते थे। सन् 1873 में समय विनोद का प्रकाशन नैनीताल से हुआ। यह एक पाक्षिक पत्र था। हिन्दी प्रकाश का प्रकाशन 9 अक्टूबर 1873 में अमृतसर से हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था। हिन्दी, उर्दू और गुरुमुखी में छपता था। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने काशी से स्त्रियों के लिए बाल बोधिनी पत्रिका का प्रकाशन जनवरी 1874 में किया। यह मासिक पत्रिका थी। यह स्त्री शिक्षा पर केन्द्रित हिन्दी की पहली पत्रिका थी। जून 1874 को हरिश्चंद्र चन्द्रिका का प्रकाशन काशी से हुआ। इसके संपादक और प्रकाशक भारतेन्दु हरिश्चंद्र थे। भारतेन्दु के मित्र मोहनलाल पंड्या 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' को लेना चाहते थे और यह अख़बार घाटे में चल रहा था। पंड्या की पत्रिका मोहन और चन्द्रिका का समावेश भारतेन्दु और मोहनलाल की सहमती से हो गया। इसके बाद काशी से मोहन चन्द्रिका नाम से नई पत्रिका का प्रकाशन सन् 1880 में हुआ। इसके संपादक दामोदर शास्त्री थे।

000

संदर्भ - Bhatnagar, Ram Ratan (1947). Rise and Growth of Hindi Journalism (1826-1945). Allahabad:Kitab Mahal. Giffard, C.A. (2019). Ancient Rome's Daily Gazette, Journalism History, 2:4, 106-132, DOI: 10.1080/00947679.1975.12066791, Jeff Jarvis. (2020,18 AUGUST). The History of Print, Media, and Journalism is 45 (Painless) Minutes. Youtub. https://medium.com/whither-news/the-history-of-print-media-and-journalism-is-45-painless-minutes-35a929fdec97, Natrajan, J(2010). History of Indian Journalism. New Delhi: Ministry of Information & Broadcasting, दास, श्याम(1914). हिन्दी-कोविद रत्माला भाग 1. प्रयाग: इंडियन प्रेस, दास, श्याम(1914). हिन्दी-कोविद रत्माला भाग 2. प्रयाग: इंडियन प्रेस। वाजपेयी, पं. अम्बिकाप्रसाद (1969). समाचार पत्रों का इतिहास. वाराणसी : ज्ञानमंडल लिमिटेड। श्रीधर, विजयदत्त(2016) भारतीय पत्रकारिता कोश(1780-1900) खंड -एक. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन। श्रीधर, विजयदत्त (2016). भारतीय पत्रकारिता कोश(1901-1947) खंड -2. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन। शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र(2011). हिन्दी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन। सिंह, डॉ. वशिष्ट नारायण(2008). काशी की हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास (सन् 1845 से 2000 ई.).वाराणसी : पिलीग्रिम्स बुक हॉउस। साहनी, डॉ. दीनानाथ(2015). भारत में हिन्दी पत्रकारिता.पटना : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी। शंभूनाथ, द्विवेदी रामनिवास (2012). हिन्दी पत्रकारिता हमारी विरासत खंड 1.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन। शंभूनाथ, द्विवेदी रामनिवास(2012). हिन्दी पत्रकारिता हमारी विरासत खंड 2.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

(शोध आलेख)

कश्मीर के दर्द का जीवंत आख्यान : शिगाफ़

शोध लेखक : अमित कुमार चौबे
शोधार्थी हिन्दी साहित्य विभाग
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय

शोध-सार- कश्मीर अपने अपूर्व प्रकृतिक सौंदर्य के कारण धरती का स्वर्ग कहा जाता है। भारत के शीर्ष को आभामंडित करता हुआ यह भू-भाग प्राचीन संस्कृति, साहित्य, धर्म एवं ज्ञान का समृद्ध केंद्र भी रहा है। कश्मीर को केंद्र में रखकर हिन्दी के जो तमाम उपन्यास लिखे गए उनमें 'शिगाफ़' मनीषा कुलश्रेष्ठ का अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में कश्मीर की दुखती रगों को बड़ी संजीदगी के साथ लेखिका ने टटोला है। इस शोध आलेख में कश्मीर संबंधी उन समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है जो इस उपन्यास के माध्यम से पाठकों तक पहुँचती हैं। इस लेख का उद्देश्य है विस्थापन की मार झेलते कश्मीरियों की जीवन स्थितियों को समझना।

बीज शब्द: आतंकवाद, कश्मीरियत, विस्थापन, निर्वासन, जेहाद, सांप्रदायिकता, इत्यादि।

मूल आलेख - भारतवर्ष को विविधताओं का सजीव पुंज कहें तो अतिउक्ति नहीं होगी। धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, त्यौहार, लोक-संस्कृति आदि के इन्द्रधनुषी रंगों से सुसज्जित इसकी सुषमा विश्व के अन्य देशों से इसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं आकर्षक बनाती है। भारत के शीर्ष पर स्थिति कश्मीर जिसे धरती का स्वर्ग भी कहा गया है, अपनी अनुपम प्राकृतिक छंटा बिखेरता हुआ भारत के सौंदर्य को द्विगुणित करता है लेकिन भारत-पाक विभाजन के साथ कश्मीर जिस राजनीति का शिकार हुआ उसके घाव कई दशकों के बाद भी भरे नहीं हैं। आतंकवाद, सांप्रदायिकता, विस्थापन, गरीबी, बेरोजगारी, धार्मिक वैमनष्य आदि ऐसी तमाम समस्याएँ कश्मीर में रहने वाले लोगों के जीवन का हिस्सा बन गईं।

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के फ़लक पर मनीषा कुलश्रेष्ठ एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में अपनी रचनाशीलता के साथ सामने आई हैं, जिनकी रचनाएँ मानव जीवन की जटिल परतों को परत-दर-परत खोलती हुई उन संवेदना बिन्दुओं को स्पर्श करती हैं जिन तक पहुँचना हर साहित्यिक कृति के लिए मुश्किल होता है। ये अपनी रचनाओं में पूर्वाग्रहों से ग्रस्त नहीं दिखाई देती हैं। उनकी कलम की स्याही वर्ण, धर्म, वर्ग और लिंग से इतर सामाजिक यथार्थ का रेखांकन करती हुई दिखाई देती है। मनीषा कुलश्रेष्ठ समकालीन दौर की एक सशक्त लेखिका हैं, जो अपने समय और समाज को बेहद सूक्ष्म स्तर पर देखती हैं। 'शिगाफ़' उनके द्वारा रचे गए महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। यह उपन्यास कश्मीर समस्या को केंद्र में रखते हुए वहाँ के जन जीवन की मार्मिक एवं जीवंत तस्वीर प्रस्तुत करता है, फिर चाहे आतंकवाद, गरीबी, बेरोजगारी से जूझते हुए कश्मीर में रह रहे पात्र हों या अपनी जड़ों से उजड़कर देश-विदेश के अलग-अलग शहरों में जाकर बसने वाले विस्थापित पात्र हों। इन सब की पीड़ा को उपन्यासकार ने बड़ी संजीदगी से उपन्यास में उतारने का प्रयास किया है। डॉ विमलेश के अनुसार "शिगाफ' मनीषा कुलश्रेष्ठ का सांस्कृतिक-सामाजिक-राजनैतिक पृष्ठभूमि पर केंद्रित उपन्यास है जिसमें सांस्कृतिक-सामाजिक विरासत से कट जाने और उसके छूट जाने का दर्द तो है ही बल्कि अपनी खुली जड़ें लिए भटकने और कहीं अन्यत्र नहीं रोपित हो सकने की भीषण छटपटाहट भी शामिल है।"1 कश्मीर के भीतर उपस्थित नासूर की तरह चुभते दर्द को यह उपन्यास प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में परत-दर-परत खोलता जाता है, जिसमें कश्मीर की सुंदरता किसी भयावह रूप में बदलती हुई दिखाई देती है।

उपन्यास में मुख्य पात्र अमिता के माध्यम से लेखिका ने कश्मीर को इसके पूरे यथार्थ के साथ उकेरा है। अमिता जो कश्मीरी हिन्दू है विस्थापन के बाद अपनी पैतृक जमीन से उखड़कर स्पेन में रहने को विवश है। हजारों मील दूर रहकर भी उसे अपना कश्मीर बार-बार स्मरण हो आता है और जिन बेतुके कारणों से उस जैसे हजारों लोगों को कश्मीर से बेदखल होना पड़ा वह

अमित कुमार चौबे
शोधार्थी हिन्दी साहित्य विभाग
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
मोबाइल- 9454805468
ईमेल- amit93678@gmail.com

उन पर दिन-रात विचार करती रहती है। उपन्यास में एक स्थान पर अमिता लिखती है कि "धर्म, नस्ल, रंग और विचारधारा के नाम पर पूरी दुनिया जल रही है। कौन कहता है कि ये तरक्की कर चुके हैं या हम तरक्की के दौर से गुज़र रहे हैं? बल्कि हम तब बेहतर थे जब समूहों में रहते थे, नदी, पहाड़, पेड़ और आसमाँ को पूजते थे और प्राकृतिक विपदाओं को शैतान का स्वरूप मान उसे भी खुश रखने के लिए जाने क्या-क्या करते थे। मगर धर्म या नस्ल या रंग या विचारधारा के नाम पर नहीं। वह लड़ाई वजूद की होती होगी।"2 कश्मीर जहाँ धर्म के नाम पर खून-खराबा हुआ, अल्पसंख्यकों के साथ शत्रुओं के भांति पेश आते हुए उनके घरों में आग लगा दी गई, उस भयावह एवं दर्दनाक मंजर को अमिता याद कर बेहद नीरास होती है। वह पलायन से पहले प्राकृतिक सौंदर्य एवं सहिष्णुता से पूर्ण अपने कश्मीर को याद कर उदास हो जाती है। वह अपने ब्लाग अमिता इन स्पेन ब्लागस्पॉट डॉट कॉम पर लिखती हैं कि "मैं देर तक हताश महसूस करती रही। श्रीनगर के भीतरी हिस्सों में बसे हिन्दू मोहल्लों के बहुमंजिला पुराने मकानों की पंक्तियाँ याद आ गईं, जहाँ जिंदगी चहकती थी। श्रीनगर अपने बाहरी घेरे में हसीन वादियों, डल झील के विस्तार और बर्फ ढकी पहाड़ियों का मुकुट पहने खूबसूरत लगता था मगर इसके भीतरी घेरे में एक-दो या तीन मंज़िला इमारतों का ऐसा सिलसिला था जो तंग रास्तों, संकरी गलियों में फैला हुआ था।"3 यहाँ एक बात स्पष्ट हो जाती है कि अमिता निर्वासन के बाद स्पेन में रहते हुए भी अपनी जड़ों से जुड़ी रही। वह स्पेन के गलियों में जो बेहद संकरी थी उसमें भी वह समानता का पुट देखती है। वह स्पेन में रहकर भी श्रीनगर के उन भीतरी गलियों को याद करती है जिसमें हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के मकान बने थे और उनमें एक दूसरे के लिए प्रेम और सद्भवाना का भाव था। निर्वासन का यह दर्द केवल अमिता नहीं झेलती बल्कि लेखिका ने अमिता के माध्यम से उन तमाम विस्थापितों की कहानी कही है जिनके लिए कश्मीर से जाना एक अभिशाप से कम नहीं था। 24 सितंबर 2004 को अमिता अपने ब्लाग पर लिखती है "मैं जब भी 'मार्टिनी' पीती हूँ, उस रोज विदेशों में आ बसे अपने हमवतनों को इंटरनेट पर खोजती हूँ। बहुत से हैं... मेरे जैसे यहाँ-वहाँ बिखरे। वादी से खदेड़े जाने का गुस्सा और हताशा मन में लिए। अपने मन से 'वापस लौटने की उम्मीद के पेड़ों को जड़ों से उखाड़ते हुए। मैं देखती हूँ, घाव अब भी हरे हैं उनके। उनके अपने सच हैं, उनके आगे खड़े हुए, उनकी परछाइयों से भी बड़े-बड़े उनके पास बहुत से सच्चे किस्से हैं, कहानियाँ हैं।"4 कश्मीर की राजनीति ने मानवीय मूल्यों को किस तरह ध्वस्त किया? निजी स्वार्थ में वशीभूत धर्म और राजनीति के ठेकेदारों ने जिस तरह इंसानियत का कत्लेआम किया, उससे लेखिका बेहद निराश दिखाई देती हैं, जिस पीढ़ी को उचित शिक्षा और रोजगार की दरकार थी उन्हें धर्म और संप्रदाय की भट्ठी में झोंकर किस तरह राजनेता अपनी रोटियाँ सेंक रहे थे, उसका दर्द उपन्यास में बखूबी झलक उठा है। अप्लसंख्यकों को वहाँ से निर्वासित करना और उन पर हथियार उठाना तत्कालीन नेताओं की सोची समझी योजना थी। निर्वासन की इन्हीं वजहों को उपन्यास में अमिता पीड़ा के साथ व्यक्त करती है। वह कहती है "आज निर्वासित हूँ....क्योंकि तुमने चुना था निहत्थों को मारना। मैं आज निर्वासित हूँ... मैंने चुना सम्मान से जीना.... हथियार न उठाना। मैं आज निर्वासित हूँ... क्योंकि पूरा संसार चुप रहा... महज कुछ लोग ही तो मर रहे थे। मैं आज निर्वासित हूँ... क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।"5

इतिहास गवाह है जंग कहीं भी हो, कैसी भी हो उसका सबसे ज्यादा नुकसान स्त्री कौम को ही होता है। घर परिवार की सलामती और सुरक्षा चाहने वाली कश्मीरी औरतों को अनेक समस्याओं से जूझने को मजबूर किया गया, फिर चाहे वे विस्थापित स्त्रियाँ हों या फिर कश्मीर में ही रह गई स्त्रियाँ हों। लेखिका ने उपन्यास में स्त्री जाति के प्रति अपनी पूरी संवेदना व्यक्त की है। उपन्यास में एक स्थान पर अमिता कहती है "मेरे कश्मीर की मुसलमान औरत... मैं उनके बारे में जानकर तकलीफ में हूँ। मैं सो नहीं पा रही हूँ। सोचती हूँ, बिना जलावतन हुए भी यह कैसी बेदर्द जलावतनी थी नसीम की। और जो वहीं रह रही हैं...उनकी हर रोज़ जिस्म से रूह की जलावतनी।"6 अर्थात् दोनों तरह की स्त्रियाँ उस संकटग्रस्त समय में अपनी वजूद की लड़ाई लड़ रही हैं। कश्मीर की आजादी के लिए उपजे धार्मिक उन्माद के वातावरण ने एक ऐसी जंग शुरू की जिसमें हजारों कश्मीरी युवा अपना घर परिवार छोडकर आतंकी बनने लगे। दूसरी तरफ कश्मीर की सुरक्षा व्यवस्था को बनाए रखने का भार ढोते हजारों नवजवान सैनिक गोलीबारी और बारूदी हमलों में शहीद हुए। इन सारे पुरुषों ने अपने पीछे स्त्री की एक बड़ी कौम को असहाय और बेसहारा कर दिया। लेखिका डर और आतंक के साये में जीने वाली उन औरतों की आवाज बनकर सामने आती हैं। कश्मीर की औरतों के बारे में भारी मन से सोचते हुए अमिता लिखती है कि "हमारा हर दिन नई समस्याओं को जन्म देते हुए उगता है कश्मीर में। हर दिन विधवाओं की नई फसल तैयार हो जाती है। फौज और उग्रवादियों ने मिल-जुलकर ग्यारह हजार जवान विधवाओं की फसल तैयार की है, जिसे न समाज से कोई आसरा है ने सरकार."7 इस उपन्यास में स्त्री जीवन की विसंगतियों को उसके सामाजिक संदर्भ से जोड़कर लेखिका देखती हैं। समाज की तंग व्यवस्था में जीने को विवश इन कश्मीरी औरतों को तत्कालीन सस्ती राजनीति ने भी गहरी चोट पहुँचाई है। उपन्यास में कश्मीरी औरतें एक ओर परदा-प्रथा, अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी समस्याओं का दंश झेलती हैं तो वहीं दूसरी तरफ कट्टर राजनीति एवं धर्म ने उन्हें निष्प्राण एवं अवसादग्रस्त कर दिया है। उपन्यास के अनेक स्थलों पर जीवन और मौत के बीच झूलती इन औरतों के चेहरे झाँकते नजर आते हैं। इसी दंश को उपन्यास में देखा जा सकता है "बहुत सहन करके तो पृथ्वी भी विचलित हो जाती है, उसमे भी दरारें आ जाती हैं, वे तो बेटियाँ हैं इस जमीन की असहाय औरतें। वे खामोश हैं सीने में हज़ारों जख्म छिपाकर जीते चले जाने की विवशता में

वे घुन-सी पिस रही हैं।"8 उपन्यास में अमिता के अतिरिक्त और भी स्त्री किरदार अपने-अपने हिस्सों की तकलीफ़ें ढोते हुए दिखाई देते हैं। बचपन में अमिता के साथ पढ़ने वाली यास्मिन की उलझने और अनकही पीड़ा उसकी डायरी में दर्ज है। मनीषा जी ने उसकी डायरी के माध्यम से आजाद कश्मीर के सुनहरे सपनों के पीछे छीपी बदरंग क्रूर सच्चाईयों को बेहद संजीदगी से उद्घाटित किया है। नब्बे का दशक वहाँ की औरतों के लिए एक बुरे सपने की तरह आता है, जहाँ उनकी शिक्षा के स्वप्न, आजादी से घूमने के ख्वाब दम तोड़ने लगते हैं। धर्म का कट्टरपंथ इस कदर बढ़ गया कि रोज नए फरमान उनके अस्तित्व और पहचान को तार-तार करने वाले थे। यास्मिन अपनी डायरी में 01 मार्च 1991 की तारीख को दर्ज करते हुए लिखती है कि "आज सुबह अब्बू जो अखबार पढ़ रहे थे, उसके तीसरे पेज पर तस्वीर है, एसिड स्त्री से जली श्रीनगर की एक कॉलेज जानेवाली लड़की को, जो अब भी मिलिटरी अस्पताल में मौत से जूझ रही है।" मैं भीतर तक डर गई हूँ। मेरे कॉलेज में दाखिले की बात कब की खत्म हो गई है। अब्बू बदल रहे हैं। अब इन बातों की खिलाफ़त नहीं करते, छुपे शब्दों में तंज करते हैं।.....कइयों ने पूरा जिस्म बुरका में लपेट लिया है। काजल लदी आँखें फीकी रहने लगी हैं। चम्पई जिल्दों पर जर्दी। उभर आई हैं। चेरी के खिले बाग़ों पर बेमौसम बर्फ की सफेदी घिर गई हो जैसे।"9 शिगाफ़ में ऐसी ही तमाम औरतें आतंकी साए में प्रेम, समर्पण, विश्वास जैसे मूल्यों को दम तोड़ते हुए देखती हैं। असुरक्षा भरे वातावरण में वे अवसाद का शिकार होती हैं, परिणामस्वरूप कई बार अपनी जान पर भी खेल जाती हैं। 'शिगाफ़' उपन्यास में दर्ज स्त्रियों की दशा पर डॉ. विमलेश लिखते हैं कि "वहाँ बेबा हुई औरतें, अकेली छूटी औरतें, जवान और अनाथ लड़कियाँ अपनी ज़िन्दगी पर हक नहीं रखतीं। उनकी आँखों में अपनों से बिछड़ने के सवाल हैं। वे आँखें बरबस पूछती हैं कि उनके अपनों को किस जुर्म में मारा गया है।"10

उपन्यास में लेखिका ने कश्मीर के कई महत्त्वपूर्ण सवालों की अभिव्यक्ति बेहद मुखर रूप में की है। उनकी सूक्ष्म पारखी दृष्टि कश्मीर के तत्कालीन राजनीति के जटिल समीकरणों को मार्मिक भाषा में जीवंत कर देती है। किस तरह कश्मीर को आजाद करने की जंग में उसकी सांस्कृतिक विरासत क्षत-विक्षत हुई इसका प्रमाण कई स्थानों पर मिलता है। यास्मिन की डायरी में ऐसे ही एक खौफनाक मंजर का जिक्र है "कल अब्बू घबराए हुए घर आए थे। वो ईद की खरीदारी के लिए श्रीनगर जा रहे थे, मगर रास्ते ही से लौटना पड़ा। चरार-ए-शरीफ दरगाह ख़ाक़ हो गई। साथ ही सैकड़ों घर। दरगाह पर हिजबुल के मुजाहिदीनों ने कब्जा कर लिया था..."11

कश्मीर में जेहाद के नाम पर युवकों को नष्ट करने की दूषित राजनीति ने कश्मीर की जो दशा की, उसे लेखिका बखूबी समझती हैं। अमन और चैन से मोहब्बत करने वाले लोग चाहे वे किसी भी मजहब के क्यों न हों ऐसे भयावह वातावरण से मुक्त होना चाहते हैं। वे सब कुछ जानते हुए भी उन विपरीत परिस्थितियों में जीने को विवश दिखाई देते हैं। उपन्यास में यास्मिन के माध्यम से लेखिका लिखती हैं "अब्बू भीतर आकर बड़बड़ा रहे थे, "मजहब की आड़ लेकर जेहाद-जेहाद चिल्लाकर पैसा, औरत, शराब और गोश्त के लालच में कश्मीर आनेवाले ये भाड़े के जेहादी हमारे बच्चों से हमारा ही पर जलवा रहे हैं। ये हमारे हमदर्द नहीं हो सकते।"12

जंग चाहे जैसी हो वह अपने प्रभाव में आने वाले लोगों की आर्थिक अवस्था को बुरी तरह प्रभावित करती है। कश्मीर की धर्म आधारित जंग ने नई नस्लों को शिक्षा और रोजगार से हटाकर धार्मिक उन्माद की जिस आग में झोंका उसमें हजारों युवक मारे गए। उनके पीछे गरीबी और आर्थिक पराधीनता झेलते उनके परिवार किसी तरह जिंदगी बसर करने की कोशिश में दिखाई देते हैं। उपन्यास में कश्मीर के जनजीवन को जिस बारीकी से लेखिका उकेरती हैं ऐसा लगता है मानों वे स्वयं उस जिंदगी का हिस्सा हैं। आतंकवाद ने कश्मीर की आम जिंदगी को बुरी तरह रक्तरंजित किया है, फिर चाहे वहाँ की कृषि व्यवस्था हो, चाहे उद्योग-धंधे हों या फिर जीवन जीने के अन्य छोटे-बड़े तरीके वे सब इस जंग की आग में झुलस गए। ऐसे में बेरोजगारी, गरीबी जैसी समस्याओं का उभरना बेहद स्वाभाविक है। यास्मिन की डायरी के जरिए लेखिका इस समस्या को प्रस्तुत करते हुए लिखती हैं कि "कालीन के कारखानों को बन्द हुए अरसा हो गया है केसर के खेत खाली पड़े हैं। गाँव के बाशिन्दों की किल्लतें खत्म होने का नाम ही नहीं लेतीं। उनके लिए जरिया-ए-माश कुछ नहीं रहा है।"13

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मनीषा कुलश्रेठ द्वारा लिखा गया यह उपन्यास कश्मीर की यथार्थ तस्वीर खींचता है। उपन्यास में बहुत सी समस्याएँ अलग-अलग किरदारों के माध्यम से सामने आती हैं, ये कश्मीर के इतिहास में घटित विभिन्न घटनाओं को पूरे जीवंतता के साथ खोलते हुए उनके कारणों की पड़ताल भी करता है। विस्थापन, धर्मनिरपेक्ष और साँस्कृतिक समस्याओं के दर्द को यह उपन्यास अपने फ़लक पर लेकर चलता है। इसलिए सच्चे मायनों में यह उपन्यास कश्मीरियों की एक महागाथा कहा जा सकता है।

000

संदर्भ- 1 शर्मा, डॉ. विमलेश. "हर जिंदगी पर तारी एक अनचाहा-आरोपित : शिगाफ़." अनुसंधान (2022): पृष्ठ 57-65. 2कुलश्रेठ, मनीषा : शिगाफ़. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010. पृष्ठ 16. 3वही, पृष्ठ 19. 4वही, पृष्ठ 20. 5वही, पृष्ठ 29. 6वही, पृष्ठ 79. 7वही, पृष्ठ 86-87. 8 वही, पृष्ठ 87. 9 वही, पृष्ठ 98. 10 गुप्त विजय : खोया हुआ कश्मीर (इतिहास के दर्पण में). अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008. पृष्ठ 62. 11 कुलश्रेठ, मनीषा : शिगाफ़. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010. पृष्ठ 105. 12 वही, पृष्ठ 106. 13वही, पृष्ठ 107.

(शोध आलेख)

'हवन' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में यथार्थबोध

शोध लेखक : किरण कटोच
पीएच.डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
शोध निर्देशक : डॉ. अभिषित त्रिपाठी, पोस्ट-डॉक्टोरलफेलो (भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद- नई दिल्ली)

किरण कटोच
पीएच.डी. शोधार्थी हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर- 190006
मोबाइल- 6006633613
ईमेल- kirankatoch1994@gmail.com

यथार्थवाद शब्द अंग्रेज़ी भाषा के शब्द Realism का हिन्दी रूपांतर है। Real शब्द की उत्पति ग्रीक भाषा के Res शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ 'वस्तु' है। अर्थात् Realism का अर्थ वस्तु सम्बन्धी विचारधारा से है। Realism दो शब्दों से मिलकर बना है। Real+ism Real का अर्थ है 'वास्तविक' और ism का अर्थ है 'विज्ञान' रियल्जिम का शाब्दिक अर्थ हुआ - वास्तविकता का विज्ञान। यथार्थवाद प्रत्यक्ष जगत की सत्यता को स्वीकार करता है। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार यथार्थवाद का अर्थ वह विश्वास या सिद्धान्त है, जो जगत को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा हमें दिखाई देता है। यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति है। जिसमें हम अपने जीवन में घटित होने वाले सुख-दुख, राग-विराग और अन्य भावनाओं को अनुभव करते हैं। तथा अपनी चेतना द्वारा समाज में होने वाली सभी प्रकार की घटनाओं, अनुभवों और क्रिया-कलापों का अनुभव कर उसका वैसा ही चित्रण करना ही यथार्थ कहलाता है।

अमेरिका की प्रवासी कथाकार सुषम बेदी अपनी रचनाओं के लिए विश्व भर में जानी-पहचानी जाती है। उनके द्वारा रचित उपन्यासों और कहानी-संग्रहों के द्वारा उन्हें पाठकों में अत्याधिक लोकप्रिय और चर्चित बनाया है। इनके लेखन की विशेषता यह रही है कि इन्होंने अपनी रचनाओं में यथार्थता को स्थान दिया है। विदेश में रहकर इन्होंने जैसा देखा, जैसा अनुभव किया उसे वैसा ही अपनी लेखनी के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया। रचनाकार अपनी रचना इस मनतव्य से करता है कि जिसने जिस वस्तु या परिवेश को जैसा देखा है वैसा ही अनुभव पाठक को उसकी रचनाएँ पढ़ते हुए हो। सुषम जी ऐसी रचनाकार हैं, जिन्होंने प्रवासी समाज को आधार बनाकर अपना साहित्य सृजन किया है। उनके साहित्य में निहित कथावस्तु जीवन के यथार्थ पर आधारित है।

'हवन' उपन्यास भी इसी प्रकार की कृति है, जिसका प्रकाशन 1989 में हुआ है। यह इनका पहला उपन्यास है, जिसमें लेखिका ने अमेरिका में रह रहे प्रवासी भारतीयों के जीवन के यथार्थ को दर्शाते हुए, वहाँ के चकाचौंध में अपने मूल्यों का और जीवन का हवन कर देने वाले पात्रों की मन:स्थिति का बेज़ोड़ आकलन किया है। उपन्यास की मुख्य पात्रा गुड्डों के अमेरिका जैसे विकसित देश में अपना स्थातिव स्थापित करना चाहती है। लेकिन अमेरिका जैसे विकासशील देश में जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्रवासी भारतीयों को कितने संघर्षों और कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जिसका वर्णन लेखिका ने बड़ी यथार्थपूर्ण दृष्टि से किया है। तीन बच्चों की वैधव्य माँ गुड्डो के इंजीनियर पति की मृत्यु के पश्चात् भारत में रहकर अध्यापिका की छोटी सी नौकरी के द्वारा जीवन का लम्बा सफर तय करना संभव नहीं था। न्यूयॉर्क में बसी गुड्डो की छोटी बहन बार-बार उसे यह आश्वासन देकर अपने पास बुलाती है कि यहाँ रह कर वह अधिक धन अर्जित कर सकती है। गुड्डो इसी कामना और लालसा से

अपने छोटे बेटे राजू को साथ लेकर अमेरिका पहुँच जाती है। "पिंकी उसे बार-बार लिखती थी कि वह अमरीका ही आ जाए। वहाँ कई गुणा पैसा कमा सकती है, बच्चों को बढ़िया स्कूलों में पढ़ा सकती है। हिन्दुस्तान में एक टीचर की नौकरी में हमेशा हाथ तंग रहेगा।"1अन्य भारतीयों की भान्ति गुड्डो की भी यही मानसिकता थी कि विदेश पहुँचकर उसका जीवन सुविधाजनक और सुखदायी हो जाएगा। उसके जीवन के समस्त दु:ख-दर्द और कष्ट दूर हो जाएँगे। वहाँ रहकर वह ढेर सारा धन एकत्रित करेगी और अपने जीवन और परिवार को सुख-समृद्धि से भर लेगी। यह उसका भोलापन था या मूर्खता। वह इस बात से बिल्कुल अनभिज्ञ थी कि अमेरिका पहुँच कर उसे अनगिनत समस्याओं और कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि यह किसी भी प्रवासी के लिए सरल नहीं है कि विदेश पहुँचते ही उसका जीवन सरल हो जाएगा जैसी उसने कामना की हो या जैसा स्वप्न उसने देखा हो। "न्यूयार्क के जान एफ. कैनेडी एयरपोर्ट से टैक्सी में सतिन्दर और पिंकी के साथ उनके घर जाती हुई गुड्डो को ऐसा कोई उत्साह महसूस नहीं हो रहा था, जिसकी कल्पना करके उसने कितनी ही बार अनाम सुख महसूस किया था। कंकरीले पत्थरों की ऊँची-ऊँची इमारतों से सिले इस शहर ने एक अजीब उदासी और घुटन का अहसास दिया था।"2 उपन्यास में लेखिका ने नारी के वैधव्य जीवन को रेखांकित किया है। गुड्डो के पति की मृत्यु के बाद वह बच्चों के सहारे अपना सारा जीवन-यापन करती है। वैधतव्य होने के पश्चात् गुड्डो का अपने बच्चों के प्रति प्रेम और अधिक बढ़ जाता है। "पति की मृत्यु के बाद वह बच्चों से और भी ज्यादा जुड़ गई थी जैसे उन्हीं के जरिए से उसे अपनी जिन्दगी की सार्थकता खोजनी थी।"3 अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा और सुविधा देने के लिए वह विदेश में छोटे से छोटा काम करने के लिए तत्पर है। गुड्डो को जीवन-यापन के लिए कभी बच्चों को पढ़ाने का काम करना पड़ता है तो कभी अंडरग्राऊँड ट्रेन स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक अखबार-मैगज़ीन, सिगरेट वाले स्टाल पर और कभी उसे सेलगर्ल बनकर काम करना पड़ता है। "मन विरोध तो कर रहा था कि अखबार बेचने का काम इतने बड़े अफसर की बीबी करेगी ... पर हाथ में धेला तक तो था नहीं। शहर में आने-जाने का किराया तक तो वह पिंकी से लेती थी। गुड्डो ने शुरू कर दिया काम।"4 'हवन' उपन्यास में सुषम बेदी जी ने नौकरी में नस्लवाद जैसी गम्भीर समस्या को उठाया है। प्रवासी भारतीय चाहे कितने भी शिक्षित क्यों न हों लेकिन प्रवास में नौकरी के लिए नस्लवाद जैसी नीति का शिकार होना पड़ता है। जिसका वर्णन लेखिका ने बड़े ही वास्तविक रूप में किया है। उपन्यास में अनिमा को नौकरी लेते समय नस्लवाद अथवा भेदभाव की नीति से गुजरना पड़ता है। लेकिन अपनी योग्यता के बल पर वह नौकरी प्राप्त कर लेती है। यूनिवर्सिटी कैफेटेरिया में बैठी वह नौकरी पाने के लिए किए गए संघर्ष की पूरी कहानी अपनी सहेली नज़मा को सुनाती है, "इस कॉलेज की नौकरी के लिए भी इण्टरव्यू से पहले सब इसी तरह का शक मन में डाल रहे थे - एशियाई महिला और अंग्रेज़ी पढ़ाए अमरीकनों को। पर मेरे क्रेडेशियल सबसे बढ़िया थे। इनका खेल इन्हीं के पतों से खेलो, तब मिलती है सफलता।"5 विदेशों में छाए इस नस्लवाद का सही रूप तब देखने को मिलता है जब वह नौकरी पाने के लिए संघर्ष करते हैं। इसी नस्लवाद के दंश को अणिमा अरविंद को अमेरिका के हालातों से परिचित करवाते हुए कहती है, "अरविंद यह देश पहले कुछ खेप में आए उन गोरों का है जो यहाँ के शासक और नियम विधायक हैं। यहाँ की मल्टी-नेशनल कम्पनियाँ के मालिक है अभी तुम विद्या अर्जन कर रहे हो, कल नौकरी ढूँढ़ने जाओगे तो देखना। ओफ! कितनी दुविधाग्रस्त है इन राज करने वालों की नीतियाँ। एक तरफ यह देश दम भरता है कि संसार के हर इंसान को आज़ादी और तरक्की का माहौल देने के लिए इसका दरवाज़ा खुला है कि संसार के हर इंसान को आज़ादी और तरक्की का माहौल देने के लिए इसका दरवाज़ा खुला है ...।6 भारतीयों के सपने विदेश में बड़ी नौकरियों को पाने के होते हैं और इसे प्राप्त करने के लिए भाग-दौड़ भी बहुत करते हैं। किन्तु शीघ्र ही बड़ी कठिनाई से उन्हें निम्न स्तरीय नौकरियों पर आ जाते हैं। उपन्यास में गुड्डो को भी नौकरी के लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। "महीने भर में ही गुड्डो को पिंकी के घर से काफी दूर एक स्टोर में सेल्सगर्ल की नौकरी मिल गई।"7 सुषम बेदी जी ने जीवन-यापन के निम्न स्तर के साधनों की यथार्थ अभिव्यक्ति बड़ी सफलता से की है। इसी प्रकार से लेखिका ने अकेलेपन और बेगानेपन को बड़ी सज़ीवता से उजागर किया है। अकेलापन एक ऐसी भावना जो इन्सान को अंदर से कुरेदकर खा रहा हो। गुड्डो भी अकेलेपन के भय से ग्रस्त हो जाती है। जब वह अपनी बहन पिंकी के घर से अलग बेसमेन्ट में रहने लगती है तो अकेलेपन के कारण वह खुद को असुरक्षित महसूस करती है, "जब से बेसमेन्ट में आई थी, मुक्ति की चाह धीरे-धीरे अकेलापन बन रही थी। बहनों के घर लाख झगड़े हों, एक सुरक्षा की भावना थी। अब उसे हरदम डर बना रहता था।"8सुषम जी ने अकेलेपन से शिकार वृद्धों का चित्र भी उपन्यास में किया है। उपन्यास में गुड्डो की मुलाकात जब एक बूढ़े रिटायर से होती है जो अकेला रहता है। दो-दो बच्चे होने के बावजूद भी वह इस अकेलेपन के अभाव से ग्रस्त है। "बूढ़ा रिटायर होकर अकेला रहता था ... उसका एक लड़का और एक लड़की थे, दोनों कैलिफोर्निया में सैटल थे। तीन साल पहले उसकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। तब से बहुत अकेला हो गया था। दिन भर इधर-उधर घूमता, शॉपिंग और रोजमर्रा के छोटे-मोटे कामों को धीरे-धीरे निबटाते उसका पूरा दिन निकल जाता। जब धूप रहती तो वह घर में बैठता नहीं था। कहता था, अकेले उसका जी बहुत घबराता है।"9 इसके अतिरिक्त लेखिका ने पिंकी की सास के माध्यम से बुर्जुगों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। विदेशों में हर कोई अकेलेपन से ग्रस्त है, किसी के पास इतना समय नहीं है कि वह थोड़ा समय एक साथ बातचीत करें। पिंकी की सास गुड्डो से कहती है, "कोई जिन्दगी है यहाँ, न किसी के

साथ आना-जाना, न बोल-चाल सुबत सात बजे घर से निकल जाए। कल्लमुकल्ले कोई करे भी क्या? फिर न ठीक से खाणा बणाणा न खाणा। बस सैंडविच खा लेते हैं। बस एक टेम खाणा बने। ... मुझे तो समझ नहीं आता यहाँ रखा क्या है, जो सब यहीं आणा चाहें। करनाल में सभी मुझसे कहें कि बड़ी भागों वाली हैं आप, दोनो बेटे अमरीका में पैसा कमावें। मैं कहूँ यह तो और भी बुरा हुआ, दो-दो बेटे होके भी पास में कोई नहीं।"10 लेखिका ने भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता का चित्रण सत्यता से किया है। किस प्रकार भारतीय प्रवासियों के बच्चे पाश्चात्य सभ्यता के रंग में ढल जाते हैं जिसके कारण मूल्यों की टकराहट होना स्वाभाविक है। मूल्यों की इसी टकराहट का वर्णन लेखिका ने राधिका और उसके परिवार में दिखाया है। राधिका के पिता उसे भारतीय रीति-रिवाज़ों के अनुसार रखना चाहते हैं, लेकिन राधिका पूर्ण रूप से पाश्चात्य सभ्यता के रंग में ढल चुकी है, जिस कारण वह इस बात के लिए विद्रोह करती है और खूब चिल्लाते हुए कहती है, "आई टोल्ड देम डेज़ एगो दैट आई वाज़ गोइंग टू कम। व्हाट विल दे थिंक। आई कांट डिच देम।" राधिका के लिए सबसे ज्यादा अहमियत उन सहेलियों की थी। उन्हें कैसे नाराज कर सकती थी। वह उसका समाज था और उनकी दोस्ती राधिका के लिए उसकी सामाजिक स्वीकृति का सुबूत थी। सहेलियों के इशारे ही उसकी जिन्दगी की दिशाएँ थीं। उसे लगता कि ममी-डैडी को तो यहाँ का कुछ पता ही नहीं। हमेशा हिदायतें देते रहते हैं - ऐसे बात करो, ऐसे रहा करो, ऐसे कपड़े पहनो, यहाँ मत जाओ। अपना हिन्दुस्तानी रहन-सहन, रीति-रिवाज उस पर भी लादना चाहते हैं।"11 इतना ही नहीं राधिका पर पाश्चात्य परिवेश का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि वह अपना नाम भी लोरा बताती है, "राधिका ने अपनी सहेलियों को अपना नाम लोरा बतलाना शुरू कर दिया था। जो राधिका नाम जानती थीं, उनसे कहा कि वे अब उसे लोरा ही बुलाएँ।"12 मूल्यों की टकराहट के साथ-साथ सुषम जी ने सम्बन्धों की त्रासदी का चित्रण भी किया है। गुड्डो सम्बन्धों में सहजता और अनौपचारिकता की बहुत कमी महसूस करती है। भाई-बहनों के हाड़-माँस के, खून के रिश्ते भी अत्यन्त नजदीकी में एक साथ रहने पर, छोटी-छोटी बातों पर कड़वाहट से भरने लगते हैं। पिंकी और गुड्डो के रिश्ते में अत्यन्त प्रेम होने के बावजूद भी समय बीताने के साथ कटुता आने लगी। इतना ही नहीं पिंकी ने रात के समय ही गुड्डो और उसके बेटे राजू के साथ घर से चले जाने के लिए साफ-साफ कह दिया। "प्लीज बहन जी, हैव मर्सी ऑन मी। लेट मी लीव इन पीस। हमारी भी तो जिन्दगी है। अब और बोझ नहीं उठा सकते हम। ये रोज-रोज के झगड़े ... सतिन्दर का टेंशस ... आई कांट टेक इट ... फिर अपनी भरी हुई आवाज़ को कुछ संभलकर बोली, आय एम सॉरी, आय हैव टु बी रूड टू यू ... पर आपने भी तो हद कर दी। अब कितनी देर से तो कमा रही हैं आप। प्लीज, कहीं और नहीं कर सकती अपना इन्तजाम?"13 पिंकी के ऐसा बोलने पर गुड्डो आग बबूला हो जाती है और कहती है, "थू ... थूकती हूँ तेरे घर पर भगवान ही बदला लेगा जो सुलूक किया है तूने मेरे साथ ... तू क्या निकालेगी मुझे, मैं ही खुद जाती हूँ। जो लाया है वह ठिकाना भी बनाएगा। तूं कुछ नहीं कर सकती किसी को। भगवान है असली करने वाला। मैं फालतू में अहसान मानती रही तेरा। तू होती कौन है मुझे बुलाने वाली या निकालने वाली।"14

सुषम जी ने न केवल सम्बन्धों की त्रासदी का उल्लेख किया है बल्कि भारतीय पुरुष की मानसिकता का आंकलन बड़ी सत्यता के साथ किया है। भारतीय पुरुष विश्व के किसी भी परिवेश में क्यों न रह ले परन्तु उनकी मानसिकता में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं आता। जिसका वर्णन लेखिका ने उपन्यास में गुड्डो के दामाद के माध्यम से किया है। राकेश खुद को 'भारतीय दामाद' होने की विशेष श्रेणी से बाहर आना नहीं चाहता। इसलिए ससुराल में किसी प्रकार के कामकाज मे हाथ बँटाना उनकी सोच के प्रतिकूल हैं। इतना ही नहीं राकेश पति होने के नाते भी हमेशा यही चाहता है कि अनिमा उसका अनुकरण करे। कहने का तात्पर्य है कि अमेरिका में रह कर राकेश की मानसिकता भारतीय पुरुष की बनी रही, उसने अणिमा को कभी अपने साथी के रूप में नहीं देखा, केवल उसे अपनी सेवा करने वाली पत्नी के रूप में ही स्वीकार किया। वह अणिमा से कहता है, "मैंने रसोईघर में हमेशा अपनी माँ को ही देखा और अखबार हाथ में लिए आरामकुर्सी पर बाप को। सो वही होगा यहाँ भी। तुम सोचती हो कि मुझे यहाँ की बड़ी-बड़ी बातें सुनाकर लल्लू बना दोगी तो वह नहीं होने दूँगा मैं। तुम्हारा पढ़ने या नौकरी का रौब है, तो अपन को उससे कुछ नहीं लेना-देना। तुम बाहर कुछ करो या न करो, घर तो तुम्हीं को सँभालना है। यही क्या कम है कि बाहर जाने से मैं तुम्हें रोकता नहीं।"15

निष्कर्ष अत: यह कहा जा सकता है कि सुषम बेदी का यह उपन्यास एक साथ कई ऐसी सच्चाईयों को सामने लाता है, जिसमें विधवा जीवन का संघर्ष, रंगभेद, नौकरी में नस्लवाद, अकेलापन, वृद्धों का अकेलापन, मूल्यों की टकराहट, भारतीय सभ्यता पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, सम्बन्धों की त्रासदी तथा भारतीय पुरुष मानसिकता का चित्रण सत्यता से किया है। इस उपन्यास की यह विशेषता है कि अमेरिका में बसे प्रवासी भारतीयों की प्रामाणिक जानकारी देने वाला सशक्त और बेहद बाँधने वाला उपन्यास है। आज भूमंडलीकरण, वैज्ञानिक और तकनीकी युग में मानवीय सम्बन्धों, मूल्यों और संवेदनाओं का ह्रास हो रहा है। जिसका वर्णन सुषम जी ने यथार्थता से किया है।

000

संदर्भ- 1-हवन, सुषम बेदी, हिन्दी बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014, पृ. 9, 2-वही, पृ. 12, 3-वही, पृ. 11, 4-वही, पृ. 17, 5-वही, पृ. 92, 6-वही, पृ. 130, 7-वही, पृ. 21, 8-वही, पृ. 34, 9-वही, पृ. 19, 10-वही, पृ. 145, 11-वही, पृ. 67, 12-वही, पृ. 71, 13-वही, पृ. 26, 14-वही, पृ. 28, 15-वही, पृ. 151

शोध आलेख

(शोध आलेख)

डॉ. जयशंकर शुक्ल की कहानियों में स्त्री जीवन का यथार्थ

शोध लेखक : सपना,
डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय

सपना
(शोधार्थी), हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा (पंजाब) 144411
मोबाइल- 9876389022
ईमेल- sapnalpu64@gmail.com
डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय, सहायक अध्यापक, हिन्दी-विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा (पंजाब) 144411
ईमेल- anil.23226@lpu.co.in

शोध-सार मानव समाज कभी भी सामाजिक समस्याओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ है और न ही निकट भविष्य में रहने की संभावना दिखाई देती है, लेकिन यह निश्चित है कि संचार की क्रांति और आधुनिक समय में मोजूद शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता के परिणामस्वरूप, मनुष्य संवेदनशील हो गया और इन समस्याओं से अवगत है। डॉ.जयशंकर शुक्ल की लिखित कहानियाँ जो मानव-जीवन अपने आस-पास की समस्याओं को अपने लेखन का आधार बनाया गया। इनकी मुख्यरूप कहानियों में सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं, जो उनके द्वारा देखा, सुना और अनुभव किया गया, वही उनके उस परिवेश में वह अनेक परम्पराओं, मान्यताओं से टकरा करते दिखाई देते हैं। उनके द्वारा समाज में व्याप्त व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों, क्रिया-कलापों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली समस्याओं और मान्यताओं के आधार बनाकर ही अपनी कहानियों को एक सामाजिक रूप प्रदान किया हैं।

'भरोसे की आंच' कहानी संग्रह में कुल 14 कहानियाँ हैं, लेकिन ये कहानियाँ समाज की प्रमुख समस्याओं पर गहनता से विमर्श करने में पूर्ण रूप से सफल हैं। सामाजिक समस्याओं तक का मूल एवं समाधान इन कहानियों में पाए जा सकते हैं। शिक्षा, बेरोजगारी, दहेज-पीड़ा, छुआछूत, स्त्री-शोषण, स्त्री-चेतना, दलित-चेतना, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, डकेती, अपहरण, चोरी, नारी विक्रय, वैश्विकरण व आर्थिक असमानता इन तमाम सामाजिक स्थितियों एवं परिस्थितियों के माध्यम से उभरी बुराइयों एवं विमर्शों पर प्रकाश डाला गया हैं। राजनीतिक सामाजिक विकास से जुड़ा हुआ विषय हैं यह सीधे-सीधे मनुष्य जीवन की बुनियादी चिंताओं से जुड़ा है और सामाजिक संरचना में होने वाले क्षरण से इसका महत्त्व भी कम नहीं होता अन्धविश्वास तथा पुरातन परम्परा की बेड़ियाँ।

मुख्य शब्द:- यथार्थवाद, भारतीय नारी-जीवन, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों

डॉ. जयशंकर शुक्ल नए ग्रामीण-जीवन को वास्तविकता को समझाने को परत-दर-परत सामने रखा यथार्थ को व्यक्त करने में उन्होंने समाज में घटित होनेवाली घटनाओं को बिंब के रूप में दिखाने का प्रयास किया गया है। इस संदर्भ में डॉ. त्रिभुवन सिंह लिखते हैं कि - "सामाजिक का अर्थ है समाज वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण"।1 उन्होंने अपने समय की परस्थितियों से बखूबी परिचित थे। कहानियों में परिवार की दयनीय स्थिति का चित्रण उन्होंने बेबाक दंग से किया हैं। स्त्री चाहे किसी भी समाज या वर्ग की हो, उसे अनेक सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों, अन्धविश्वास तथा पुरातन परम्परा की बेड़ियों ने जकड़ रखा है। वह अपने सतीत्व तथा स्वाभिमान की रक्षा हेतु पुरुषसत्तात्मक समाज में सदैव संघर्ष करती हुई दिखाई पड़ती है। तत्कालीन समाज में प्रचलित बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति आदि कुप्रथाओं के जाल में सदैव स्त्री का ही शारीरिक, मानसिक व आर्थिक शोषण हुआ है, जिसका स्त्री यथार्थ का चित्रण डॉ. जयशंकर शुक्ल की अधिकांश कहानियों में मिलता है।

शिवकुमार मिश्र का कहना हैं कि - "यथार्थवाद की यह दृष्टि मूलत: दार्शनिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर स्थित एक शुद्ध दृष्टि है। इस दृष्टि से युक्त रचनाकार केवल सौन्दर्य की उपलब्धि के लिए यथार्थ-स्थितियों के आदर्शीकरण का न केवल विरोध करता है, अभिव्यक्ति की एक ठोस वस्तुगत शैली तथा विषयवस्तु के चुनाव में अति मानवीय, अति प्राकृतिक तथा विज्ञान द्वारा अमान्य घटनाओं, स्थतियों तथा तथ्यों के सम्पूर्ण बहिष्कार की माँग भी कर्ता हैं।"2 समाज निर्माण की प्रक्रिया प्रागैतिहासिक काल में प्रारम्भ हुई, यही से श्रम-विभाजन, परिवार,नातेदारी,विवाह आदि संस्थाओं का विकास हुआ। प्राचीन समय से ही समाज में स्त्रिओं का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा हैं। समाज में स्त्री, माता, भगिनी, प्रयेसी तथा अन्य रूपों में विधमान है, परिवार एवं समुदाय में उसके द्वारा कन्या, पत्नी एवं माँ का रूप में योगदान सर्वदा महत्त्वपूर्ण एवं गौरवशाली रहा हैं, तो वही स्त्रियों की सामाजिक अवस्था में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा हैं। इसी परिवर्तन के चलते आज नारी शोषण के संदर्भ में नारी-विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं परम्पराओं के प्रति असंतोष और उसकी मुक्ति का स्वर हैं। स्त्री जीवन हमेशा से ही

संघर्षों से घिरा रहा हैं। स्त्री को केंद्र में रखकर यदि इतिहास के पन्नों को पलट कर देखा जाए यह देखने को मिलता हैं कि हर युग में स्त्रियों को विभिन्न परिवेशों में संघर्षों के साथ जीवन यापन करना पड़ा। अनेक प्रकार की चुनौती एवं समस्याएँ उनके जीवन के इर्द-गिर्द घूमते नज़र आते हैं। स्त्री जीवन को पुरुषवादी समाज में स्त्रियों को बंधनों में बाँध कर अपने अधीन रखने क प्रयत्न हमेशा से करते आया है। 'भरोसे की आँच' कहानी में "पुरुषवादी मानसिकता इस समाज की संरचना में नकारात्मक सोच को बढ़ावा देने वाली प्रवृति को दर्शाती हैं। लड़कियों को वस्तु की तरह से प्रस्तुत करना मेरी समझ से उचित नहीं हैं। यह भोगवादी संस्कृति को ही पोषित करती हैं। नाप-तोल जैसी स्थितियों के सामने मर्यादा एवं संस्कार अपना अर्थ खो रहे हैं। इंचटेप लेकर समाज में निकला लड़का व उसके परिवार वाले सारी मर्यादाओं को तक पर रख देते हैं। रंग-रूप, शिक्षा-व्यवसाय, गुण-विशेषता की परख और इन सभी क्सोटियों पर खरा उतरने के बाद दहेज की माँग कहाँ तक प्रासंगिक हैं।"3 लेखक कहना चाहता हैं की आज भी समाज में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार नहीं मिल पाया हैं। उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो विवाह परम्परा नामक संस्था के प्रति संकट का भी सूत्रपात करती हैं। विवाह के समय सिर्फ लड़कों को ही क्यों अधिकार होता है कि उनको अपनी पसंद की लड़की चुनने के लिए। रंग-रूप, शिक्षा-व्यवसाय, गुण आदि इस तरह से लड़कियों को परखा क्यों जाता हैं? जिस तरह की परीक्षाओं से लड़कियों को विवाह कर लिए चुना जाता है। इस कहानी में रामपाल जिस तरह से एक के बाद एक लड़कियों को मना करता हैं और अपनी पसंद से ही लड़की से विवाह करने की चाह रखता है। लेकिन लेखक ने इस कहानी में आज के समाज का यथार्थ करने की कोशिश की हैं। "लड़की -'यह तो पेटू है। यह मेरा क्या ख्याल रखेगा? जब यहाँ पर ही इसने समोसों की प्लेट खाली कर दी और तो चाय के प्याले में एक घूँट चाय तक नही छोड़ी। शादी के बाद भी यही आदत रहेगी, तो मैं भूखी ही मर जाऊँगी।' सभी - 'जब तू साथ रहेगी, तो इन आदतों को तो अपने प्यार से बदल भी सकती हैं।"4

'दहेज दानव' कहानी में सुशीला कॉलेज में एम.एस.सी. की पढ़ाई करती हैं। सुशीला के पिता ने उसकी शादी मनोहर के बेटे सागर के साथ तय कर दी थी। दोनों पक्षों के बीच में लगभग दस लाख रुपये खर्च करने तथा एक कार की लेन-देन की बात होती हैं। शादी तय हो जाती हैं। दोनों तरफ से शादी की तैयारियाँ शुरु हो जाती हैं। शादी का दिन आ जाता हैं। बाराती मनोहर से पूछते कि दहेज में लड़के को कार मिलने वाली थी, हमें तो पूरे गाँव में कहीं कार नजर नहीं आ रही हैं। मनोहर लड़की के पिता भैरों को बुलाता हैं और कार के बारे में पूछता हैं। जो भी बातचीत होती हैं वह सब सुशीला सुन लेती हैं। और "सुशीला - (सागर की ओर इशारा करके) 'मेरे पिता जी ने भी तो मेरे लिए यह एक जानवर खरीदा था। लेकिन इस जानवर को बेचने वाला, यह मालिक अपने पास रखना चाहता है और पैसे भी अधिक माँगता है। आप ही बताएँ, क्या यह सही है या नहीं?"5 युवती का पिता उसे पति के घर विदा करते समय कुछ तोहफे देता था, लेकिन उसे दहेज नहीं, उपहार माना जाता था। मध्यकाल में इस पहलू को स्त्री धन के नाम से पहचान मिलने लगी। इसका स्वरूप भी बहुत के ही समान था। पिता अपनी इच्छा और काबिलियत के अनुरूप धन या तोहफे देकर बेटी को विदा करता था। इसके पीछे सोच यह थी कि जो उपहार वो अपनी बेटी को दे रहा है, वह किसी परेशानी में या फिर किसी बुरे समय में उसके और उसके ससुराल वालों के काम आएगा। "सुशीला - 'आप पिता नहीं, कसाई हैं। जैसे कसाई बकरे को इस उद्देश्य से खिलाता-पिलाता हैं कि जब वह मोटा-तगड़ा हो जाएगा, तब वह उसे मुँह माँगी कीमत पर बेच देगा। वही आपने भी किया।"6 मौजूदा दौर में दहेज व्यवस्था एक ऐसी प्रथा का रूप ग्रहण कर चुकी हैं जिसके तहत युवती की माता-पिता और परिवार वालों का सम्मान दहेज में दिए गए धन-दौलत पर ही निर्भर करता है, सीधे कहें तो दहेज को सामाजिक मन-प्रतिष्टा से जोड़ दिया गया हैं। वर पक्ष भी सरेआम अपने बेटे का सौदा करता है। प्राचीन परंपराओं के नाम पर युवती के परिवार वालों पर दबाव डाल कर उनको प्रताड़ित किया जाता हैं। इस व्यवस्था ने समाज के सभी वर्गों की अपनी चपेट में ले लिया हैं।

"सुशीला- 'आप कह रहे हैं कि मैंने इसे पढ़ाया-लिखाया, तो मेरे पिता जी ने भी तो मुझे पढ़ाया-लिखाया और इस योग्य बना दिया कि मैं किसी भी परिस्थिति से संघर्ष करने की लिया तैयार हूँ। उनके द्वारा किए गए खर्च को कौन देगा? असलियत में तो आपको मेरे पिता को इस सबका भुगतान करना चाहिए था। आपकी जैसी सोच वाले लोगों के कारण ही माँ-बाप अपनी लड़कियों को पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाने की बजाय, उनकी शादी करके उन्हें चूल्हा-चक्की में लगाना ही उचित समझते हैं। आप जैसे भेड़ियों के कारण ही लड़कियों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है।"7 दहेज प्रथा एक गंभीर सामाजिक बुराई है जिसके कारण समाज में महिलाओं के प्रति यातनाएँ और अपराध उत्पन्न हुए हैं और साथ ही भारतीय वैवाहिक पद्धति प्रदूषित हुई है। दहेज शादी के समय दुल्हन के ससुराल वालों को लड़की के परिवार द्वारा नकद या वस्तु के रूप में किया जाने वाला भुगतान है। सरकार ने दहेज प्रथा को मिटाने के लिये तथा बालिकाओं की स्थिति के उत्थान के लिए दहेज निषेध अधिनियम 1961 में बनाया था परन्तु सामाजिक प्रवृति के कारण उह कानून हमारे समाज में वांछित परिणाम देने में विफल रहा हैं। भारत में शादी के मौकों पर लेन-देन यानि दहेज की प्रथा आदिकाल से चली आ रही है। पहले यह वधू पक्ष की सहमति से उपहार के तौर पर दिया जाता था। लेकिन हाल के वर्षों में यह एक सौदा और शादी की अनिवार्य शर्त बन गया है। बीते कुछ दशकों में भारत के गाँवों में दहेज प्रथा काफी हद तक स्थिर रही है लेकिन यह जस की तस है। दहेज प्रथा न केवल अवैध है बल्कि अनैतिक भी है। इसलिये दहेज प्रथा की बुराइयों के प्रति समाज की अंतरात्मा को पूरी तरह से जगाने की

ज़रूरत है ताकि समाज में दहेज की माँग करने वालों की प्रतिष्ठा कम हो जाए। देश में लड़कियों की एक बेशुमार संख्या शिक्षित और पेशेवर रूप से सक्षम होने के बावजूद अविवाहित रह जाती है क्योंकि उनके माता-पिता विवाह पूर्व दहेज की माँग को पूरा करने में सक्षम नहीं हैं।

'मुक्ति मार्ग' कहानी में सामाजिक आर्थिक स्तर इस बात का अंदेशा देता है व्यक्ति कार्य करने के लिए कितना तैयार है। यह व्यक्ति की सयुक्त आर्थिक और समाजशास्त्रिय स्थिति का कुल माप है, जो उसकी आय, शिक्षा और रोजगार के आधार पर अन्य लोगों के मुक़ाबले व्यक्तिगत और पारिवारिक आर्थिक और सामाजिक स्थिति का व्याख्यान देता हैं। "पुरन सिंह - 'क्रूर तो थे, पर कलिंग युद्ध में हुए विनाश को देखकर अशोक का हृदय परिवर्तित हुआ और अकबर का जोधाबाई के सानिध्य में आने के बाद। लेकिन आपका तो किसी तरह से भी हृदय नही बदला। आपको इनकी दयनीय स्थिति, इनका भूख-प्यास से मरना भी प्रभावित नहीं कर सका।"8 बेरोजगारी आर्थिक समस्या भी है और सामाजिक दोनों ही रूपों में इसके परिणाम बहुत गंभीर और घातक होते हैं। व्यापक बेरोजगारी की दशा में राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा कम हो जाती है जिसका पूँजी निर्माण व्यापार-व्यवसाय और प्रगति आदि पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। यही नहीं सामाजिक सुरक्षा के अभाव में बेरोजगार व्यक्ति प्राय: चोरी, डकैती, बेईमानी, शराब खोरी आदि बुराइयों के शिकार हो जाते हैं। मूल तथ्य यह है कि कोई व्यक्ति जो सिर्फ एक उपभोक्ता है, परंतु उत्पादन नहीं है वह एक अच्छा और जिम्मेदार नागरिक नहीं हो सकता। उत्पादन होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सामान्य अर्थ में कार्यरत हो या किसी के अधीन कार्य करें।

कहानी 'बेगारी' में बालकों में सामान्य खेल-कूद अथवा पढाई की उम्र में उनको बेगारी जैसे शब्द की समझ न होते हुए ऐसी परिस्थितियाँ चिंता का कारण होकर उनकी मौलिकता पर प्रहार करती हैं और उन्हें अधिक कष्टों का सामना करना पड़ता हैं। खेलने-कूदने की उम्र में बच्चों को मानसिक विकास किसी दूसरी ही दिशा में चलता जा रहा हैं। समाज में बेगारी के कारण माता-पिता अपने बच्चों को सुरक्षित रखना भी चाहे तो नहीं रख पाते। इसी चिंता में दिन-रात डूबेरहते हैं। बच्चे समय से पहले वह बाते जान लेते हैं जो उनको समय से पहले जानने की जरूरत नहीं होती हों। "मोनू- 'वह तो बहुत दुष्ट है। एक दिन मेरे पापा ने बताया था की वह किसी के काम के पैसे भी उसे नहीं देता।' सोनू- 'हाँ! जो हमें पकड़ ले गए थे, वे भी कहते थे की तुम दोनों तो आज के लिए ही जा रहे हो, हमें तो कई साल हो गए हैं।'"9 हमारे समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं जिसमें एक बाल अपराध है यह एक विश्वव्यापी समस्या है। आर्थिक परिस्थितियों और बाल अपराध में घनिष्ट संबंध है। ज्यादातर बाल अपराधी वे बच्चे होते हैं जिनके माता-पिता की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती। कभी-कभी ऐसे घरों में माता-पिता स्वय अपराध लिप्त होते हैं।

समाज में महिलाएँ भी पुरुष के समान बराबर की हकदार हैं, इसलिए समाज का भी दायित्व बनता हैं कि वे महिलओं के प्रति सम्मान और आदर का भाव रखें, तब जाकर महिलाओं को समानता मिल पाएगी। महिलाओं को सम्मान के साथ-साथ सुरक्षा की भी जरूरत हैं। बेगारी कहानी में भी गाँव की नवविवाहिता बहुओं को प्रथम रात्रि ही सुरक्षा की जरूरत है लेकिन कोई भी पुरुष आपनी पत्नी की सुरक्षा नहीं कर पाते व नवविवाहिता नेता जी का शिकार बन जाती हैं। एक देवर आपनी भाभी की सुरक्षा के आपने बड़े भाई से बात करता है। "दलवीर - 'तू अभी छोटा है और शरीर से भी मुझसे कमजोर हैं। तूने मेरी आँखें खोल दी। तू देवर होकर जब आपनी भाभी का अपमान नहीं सह सकता, तो मेरे लिए लज्जा की और क्या बात हो सकती हैं। मैं उसका पति हो कर प्राणों का मोह लेकर घर पर बैठा रहूँ।"10 अपनी पत्नी के सम्मान के लिए दलवीर ही खुद नेता जी के पास रात्रि को जाने कि योजना बनाता है। नारी कदम-कदम पर माँ, बेटी, बहन और पत्नी बनकर अपने परिजनों के जीवन में खुशियाँ भरने का काम करती हैं इसलिए ही तो कहा गया है कि 'नारी एक और उसके रूप अनेक'। घर परिवार की रोनक स्त्री के बिना फीकी से पड़ जाती हैं तभी तो औरतों को घर की लक्ष्मी और अन्नपूर्णा कहा भी जाता है। समाज में स्त्रियों के साथ जो दुष्कर्महो रहे हैं उन्हें हमें रोकने का प्रयास करना चाहिए जिससे वर्तमान में स्त्री को सम्मान मिले ताकि ऐसे कुकर्मों से बची रहे। हम कल्पना कर सकते हैं उस दिन की, जब नारी निडर होकर पुरुषों के साथ विचरण करेगी और पुरुष निर्मल चित्त होकर स्त्री संग विकसित होगा। दोनों ही साथ-साथ ध्यान करेगें और एक नए समाज की नींव रखेंगे।

अंतत: वर्तमान युग की स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में एक विशेष परिवर्तन पड़ता हैं। जिसे स्वतंत्रोतर रचनाकारों ने अपनी कहानियों में रूपायित करने का प्रयास किया है। यह कहना अतिरेक नहीं होगा की डॉ. जयशंकर शुक्ल ने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण एक लेखक कम, भोक्ता अधिक होकर किया हैं। उनकी कहानियों को आधार बना कर संदर्भ में उनकी कहानियों को परखा गया हैं, जिसका एकमात्र उद्देश्य इनकी परस्पर विभिन्नता को परिलक्षित करना है।

000

संदर्भ-

1सिंह, डॉ. त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पेपरबैक प्रथम संस्करण, पृष्ट- 260, 2022, 2मिश्र, शिवकुमार, यथार्थवाद, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ट- 20, 2009, 3शुक्ल, डॉ. जयशंकर, भरोसे की आँच, (भरोसे की आँच), दिल्ली, साहित्य सहकार प्रकाशन, पृष्ट- 34, 2018, 4वही, (भरोसे की आँच), पृष्ट-34, 5वही, (दहेज दानव), पृष्ट- 54, 6वही, (दहेज दानव), पृष्ट- 54,55, 7वही, (दहेज दानव), पृष्ट- 55, 8वही, (मुक्ति मार्ग), पृष्ट- 61, 9वही, (बेगारी), पृष्ट- 100, 10वही, (बेगारी), पृष्ट- 102

(शोध आलेख)

आधुनिकता और मानवीय मूल्य

शोध लेखक : मोनिका चौहान, (शोधार्थी), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब
डॉ. रीता सिंह, (सहायक प्रोफेसर), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा,पंजाब

सारांश- मनुष्य के विचारशील होने के कारण वह नए-नए विचारों, अवधारणाओं और उपदेशों को जन्म देता है और यही विचार या उपदेश ही मूल्य है और जब यह मूल्य या अवधारणाएँ मानव जीवन व्यापन करने में सहायता करते हैं तो मानवीय मूल्य कहलाते हैं। मानवीय मूल्य हमारी संस्कृति, परंपरा, रीति रिवाज, आदर्शों, सामाजिक विश्वासों, मान्यताओं और प्रथाओं का मिश्रण है। मूल्य परिवर्तनशील है। जिस प्रकार समय, परिस्थितियाँ और परिवेश बदलता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य की मान्यताएँ और परंपराएँ भी बदलती हैं। इन परिवर्तन के कारण मूल्य में भी परिवर्तन आता है और नए मूल्यों का निर्माण होता है। स्वतंत्रता के बाद भारत के समाज की परिस्थितियों में तीव्रता से परिवर्तन आया, जिस के कारण मानवीय मूल्यों में भी परिवर्तन आया। मानवीय मूल्यों को प्रभावित करने वाले कई तत्व थे जैसे - शिक्षा, जनसंख्या, राजनीति, विज्ञान के विकास, पश्चिमी सभ्यता, बेरोजगारी, धार्मिक द्वेष, शहरीकरण, व्यक्तिवादिता, आर्थिक संकट, पैतृक या आनुवंशिक भूमि से अलगाव, आदि। आधुनिकता, भौतिकतावाद, शिक्षा, वैज्ञानिक प्रगति और पश्चिमी प्रभाव ने परंपरागत मानवीय मूल्यों का ह्रास किया है जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का जीवन खोखला हो गया है, अब मनुष्य को सिर्फ वस्तु और साधन के रूप में देखा जाता है। मनुष्य के जीवन में कुण्ठा, अनास्था और शून्यता आ गई है। आज मनुष्य के मन में लघुता, चिन्ता और मूल्यहीनता आदि वृतियों का जन्म हुआ है। जिसके कारण समाज में बहुत परिवर्तन हुआ है। मानवीय रिश्ते मनुष्य के लिए औपचारिकता बन कर रहे गए हैं और अर्थ केंद्रित हो गए हैं।

मोनिका चौहान
मकान नंबर- ईक्यू 132, पक्का बाग़,
जालंधर, पंजाब 14401
मोबाइल- 9464473099
ईमेल- chauhan.monika2261991@gmail.com
डॉ. रीता सिंह (सहायक प्रोफेसर),
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,
फगवाड़ा,पंजाब
ईमेल- reeta.22388/@lpu.co.in

प्रस्तावना- मनुष्य एक चिंतनशील और विचारशील प्राणी है। इसी कारण मनुष्य नए-नए विचारों, अवधारणाओं और उपदेशों को जन्म देता है और यही विचार या उपदेश मूल्य कहलाते हैं। मूल्य अपने आप में एक व्यापक शब्द है जो कई विचारों और अर्थों में प्रयुक्त होता है। "मूल्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'मूल' धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है जिसका अर्थ मोल देने योग्य - ल्यम्1 कीमत, मोल, लागत आदि।"1

मूल्य शब्द 'अंग्रेजी' के 'वैल्यू' शब्द का 'हिन्दी' रूपांतर है। इस शब्द की उत्पत्ति 'लैटिन' भाषा के 'वैलेर' शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ अच्छा, उपयोगी, उत्तम और उचित आदि है। इस प्रकार जो कुछ उचित है उत्तम है वही मूल्य है।

डॉ. नगेंद्र मूल्य को मानव जीवन के महत्त्व और मान के लिए आवश्यक मानते हुए इस तरह परिभाषित करते हैं - "मूल शब्द पदार्थ के आंतरिक गुण का वाचक है जिसके कारण लोग-जीवन में उसका महत्त्व और या मान होता है - कद्र होती है इसलिए उर्दू में मूल्य के पर्याय रूप में कद्र शब्द का प्रयोग होता है मनुष्य के कर्म अथवा माँग के फलितार्थ रूप में जिसका महत्त्व और या मान होता है, सामान्यता उसको ही मूल्य कहते हैं।"2

मनुष्य के जीवन व्यापन करने के लिए जो मान्यताएँ और मूल्य सहायता करते हैं, वही मानवीय मूल्य कहलाते हैं। मानवीय मूल्य वह संकल्पना है जिसका सीधा संबंध मनुष्य से होता है। मानवीय मूल्य समाज में एकता, समन्वय और संतुलन बनाए रखते हैं और मनुष्य के व्यवहार तथा समाज के कल्याण का स्रोत माने जाते है। मानवीय मूल्य से अभिप्राय उन मानवीय और नैतिक सद्गुणों, आदर्शों और संवेदनाओं से है जो मानव के व्यक्तित्व, जीवन और समाज की महत्त्वता को बढ़ते हैं और मर्यादित करते हैं। मानवीय मूल्य ही मनुष्य के महत्त्व को समाज में रेखांकित करते हैं। अगर यह मूल्य व्यवस्थित, अनुशासित और मर्यादित ना हो तो हमारा समाज कभी सभ्य नहीं हो सकता। सभ्यता और संस्कृति का आधार मानवीय मूल्य पर आधारित है। मानवीय मूल्य हमारी संस्कृति, परंपरा, रीति रिवाज, आदर्शों, सामाजिक विश्वास, मान्यताओं और प्रथाओं का मिश्रण है।

'धर्मवीर भारती' मानवीय मूल्य को समाज या मानव समूह द्वारा निर्मित मानते हुए लिखते हैं - "मानवीय मूल्य अन्ततोगत्वा मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से ही पनपते हैं और उसका विकास व्यक्ति के समूह या समाज की ओर होता है।"3

मूल्य परिवर्तनशील है। जिस प्रकार समय, परिस्थितियाँ और परिवेश बदलता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य की मान्यताएँ और परंपराएँ भी बदलती है। इन परिवर्तन के कारण मूल्य में भी परिवर्तन आता है और नए मूल्यों का निर्माण होता है।

भारत में नवजागरण काल स्वतंत्रता से पहले ही आरंभ हो चुका था। स्वतंत्रता के बाद भारत के समाज की परिस्थितियों ने इस परिवर्तन को ओर तेज कर दिया। इस तरह स्वाधीन भारत के मानवीय मूल्यों को प्रभावित करने वाले कई तत्व या कारण थे जैसे - शिक्षा, जनसंख्या, राजनीति, विज्ञान के विकास, पश्चिमी सभ्यता, बेरोजगारी, धार्मिक द्वेष, शहरीकरण, व्यक्तिवादिता, आर्थिक संकट, पैतृक या आनुवंशिक भूमि से अलगाव, आदि। "मानव विकास के लिए आधुनिकता के पास न तो कोई योजना है, न विचार। इन कारणों से आधुनिकता ने, विकास की उसकी अवधारणाओं ने तथा उसके द्वारा स्थापित आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं ने आज कई प्रकार के मूल्य संकट मानवता के सामने खड़े कर दिए हैं।"4

इन सब के कारण आधुनिक युग में समाज में अनेक शक्तियाँ पैदा हो रही हैं, जो पारंपरिक मानवीय मूल्यों को तहस-नहस कर रही हैं। इन सब ने परंपरागत मूल्यों जैसे सत्य, त्याग, प्रेम, श्रद्धा, दया, आस्था और परोपकार आदि को अव्यवस्थित कर दिया और इनकी जगह कुंठा, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, हताशा, घुटन, अनास्था, प्रतिशोध, भय, छल, पाखंड जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियाँ ने ले ली है। धर्मवीर भारती परंपरागत मूल्यों के बदलते स्वरूप के स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "पुराने मूल्य अब मिथ्या लगने लगे हैं। इस प्रकार की श्रद्धा, आस्था और करुणा अमानवीय वृत्तियों को जन्म देती है, वे मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने की बजाय उसको विकलांग बनाते हैं। जैसे श्रद्धा, आस्था, करुणा दया आदि मूल्य आज समाज में कम नजर आते हैं।"5

समय और परिस्थितियों के कारण जैसे-जैसे समाज बदलता रहता है, उसी प्रकार व्यक्ति की दृष्टि और विचार में भी परिवर्तन आता रहता है, जो व्यक्ति के मानवीय मूल्यों को प्रभावित करते हैं और उनमें बदलाव लाते हैं। यही बदलाव मानवीय-मूल्य के विकास या ह्रास का कारण बनते है। विज्ञान के विकास, आधुनिकता और वैश्वीकरण के कारण आज हमारे मानवीय मूल्यों में बहुत परिवर्तन आया है, जिसके कारण मूल्यों का परंपरागत रूप बदलता जा रहा है। आधुनिकता का विकास आरंभ में मध्ययुगीन की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक रूढ़िवादी मान्यताओं और व्यवस्थाओं के विरोध में हुआ था।

आधुनिकता के युग ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए किसी भी रूढ़ियों और मर्यादा को मानने से इंकार कर दिया, जो उसके व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रास्ते में आ रही थी। जिसके कारण हमारे मानवीय मूल्य प्रति दिन बदलते गए और उनका ह्रास होता गया। जीवन के विकास की इस दौड़ ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो परिवर्तन आया है, जिसने देश की सभ्यता और संस्कृति को अनेक रूप से प्रभावित किया है।

भौतिकता और आधुनिकता के युग में जहाँ एक ओर राष्ट्र और समाज के विकास को उत्साह है तो दूसरी और व्यक्तिवादिता और भोगवादिता की चकाचौंध के प्रति आकर्षण। मनुष्य जीवन के इस विकास ने समाज की धुरी को अस्त व्यस्त सा कर दिया है। जिसके फलस्वरूप मानवता लक्ष्यहीन हो गई और मानव सामाजिक, नैतिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का त्याग

करता जा रहा है।

भूमण्डलीकरण, आधुनिक, विज्ञान आदि से मानव के विचारों में बहुत परिवर्तन हो रहा है। आधुनिक मानव में पश्चिमी सभ्यता के कारण जो बदलाव आ रहे हैं, जिसका प्रमुख कारण पुराने मानवीय मूल्य का ह्रास है। भौतिकवादी दृष्टिकोण और सभ्यता ने भोगवादी संस्कार दिए है। मनुष्य को यह अहंकार हो गया है कि समाज और सारी प्रकृति पर अपना अधिकार कर सकता है, जिस के कारण सभी मानवीय संबंधों, जीवन मूल्यों का बाजारवाद हो गया है। काम-वासना, लोभ-मोह जैसे विकारों ने मानवीय अस्तित्व को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। इसके साथ विज्ञान के उदय ने मनुष्य की पुरानी मान्यताओं और मर्यादाओं पर गहरे सवाल उठा दिए थे और वह जिन धर्म ग्रंथों के नियमों को अपनी अंतरात्मा का आधार मानते थे, वह सभी निरर्थक हो गए। विज्ञान ने ईश्वरीय सत्ता और उसके प्रतिनिधियों के नियमों और नैतिक मूल्यों को मानने की जगह मानव को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। इन सब समस्याओं का एक प्रमुख कारण, यह है कि पुराने भारतीय जीवन मूल्यों और जीवन शैली जिसमें भोग और त्याग, धर्म और अर्थ, प्रेम और श्रेय भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय ही जीवन का आदर्श माना जाता था, उसको छोड़ कर आधुनिक और भौतिकवादी जीवन की चकाचौंध के कारण सभी आदर्श, मान्यताओं, संस्कारों और सभ्यताओं के बिना अमानवीय जीवन जी रहा है। वह अपने लोभ और लालच में सभी रिश्ते और सम्बन्धों से समाज से सिर्फ स्वार्थ की पूर्ति करता है। धर्मवीर भारती सांस्कृतिक, मानवीय तत्त्व के विघटन और वर्तमान युग में ऐसी स्थितियाँ से उत्पन्न संकट से प्रभावित होने वाले मानव जीवन के सभी पक्षों के बारे में लिखते हैं -

"सांस्कृतिक संकट या मानवीय तत्त्व के विघटन की जो बात बहुधा उठायी जाती रही है उसका तात्पर्य यही रहा है कि वर्तमान युग में ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं जिसमें अपनी नियति के इतिहास-निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूटे हुए लगते हैं-मनुष्य दिनोंदिन निरर्थकता की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है। यह संकट केवल आर्थिक या राजनीतिक संकट नहीं है वरन जीवन के सभी पक्षों में समान रूप से प्रतिफलित हो रहा है। यह संकट केवल पश्चिम या पूर्व का नहीं है वरन समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है।"6

आज मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार मूल्यों का प्रयोग करता है। भौतिकतावाद ने मनुष्य को उपभोक्ता बना दिया है और जिसके कारण मनुष्य को वस्तु के रूप में देखा जाता है। आधुनिकता, वैश्वीकरण और बाजारवाद के कारण मूल्य और संबंध अर्थ केंद्रित और स्वार्थपूर्ण हो गए है। नारी शिक्षा और नारी के बदलते परिवेश के कारण परंपरागत सामाजिक संरचना और मानवीय मूल्य में गहरा बदलाव आया है। नारी ने सदियों से समाज में चलती आ रही पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती दी है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव ने सामाजिक रिश्तों को खंडित कर दिया है, जिसके कारण पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों का बिखराव शुरू हो गया है।

आधुनिक जीवन की भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं, पीड़ाओं और कुण्ठाओं का एक कारण है आज जीवन के प्रति हमारा संकुचित और एकांगी दृष्टिकोण तथा उसमें निहित मूल्य-विरक्तता या विमुखता है। इस स्वकेन्द्रित, भौतिकवादी, मूल्य-विमुख जीवन दृष्टि से उत्पन्न 'मूल्य संकट और विघटन' की पीड़ा आज हम जीवन के सभी क्षेत्रों में झेल रहे हैं। पारिवारिक जीवन में आमोद-प्रमोद, हर्षोल्लास, परस्पर सहायता, प्रेम-आदर, आदि के भाव खत्म होता दिखाई दे रहा है और इनके स्थान पर ईर्ष्या, द्वेष, कलह, संघर्ष स्थापित होते जा रहे हैं।

मनुष्य के जीवन में तनाव, परिवारों का टूटना, स्त्री-पुरुष के संबंधों में मानसिक तनाव, घुटन, अकेलापन और व्यक्ति के अपने अस्तित्व की खोज की छटपटाहट देखी जा सकती हैं। आज मनुष्य केवल अपने स्वार्थ के बारे में सोचता है, अगर उसको किसी रिश्ते में कोई लाभ दिखाई नहीं देता तो वह उनको तोड़ देता है। यही आज समाज की हकीकत है।

निष्कर्ष - यह कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्य मनुष्य के जीवन के लिए बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। मानवीय मूल्य समाज में संतुलन बनाए रखते हैं और मनुष्य के व्यवहार तथा समाज के कल्याण का स्रोत है। अर्थात जीवन को उत्तम बनाने के लिए मनुष्य जिन मूल्यों और मर्यादाओं का पालन करता है, वहीं मानवीय मूल्य हैं। परंतु आधुनिकता, विज्ञान के विकास, भौतिकतावाद, वैश्विकरण, भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के कारण मानवीय मूल्य में जो विघटन, परिवर्तन, संक्रमण और संकट पैदा हुए हैं, उसने आज समाज और मानव जीवन को पूरी तरह बदल दिया है। इन सब से आज जीवन के प्रति हमारी दृष्टि स्वकेन्द्रित, भौतिकवादी और मूल्य-विमुख होती जा रही है।

मनुष्य के जीवन में तनाव, परिवारों का टूटना, स्त्री-पुरुष के संबंधों में मानसिक तनाव, घुटन, अकेलापन और व्यक्ति के अपने अस्तित्व की खोज की छटपटाहट इसी आधुनिकता की देन है।

000

संदर्भ- 1आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, वीर सेवा मंदिर, दिल्ली, पृ. 812, 2डॉ. नगेंद्र, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1974, पृ. 158, 3भारती, धर्मवीर, मानव-मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,1999, पृ. 50, 4त्रिपाठी, अजित नारायण, नैतिक और मानवीय मूल्य, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण - 2017, पृ. 26, 5भारती, धर्मवीर, मानव-मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,1999, पृ. 50, 6वहीं, भूमिका, 7डॉ. हरीश कुमार सेठी, जीवन-मूल्य विमर्श संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, 8त्रिपाठी, अजित नारायण, नैतिक और मानवीय मूल्य, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, प्रथम संस्करण - 2017,

(शोध आलेख)

भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन

शोध लेखक : दीपिका चौहान (शोधार्थी), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब
डॉ. रीता सिंह (सहायक प्रोफेसर), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

दीपिका चौहान
मकान नंबर- ईक्यू 132, पक्का बाग़, जालंधर, पंजाब 14401
मोबाइल- 9464473099
ईमेल- chauhan.deepika2261991@gmail.com
डॉ. रीता सिंह (सहायक प्रोफेसर), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा,पंजाब
ईमेल- reeta.22388/@lpu.co.in

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। जिसमें 900 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ हर क्षेत्र में अलग-अलग भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं। हर क्षेत्र की अपनी अलग भाषा है। भारतीय संविधान की अनुसूची 8 में पहले 14 भाषाओं को मान्यता दी गई थी। फिर लोगों की माँगों पर यह संख्या 14 से 22 कर दी गई। अब हमारी अनुसूची 8 में 22 भाषाओं को मान्यता प्राप्त है। जैसे असमिया, बाँग्ला, उड़िया, संस्कृति, उर्दू, गुजराती, कश्मीरी, हिन्दी, कन्नड़, तमिल, तेलुगू, कोंकणी, मराठी, पंजाबी, मलयालम, नेपाली, मणिपुरी, सिंधी, बोड़ो, डोगरी, मैथिली, संथाली आदि। इन्हीं भाषाओं के आधार पर कई राज्य अपने लिए अलग राज्य की माँग कर रहे हैं। यह माँग सर्वप्रथम तेलुगू भाषियों ने की थी। वह मद्रास से भिन्न अपना अलग राज्य चाहते थे। जिसके कारण 1953 में उनके लिए अलग राज्य आंध्र प्रदेश बनाया गया। जिसके बाद कई राज्य ने भाषा के आधार पर अपने लिए अलग राज्य की माँग करनी शुरू कर दी। जिसके कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु ने 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किया। इस आयोग में सैय्यद फजल अली, हृदयनाथ कुजरु तथा सरदार के.एस. तीन सदस्य थे। इस आयोग 1955 में अपनी सिफारिशें की थी और 1956 को अपनी रिपोर्ट को पारित किया गया था। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में 14 भाषाएँ 91प्रतिशत से ज्यादा लोग बोलते हैं इन्हीं भाषओं के आधार पर राज्य पुनर्गठग अधिनियम 1956 के आधीन 14 राज्य और 6 केंद्र शासित प्रदेशों निर्माण किया गया था। बाद में इस अधिनियम को संशोधित करके इसमें 5 राज्य और 1 केंद्र शासित प्रदेश को शामिल किया गया जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और चण्डीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश। आज भी कई राज्य भाषा के आधार अपने लिए अलग राज्य की माँग कर रहे है।

आंध्र प्रदेश - तेलुगू भाषियों ने सबसे पहले अपने लिए अलग राज्य की माँग की थी। इस माँग को जी.वी.पी. समिति (जवाहर लाला नेहरु, वल्लभ भाई पटेल, पट्टाभि सीतारमैया) ने

मानने से इंकार कर दिया था। इस समिति का कार्य भाषा के आधार पर नए राज्य की माँग कर रहे राज्यों के तथ्यों को खोजना था। इस समिति के इंकार करने के बाद तेलुगू भाषियों ने आंदोलन शुरू कर दिया जो 1952 में पोट्टी श्री रामलू द्वारा आमरण अनशन से शुरु हुआ था। वह तेलुगू भाषियों के लिए मद्रास से अलग अपना राज्य चाहते थे। 56 दिन के बाद उनकी मृत्यु होने के कारण इस आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया जिस के कारण 1 अक्तूबर 1953 को तेलुगू भाषियों के लिए एक अलग राज्य आंध्र प्रदेश का निर्माण किया गया।

गुजरात और महाराष्ट्र- बम्बई में आरम्भ में 4 भाषाएँ बोली जाती थी गुजराती, मराठी, कूची और कोंकणी आदि। इसमें गुजराती और मराठी भाषी ज्यादा थे। जिसके कारण गुजराती और मराठी भाषी बम्बई से अलग अपना राज्य चाहते थे। 1960 में गुजरात की माँग करने वालों ने महा गुजरात आंदोलन चलाया और वहीं महाराष्ट्र की माँग करने वालों ने संयुक्त महाराष्ट्र समिति का गठन किया। इन आंदोलनों के बाद बम्बई पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार 1 मई 1960 को बम्बई को दो हिस्सों में बाँट के गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों का निर्माण किया गया। गुजरात में गुजराती और कूची भाषी थे और महाराष्ट्र में मराठी और कोंकणी भाषी थे।

पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश - महाराष्ट्र और गुजरात के अलग होने बाद पंजाब में भी भाषा के आधार पर अलग राज्य बनाने के आंदोलन शुरु हो गया था। 1950 से 1960 तक अकाली दल द्वारा पंजाबी सूबा आंदोलन चलाया गया। इस आंदोलन के बाद पंजाब को पंजाब पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार 1 मई 1966 को तीन हिस्सों में बाँटा गया। पंजाबी भाषियों के लिए पंजाब का पुनर्गठन किया गया। हरियाणवी और हिन्दी भाषी दक्षिणी और पूर्वी क्षेत्रों के लिए नवीन राज्य हरियाणा का निर्माण किया गया। उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों के पहाड़ी भाषियों को हिमाचल प्रदेश में शामिल किया गया। चण्डीगढ़ को पंजाब और हरियाणा दोनों की राजधानी बनाया गया जो एक केंद्रशासित प्रदेश है।

वह क्षेत्र भाषा के आधार पर अलग राज्य की माँग कर रहे है

तुलुनाडु - 1956 में जब राज्यों का पुनर्गठन किया गया तब दक्षिण केरना (तुलु नाडु) जो मद्रास प्रेसीडेंसी में था और उत्तरी केरना जो बम्बई प्रेसीडेंसी में था उसको अलग करके मैसूर राज्य का निर्माण किया गया। इसका नाम बाद में बदलकर कर्नाटक कर दिया गया और कासगोड केरल का पुनर्गठन करके एक नए राज्य का निर्माण किया। इन दो राज्यों में अधिकत्तर तुलु भाषी थे। जिनको तुलुवा भी कहा जाता है। जिन्होंने तुलुवास के लिए आंदोलन शुरु कर दिया था यह आंदोलन जय तुलुनाड के नाम से जाना जाता है। यह तुलु भाषा के आधार पर अपना अलग राज्य़ चाहते थे। इस राज्य में उत्तरी केरल और दक्षिणी कर्नाटक के तुलु भाषी क्षेत्र शामिल है। यह अपने राज्य के लिए मैगलोर और उडुपी जैसे शहरों की माँग कर रहे हैं। जनसंख्या - लगभग 50 लाख, राजधानी - मैगलोर (संभावना है) भाषा - तुलु, कोड़वा, कोंकणी, कन्नड़, मलयालम, अंग्रेजी।

मिथिला राज्य - मिथिला राज्य की माँग मैथिली भाषियों द्वारा की जा रही है। यह उत्तरी बिहार का एक क्षेत्र है। इसमें झारखण्ड के कुछ हिस्से भी शामिल हैं। मिथिला राज्य बनाने का आंदोलन सर्वप्रथम डॉ. लक्ष्मण झॉ द्वारा 1950-52 में शुरू किया गया था। जो अब तक चल रहा है अब यह आंदोलन मिथिला स्टूडेट यूनियन द्वारा चलाया जा रहा है। यह एक छात्रों का संगठन है जो मैथिली भाषा के आधार पर अपने लिए राज्य की माँग कर रहे है। मैथिली भाषा को 2003 में संविधान की अनुसूची 8 में स्थान दिया गया था पर इसे बिहार में वह स्थान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। मैथिली भाषा अंगिका और बज्जिका को मिला कर बनी है। इस क्षेत्र में कुल 25 लोकसभा की सीटें हैं जिससे छोटे राज्य का निर्माण हो सकता है।

जनसंख्या - लगभग 7 - 8 करोड़, राजधानी - मुजफ्फरपुर, दरभंगा, भगवानपुर (संभावना है), भाषा - मैथिली, हिन्दी, अंग्रेजी।

मगध राज्य - मगध राज्य की माँग मगही भाषा के आधार पर की जा रही है। मगध भारत का प्राचीन राज्य है जो पश्चिम मध्य बिहार राज्य है। वर्तमान समय में मगध को दक्षिण बिहार के नाम से जाना जाता है। मगही भाषा की बोली खोरठी है जो उत्तरी झारखण्ड़ में बोली जाती है। मगध राज्य में दक्षिण बिहार और उत्तरी झारखण्ड़ के हिस्से को शामिल किया जाएगा। जनसंख्या - 4 करोड़, राजधानी - पाटलिपुत (पटना) (संभावना है), भाषा - मगही, हिन्दी, अंग्रेजी।

भोजपुर राज्य - पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के भोजपुरी भाषियों द्वारा भोजपुर राज्य की माँग की जा रही है। यह आंदोलन अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन द्वारा किया जा रहा है। इस में झारखण्ड़ और छत्तीसगढ़ के भोजपुरी भाषी क्षेत्र भी शामिल है। भोजपुर राज्य में उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड़ और छत्तीसगढ़ को मिलाकर 32 जिले शामिल किए जाएगे। जनसंख्या - 10 करोड़, राजधानी - गोरखपुर, वाराणसी (संभावना है), भाषा - भोजपुरी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी।

अवध/अयोध्या राज्य - उत्तर प्रदेश के अवधी भाषियों द्वारा अवध राज्य की माँग की जा रही है। प्राचीन काल में अवध एक स्वतंत्र राज्य था जो कोशल नाम से जाना जाता था। 1877 में ब्रिटिश सरकार ने संयुक्त प्रांत के लिए अवध को आगरा के साथ जोड़ दिया था। 1947 में भारत की स्वतंत्र के बाद इस क्षेत्र को उत्तर प्रदेश में शामिल कर दिया गया। इस लिए अवधी भाषी फिर से अपने लिए अलग राज्य की माँग कर रहे है। अवधी भाषा को मान्यता मिली है या नहीं यह एक विवादित मुदा है। अवधी भाषा हिन्दी की एक भाषा है। अवध राज्य शायद एक हिन्दी राज्य होगा।

जनसंख्या - 4 करोड़ से अधिक, राजधानी - लखनऊ (संभावना है), भाषा - हिन्दी, अवधी, उर्दू, अंग्रेजी।

ब्रज राज्य - ब्रज पश्चिमी उत्तर प्रदेश का क्षेत्र है। ब्रज भाषा हरियाणा और राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में भी बोली जाती है। वहाँ के ब्रज

भाषी भाषा के आधार पर अपने अलग राज्य की माँग कर रहे है। वर्तमान में जिसे ब्रज क्षेत्र कहते है वह दक्षिण में ग्वालियर (मध्य प्रदेश) उत्तर में पलपव (हरियाणा) पूर्व में एटा (उत्तर प्रदेश) और पश्चिम में भरतपुर (राजस्थान) को छुता है। ब्रज भाषा को संविधान में अब तक कोई मान्यता प्राप्त नहीं है। साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा का बहुत महत्त्व है क्योंकि ब्रज भाषा का प्रयोग भक्ति काल और रीति काल दोनों में हुआ है। पर अब यह भाषा लुप्त होती जा रही है और इस को सुरक्षित करने के लिए कोई कार्य नहीं किया जा रहा। ब्रज भाषा हिन्दी की एक भाषा है जो अवधी भाषा के बहुत निकट है। ब्रज राज्य शायद एक हिन्दी राज्य होगा। जनसंख्या - लगभग 5 करोड़, राजधानी - गाज़ियाबाद (संभावना है), भाषा - हिन्दी, ब्रज, उर्दू, अंग्रेजी।

बुंदेलखण्ड राज्य - बुंदेली भाषा के आधार पर बुंदेलखण्ड राज्य की माँग की जा रही है। यह मध्य भारत का प्राचीन क्षेत्र है। 1956 से पहले बुंदेलखण्ड एक अलग राज्य था पर बाद में इस को मध्य भारत में शामिल कर दिया गया। यह पहाड़ी क्षेत्र अब उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बीच विभाजित है इसका अधिक क्षेत्र मध्य प्रदेश में है। बुंदेलखण्ड एक अविकसित क्षेत्र है। इस क्षेत्र को विकसित करने का लिए एक अलग राज्य की जरुरत है। इस राज्य में 7 उत्तर प्रदेश और 6 मध्य प्रदेश के जिले शामिल हो सकते है। जनसंख्या - लगभग 1 करोड़, राजधानी - झांसी, ग्वालियर (संभावना है), भाषा - बुंदेली, बघेली, हिन्दी, अंग्रेजी।

मेवाड़ राज्य - मेवाड़ या मेवाड़ी पश्चिमी भारत में दक्षिण मध्य राजस्थान राज्य का एक क्षेत्र है। इस में मेवाड़ी भाषा बोली जाती है। इसमें राजस्थान के 4 जिले भीलवाड़ा, चितौरगढ़, राजमंद, और उदयपुर शामिल है और मध्य प्रदेश और गुजरात के कुछ जिले भी शामिल है। भारत की स्वतंत्रता से पहले यह उदयपुर राज्य के नाम से जाना जाता था। मेवाड़ी भाषा के आधार पर अपना अलग राज्य चाहते है। जनसंख्या - 1.7 करोड़ से ज्यादा, राजधानी - उदयपुर (संभावना है), भाषा - मेवाड़ी, हिन्दी, अंग्रेजी।

मालवा राज्य - मालवा पश्चिम भारत का एक ऐतिहासिक क्षेत्र है जो ब्रिटिश शासन तक प्रशासनिक क्षेत्र बना रहा पर भारत की स्वतंत्रता के बाद इसको मध्य भारत में शामिल कर दिया गया बाद में मध्य प्रदेश राज्य में मिला दिया गया। वर्तमान में ऐतिहासिक मालवा क्षेत्र पश्चिमी मध्य प्रदेश और पूर्वी राजस्थान के कुछ हिस्सों में शामिल है। इन क्षेत्रों में मालवी भाषा बोली जाती है। मालवी राजस्थान भाषा की एक बोली है। जनसंख्या - 2 करोड़ से अधिक, राजधानी - इंदौर (संभावना है), भाषा - मालवी, हिन्दी, अंग्रेजी।

कोंगु नाडु राज्य - तमिलनाडु के पश्चिम क्षेत्र को कोंगु क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र को कोंगु मण्डल और कोंगु बेल्ट भी कहा जाता है। कोंगु क्षेत्र में दक्षिणी पूर्वी कर्नाटक और पूर्वीत्तर केरल के कुछ हिस्से भी शामिल है। कोंगु नाडु की माँग 1980 से चली आ रही है। यह माँग द्रविड़ आंदोलन के नेता कोवई चेझियन द्वारा की जा रही थी। वह तमिलनाडु से अलग अपना राज्य चाहते है। कोंगु क्षेत्र के लोग कोंगु तमिल भाषा बोलते है। यह तमिल भाषा की एक बोली है। कोंगु राज्य में तमिलनाडु के कोयबटूर, तिरुपुर, इरोड, समेल, नीलगिरी, करुर, धर्मपुरी, और नमक्कल, जिले, कर्नाटक के चामराजनगर जिले के कुछ हिस्से और केरल के पलक्कड़ जिले के कुछ हिस्से शामिल है। यह एक केंद्र शासित प्रदेश हो सकता है। जनसंख्या - 2 करोड़ से अधिक केंद्र शासित प्रदेश (संभावना है) , भाषा - तमिल, कोंगु तमिल, अंग्रेजी।

बोड़ोलैंड राज्य - द प्लेन्स ट्राइबल्स कोउसिल ऑफ असम (PTCA) द्वारा की गई उदयाचल राज्य की माँग के इंकार होने के बाद 2 मार्च 1987 में उपेद्रनाथ ब्रह्म की अध्यक्षता में अखिल बोड़ो छात्र संघ के द्वारा अलग राज्य की माँग के लिए आंदोलन शुरु किया गया था। यह संगठन असम से अलग अपना राज्य बोड़ोलैंड चाहते थे और संविधान की छठी अनुसूची में बोड़ो कहारी कुछ अन्य जनजातियों को शामिल किया जाना। बोड़ोलैंड एक प्रशासनिक क्षेत्र है जो पूर्वीत्तर असम का एक स्वायत्त क्षेत्र है। यह भूटान और अरुणाचल प्रदेश के ब्रह्म पुत्र नदी के उत्तरी किनारे के चार जिलों से बना है। नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोड़ोलैंड (उग्रवादी संगठन बोड़ो सिक्यूरिटी फोर्स) संगठन के आने के बाद यह आंदोलन हिंसक हो गया था। यह संगठन भारत के अलग अपना स्वतंत्र देश चाहता है। बोड़ो भाषा को 2003 में संविधान की अनुसूची 8 में मान्यता प्रदान की गई थी। जनसंख्या - 3 करोड़ से अधिक, राजधानी - कोकराझार (संभावना है) , भाषा - बोड़ो, असमिया, अंग्रेजी।

000

संदर्भ - 1बाजपेयी, अम्बर, "भाषा के आधार पर हुआ था देश में राज्यों का गठन, कैसे 65 साल में 14 से 28 हुए राज्य, केंद्र शासित प्रदेश", टी.वी.9 भारतवर्ष, मई 30, 2022, 2आज तक, "राज्यों के पुनर्गठन से जुड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी और तथ्य", नई दिल्ली, अक्टूबर 13, 2014, 3एनडी, टीवी इंडिया, 58 साल पहले एक थे दो राज्य - गुजरात और महाराष्ट्र, नई दिल्ली, मई 1, 2018, 4सिंह, वीरेंद्र, "भाषा के आधार पर पंजाब का विभाजन कब हुआ," फरवरी 23,2018, 5" तुलु नाडु" विकीपीडीया, 6जेतानत, जेयश, "बिहार से अलग मिथिला राज्य बनाने के लिए पटना में प्रदर्शन", लाइव हिंदुस्थान, पटना, दिसंबर 4, 2022, 7डीएनए इडिया, "भोजपुरी भाषी द्वारा अलग राज्य की माँग" नवंबर 19, 2013, 8"अवध" विकीपीडीया, 9ब्रज - भारतकोश, ज्ञान का हिन्दी महासागर, 10आदित्य, "बुंदेलखण्ड राज्य बनाने के 10 कारण", बुंदेलखण्ड.xyz . फरवरी 2,2021, 11शर्मा, इमान, "मेवाड़ी भाषा का संकट: वक्ता के रवैये में बदलाव पर अध्ययन" विश्वविद्यालय कश्मीर, पेज - 5, 12मालवा, विकीपीडीया, 13कुमार, सेल्वा, "कोंगु नाडु के राज्य की आवश्यकता, द कम्यून" जुलाई 19, 2021, 14तिवारी, प्रभाकर मणि, "क्या है, बोडोलैंड आंदोलन का पूरा मसला," DW, फरवरी 17, 2020,

शोध आलेख

(शोध आलेख)

महाभोज उपन्यास में वर्णित राजनैतिक यथार्थ: एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण

शोध लेखक : आलिया जेसमिना, शोधार्थी हिन्दी विभाग, तेजपुर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, असम

सारांश- हिन्दी कथा साहित्य के स्वातंत्योत्तर महिला कथाकारों ने जिस तरह से सामाजिक विद्रूपताओं, विषमताओं, विकृतियों को अपने कथा साहित्य के माध्यम से कलात्मक अभिव्यक्ति देने की सफल प्रयास की है, उनमें से 'मन्नू भंडारी' का नाम बहुचर्चित है। विषय-वैविध्य और बेबाक अभिव्यक्ति से भरपूर समाज सापेक्ष विषयों को आपने अपने कथा साहित्य में चित्रित की है। न केवल उपन्यास साहित्य बल्कि हिन्दी के अन्य गद्य विधाओं में भी मन्नू भंडारी ने सृजनात्मक लेखन कार्य किया है। इनकी उपन्यास साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है 'महाभोज'(1976ई.)। यह एक राजनैतिक पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यास है। 'महाभोज' भारत के आपातकालीन स्थिति के बाद देश की परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों एवं तत्कालीन शासन व्यवस्था का खुला चित्रण है। इसमें चुनाव के दौरान आम जनता की त्रासदी, मोह-भंग एवं नई पीढ़ी के विडम्बना के यथार्थता को अभिव्यंजित करने का प्रयास की है। तत्कालीन परिस्थितियों का हमारे समाज के साथ-साथ साहित्य में भी कैसे प्रतिफलित हुआ है, उसका स्पष्ट संकेत 'महाभोज' उपन्यास में मुखर होते हैं। जिस तरह से इसमें राजनैतिक यथार्थ का चित्रण हुआ है, उसमें जिस परिवेश का प्रतिफलन हुआ है, वह किसी-न-किसी रूप से हर एक पीढ़ी के सन्दर्भ में प्रासंगिक प्रतीत होता है। जिसमें शोध कार्य के साथ-साथ अन्य लेखन कार्य भी होना बेहद जरूरी प्रतीत होती है। प्रस्तुत आलेख के माध्यम से यह स्पष्ट करने की कोशिश की गई है कि किस तरह से उस दौर के भारतीय राजनैतिक परिस्थितियाँ समाज को प्रभावित करते थे और उसके परिदृश्य समाज के बदलती मूल्य की पृष्ठभूमि तैयार करते थे। अत: आगे इस विषय को विस्तृत रूप से आलोचना करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द- स्वातंत्योत्तर, विद्रूपता, विषमता, विकृतिया, राजनीति, राजनैतिक यथार्थ, आपातकालीन स्थिति, तत्कालीन शासन व्यवस्था, जनता की त्रासदी, करुणा, नई पीढ़ी की नियति, प्रासंगिक, बदलाव आदि।

मूल आलेख- साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध परिपूरक है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य के माध्यम से समाज की विहंगम दृष्टि को प्रतिबिंबित किया जा सकता हैं। समाज में घटित हर एक घटनाओं को साहित्यिक व कलात्मक लेखन शैली के माध्यम से पाठक वर्ग तक संप्रेषित किया जाता हैं। साहित्यकार अपने आस-पास घटित तमाम पहलुओं को देखता है, उसे अनुभव करता है और उसी को रचना कौशल के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। इसीलिए तत्कालीन परिवेश-परिस्थितियाँ साहित्य में सापेक्ष परिलक्षित होती है। इस दृष्टिकोण से मन्नू भंडारी प्रसिद्ध एवं सशक्त कथाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कथाकार लेखिका 'मन्नू भंडारी' हिन्दी साहित्य में अग्रिम स्थान के हकदार रही है। इन्होंने अपने लेखन कौशल से हिन्दी प्रेमियों के बीच अत्यंत लोकप्रियता हासिल की है। आपने समय-समय पर तमाम विषयों को लेकर उसे साहित्य प्रज्ञा में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त की है। इस दृष्टि से उपन्यास साहित्य में आपका महत्त्वपूर्ण उपन्यास है-'एक इंच मुस्कान'(1962ई.),'आपका बंटी'(1971ई.),'महाभोज'(1979ई.)। इन उपन्यासों में लेखिका ने अलग-अलग महत्त्वपूर्ण विषयों को चित्रण करने की सफलतापूर्वक प्रयास की है। 'आपका बंटी' उपन्यास में पारिवारिक समस्याओं के साथ-साथ पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में आए समस्याओं को उजागर किया गया है। कैसे पति-पत्नी के तलाकशुदा होने के बाद उसका प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, उसका मार्मिक चित्रण मन्नू भंडारी ने किया है। दाम्पत्य संबध का विघटन और साथ ही पारिवारिक मूल्य विघटन बड़े ही संवेदनशीलता के साथ उपन्यासों के कथाओं में स्पष्ट की है। 'महाभोज' उपन्यास पारिवारिक समस्याएँ या पति-पत्नी के बीच संबंधों के विघटन से हटकर एक अलग विषय वस्तु को सामने उजागर की है। इस सन्दर्भ में स्वयं लेखिका के कथन को देखा जा सकता है-"मन्नू भंडारी का महाभोज उपन्यास इस धारणा को तोड़ता है कि महिलाएँ या तो घर-परिवार के बारे में लिखती हैं, या अपनी भावनाओं की दुनिया में ही जीती-मरती हैं। महाभोज विद्रोह का राजनैतिक उपन्यास है"।1 इसी दृष्टि से परिपूर्ण

आलिया जेसमिना, शोधार्थी
हिन्दी विभाग, तेजपुर केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, असम, 784028
ईमेल- aliyajesmina12@gmail.com

'महाभोज' उपन्यास भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील है।

'महाभोज' उपन्यास की कथानक का आधार समकालीन राजनैतिक परिवेश रहा है। यह उस दौर के यथार्थ को बयान करता है, जब पूरे देश में राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मची हुई थी। लेखिका के शब्दों में-"महाभोज उपन्यास भ्रष्ट भारतीय राजनीति के नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करता है"।2 प्रस्तुत उपन्यास में राजनैतिक नेताओं के स्वार्थ, द्वेष, ईर्षा, विश्वासघात, शोषण, भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण आदि का वर्णन हुआ है। राजनैतिक समस्याओं पर केन्द्रित यह उपन्यास विकृत राजनैतिक प्रवृत्तियों के साथ विघटित हो रहे मानवीय मूल्य का कच्चा-चिटठा खोलता है। 'महाभोज' उपन्यास के सन्दर्भ में गोपाल राय का कथन है -"महाभोज समकालीन राजनीतिक परिवेश से संबंध उपन्यास है, जिसमें राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता, शैतानियत और नैतिक सड़ान्ध का अत्यंत यथार्थ और सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है"।3 इसी तरह महाभोज उपन्यास मूल्यहीनता को चित्रित करने वाले एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें राजनीतिक विद्रूपता और घिनोनेपन से उत्पन्न परिस्थितियों एवं विसंगतियों की व्यथा-कथा का यथार्थपरक वर्णन हुआ है। सरोहा नामक गाँव के हरिजन बस्ती के युवक 'बिसेसर' उर्फ़ 'बिसू' की हत्या हो जाती है और उस हत्या के पश्चात का परिवेश को मार्मिकता के साथ उपन्यासकार ने उजागर किया है। उसी हत्या के सन्दर्भ में उपन्यास के प्रारंभ में ही कहा गया है कि-"लाबारिस लाश को गिद्ध नोच-नोचकर खा जाते हैं"।4 उक्त कथन से जो कथानक आगे बढ़ती है, उसी से पूरे उपन्यास में व्यक्त राजनैतिक यथार्थ का पर्दाफाश हो जाता है। जिसके कथानक पूरे उपन्यास में नया मौड़ लाकर खड़ा कर देता है। इसमें एक तरफ यदि उपन्यासकार ने सत्ताधारी राजनैतिक नेताओं के दोहरे व्यक्तित्व का खुला ब्यौरा सामने लाया है तो दूसरी तरफ गरीब हरिज़न मज़दूर और अन्य गाँववालों की दु:ख, दर्द और अन्याय, शोषण आदि के शिकार हो रहे व्यक्तित्व का मार्मिक चित्रण किया है। राजनीति में आए हर एक चरित्र न्याय व्यवस्था को लेकर, जनताओं के पक्ष में तमाम तरह के बात करते हैं, परन्तु करनी पटल पर वहीं लोग अपने स्वार्थ के अनुसार काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसी अमानवीय, मूल्यहीनता, चापलूसी आदि का स्वर मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में उजागर किया है। इस सन्दर्भ में मधुरेश का कथन है-"भारतीय समाज में, राजनीतिक जीवन में घुसपैठ करती मूल्यहीनता और तिकड़म को 'महाभोज' गहरी संलग्नता के साथ उद्घाटित करता है। आज राजनीतिक व्यक्ति समाज और साहित्य का सबसे बड़ा खलनायक है। दा साहब के दोहरे व्यक्तित्व को, उनके अन्दर के शैतान और ऊपर के सत रूप को, मन्नू भंडारी ने उजागर किया है। बिसेसर, बिंदा और हीरा उस दलितवर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं जिनके शव पर राजनीति के गिद्ध जीम रहे हैं"।5 इस कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, 'महाभोज' उपन्यास में चित्रित वे पात्र जो किसी-न-किसी रूप से राजनीति से जुड़ा हुआ है और जिन्होंने अपने कर्त्तव्य के दौरान केवल मगरमच्छ के आँसू बहायाँ है। दा साहब, सदाशिव अत्रे, जोरावर, सुकुल बाबू, लखनसिंह, लोचनभैया, सक्सेना, दत्ता बाबू आदि सभी पात्र को कहीं-न-कहीं किसी रूप में अन्याय और षडयंत्रों में सबसे ऊपर है। दा साहब, जो मुख्यमंत्री के साथ-साथ गृह-मंत्रालय का प्रभार भी लिए हुए है, और इनका जो व्यक्तित्व यहाँ प्रस्तुत हुआ है, उससे तत्कालीन राजनीति के भ्रष्ट नेताओं का स्पष्ट स्वरूप सहज ही सामने आता है। दा साहब के व्यक्तित्व निम्न कथन से ओर स्पष्ट हो जाता है-"कैसी बात करते हो लखन? थोड़ी सख्त आवाज़ में दा साहब ने कहा, पुलिसवालों का काम है कि बयानों और प्रमाणों के आधार पर रिपोर्ट तैयार करें और ईमानदारी से करें। इसी बात की तनख्वाह दी जाती है उन्हें। ऊपर से आदेश थोपा जाएगा तो न्याय कैसे करेंगे? इन्हीं स्थितियों के खिलाफ लड़ने के लिए तो इतनी बड़ी क्रान्ति की हमने! और तुम!"।6 प्रस्तुत कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि, दा साहब जो पूरे कारनामे के पीछे, अर्थात हरिज़न बस्ती में आग लगाने से लेकर बिसू की मृत्यु तक के सभी कारणों से जुड़े हुए है और जोरावर जो बिसू की हत्यारा है, जिसे भी दा साहब भीतर-ही-भीतर बचाने की कोशिश करता है और उन्हें सरोहा गाँव के प्रतिबंधी के रूप में चुनाव के लिए खड़ा भी कर देते हैं। परन्तु साधारण जनता के सामने वे महात्मा गाँधी जैसे महानुभवों के आदर्शों को पालन करते हुए, ईमानदारी,नैतिकता, न्याय की बड़े-बड़े बात करते हैं। बिसू की हत्या केवल इसीलिए कराया जाता है क्योंकि उन्होंने हरिज़न बस्ती में लगाईं गई आग के सन्दर्भ में सबूत इकट्ठा कर ली थी। वह हरिज़न बस्ती को शोषण मुक्त, अत्याचार, अनाचार से मुक्त करना चाहते थे। वे जिन सबूतों को इकट्ठा की थी वह सत्ता व्यवस्था के खिलाफ़ थे। शायद यही कारण है कि, बिसू को अपने जीवन से ही हाथ धोना पड़ गया। दा साहब को यह पता होने पर भी कि, बिसू की हत्या किसने की है, फिर भी उनका कथन है कि-"देखों सिन्हा, मैं चाहता हूँ कि घटना की सही-सही तहकीकात हो। कोई क्या कहता है, इसकी चिंता मत करो। मेरे कहने की भी चिंता मत करो। बस अपना फ़र्ज़ निभाओं, ईमानदारी और सच्चाई के साथ"।7 यही दा साहब आगे बिसू के हत्यारा जोरावर को न केवल जेल होने से बचाते हैं, बल्कि उन्हें आनेवाले चुनाव में प्रतिनिधि के रूप में खड़ा कर जीता भी देते हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण हम दा साहब और जोरावर के कथन से देख सकते हैं, जैसे-"अब जो भी है आपको ही सुलटना है। हमारे साथ कुछ उल्टा-सीधा नहीं होना चाहिए, बस....आपकी जिम्मेदारी है यह।" (पृष्ठ-148), जोरावर और कहते हैं कि-"आप देख लीजिए दा साहब, यह फैल-फुल का मामला हम नहीं जानते। बस, हमारे साथ ऐसा-वैसा कुछ नहीं होना चाहिए, यह आपकी जिम्मेदारी है।.....और ससुरे उस बिंदा को भी ठीक करवाओं। क्या फैल मचा रखा है उसने?"।8 दा साहब और जोरावर के बीच होने वाले कथन से यह राजनीति में अपराधीकरण और

राजनीति में गुंडागर्दी का खुला चित्रण सामने आती है। एक तरफ बिसू की हत्या और दूसरी तरफ जो भी उसके खिलाफ सबूत इकट्ठा करके उसे सामने लाने की कोशिश करता है उसे ही रास्ते से हटाने की गुंडागर्दी करता है तो कभी-कभी पुलिस ऑफिसर को तैनात कर दिया जाता है। इस सन्दर्भ में हम सक्सेना को देख सकते हैं, जिन्होंने ईमानदारी से कारवाई की है और जब मुज़रिम को सजा देने की बारी आती है तो उसे उस पद से हटाया जाता है, उसे मज़बूर कर दिया जाता है कि वह वहा से हट जाय। उसके बदले किसी ऐसे पुलिस ऑफिसर को लाया जाता है, जो सत्ताधारी नेताओं के पक्ष में आकर झूठ-मुठ के रिपोर्ट तैयार कर देते हैं, और गुनाहगारों के जगह बेगुनाहगारों की सजा सुनाई जाती है। इससे पूरे सत्ता व्यवस्था से लेकर राजनीति में न्याय व्यवस्था तक के कठघरे में आम-जनता को चापलूसी, भ्रष्टाचारी, अनैतिक, अमानवीय मूल्यहीनता, स्वार्थ से परिपूर्ण व्यक्तित्व वाले नेताओं के चक्कर में हमेशा शोषण की शिकार होना पड़ता है। यहाँ तक कि राजनीति में सत्ताधारी कुर्सी पर बैठे नेताओं के इशारों पर देश की अखबारों में खबरें छापती है। उसी कारण उन्हें अलग से प्रमोशन भी दिलाया जाता है। जिस पत्र-पत्रिकाओं और जनसंचार माध्यम को संविधान ने चौथे स्तंभ की दर्जा दी है, जिससे समाज के तमाम मूल्य व्यवस्था जुड़ी हुई है, वहीं मूल्य विघटन में उच्च स्थान पर है। इस सन्दर्भ में एक कथन को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है कि-"रेडियो साला कल से दा साहब का भाषण ही गुहार रहा है, जैसे और कोई ख़बर ही नहीं रह गई दुनिया में! जनसंचार के साधनों को अपना भोपूँ बनाकर रख दिया। लगता है कि 'मशाल' के दत्ता बाबू को भी अच्छी डोज दे दी गई है, अब दा साहब का कीर्तन ही हुआ करेगा उसमें भी"।9 अत: के इस कथन से यह साफ़ है कि राजनीति में अराजगता, विद्रूपता, विषमता, अनैतिकता आदि फैलाने में जनसंचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बदलते परिवेश, परिस्थितियों में तमाम मूल्यबोध के बदलाव में पत्र-पत्रिका तथा अन्य जनसंचार माध्यम भी एक कारण है। जिसे राजनीति अपराधीकरण ने और अधिक भ्रष्ट बना दिया है।

दा साहब के अलावा 'महाभोज' उपन्यास में एक और महत्त्वपूर्ण पात्र है 'सुकुल बाबू', जो पूर्व मुख्यमंत्री थे और साथ ही सरोहा गाँव की विधानसभा सीट के प्रत्याशी है। इनके लिए 'बिसू' की मौत एक जड़िया बन गई है। गाँववालों से वोट माँगने के लिए और अपने विरोधी पक्ष को नाकाम और कमजोर पक्ष साबित करने के लिए। यह भी राजनीति में आएँ उन तमाम व्यक्तित्व वाले चरित्र है, जिन्होंने 'बिसू' की मौत को लेकर गाँववालों के सामने झूठे आँसू बाहाएँ। इस सन्दर्भ में उपन्यासकार मन्नू भंडारी के कथन को देख सकते हैं-"लग रहा था जैसे बिसू हीरा का बेटा नहीं, सुकुल बाबू का अपना बेटा है और उसकी मौत का दु:ख, उनका अपना दु:ख है-जिसे बटाने के लिए वे गाँववालों से याचना कर रहे हैं"।10 परन्तु स्वयं सुकुल बाबू को भी यह भली-भांति ज्ञात है कि वे गाँव वालों के सामने जो भी भाषण प्रदान कर रहे हैं, जो भी दु:ख-दर्द बाँट रहे हैं, वे बिलकुल झूठ है, दिखावा है, उसके पीछे केवल मात्र सत्ता की कुर्सी है। वे स्वयं यह भी महसुस करती है कि, राजनीति में अब ईमानदारी, नैतिकता आदि का विघटन हो चूँकि है। अत: इससे हटकर कुछ करने की प्रयास वह अंत तक करता रहता है। 'सुकुल बाबू' के बारे में लेखिका की कथन से यह ओर स्पष्ट हो जाता है, जैसे-"उन्हें खुद लगने लगा कि राजनीति गुंडागर्दी के निकट चली गई है। जिस देश में देव-तुल्य राजनेताओं की परंपरा रही हो, वहाँ राजनीति का ऐसा पतन! कभी-कभी मन में एकदम वैराग्य जाग जाता है, पर राजनीति में जहाँ तक अपने आप को धंसा लिया, वहाँ से निकल भी तो नहीं सकते। निकलने का सीधा अर्थ है-हार मान लेना"।11 इसी तरह सुकुल बाबू का दोहरे व्यक्तित्व का भी खुला चित्रण भी लेखिका ने बड़े ही बेहद ढंग से की है। जब हम राजनैतिक यथार्थता की बात करते हैं तो राजनीति में जिस तरह से बढ़ते मूल्यहीनता तथा उसमें अपराधीकरण बढ़ रहा है, उससे साधारण जनता की सत्ता व्यवस्था और न्याय व्यवस्था से विश्वास उठ गया है। जिस तरह से बिसू की मौत को दो बिरोधी दलों के नेतागणों ने अपने-अपने पक्ष के थाली में भोज की तरह परोसा है और जोरावर के जगह बिसू की मौत के कारण बिंदा जो जेल भिजवा दी गई। इससे राजनीति में पाखण्डता, चापलूसी, दुर्नीति, गुंडागर्दी, अमानवीयता आदि साफ़ झलकती है। इसी तरह सु-प्रसिद्ध लेखिका मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास के माध्यम से राजनैतिक यथार्थता को जिस तरह से संवेदनशील एवं सशक्त रूप से कथावस्तु को वर्णन किया है, वह अत्यंत सराहनीय है।

निष्कर्ष- उक्त विवेचनों से यह कहा जा सकता है की 'महाभोज' अत्यंत सशक्त एवं महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। आज के परिवेश-परिस्थितियों में 'महाभोज' प्रासंगिक है। लेखिका ने जिस तरह से प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से भारतीय राजनीति की सच्चाईयों को यथार्थता के साथ उधेड़कर रख दिया है, वह प्रसंशनीय है।

अंत में समग्रता के साथ यह कहा जा सकता है कि हिन्दी कथा साहित्य में राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित यह रचना विशिष्ट आयामगत उपलब्धि है, साथ ही कलात्मक दृष्टिकोणों से अत्यंत सशक्त, सुगठित तथा प्रभावशाली है।

000

संदर्भ- 1 भंडारी.मन्नू, महाभोज. नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, अंतिम पृष्ठ, 2वहीं, अंतिम पृष्ठ, 3राय.गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ संख्या-341, 4 भंडारी.मन्नू, महाभोज.नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2016, पृष्ठ संख्या-7, 5मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास.नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या-201, 6भंडारी.मन्नू, महाभोज.नई दिल्ली: राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 2020, पृष्ठ संख्या-20, 7वहीं, पृष्ठ संख्या-40, 8वहीं, पृष्ठ संख्या-149, 9वहीं, पृष्ठ संख्या-77, 10वहीं, पृष्ठ संख्या-28, 11वहीं, पृष्ठ संख्या-26

(शोध आलेख)

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित संवेदना- 'सलाम' कहानी संग्रह का विशेष संदर्भ

शोध लेखक : बिभूति बिक्रम नाथ शोधार्थी, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय

सारांश- यह आलेख ओमप्रकाश वाल्मिकी के साहित्यिक क्षेत्र के भीतर दलित संवेदनशीलता की सूक्ष्म अभिव्यक्तियों की पड़ताल करता है, जिसमें 'सलाम' नामक उनके कहानी संग्रह पर विशेष ध्यान दिया गया है। हिन्दी साहित्य के एक प्रमुख दलित लेखक, ओमप्रकाश वाल्मिकी जी न केवल दलित समुदाय द्वारा सामना की जाने वाली कठोर सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं को दर्शाते हैं, बल्कि उनके अनुभवों के मनोवैज्ञानिक आयामों को भी उजागर करते हैं। इस अध्ययन में वाल्मिकी की कहानियों में अंतर्निहित दलित चेतना की आयामों को उजागर करने, पहचान, हाशिये पर जाने और प्रतिरोध के बहुमुखी पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए एक विषयगत विश्लेषण का उपयोग किया गया है। वाल्मिकी अपने साहित्यिक योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं, जो भारत में दलित समुदाय के अनुभवों और संघर्षों को उजागर करते हैं। कहानी संग्रह "सलाम" सहित उनकी रचनाएँ दलित जीवन के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक आयामों पर प्रकाश डालती हैं, उनकी चुनौतियों और आकांक्षाओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। वाल्मिकी की कहानियों में दलित संवेदनशीलता एक प्रमुख विषय है, जो हाशिये पर पड़े लोगों को आवाज देने की उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। 'सलाम' कहानी संग्रह दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण प्रदान करती हैं, जिसमें समुदाय के सामने आने वाली रोजमर्रा की चुनौतियों, भेदभाव और उत्पीड़न को दर्शाया गया है। कथाएँ उन सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं पर आधारित हैं जिनका सामना दलित करते हैं, जो पाठकों को उनके अस्तित्व की जटिलताओं की एक झलक प्रदान करते हैं।

बीज शब्द- दलित, सामाजिक, आर्थिक, भेदभाव, मनोवैज्ञानिक, प्रतिबद्धता, अंतर्निहित, संवेदनशीलता, संवेदना

मूल विषय- ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के अनुसार 'दलित' शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है। "भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया, वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवन यापन करने के लिए बाध्य जन जातियाँ और आदिवासी घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आते हैं। सभी वर्गों की स्त्रियाँ दलित हैं, बहुत कम श्रम मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक बँधुआ, भी दलित की श्रेणी में आते हैं।" (ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ 14) भारतीय लेखक और कवि ओमप्रकाश वाल्मिकी दलित साहित्य में अपने महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाएँ, विशेष रूप से आत्मकथात्मक उपन्यास "जूठन" और लघु कहानी संग्रह "सलाम", भारत में दलित समुदाय के अनुभवों और संघर्षों पर प्रकाश डालती हैं। "सलाम" लघु कहानियों का एक संग्रह है, जो सामाजिक असमानता, भेदभाव पर प्रकाश डालता है। 'सलाम' कहानी में छुआछूत और प्राचीन रूढ़िगत रीति-रिवाजों को दर्शाया गया है। कहानी का मुख्य पात्र हरीश है, जो रहता तो शहर में है लेकिन अपनी शादी के लिए अपने गाँव आता है। उनके साथ कमल उपाध्याय नाम का दोस्त भी आता है। जुलूस स्कूल के बरामदे में रुक गया है। लोगों में हलचल मची हुई है। कमल को सुबह-सवेरे चाय पीने की आदत है। इसलिए वह सुबह उठकर गाँव की चाय की दुकान पर चला जाता है। उसे एक दुकान मिल जाती है। चाय वाले की परेशानी ये है कि ये शख्स चूहड़ों की बारात लेकर आया है और इसलिए चाय देने से मना कर देता है। कहानीकार ने इस कहानी में जातिवाद और छुआछूत की समस्या का चित्रण किया है कि आज भी गाँव में दलितों

बिभूति बिक्रम नाथ
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर - 784028, असम
ईमेल- bibhutibikram.nath2.8@gmail.com

को सम्मान नहीं मिलता है। आज भी सार्वजनिक स्थानों पर उन्हें सम्मान नहीं दिया जाता। दरअसल, कमल उपाध्याय एक ब्राह्मण हैं। लेकिन चाय बेचने वाला उसे चूहड़ा समझकर चाय नहीं देता। क्योंकि चाय बेचने वाले को पता है कि वह चूहड़ों के साथ आया है। वह समझाने की कोशिश करता है कि वह एक ब्राह्मण है लेकिन चाय बेचने वाले ने उसे चाय देने से इनकार कर दिया। कमल उपध्याय जाति से ब्राह्मण हैं, फिर भी उन्हें छुआछूत का सामना करना पड़ा, तब उन्हें दलित होने का दर्द समझ में आया। उन्हें आज भी याद है जब बचपन में वह अपने दलित दोस्त हरीश को घर में लेकर आए थे। तब माँ ने हरीश से पूछा बेटा तुम्हारे पापा क्या करते हैं? तब हरीश ने जवाब दिया कि नगर पालिका में सफाई कर्मचारी हैं। कमल की माँ क्रोधित हो जाती है। और वह कमल को थप्पड़ मारती है। और वह कहती है कि उन्हें वापस घर में मत लाओ लेकिन कमल नहीं मानता है। हरीश के जाने के बाद पूरे घर को गंगाजल से धोया जाता है। इस कहानी में कहानीकार ने गाँव की अपमानजनक रीति-रिवाजों का चित्रण किया है। क्योंकि जब दलितों के घर में शादियाँ होती थीं। उस समय सभी लोग दूल्हा-दुल्हन का स्वागत करने यानि उनके पैर छूने के लिए ऊँची जाति के लोगों के घर जाते थे। अगर वो नहीं जाते तो बड़ी मुश्किल हो जाती, हरीश के ससुर ने हरीश से कहा कि गाँव जाकर हमें बधाई देनी है, तो उन्होंने मना कर दिया लेकिन हरीश और उसकी पत्नी गाँव में बधाई देने नहीं जाते, यह बात पूरे गाँव में फैल जाती है। उस गाँव के उच्च वर्ग के लोग गुस्से से लाल हो गए। क्योंकि ऊँची जाति के लोगों के पास सलाम करने न आने को अपना अपमान समझते थे। इस कहानी में कहानीकार ने दलितों के भीतर जागृत हुए स्वाभिमान का चित्रण किया है। क्योंकि जब दलित लोग प्रणाम करने या पैर छूने जाते हैं तो उन्हें छोटे-बड़े सभी के पैर छूने पड़ते हैं. वह काम अच्छा नहीं है और लेखक ने यह भी दर्शाया है कि ग्रामीण सवर्ण लोग दलितों के साथ किस तरह का व्यवहार करते हैं। दलित को स्वच्छ एवं सुशिक्षित होना चाहिए। दलित अब आत्मसम्मान के साथ जीना चाहता है। उन्हें अब ऊँची जाति की गुलामी स्वीकार नहीं है। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'सलाम' कहानी संग्रह के आवरण पृष्ठ में लिखते हैं - इस संग्रह (सलाम) की कहानियों में वस्तु जगत का आनंद नहीं, दारुण दु:ख भोगते मनुष्यों की बैचेनी हैं।

'बैल की खाल' कहानी में दलितों की त्रासदी का चित्रण है। गाँव के बीच कुएँ के पास बूढ़ा बैल मर गया था, इसलिए पंडित गिरिज मोहन दौड़कर आए और बैल को निकालना जरूरी हो गया। उसे काले और भूरे की तलाश थी। वे दोनों मरे हुए बैल को खींचकर बाहर निकालते हैं। कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि जब बैल जीवित था तो सभी उसका उपयोग करते थे। लेकिन जब कोई मर जाता है तो वह अशुद्ध कैसे हो जाता है? समाज में फैली इस मिथ्या धारणा पर कड़ा प्रहार किया गया है। काले और भूरे दोनों की ज़िम्मेदारी थी कि वे मरे हुए जानवर को गाँव से बाहर ले जाएँगे और उन्हें उसकी कोई कीमत नहीं मिलेगी, केवल खाल निकालकर शहर में बेच देंगे। जब वे दोनों गाँव में आते हैं तो पंडित उन दोनों के साथ दुर्व्यवहार करता है। कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि ये दलित जो मरे बैलों को उठाकर बाहर ले जाते हैं, फिर खाल बेचकर जो पैसे मिलेंगे उससे वह अपने परिवार के लिए जरूरी चीजें खरीदेगा यानी जब तक बैल नहीं मरेगा, उसे रोजगार नहीं मिलेगा। यदि बैल नहीं मरता तो उसके परिवार को भूखा सोना पड़ता है। ये दोनों जानवरों की खाल निकालने में माहिर हैं। उन्होंने यह कला अपने पिता से सीखी थी, जब वह खाल निकालते थे तो उन्हें गिद्धों और कुत्तों से लड़ना पड़ता था। खाल को हटाने के बाद उन्होंने खाल पर मिट्टी फैला दी। कुछ सूखने के बाद वह शहर की ओर जाना चाहता है। इसलिए सड़क पर आकर बैठ जाते हैं और सवारी की प्रतीक्षा करते हैं। जब तक बैल मर नहीं जाता, तब तक उनका चूल्हा नहीं जलता। दो माह बाद भी उनका चूल्हा नहीं जला, तो उन्हें उम्मीद जगी है। इस प्रकार कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से दलितों के यातनापूर्ण जीवन का चित्रण किया है। काले और भूरे चाहते हैं कि जानवर मर जाए लेकिन ट्रक द्वारा घायल हुए बछड़े को बचाना चाहते हैं। यह उनके अंदर बसी इंसानियत का प्रतीक है। कहानीकार ने यह भी स्पष्ट किया है कि इन लोगों के पास जानवरों की खाल उतारने के अलावा कोई दूसरा काम नहीं है, इस काम से परिवार की प्राथमिक जरूरतें पूरी नहीं होती हैं, ये अपने बच्चों को स्कूल में दाखिला नहीं दिलाते हैं, महीनों तक घर में चूल्हा नहीं जलता है।

'कहाँ जाए सतीश?' यह कहानी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में ऊँची जातियों द्वारा शोषित दलित समुदाय की दुर्दशा का वर्णन करती है। इस कहानी का मुख्य पात्र सतीश है। वह सुबह स्कूल जाता है और दोपहर से लेकर रात 9-10 बजे तक बल्ब फैक्ट्री में काम करता है। रहने के लिए वह सुदर्शन पंत के मकान में किराये पर रहते हैं। पंत की नन्ही बेटी उन्हें अपना भाई मानती है। सतीश उस परिवार में घुलमिल गया। एक दिन मिसेज पंत के घर दो अनजान पुरुष और महिलाएँ आते हैं। ये दोनों भी बुजुर्ग हैं। थके हुए हैं। उसने गंदे और मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए हैं। ऐसा लग रहा है जैसे वह लंबी बीमारी से उबर गए हों। श्रीमती पंत ने उनसे पूछा कि वे किससे मिलना चाहते हैं। फिर वह लोग दुखी होने लगे। उसने खुद ही अपने गंदे तौलिये से अपनी आँख का कोना पोंछ लिया। श्रीमती पंत नहीं चाहते थे कि वे दोनों यहाँ बैठें। सतीश हमें छोड़कर यहाँ रहने के लिए आ गया। हम चाहते हैं कि वह घर जाए और पढ़े-लिखे। कुछ काम करे लेकिन सतीश घर छोड़कर यहाँ आ गया है। हम इसी शहर में रहते हैं। मिसेज पंत को अपनी पड़ोसी मिसेज गुप्ता से डर लगता है क्योंकि वो गंदे लोग उनके दरवाजे पर खड़े थे। वह नहीं चाहती थी कि मिसेज गुप्ता हमारे बारे में कोई खबर फैलाएँ। जब मिसेज पंत को पता चला कि सतीश भंगी है, लेकिन वह हमारे घर में रहता है, तो उसने हमसे अपनी जाति क्यों छिपाई? मेरी बेटी ने उसका जूठा खाना भी खाया। सतीश ने हमें

धोखा दिया है। जब उसकी बेटी सोनू आती है तो वह घर के अंदर चली जाती है। सड़क पर बंधे तार पर सतीश की पैंट और शर्ट सूख रही थी। श्रीमती पंत को लगा कि कपड़ों से बदबू आने लगी है, इसलिए उन्होंने बाँस से कपड़े उठाये और उन्हें कूड़े में फेंक दिया। सतीश वापस नहीं आया लेकिन उसके माता-पिता फिर भी जाने से इनकार करते हुए वहीं बैठे रहे। सतीश पिछले छह माह से वहाँ रह रहा था। उनके कमरे में एक छोटी सी खाट डालने के बाद हिलने-डुलने की जगह नहीं थी और उनके पास नाम मात्र का सामान था। कुछ किताबें, दो जोड़ी कपड़े, चटाई, चादर और रजाई। आज वह वापस नहीं लौटा। स्कूल से सीधे फैक्ट्री चला गया। इस कहानी की कथानक भारतीय समाज व्यवस्था में प्रचलित सवर्णों का दलितों के ऊपर शोषण को दर्शाता हैं।

'गोहत्या' कहानी एक दलित युवक की कहानी है, जो अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है, जिस पर गोहत्या का आरोप लगाया जाता है और सजा दी जाती है। कथावाचक ने इस कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि हिंदू धर्मावलंबी गाय को माता मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं, लेकिन जब भी गाय की हत्या की जाती है तो इसे घोर पाप माना जाता है। ग्राम प्रधान ने एक सुंदर गाय खरीदी थी। यह पूरे गाँव में चर्चा का विषय भी था, लेकिन जब उस गाय की मौत हुई तो पूरे गाँव में हंगामा मच गया क्योंकि वह गाय किसी और की नहीं बल्कि गाँव के मुखिया की थी। मुखिया क्रोधित हो जाता है। उसी समय पंडित रामसरन वहाँ आता है और कहता है कि वह ठाकुर की गाय को कल्लू नदी के किनारे जंगल में चराने के लिए ले गया था। वहाँ बहुत सारे जंगली सूअर हैं। सुअर के शिकारी गेंद में बारूद लपेटकर रखते थे। लेकिन गाय ने गेंद को मुँह में दबा लिया, गेंद फट गई और गाय मर गई। पंडितजी कहते हैं कि पुलिस को रिपोर्ट लिखनी चाहिए लेकिन मुखिया उन्हें पूरे गाँव के सामने सजा देना चाहता है। और मुखिया के दिमाग में सुक्का का चेहरा घुमने लगता है। कहानीकार ने यह स्पष्ट किया है कि गाँव के उच्च जाति के लोग दलित स्त्रियों को अपनी रखैल समझकर जब चाहे तब रौंदते रहे हैं। उनका विरोध करना किसी के बस की बात नहीं थी। यदि किसी ने इस जुल्म के खिलाफ आवाज उठाई तो उसे सबक सिखाया गया। यही कारण है कि जब गाँव में गाय काटी जाती है तो गुस्साए मुखिया को दलित जाति के सुक्का नाम के व्यक्ति का चेहरा नजर आता है। वह उन्हें गोहत्या के आरोप में फंसाना चाहता था। सुक्का कई वर्षों तक मुखिया का नौकर रहा था। सुक्खा घर और खेती का सारा काम ईमानदारी से करता था और कभी मालिक से विरोध नहीं करता था। लेकिन दो महीने पहले ही उसकी शादी हो गई। शादी के बाद वह खुश था, वह अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता था। वह वैसे ही खूबसूरत थी। उन्होंने उसमें आत्मविश्वास जगाया था। मुखिया ने सुक्का की दुल्हन की खूबसूरती और स्वाभिमान के बारे में सुना और वह उसे देखने के लिए उत्सुक हो गया। मुखिया सुक्का से अपनी दुल्हन को हवेली भेजने के लिए कहता है लेकिन सुक्का उसके प्रश्न का उत्तर नहीं देता है। अगले दिन पंचायत बैठती है। मुखिया ने सरपंच से न्याय दिलाने की बात कही। गाँव के सभी लोग पंचायत में आते हैं। मुखिया लोग सुअर पकड़ने वालों पर गौहत्या का आरोप लगाते हैं। क्योंकि सुक्का उसकी जाति का था और उसने सुक्का पर अपना जाल चलाया। इस प्रकार कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि जब एक दलित अपनी बहुओं को हवेली में भेजने से इंकार कर देता है तो वह किस प्रकार षड्यंत्र रचकर दलितों को दण्ड देते हैं। इसमें उस मिथ्या परंपरा पर भी प्रहार किया है कि जब गौहत्या होती है तो सज़ा किसे दी जाती है? यानि हमारा समाज मरे हुए जानवरों को महत्त्व देता है। लेकिन एक जिंदा इंसान के जिंदगी को नहीं।

'सलाम' कहानी संग्रह के अंतर्गत अन्य कहानियों में 'जिनावर' कहानी महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें दलित नारियों के शोषण को उजागर किया हैं। 'अम्मा' कहानी उस अम्मा की हैं, जो जीवन भर अपने आदर्शों के लड़ती रही। 'सपना'कहानी में मंदिर बनाने पर जोड़ दिया गया और दलित युवक के साथ संघर्ष हुई लेकिन अंत में दलित युवक को पंडाल में प्रवेश करने को लेकर संघर्ष उभरा। 'कुचक्र' कहानी में दफ्तर में प्रमोचन के कारण दलित युवक को सवर्णों की मानसिक शोषण का सामना करना पड़ता हैं। 'खानाबदोश' कहानी पति-पत्नी के संबंधो पर आधारित हैं, जहाँ दोनों जीवन यापन के लिए ईत भट्टे पर काम करता हैं। ग्रहण कहानी में चोधुरी की बहु और दलित युवक रमेसर जातीयता क्र तमाम बंधन तोड़कर एक क्षण के लिए एक हो जाते हैं।

निष्कर्ष- ओमप्रकाश वाल्मिकी द्वारा लिखित "सलाम" दलित साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है, जो दलित समुदाय के संघर्षों, आकांक्षाओं और संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता की विशेषता है। यथार्थवादी चित्रण, सांस्कृतिक अन्वेषण और सामाजिक न्याय पर ध्यान केंद्रित करने के माध्यम से, वाल्मिकी की कहानियाँ पाठकों को भारत में दलित जीवन की जटिलताओं पर विचारशील प्रतिबिंब में संलग्न करती हैं। बहरहाल, दलितों के सामने आने वाली चुनौतियों को संबोधित करते हुए, वाल्मिकी की 'सलाम' सशक्तिकरण और प्रतिरोध के विषयों पर भी जोर देती हैं। उनकी कहानियों के पात्र प्रतिकूल परिस्थितियों को लचीलेपन के साथ पार कर सकते हैं, यथास्थिति को चुनौती दे सकते हैं और अपने अधिकारों का दावा कर सकते हैं।

000

संदर्भ-

वाल्मीकि, ओम प्रकाश.सलाम. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2020, सिंह, पी.एन. हिन्दी दलित साहित्य: संवेदना और विमर्श. नई दिल्ली: लोक भारती प्रकाशन, 2019, स. कोवप्रत, डॉ. प्रमोद. हिन्दी दलित साहित्य का विकास. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2016, नेमिशराय, मोहनदास. हिन्दी दलित साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2018, सिंह, डॉ. एन. दलित साहित्य के प्रतिमान. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2023

शोध आलेख

(शोध आलेख)

भारतीय वित्तीय संघवाद और सामाजिक स्थिरता

शोध लेखक : आलोक कुमार सिंह
शोध छात्र
डॉ. बिमलेश सिंह
सहायक प्राध्यापक

आलोक कुमार सिंह
शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक
मोबाइल- 8222882052
ईमेल-aloksinghrajput29@gmail.com,
डॉ. बिमलेश सिंह
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक

सारांश- संघवाद एक ऐसी पद्धति को संकेतित करता है, जिसमें एक से अधिक स्तर की शासन व्यवस्था पाई जाती है और इसमें प्रत्येक स्तर पर कुछ स्वायत्तता और निर्णय लेने की शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। संघवाद, अपने मूल अर्थ में, केंद्र और राज्य सरकार के बीच विधायी और कार्यकारी शक्ति का विभाजन है। भारत जैसे देश में संघवाद बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि विभिन्न पृष्ठभूमि और संस्कृति के अलग-अलग लोग एक साथ रहते है। 1992 में 73वां और 74वां संविधान संशोधन पारित होने के बाद ही दो स्तर वाला भारतीय संघीय ढांचा तीन स्तर वाले ढांचे में बदला और ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। वित्तीय संघवाद में वित्त आयोग का अहम् योगदान है जोकि सार्वजनिक व्यय तथा राजस्व स्रोतों का आवंटन केंद्र, राज्य तथा स्थानीय निकायों के बीच करती हैं। वर्तमान में भारतीय वित्तीय संघवाद संस्थागत परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है जैसे योजना आयोग की समाप्ति तथा नीति आयोग का गठन, जीएसटी लागू करने के लिए संवैधानिक संशोधन और जीएसटी परिषद की स्थापना, चौदहवें वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राज्यों को ऐतिहासिक उच्च कर हस्तांतरण और पन्द्रहवें वित्तीय आयोग में कर और राजकोषीय प्रबंधन और वन और पारिस्थितिकी के आधार पर हस्तांतरण के प्रावधान। वर्तमान शोध पत्र वित्तीय संघवाद के विभिन्न तात्कालिक आयाम पर प्रकाश डालने का एक प्रयास हैं।

बीजक शब्द- संघवाद, वित्तीय संघवाद, केंद्र-राज्य संबंध, वित्त आयोग ।

वित्तीय संघवाद का क्रमिक विकास- 'वित्तीय संघवाद' का आशय देश की केंद्र सरकार तथा सरकार की अन्य इकाइयों के बीच वित्तीय संबंधों से है। यह दर्शाता है कि व्यय और राजस्व को सरकारी प्रशासन के विभिन्न स्तरों में किस तरह आवंटित किया जाता है। वित्तीय संघवाद का क्रमिक विकास 18वीं शताब्दी में आरंभ हुआ, जब अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने 1780 के दशक के लिखे अपने संघवादी पत्रों में कहा कि बहुस्तरीय (संघीय) सरकार में विभिन्न कार्य अलग-अलग इकाई द्वारा संभाले जाते हैं, जिससे सरकार की कार्यक्षमता बढ़ जाती है, क्योंकि अलग-अलग गतिविधियाँ अलग-अलग अभीष्टतम परिमाण में की जाती हैं। भारत में आज का वित्तीय संघवाद उस ऐतिहासिक विकास का परिणाम है, जिसकी शुरुआत आज़ादी से पहले के भारत में हुई थी। भारत में किसी समय केंद्र सरकार के असीमित विवेकाधीन अधिकारों वाली कठोर एकल व्यवस्था थी, मगर समय के साथ विभिन्न आयोगों, समितियों एवं संसद द्वारा बनाए गए कानूनों की मदद से यह संविधान द्वारा नियंत्रित संघीय व्यवस्था में बदल गया।

1935 के अधिनियम ने भारत में वित्तीय संघवाद का बुनियादी ढांचा स्थापित किया, जिसमें 1919 के अधिनियम ने केंद्र तथा प्रांतों के बीच राजस्व मद को अलग किया तथा 1935 के अधिनियम ने केंद्र के राजस्व को साझा करने एवं प्रांतों को सहायता अनुदान देने का प्रावधान किया। 15वें वित्त आयोग के अध्यक्ष एन.के.सिंह ने कहा है कि "भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने भारत में वित्तीय संघवाद की बुनियादी संरचना की स्थापना की, जो आज भी जीवित है"। 1947 में आजादी मिलते समय भारत विभाजन, शरणार्थी संकट, अनुभवहीन संस्थाओं तथा कमजोर औपनिवेशिक व्यवस्था की समस्याओं से जूझ रहा था। मगर उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल की दृष्टि एवं दूरदर्शिता के कारण 569 से अधिक रियासतों का विलय भारत संघ में करने में मदद मिली और भारत में संघीय ढांचे की नींव पड़ी।

अध्ययन का उद्देश्य- 1). भारत में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वित्तीय संघवाद का चरित्र, 2). वित्तीय संघवाद में नीति आयोग का योगदान

भारत में सार्वजनिक वित्त का संघीय चरित्र- संविधान सभा में भारतीय संविधान की संघीय प्रकृति पर बहुत चर्चा हुई। संघवाद संविधान का मूल तत्व बन गया। डॉ बी आर अंबेडकर ने इन शब्दों में इसकी बखूबी व्याख्या की- "संविधान का मसौदा संघीय संविधान है क्योंकि यह दोहरी शासन व्यवस्था की स्थापना करता है। प्रस्तावित संविधान के अंतर्गत दोहरी शासन व्यवस्था के केंद्र में संघ तथा परिधि पर राज्य होंगे तथा दोनों के पास संविधान में उल्लिखित अपने-अपने

क्षेत्रों में संप्रभु अधिकार होंगे।" 1950 में अंगीकृत भारतीय संविधान भारत को "राज्यों के धर्मनिरपेक्ष, संघीय, समाजवादी संघ" के रूप में परिभाषित करता है। केंद्र और राज्य दोनों के पास अलग-अलग विधायी, कार्यकारी एवं न्यायिक व्यवस्थाएँ हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची में केंद्र एवं राज्यों की शक्तियों एवं कार्यों की सीमा तय की गई है जैसे केंद्रीय सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची। केंद्रीय सूची के विषयों में परमाणु ऊर्जा, रक्षा, राष्ट्रीय राजमार्ग, रेलवे, वायुमार्ग तथा बड़े स्तर वाले क्षेत्र शामिल हैं। केंद्र की सूची में ऐसे विषय हैं, जो राज्यों के भीतर विकास की अच्छी खासी संभावना से जुड़े हैं। संविधान में केंद्र तथा राज्य दोनों के कराधान अधिकार स्पष्ट किए गए हैं और राजस्व तथा कुछ अन्य संसाधनों की साझेदारी तय करने वाले सिद्धांत भी दिए गए हैं। वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को केंद्र एवं राज्यों के बीच साझा करना होता है और उसके लागू होने के बाद आयकर (कंपनी एवं व्यक्तिगत) का पूरा अधिकार केंद्र के पास आ गया है, जबकि राज्यों को स्टांप शुल्क, अल्कोहलयुक्त पेय पर उत्पाद शुल्क, वाहनों के पंजीयन एवं वाणिज्यिक उपयोग तथा कुछ अन्य छोटे करों के संग्रह का अधिकार मिल गया है।

राज्यों को केंद्र से अंतरण- भारत इस मामले में अनूठा नहीं है क्योंकि सरकारों के बीच अंतरण संघीय व्यवस्था वाले कई देशों में होता है और एकल पार्टी वाली सभी व्यवस्थाओं में भी केंद्र सरकार से स्थानीय सरकारों को अंतरण किया जाता है। भारत में सरकार के विभिन्न स्तरों पर राजस्व एवं व्यय में अंतर तथा एक ही स्तर पर मौजूद इस तरह के अंतर को पाटने के लिए केंद्र सरकार सामान्य उद्देश्य वाले अंतरण और विशेष उद्देश्य के अंतरण के रूप में राज्य सरकारों को धनराशि प्रदान करती है। सामान्य उद्देश्य वाला अंतरण वास्तव में वित्त आयोग के जरिये राज्य सरकारों को मिलने वाली बिना शर्त धनराशि होता है। वित्त आयोग का गठन राजस्व एवं व्यय का अंतर पाटने के उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 275-278 के तहत 1951 से ही हर पाँच वर्ष में किया जाता है। केंद्र से होने वाले अंतरण का बड़ा हिस्सा इसी से आता है। यह केंद्रीय करों को राज्य के पास अंतरित करने के मानक एवं सहायता अनुदान के वितरण के सिद्धांत की सिफारिश करता है। अभी तक चौदह वित्त आयोगों ने अपनी अवधि पूरी की है और 15वां आयोग 2021-26 के लिए सिफारिशें कर चुका है। राज्यों को बचा हुआ केंद्रीय अंतरण विशेष उद्देश्य वाले अंतरण के रूप में होता है, जिसे सशर्त अंतरण भी कहा जा सकता है क्योंकि ये अंतरण किसी विशेष उद्देश्य के लिए होते हैं, जो अधिकतर स्वास्थ्य, शिक्षा, श्रम, कौशल विकास जैसे सामाजिक क्षेत्र में होते हैं, जो राष्ट्रीय विकास के एजेंडा का हिस्सा होते हैं और राज्यों की सीमाओं से परे होते हैं। ये अंतरण संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों/विभागों द्वारा केंद्रीय प्रायोजित योजनाओं के रूप में किए जाते हैं। 2014-15 तक पूर्ववर्ती योजना आयोग द्वारा विकास की योजना के लिए तय किए गए अंतरण में सशर्त अंतरण भी शामिल होते थे। योजना आयोग के अंतरण में फॉर्मूला पर आधारित सामान्य केंद्रीय सहायता तथा विशेष योजना सहायता, बाहरी सहायता वाली परियोजनाओं के लिए सहायता जैसे विवेकाधीन अंतरण शामिल होते थे। धन के आवंटन की जिम्मेदारी अब वित्त मंत्रालय को दे दी गई है। केंद्र और राज्य सरकार में क्षैतिज अंतरण होता है।

तालिका 1 : प्रथम वित्त आयोग से पंद्रहवे वित्त आयोग तक क्षैतिज अंतरण के मानदंड और भारांक

वित्त आयोग अनुशंसा- पहला जनसंख्या -80प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-20प्रतिशत, दूसरा जनसंख्या -90प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-10प्रतिशत, तीसरा जनसंख्या -80प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-20 प्रतिशत, चौथा जनसंख्या 80प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-20प्रतिशत, पाँचवां जनसंख्या - 90प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-10प्रतिशत, छठा जनसंख्या - 90प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-10 प्रतिशत, सातवां जनसंख्या - 90प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-10 प्रतिशत, आठवां जनसंख्या-25प्रतिशत,आय दूरी-40प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-10 प्रतिशत, इनवर्स ऑफ़ इनकम-25 प्रतिशत, नौवां जनसंख्या - 25प्रतिशत, आय दूरी-40प्रतिशत, आयकर के सापेक्ष संग्रह-10प्रतिशत, इनवर्स ऑफ़ इनकम-25प्रतिशत, 10वां जनसंख्या - 20प्रतिशत,आय दूरी-60प्रतिशत, क्षेत्रफल-5 प्रतिशत, कर प्रयास-10 प्रतिशत, इंफ्रास्ट्रक्चर इंडेक्स -5 प्रतिशत, 11वां जनसंख्या -10 प्रतिशत, आय दूरी-62.5 प्रतिशत, क्षेत्रफल-7.5 प्रतिशत, राजकोषीय अनुशासन-7.5 प्रतिशत, कर प्रयास-7.5प्रतिशत, इंफ्रास्ट्रक्चर इंडेक्स - 7.5 प्रतिशत, 12वां जनसंख्या-25प्रतिशत,आय दूरी-50प्रतिशत, क्षेत्रफल-10 प्रतिशत, राजकोषीय अनुशासन-7.5प्रतिशत, कर प्रयास-7.5प्रतिशत, 13वां जनसंख्या- 25 प्रतिशत, राजकोषीय क्षमता/आय-47.5 प्रतिशत, क्षेत्रफल-10 प्रतिशत, राजकोषीय अनुशासन-17.5 प्रतिशत, 14वां जनसंख्या-17.5प्रतिशत, राजकोषीय क्षमता/आय-50प्रतिशत, क्षेत्रफल-15प्रतिशत, वन क्षेत्र-7.5 प्रतिशत, जनसांख्यिकीय बदलाव-10प्रतिशत, 15वां जनसंख्या-15प्रतिशत, क्षेत्रफल-15प्रतिशत,वन एवं पारिस्थितिकी-10प्रतिशत, आय अंतर-45 प्रतिशत, कर एवं राजकोषीय प्रयास-2.5 प्रतिशत, जनसांख्यिकीय निष्पादन-12.5 प्रतिशत, स्रोत-वित्त आयोग रिपोर्ट

स्थानीय निकायों को संसाधनों का अंतरण- उप-राज्य (स्थानीय) प्रशासनिक निकायों के स्तर तक विकेंद्रीकरण के बगैर ही राज्यों को अधिकार प्रदान करना 1990 के दशक से पूर्व बहुत कम था। 1992 में 73वां और 74वां संविधान संशोधन पारित होने के बाद ही दो स्तर वाला भारतीय संघीय ढांचा तीन स्तर वाले ढांचे में बदला और ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। संविधान संशोधन अधिनियम

के तहत राज्य विधान मंडलों को कुछ जिम्मेदारियाँ, शक्तियाँ एवं अधिकार पंचायतों तथा नगर पालिकाओं को सौंपने होते हैं ताकि विकेंद्रीकरण बढ़े और योजनाओं के क्रियान्वयन में, निर्णय लेने में पारदर्शिता लाने, जवाबदेही सुनिश्चित करने एवं परिणामों पर नजर रखने में समुदायों की हिस्सेदारी अधिक हो। अनुच्छेद 243 (आई) और अनुच्छेद 243 (वाई) में पाँच वर्ष के नियमित अंतराल पर राज्य वित्त आयोगों के गठन किया गया

राज्य वित्त आयोग राज्यों एवं पंचायतों के बीच कर के शुद्ध बंटवारे पर निर्णय को करने के लिए किया गया। पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के अंतर्गत रहने वाले कर, शुल्क एवं टोल आदि निर्धारित किए जा सकें और पंचायतों तथा नगर पालिकाओं को उपलब्ध कराया जाने वाला अनुदान तय हो सके।

समसामयिक आवश्यकताओं तथा विकास की प्राथमिकताओं को देखते हुए समय के साथ संघवाद का विकास हुआ है। संघवाद का बुनियादी सिद्धांत तो वही रहा मगर तमाम वर्षों में हुए कई घटनाक्रम मसलन 1991 में उदारीकरण, 2005 में वैट क्रियान्वयन और हाल के परिवर्तन जैसे 2017 में जीएसटी प्रणाली, 2015 में योजना आयोग खत्म कर नीति आयोग का गठन तथा केंद्र प्रायोजित योजनाओं को तर्कसंगत बनाया जाना आदि के कारण बिना शर्त राशि का अंतरण बढ़ गया है, जिसके कारण केंद्र तथा राज्य के वित्तीय संबंध भी लगातार बदलते रहे हैं। पिछले वर्ष कुछ बड़ी घोषणाएँ हुईं, जिन्होंने केंद्र-राज्य वित्तीय संबंधों में ढांचागत बदलाव ला दिए: राज्यों को दी जाने वाली बिना शर्त राशि में वृद्धि: राज्यों को कर अंतरण एवं अनुदान समेत वित्त आयोग से अंतरित होने वाली राशि राज्यों को अंतरण का प्रमुख स्रोत रही है।

संघवाद मजबूत करने में नीति आयोग की भूमिका- नीति आयोग ने 1 जनवरी, 2015 से पूर्ववर्ती योजना आयोग की जगह ले ली और तभी से वह तीव्र आर्थिक कायाकल्प के लिए वह सहकारी एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद को मजबूत करने में जुटा है। नीति आयोग समझता है कि राज्य आर्थिक वृद्धि के वाहक हैं और राष्ट्र के विकास में बराबर के साझेदार हैं। मजबूत राज्य ही मजबूत राष्ट्र बनाते हैं, यह मानकर नीति आयोग ने सहयोग कार्यक्रमों एवं राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों के साथ लगातार जुड़े रहने की प्रक्रियाओं के जरिये सहकारी संघवाद को सुदृढ़ बनाने की कई पहल की हैं। इनमें प्रधानमंत्री/कैबिनेट मंत्रियों के साथ सभी मुख्यमंत्रियों की बैठकें; राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों पर मुख्यमंत्रियों के उप-समूह सर्वश्रेष्ठ तरीके साझा करना; राज्य/केंद्रशासित प्रदेशों के पदाधिकारियों को नीतिगत सहयोग देना एवं उनका क्षमता विकास करना; पिछड़े जनपदों के विकास के लिए आकांक्षी जिला योजना आरंभ करना; विभिन्न क्षेत्रों में गहनता के साथ विषय आधारित कार्य करना; भूमि पट्टे तथा कृषि विपणन सुधार के लिए आदर्श कानून बनाना; तथा पूर्वोत्तर, हिमालयी राज्यों एवं द्वीपों के विकास के लिए क्षेत्र विशेष योजनाएँ बनाना शामिल हैं। नीति आयोग की प्रशासनिक परिषद में सभी राज्यों एवं विधानसभा वाले केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री और अन्य केंद्रशासित प्रदेशों के उप राज्यपाल शामिल होते हैं। यह ऐसा मंच है जहाँ केंद्र तथा राज्य - टीम इंडिया - मतभेद दूर करने के लिए बात कर सकते हैं और प्रगति तथा समृद्धि का साझा रास्ता गढ़ सकते हैं। अभी तक परिषद की पाँच बैठकें हो चुकी हैं।

नीति आयोग ने एक अनूठी पहल करते हुए राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों का प्रदर्शन बेहतर करने में मदद करने के इरादे से प्रतिस्पर्धी संघवाद को बढ़ावा देने का प्रयास किया है। इसके लिए वह मदद करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में पारदर्शी रैंकिंग के जरिये स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है। नीति आयोग द्वारा आरंभ किए गए कुछ सूचकांक शिक्षा सूचकांक; स्वास्थ्य सूचकांक; समग्र जल प्रबंधन सूचकांक; सतत विकास के लक्ष्य सूचकांक एवं आकांक्षी जिलों के प्रदर्शन हेतु डेल्टा रैंकिंग हैं। इससे हमें 'प्रतिस्पर्धी लोकवाद' की प्रवृत्ति कमजोर करने और उसके बजाय 'प्रतिस्पर्धी सुशासन' की प्रवृत्ति बढ़ाने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष- दक्षता तथा निष्पक्षता के बीच संतुलन बिठाने की चुनौती हमेशा ही संघवाद का अहम पहलू रही है। राज्यों की आकांक्षा पूरी करना भारत के वित्तीय संघवाद की सबसे पहली प्राथमिकता है। केंद्र-राज्य संबंधों के मामले में सबसे बड़ी उपलब्धि यह भी है कि राज्यों को देश की वृद्धि का ही नहीं बल्कि देश भर में नागरिकों के जीवन में सुधार का भी वाहक माना जा रहा है। इसी तरह सतत विकास के लक्ष्यों को स्थानीय रूप प्रदान करने के कदम भी उठाए गए हैं ताकि राष्ट्रीय स्तरों पर विशेष कदमों की पहचान की जा सके।

000

संदर्भ- के. गोप कुमार 2012, हिस्टारिकल इवोल्यूशन ऑफ़ फेडेरल फिनान्सेज इन इंडिया फेडरल गवर्नेंस, खंड 9संख्या 2, पृष्ठ संख्या 27-44, चंचल कुमार शर्मा 2019, इंडियन फेडेरलिज्म इन एवोल्विंग कांसेप्ट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ संख्या 186, एन. के. सिंह का व्याख्यान, 2019, फिस्कल फेडरलिज्म : आईडियोलोजी एंड प्रक्टिसेस आर बी आई बुलेटिन पृष्ठ 19-27, रिचर्ड हेमिंग, नेवन मेट्स एवं बैरी पॉटर, 1997, फिस्कल फेडरलिज्म इन थ्योरी एंड प्रक्टिसेस आईएमएफ, 5एम. गोविन्द राव, 2000, फिस्कल डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडियन इकोनोमि, इंस्टिट्यूट फॉर सोशल and इकोनोमिक चेंज, 6ए. बागची 2001, फिफ्टी इयर्स ऑफ़ फिस्कल फेडेरलिज्म इन इंडिया : इन अप्रेजल, गोखले इंस्टिट्यूट ऑफ़ पोलिटिकल एंड इकोनॉमिक्स, पुणे में दिया गया काले समृति व्याख्यान, 7लुईस टीलिन 2019, इंडियन फ़ेडर;लिज्म,ऑक्सफ़ोर्ड इंडिया शार्ट इंट्रोडक्शन, 8वाई. वी. रेड्डी 2019, इंडियन फिस्कल फेडरलिज्म, ऑक्सफ़ोर्ड द्वारा प्रकाशित, 9 बी. के. चतुर्वेदी, 2011, केंद्र प्रायोजित योजनाओ के पुनर्गठन पर सिमिति कि रिपोर्ट, 10केंद्र प्रायोजित योजनाओं को युक्तिसंगत बनाने पर मुख्यमंत्रीयो के उप समूह कि रिपोर्ट, 2015.

(शोध आलेख)

असमिया साहित्य और रामायण

शोध लेखक : डॉ. अनुपमा पाण्डेय
आई सी एस एस आर पोस्ट डॉक्टरल फेलो,
जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश- हमारे देश में उत्तर-पूर्व भारत का हिस्सा न केवल प्राकृतिक दृष्टि से अति समृद्ध है वरन अपने समाज, संस्कृति और कला में भी अनूठा और व्यापकता लिए हुए है। देश के इस हिस्से में आठ राज्य आते हैं, इसके बावजूद भी इसे देश के मुख्य हिस्से से कटा हुआ और अलग-थलग सा माना जाता रहा है। इन राज्यों को अलग मानने वाली राजनीति में खुद को मुख्यधारा के राज्य कहने वालों एवं उनके प्रतिनिधियों द्वारा स्थापित किया गया है। हालाँकि, वर्तमान सरकार द्वारा कई योजनाएँ देश के इस हिस्से को तथाकथित मुख्यधारा से जोड़ने, आवागमन को आसान बनाने एवं भाषाई सीमा को तोड़ते हुए संपर्क को तीव्र और बाधा रहित बनाने की दृष्टि से संचालित की जा रही हैं। तत्कालीन सरकार द्वारा कई सरकारी योजनाएँ, परियोजनाएँ एवं शोध परियोजनाएँ उत्तर-पूर्व भारत को समझने की दृष्टि से, विकास के विविध आयामों से जोड़ने की दृष्टि से, इनके रोजमर्रा के जीवन में आने वाली बाधाओं को दूर करने की दृष्टि से संचालित की जा रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर-पूर्व भारत के एक महत्त्वपूर्ण राज्य असम पर केंद्रित है। इसके अंतर्गत असम राज्य के साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर रामायण का क्या प्रभाव है? इसका मूल्यांकन किया जाएगा।

बीज शब्द: रामायण और अनुवाद, भारत में रामायण के विविध रूप, असम में रामायण, असमिया में रामायण पर आधारित साहित्य एवं आलोचनात्मक लेखन, असमिया में रामायण के अनुदित पाठ

मूल आलेख- उत्तर-पूर्व भारत का असम राज्य भी भारतीय संस्कृति का एक ऐसा अंग हैं जहाँ की समाज और संस्कृति में रामायण के पुट देखने को मिल जाते हैं। यहाँ पर विविध धार्मिक अनुष्ठान आदि किए जाते हैं। यहाँ के निवासी भी हिन्दू एवं सनातन परंपरा को मानने वाले हैं। हालाँकि, उत्तर-पूर्व भारत के राज्यों के बारे में जब किसी हिन्दी भाषी अथवा उत्तर भारतीय से पूछा जाता है या उसे कुछ बताने को कहा जाता है तो उसके लिए ये राज्य किसी पहेली के समान हैं। ऐसे में, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि देश के ही अलग-अलग हिस्सों में इतनी अजनबियत क्यों हैं, जबकि आज के समय में सभी राज्य के लोग सभी राज्यों में मिल जाते हैं। लेकिन, उनके मध्य जो संप्रेषण का अंतराल है वह क्यों कम नहीं हो रहा। उत्तर भारत के निवासी उत्तर-पूर्व भारत के लोगों को अलग नजरिए से क्यों देखते हैं, उनके लिए चीनी-मिनी, चिंकी-मिंकी आदि शब्दों का प्रयोग क्यों करते हैं। इस समस्या को समझना जरुरी है। यह भी जरुरी है कि अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में, शोध के क्षेत्र में भाषा और क्षेत्रीयता की सीमा को तोड़ा जाए और अलग-अलग राज्यों के शोधार्थियों, विद्यार्थियों को अलग-अलग राज्यों के बारे में जानने समझने के लिए प्रेरित किया जाए। यदि किसी शोधार्थी की इच्छा उत्तर भारतीय होने के बाद उत्तर-पूर्व भारत के राज्यों पर शोध करने की हो, दक्षिण भारत के राज्यों पर शोध करने का हो तो उसे भाषाई

डॉ. अनुपमा पाण्डेय
फ़्लैट नंबर 1215, जेएमडी बिल्डर्स,
गली नंबर 10, जैन रोड, द्वारका मोड़,
नई दिल्ली
मोबाईल- 9765792257
इमेल- anuska.pantr@gmail.com

अज्ञानता के आधार पर बाहर न किया जाए बल्कि उसे मौका दिया जाए कि वह अपनी ही भाषा में वहाँ के बारे में लिखने का, शोध करने का और कम से कम व्यक्तिगत स्तर पर एक अलग राज्य के समाज, संस्कृति और साहित्य से परिचित होने का काम कर सके।

असमिया में रामायण- रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। इसमें कुल 24000 श्लोक हैं जिन्हें दस हिस्सों में विभाजित किया गया है। ऋषि वाल्मीकि के अनुसार वैदिक पाठों में निहित संदेश, मूल्य, ज्ञान, आध्यात्म आदि को सामान्य जन तक पहुँचाने की दृष्टि से इस महाकाव्य की रचना की गई। इस महाकाव्य के माध्यम से मनुष्य के समक्ष आदर्श युग, समाज, व्यवस्था एवं आदर्श चरित्र की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। जिसके अनुकरण मात्र से मनुष्य, उत्तम जीवन व्यतीत कर सके। रामायण भारतीय साहित्य का ऐसा धार्मिक ग्रंथ हैं जिनका न केवल भारत में अपितु संपूर्ण विश्व में विस्तार है। विश्व की लगभग सभी मुख्य भाषाओं में इस महाकाव्य का अनुवाद उपलब्ध है। भारतीय भाषाओं में रामायण की न केवल मौलिक दृष्टि से विविध कृतियाँ उपलब्ध हैं अपितु अनूदित दृष्टि से भी उपलब्ध हैं। भारत के विविध राज्यों की भाषाओं में रामायण के अनुवाद की परंपरा मौखिक एवं लिखित दोनों ही रूपों में मिलता है। इसी तरह से उत्तर-पूर्व भारत के राज्यों में रामायण की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था का प्रभाव देखने को मिलता है। असमी में माधव कंदली समेत कई अन्य रचनाकारों ने रामायण की कथा को आधार बनाकर लेखन किया है। यहाँ के साहित्य में उपलब्ध रामायण के सभी कथानकों का आधार वाल्मीकि रामायण ही है। उत्तर भारतीय आर्य भाषाओं में सर्वप्रथम रामायण असमिया भाषा में लिखी गई थी। इतना ही नहीं असम की जनजाति कार्बी में रामायण की अति प्राचीन वाचिक परंपरा में साबिन-आलुन मिलती है।

असम में साबिन-आलुन रामायण की परंपरा कथावाचन के रूप में रही है जिसमें मूल रामायण के कथानक के विविध पात्रों एवं प्रसंगों को आधार बनाकर कथा वाचन किया जाता था। संस्कृत में लिखित रामायण के अलावा विभिन्न रामायणों के बाद उत्तर भारतीय आर्य भाषा का पहला रामायण चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में माधव कंदली द्वारा असमिया में 'सप्तकांड रामायण' शीर्षक से लिखा गया था। इसके बाद बंगाल में कृत्तिवास ने सन् 1433 ई में 'कृत्तिवास रामायण' लिखा। माधव कंदली ने वाल्मीकि रामायण का असमिया में पद्यानुवाद किया। अपनी रचना में माधव कंदली ने स्थानीय लोक परंपराओं का ध्यान रखने के साथ ही रामकथा में अपने दृष्टिकोण से कुछ कल्पनाएँ भी जोड़ी है। इसमें असमिया बंगाली औरतों द्वारा की जाने वाली मंगलध्वनि 'उरूलि-जोकार' (उलुध्वनि) का उल्लेख भी माधव कंदली ने किया है। कंदली के असमिया रामायण के आदिकांड और उत्तरकांड दुर्योग से खो गए थे। इस कमी को पंद्रहवीं शताब्दी में असम में हुए महान संत श्रीमंत शंकरदेव (सन् 1449-1568) ने उत्तरकांड और आदिकांड अपने परमप्रिय शिष्य माधवदेव से लिखवा कर पूर्ण किया। उल्लेखनीय है कि श्रीमंत शंकरदेव ने ही श्रीमद्भागवत पुराण का असमिया अनुवाद भी किया था। श्री शंकरदेव ने ब्रजबुली में 'राम विजय' नामक नाटक भी लिखा था। सत्रहवीं शती तक असमिया में रामायण लिखने का सिलसिला चलता रहा। माधव कंदली के बाद सोलहवीं शती में ही अनंत कंदली कृत और दुर्गावर कृत रामायण लिखी गई। 17वीं शताब्दी में कीर्तन शैली में अनंत ठाकुर की 'कीर्तनियारामायण', रघुनाथ महँत की गद्यकथा रामायण, अद्भुतरामायण, शत्रुंजय रामायण और गंगाराम राय कृत सीता वनवास जैसी कथाओं के अलावा भी अनेक रामकथाएँ लिखी गई थीं। असमिया विवाह गीत में रामकथा को लोकगीतों के रूप में रचा गया है। 'रामविजय' नाटक के अलावा सीता पाताल प्रवेश, महिरावणवध नाम के कथानकों को असमिया नाटक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त असम की बोडो, मिसिंग, डिमसा आदि जनजातियों में और त्रिपुरा की त्रिपुरी जनजातियों में रामकथाएँ की अनेक परंपराएँ मिलती हैं लेकिन इनके स्वरूप में मूल कथानक के इतर थोड़ी भिन्नता है। राघवन वी. (सं) (1980). द रामायण ट्रेडिशन इन इंडिया. साहित्य अकादेमी. नई दिल्ली. इस पुस्तक में रामकथा की परंपरा का मूल्यांकन पुरे एशिया महाद्वीप के संदर्भ में किया है। यह उक्त विषय पर आधारित एक संगोष्ठी पत्रों का संकलन है। इसमें संकलित एक पत्र जिसका लेखन विश्वनारायण शास्त्री ने द रामायण इन असमीज लिट्रेचर शीर्षक से किया है। इसमें लेखक का मानना है की असम में रामकथा की शुरुआत कब होती है इसे ठीक ठीक सुनिश्चित किया जाना बहुत कठिन है। यहाँ पर राम से संबंधित कोई मूर्ति या मंदिर का प्रमाण नहीं मिलता है। असम में अनुमान को किसी अलौकिक चरित्र के रूप में भी नहीं माना जाता है" भारतीय परंपरा में रामकथा के विस्तार की स्थिति सभी प्रादेशिक भाषाओं में लगभग इसी रूप में मिलती है। असम में रामायण की परंपरा के संबंध में दूसरा संदर्भ यह मिलता है कि असमिया समाज के अलग-अलग जाति और जनजाति समूहों में रामायण किस रूप में शामिल हो गया इसे सही ढंग से सिद्ध कर पाना असंभव जैसा है। असम में रामायण की परंपरा का मूल स्रोत माधव कंदली को ही दिया जाता है। इनके द्वारा ही रामायण का अनुवाद असमिया में किया गया। धीरे-धीरे यह अनुवाद असमी समाज का हिस्सा बन गया। इस अध्याय में लेखन ने कंदली द्वारा अनूदित पाठ के अनुवाद रूप पर भी चर्चा की है जिसमें स्वयं माधव कंदली ने अपने अनुवाद के संबंध में क्या कहा है इसके भी दृष्टांत लेखक ने दिए हैं। ऐसा माना जाता है कि माधव कंदली जी ने मूल रामायण के पाठ के अनुरूप ही असमी में रामायण के सात काण्ड का अनुवाद किया था लेकिन किसी कारण से अंतिम दो अध्याय गुम हो गए। जिनका अनुवाद शंकरदेव जी ने किया। इस अध्याय में असम में रामायण कथा को किस ढंग से देखा समझा जाता है इस विषय को विस्तृत रूप में स्पष्ट किया गया है।

असमिया में रामायण के अनुदित पाठ- अनुवाद परंपरा की दृष्टि से यदि देखा जाए तो महंत कविचंद्र द्वारा वाल्मीकि रामायण शीर्षक से रामायण का अनुवाद असमी भाषा में किया गया है। इस अनुवाद को गद्यमय शैली में किया गया है। साथ ही अनुवाद में मूल पाठ के कांडों एवं सर्गों की व्यवस्था को हुबहू असमी में अनूदित किया गया है। यह अनुवाद एक ढंग से शाब्दिक अनुवाद की श्रेणी में आता है। जिसमें मूल पाठ की व्यवस्था को अधिक महत्त्व देते हुए अनुवाद किया गया है। असमी भाषा में रामायण का दूसरा अनुवाद अनंत कंदली द्वारा अयोध्याकाण्ड शीर्षक से किया गया है। इस अनुवाद में रामायण के केवल एक काण्ड का अनुवाद किया गया है। अयोध्याकाण्ड अनुवाद भी गद्यात्मक शैली में किया गया है लेकिन अनुवादक ने इसमें मूल पाठ के अर्थ को अनूदित करने की कोशिश की है।

सत्येन्द्रनाथ शर्मा ने कथा-रामायण शीर्षक से रामायण का अनुवाद असमी भाषा में किया है। यह अनुवाद पुरे रामायण के पाठ का है लेकिन इसमें मूल पाठ की पूरी व्यवस्था का अनुवाद नहीं है। अनुवादक ने अपनी दृष्टि से रामायण कथा का अनुवाद किया है। यह पुस्तक 1955 में कलकाता से श्री भारती प्रकाशन से प्रकाशित हुई है। माधवदेव द्वारा संपूर्ण असमिया सात कांड रामायण शीर्षक से अनुवाद किया गया है। इस अनुवाद में मूल पाठ के अर्थ को अनूदित करने की कोशिश की गई है। हालाँकि दो अलग अलग भाषाओं की भिन्नता की वजह से समस्या आई है लेकिन फिर भी अनुवादक ने पाठ की काव्यमयता को बचाने की कोशिश की है। महंत रघुनाथ और सिस्ता कवि द्वारा कथा रामायण शीर्षक से संस्कृत के पाठ का असमिया में अनुवाद किया गया है। यह अनुवाद 1952 में प्रकाशित हुआ था और यह अनुवाद एक स्वच्छंद अनुवाद है। क्योंकि इसमें लेखक ने मूल पाठ के साथ अनुवाद करने का कोई कष्ट नहीं उठाया है. भोलानाथ दास ने सीता हरण शीर्षक से असमिया में पुनर्सृजन किया है। इस कृति को अनुवाद ना कहकर लेखक द्वारा प्रभाव आधारित पाठ निर्माण कहना अधिक प्रासंगिक होगा। इसमें लेखक ने सीता हरण के प्रसंग को लेकर असमिया में नए पाठ की रचना की है।

निष्कर्ष- असम में रामायण को जनता तक पहुँचाने एवं प्रचारित प्रसारित करने का श्रेय माधव कंदली को जाता है। इनके ही प्रयासों से असमिया में रामायण की परंपरा शुरू होती है। माधव कंदली द्वारा अनूदित पाठ के बड कई अन्य आचार्य लेखकों ने रामायण का अनुवाद असमिया में किया। भले ही असम में राम का मंदिर और राम की मूर्ति देखने को नहीं मिलती लेकिन असम के सभी हिंदू घरों में राम का चरित्र और रामायण का पाठ अवश्य अनुकरणीय है। इसके अतिरिक्त आज यदि रामायण को हम देश की एक महत्त्वपूर्ण थाती के रूप में मानते हैं और राम को दैवीय चरित्र के रूप में पूजते हैं तो ऐसे में यह बहुत जरुरी है कि देश की इस संस्कृति, परंपरा को बचाकर रखा जाए। इसे मजबूत बनाने की दृष्टि से सभी राज्यों में इस महान कृति के दर्शन, विचार एवं नैतिक सन्देश को सजगता एवं जागरूकता से प्रचारित-प्रसारित किया जाए।

000

संदर्भ-

1Barua. Birinchi Kumar. (2016). History of Assamese Literature. Sahitya Akademi. New Delhi. 2Chaudhary. Subhajeet & Hemant Singh Majumadar. (ed.) (2008). The North Eastern Region of India During the Age of Mahabharata. Bharatiya Itihas Sankalan Samiti Assam. 3Iyenger. K. R. Srinivasa. (ed.) (1983). Asian Variations of Ramayana. Sahitya Akademi. New Delhi. 4Pandey. Rajbali. (1969). Hindu Sanskaras: Religious Study of the Hindu Sacraments. Motilal Banarasidas Publications. 5Paula. Richman. (ed.). (2001) Many Ramayanas: The Diversity of a Narrative Tradition in South Asia. University of California Press. 6V. Raghavan. (ed.). (1999). The Ramayana tradition of Asia. Sahitya Akademi. New Delhi.

नई पुस्तक

(ग़ज़ल संग्रह)

ज़ेहन का पैरहन

लेखक : उमेश पंत

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

उमेश पंत का नाम यूँ तो यात्रा वृत्तांत लिखने के लिए जाना जाता है, लेकिन उनकी ग़ज़लों का यह संग्रह शिवना प्रकाशन से नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित किया जा रहा है। स्वयं उमेश पंत इस संग्रह के बारे में भूमिका में लिखते हैं- 'मुझे इस बात का गुमान कतई नहीं है कि मैं एक क़ायदे का शायर हूँ। वो शायर जिसे आप शायरी के तकाज़े में तौलकर खरा क़रार दें। इस कलाम को मैं महज अपनी शायरी के शौक़ के बतौर बड़े अदब से अपने पाठकों के नज़्र कर रहा हूँ। इसे बस इस तरह से दर्ज किया जाए कि एक नया लड़का, नया सीखते रहने की ग़रज़ से कुछ लिख गया है ताकि सीखने की राह पर आगे बढ़ सके। अगर हो सके तो इस मज़मून को अपनी मोहब्बत से नवाज़ें। वगरना इसे लिखने में जो लुत्फ़ आया वही एक लेखक का हासिल है, वह यह लेखक पा चुका।सुनने की सलाहियत पढ़ने के दरवाज़े तक ले आई तो ग़ालिब-ओ- मीर की दुनिया दिखने लगी जिसे 'देख के दिल हैरान हुआ'।' उमेश पंत की ग़ज़लें उपलब्ध रहेंगी पुस्तक मेले में।

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

सतत विकास के लिए वितीय क्षेत्र के सुधार

शोध लेखक : डॉ पुन्जभाष्कर एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी-ए.वी. कॉलेज, कानपुर

सारांश- वित्तीय क्षेत्र एक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह विभिन्न उद्योगों और व्यापारों को समर्थन प्रदान करता है और अर्थतंत्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सतत विकास की दिशा में, वित्तीय क्षेत्र के सुधार और विकास अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, ताकि एक समृद्ध और सामर्थ्यपूर्ण अर्थव्यवस्था की ओर कदम बढ़ा सके। भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास और सुधार तेजी से बढ़ रहा है, और इसमें वित्तीय क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के माध्यम से, हम सतत विकास और प्राकृतिक संसाधनों का सुरक्षित और अनुकूल उपयोग करके सामाजिक और आर्थिक साकारात्मकता की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं। इस लेख में, हम वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के महत्त्व और उनके प्राकृतिक संवेदनशील विकास के प्रति आकर्षित होने के साथ ही साथ, हम इस शोध में यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि कैसे वित्तीय क्षेत्र के सुधार एक सतत विकास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और इसे कैसे समर्थन किया जा सकता है।

शब्दबिन्दु: सतत विकास, वित्तीय क्षेत्र, भारतीय अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास।

प्रस्तावना- वित्तीय क्षेत्र का महत्त्व एक राष्ट्र की आर्थिक स्थिति और सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो संचालन, निवेश, और धन वितरण के माध्यम से विकास और सामर्थ्यपूर्णता की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में वित्तीय क्षेत्र का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, और इसे सतत विकास की दिशा में प्राकृतिक साधनों के साथ मेल करने का सामर्थ्य दिखाना अत्यंत आवश्यक है। वित्तीय क्षेत्र के महत्त्व को समझने के लिए हमें पहले से ही उसके सुधार की आवश्यकता को समझना होगा। इसका मतलब है कि हमें वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और सुरक्षा के प्रति गंभीर ध्यान देना होगा। बिना वित्तीय संस्थाओं की सुरक्षा के, आर्थिक स्थिति को स्थिर और सुरक्षित नहीं बनाया जा सकता है। वित्तीय संस्थानों के सही तरीके से संचालन और निगरानी के बिना, वित्तीय संस्थानों मं् संकटों का सामना करना मुश्किल हो सकता है, जिससे आर्थिक तंगी और सामाजिक असमानता बढ़ सकती है। डिजिटल युग के साथ, वित्तीय सेवाओं की पहुँच एक महत्त्वपूर्ण वित्तीय सुधार का हिस्सा बन गई है। डिजिटलीकरण के माध्यम से, गाँवों और छोटे शहरों में लोगों को वित्तीय समावेशन का मौका मिलता है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकती है। इसके अलावा, डिजिटल भुगतान और वित्तीय सेवाओं के नए तरीके लोगों को और ज्यादा आसानी से वित्तीय समावेशन की ओर बढ़ा रहे हैं। वित्तीय शिक्षा भी इस विकास का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। लोगों को वित्तीय जागरूकता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण और उपयोगी जानकारी की आवश्यकता है ताकि वे अपने वित्तीय निर्णयों को सही तरीके से ले सकें। इससे लोग उनके आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सही और सुझाव दे सकते हैं, और इससे वित्तीय स्वाधीनता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ावा मिल सकता है।

वित्तीय संस्थानों को सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों के साथ समर्थन करना भी महत्त्वपूर्ण है। वित्तीय संस्थानों का सामाजिक योगदान सामाजिक समर्थन के रूप में देखा जा सकता है, और इन्हें पर्यावरणीय संरक्षण के माध्यम से वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने के तरीकों में शामिल किया जा सकता है। इसके अलावा, वित्तीय संस्थानों को उनके प्रदूषण को कम करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है, जिससे हम पर्यावरण के साथ सहयोग करके सामाजिक और आर्थिक साकारात्मकता की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार, "सतत विकास के लिए वित्तीय क्षेत्र के सुधार" शोध पत्र वित्तीय क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को जानने और समझने का प्रयास करेगा, और सतत विकास की दिशा में भारतीय अर्थव्यवस्था को सुनिश्चित करने के तरीके पर विचार करेगा। इसके माध्यम से हम समृद्धि, सुरक्षा, और सामाजिक साकारात्मकता के दिशा में एक सुदृढ़ और सुरक्षित वित्तीय क्षेत्र को बढ़ावा देने का कदम बढ़ा सकते हैं।

वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और निगरानी- वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और निगरानी, किसी

डॉ. पुन्ज भाष्कर, एसोसिएट प्रोफेसर
128/63, बी ब्लॉक, किदवई नगर,
कानपुर, 208011
मोबाइल- 8840003980,
9473930522
ईमेल- punjbhashkar080670@gmail.com

भी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति के संरक्षण और वित्तीय स्थिरता के लिए महत्त्वपूर्ण है। वित्तीय संस्थानें बैंक, वित्तीय संस्थान, और बजटरी संस्थान जैसी हो सकती हैं, और ये संस्थानें विभिन्न प्रकार की वित्तीय सेवाएँ प्रदान करती हैं जैसे कि जमा, उधारण, और निवेश। ये संस्थान लोगों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और उनके ग्राहकों के वित्तीय स्वाधीनता को सुनिश्चित करने में मदद करते हैं।

वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा का महत्त्व- वित्तीय संस्थानों में ग्राहकों के धन का संरक्षण करना महत्त्वपूर्ण है। लोग अपने पैसों को बैंकों और वित्तीय संस्थानों में जमा करते हैं उम्मीद के साथ कि उनका पैसा सुरक्षित रहेगा। इसलिए, यह महत्त्वपूर्ण है कि इन संस्थानों की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए ताकि लोग आत्मविश्वास के साथ इन्हें अपने धन का संरक्षण करने के रूप में देख सकें। वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा बैंकिंग और वित्तीय सिस्टम की स्थिति को सुनिश्चित करती है। अगर इन संस्थानों में समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, तो यह पूरे देश की आर्थिक स्थिति पर असर डाल सकता है। उदाहरण के लिए, वित्तीय संस्थानों की असुरक्षितता के कारण आर्थिक संकट उत्पन्न हो सकता है, जो लोगों की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डाल सकता है।

वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा की निगरानी- सरकारें और वित्तीय निगरानी निगरानीकरण के माध्यम से वित्तीय संस्थानों को निगरानी करती हैं। वे संस्थानों के संचालन, निवेश, और वित्तीय प्रबंधन की निगरानी करके सुनिश्चित करती हैं कि वे नियमों और प्रक्रियाओं का पालन कर रहे हैं और ग्राहकों के पैसों की सुरक्षा की गारंटी देते हैं। सरकारें नए तंत्र और कानून का आविष्करण करके वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा को बढ़ावा देती हैं। इन कानूनों और नियमों के माध्यम से संस्थानों को अधिक संविदानिक और प्रावधानिक तरीके से सुरक्षित रहने के लिए अपने प्रबंधन प्रक्रियाओं को सुधारने की आवश्यकता होती है।

वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और निगरानी ना केवल वित्तीय स्थिति की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह भी आर्थिक स्थिति और समग्र आर्थिक स्थिति की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसके माध्यम से लोगों को वित्तीय संस्थानों में विश्वास और संविश्वास बनाये रखने में मदद मिलती है, जिससे वित्तीय स्वाधीनता और सुरक्षा की दिशा में एक कदम आगे बढ़ सकता है।

सरकार के द्वारा निगरानी के माध्यम- सरकार के द्वारा वित्तीय संस्थानों की निगरानी के माध्यम से संस्थानों के संचालन को प्रावधानिक और प्राथमिक तरीके से निगरानी किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्राहकों के पैसों की सुरक्षा और आर्थिक स्थिति की सुरक्षा है। भारत में रिजर्व बैंक वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और निगरानी की मुख्य संगठन है। इसका कार्यक्षेत्र बैंकों की संचालन प्रक्रियाओं, पूँजीकरण, और ऋण देने की नीतियों की निगरानी करना है। रिजर्व बैंक न्यूनतम पूँजी आवश्यकता को निर्धारित करने, निर्विवाद विनिमय दरें निर्धारित करने, और बैंकों के धन और धन प्रबंधन की निगरानी करके संस्थानों की सुरक्षा को सुनिश्चित करता है। सरकार विभिन्न निगरानी और नियमन संगठनों के माध्यम से वित्तीय संस्थानों की कार्रवाई की निगरानी करती है। इन संगठनों के कार्यालय अक्सर वित्तीय संस्थानों की प्रक्रियाओं और नियमों की निगरानी करते हैं और यदि कोई गलती या अनियमितता पाई जाती है, तो संस्थान को उस पर उचित कार्रवाई करने के लिए कहा जाता है।

सुरक्षा के लिए नए तंत्र और कानून का क्रियान्वयन- वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए नए तंत्र और कानून का सही तरीके से क्रियान्वयन एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इन का मुख्य उद्देश्य संस्थानों को और अधिक सुरक्षित और निर्भीक बनाना है। सुरक्षा के लिए नए साइबर सुरक्षा कानूनों की आवश्यकता है जो संस्थानों को ऑनलाइन हमलों से बचाने में मदद करते हैं। ये कानून डेटा सुरक्षा, साइबर आक्रमणों के खिलाफ संरक्षण, और ग्राहकों के डिजिटल निरंतरता की गारंटी प्रदान करने के लिए बनाए जा सकते हैं। सरकारें वित्तीय निगरानी नियमों को संशोधित करके संस्थानों की सुरक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास कर सकती हैं। ये संशोधन नियमों को अधिक सख्त बना सकते हैं और संस्थानों को अपने ग्राहकों की सुरक्षा के लिए और अधिक जिम्मेदार बनाते हैं। नए तंत्र और कानून के आविष्करण से वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और निगरानी को बढ़ावा मिलता है, जिससे लोगों को वित्तीय स्वाधीनता की और अधिक विश्वास होता है कि उनके पैसे सुरक्षित हैं और निगरानी की गई हैं। डिजिटलीकरण के माध्यम से वित्तीय सेवाओं की पहुँच- डिजिटलीकरण के माध्यम से वित्तीय सेवाओं की पहुँच आजकल वित्तीय सेवाओं को लोगों के पास और आसानी से पहुँचाने का माध्यम बन गया है, और इसका महत्त्व बढ़ रहा है। यह तकनीकी अद्यतनता ने ग्राहकों को अपने वित्तीय जरूरियातों को पूरा करने के लिए अधिक सुलभ और तेज तरीके से वित्तीय समावेशन की दिशा में कदम बढ़ाया है:

डिजिटल भुगतान के महत्त्व- डिजिटल भुगतान वित्तीय सेवाओं का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यह ग्राहकों को अपने लेन-देन को ऑनलाइन देखने और नियंत्रित करने की सुविधा प्रदान करता है, जिससे उन्हें अपने वित्तीय स्वाधीनता की अधिक जानकारी होती है और वित्तीय निर्णय लेने में मदद मिलती है। डिजिटल भुगतान के माध्यम से वित्तीय संस्थानें ग्राहकों को वित्तीय सेवाओं की पूरी गुंथाई को एक ही स्थान पर प्रदान कर सकती हैं, जो उनकी सुविधा को बढ़ावा देता है। गाँवों और छोटे शहरों में वित्तीय समावेशन- डिजिटलीकरण ने गाँवों और छोटे शहरों में वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया है। अब लोग अपने गाँवों और छोटे शहरों में बैंकों के पास जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि वे अपने वित्तीय संबंधों को डिजिटल माध्यम से हैंडल कर सकते हैं। छोटे किराना दुकानदारों और व्यापारीगण भी डिजिटल भुगतान के माध्यम से लेन-देन को सुविधाजनक बना सकते हैं, जिससे उनके व्यापार में वृद्धि हो सकती है।

साइबर सुरक्षा के प्रति जागरूकता- डिजिटलीकरण के साथ, साइबर सुरक्षा का महत्त्व बढ़ गया है। लोगों को साइबर सुरक्षा के महत्त्व के बारे में जागरूक करना आवश्यक है ताकि वे अपने ऑनलाइन वित्तीय लेन-देन को सुरक्षित रख सकें। साइबर सुरक्षा के मामले में शिक्षा और संवेदना को बढ़ावा देने के लिए सरकार और वित्तीय संस्थानें जागरूकता अभियान चला रही हैं, ताकि लोग सुरक्षित तरीके से डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग कर सकें। इस तरह, डिजिटलीकरण वित्तीय सेवाओं की पहुँच को बढ़ावा देने के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है और लोगों को अपने वित्तीय स्वाधीनता की दिशा में एक कदम आगे बढ़ने में मदद कर रहा है।

वित्तीय शिक्षा की प्रोत्साहना- वित्तीय शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो समृद्धि और सामाजिक विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह अकेले वित्तीय समझ नहीं है, बल्कि यह वित्तीय स्वयंशासन की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम है। निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं के माध्यम से वित्तीय शिक्षा की प्रोत्साहना के महत्त्व को जानते हैं- वित्तीय जागरूकता समझने के बिना, लोग वित्तीय निर्णयों को सही ढंग से नहीं ले सकते हैं। वित्तीय जागरूकता से लोग निवेश, बचत, कर, और वित्तीय समस्याओं को समझ सकते हैं, जो उनके आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है। सरकारें वित्तीय शिक्षा को प्रमोट करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम और पहलें चलाती हैं। सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में वित्तीय शिक्षा को शामिल करने की पहल की जाती है, ताकि छात्र बचपन से ही वित्तीय जागरूकता प्राप्त कर सकें। सरकारी बैंकों के माध्यम से सरकार वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम चलाती है, जिससे वित्तीय जागरूकता को बढ़ावा मिलता है। वित्तीय प्रशिक्षण के माध्यम से लोग बचत, निवेश, ऋण प्राप्ति, और कर संबंधित निर्णयों को समझने में सहायक होते हैं। वित्तीय प्रशिक्षण के माध्यम से लोग वित्तीय समस्याओं को समझकर उन्हें हल करने के तरीकों को सीखते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होती है। वित्तीय शिक्षा की प्रोत्साहना से न केवल व्यक्तिगत स्तर पर लोगों की वित्तीय साक्षरता में वृद्धि होती है, बल्कि यह समृद्धि और आर्थिक सामाजिक साकारात्मकता के लिए महत्त्वपूर्ण है। सरकार, संस्थान, और शिक्षा प्रणालियों को इस महत्त्वपूर्ण कार्य को प्राथमिकता देना चाहिए ताकि लोग अधिक समर्थ और सुरक्षित वित्तीय निर्णय ले सकें।

वित्तीय संस्थानों का सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों के साथ समर्थन- वित्तीय संस्थानों का सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों के साथ समर्थन के बारे में बात करने से पहले, हमें इसके महत्त्व को समझने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष- सतत विकास के लिए वित्तीय क्षेत्र के सुधार सरकार, संगठनों और व्यक्तियों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इस शोध पत्र के माध्यम से हमने देखा कि वित्तीय संस्थानों की सुरक्षा और निगरानी, डिजिटलीकरण, वित्तीय शिक्षा और सामाजिक, पर्यावरणीय लक्ष्यों के साथ संस्थानों का समर्थन वित्तीय क्षेत्र को सुदृढ़ और सामर्थ्यपूर्ण बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के साथ ही हम अपने लोगों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बना सकते हैं और उन्हें सामृद्धि की ओर अग्रसर कर सकते हैं। इसलिए, सतत विकास के लिए हमें वित्तीय क्षेत्र के सुधार के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए और समर्थन का पूरा उपयोग करना चाहिए ताकि हम समृद्धि, सामाजिक समावेशन, और प्राकृतिक संसाधनों के सबसे अच्छे तरीके से उपयोग कर सकें।

000

संदर्भ-

1.राज, सुमित. "समाज के लिए वित्तीय संस्थानों के सामाजिक योगदान का अध्ययन." 'समाज और वित्त पत्रिका', 2022, पृष्ठ 75-90. 2.श्रीवास्तव, सीमा. "वित्तीय संस्थानों के लक्ष्यों के प्रति उनके समर्थन का महत्त्व." अर्थव्यवस्था और समाज पत्रिका', 2021, पृष्ठ 95-110. 3.मिश्रा, अनुपम. "स्वच्छ ऊर्जा के लिए वित्तीय संस्थानों का सहयोग." 'पर्यावरण और उर्जा पत्रिका', 2020, पृष्ठ 65-80. 4.गुप्ता, रवि. "वित्तीय संस्थानों के सामाजिक समर्थन का आर्थिक प्रभाव." 'वित्त और समाज पत्रिका', 2022, पृष्ठ 85-100. 5.यादव, विकास. "पर्यावरणीय संरक्षण के लिए वित्तीय संस्थानों के साथ समर्थन का योगदान." 'पर्यावरण और विकास पत्रिका', 2021, पृष्ठ 95-110. 6.सिंह, अरविंद. "स्वतंत्रता आधारित बैंकिंग के महत्त्व और इसका सतत विकास पर प्रभाव." 'आर्थिक अनुसंधान पत्रिका', 2022, पृष्ठ 105-120. 7.देव, प्रीति, और अदिति गुप्ता. "वित्तीय समावेशन की भूमिका और महत्त्व: एक अध्ययन।" 'अर्थविज्ञान पत्रिका', 2020, पृष्ठ 1-15. 8.जैन, आशीष. "डिजिटल भुगतान का महत्त्व और उसका सतत विकास पर प्रभाव." 'वित्त और अर्थव्यवस्था पत्रिका', 2022, पृष्ठ 20-35. 9.शर्मा, रमेश. "स्वतंत्रता आधारित बैंकिंग का महत्त्व और उसका सतत विकास में योगदान." 'आर्थिक अनुसंधान पत्रिका', 2021, पृष्ठ 50-65. 10.गुप्ता, अनिता. "वित्तीय शिक्षा के प्रमुख रूप और इसका समर्थन का महत्त्व." 'शिक्षा अनुसंधान पत्रिका', 2022, पृष्ठ 75-90. 11.पटेल, सुनील. "पर्यावरणीय संरक्षण के लिए वित्तीय संस्थानों का योगदान." 'पर्यावरण और विकास पत्रिका', 2020, पृष्ठ ४5-60. 12.माथुर, अरुण. "भारतीय वित्तीय संस्थानों के सामाजिक समावेशन का अध्ययन." 'वित्त और समाज पत्रिका', 2021, पृष्ठ 65-80. 13.शर्मा, संजय. "वित्तीय संस्थानों के सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों के प्रति उनके संरक्षण का अध्ययन." 'पर्यावरण और अर्थव्यवस्था पत्रिका', 2022, पृष्ठ 85-100. 14.बंसल, नितिन. "वित्तीय क्षेत्र में सुधार के प्रभावों का अध्ययन." 'वित्तीय समाचार पत्रिका', 2020, पृष्ठ 35-50. 15.चोपड़ा, रितिका. "वित्तीय शिक्षा के महत्त्व और प्रोत्साहन के उपाय." 'शिक्षा और योजना पत्रिका', 2021, पृष्ठ 55-70.

(शोध आलेख)

हिन्दी कहानियों में मानसिक दिव्यांग चेतना का अन्वेषण

शोध लेखक : वैशाली सिंघल
शोधार्थी,
एम.जे.पी. रुहेलखंड विश्वविद्यालय

शोध सार - मनुष्य विश्व की सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय निर्मिति है। ईश्वर ने मनुष्य को इच्छा, भाव के साथ-साथ कल्पना और बुद्धि भी प्रदान की है। परंतु विचारणीय प्रश्न है कि क्यों कुछ मनुष्य बुद्धि से कमजोर प्रसूत होते हैं। हालाँकि दिव्यांगता अभिशाप नहीं है। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में भी दिव्यांगों ने वह मुकाम हासिल कर दिखाया है जो सकलांगो की सोच से भी दूर है। परंतु मानसिक दिव्यांगता से पीड़ित व्यक्ति की स्थिति अत्यंत संवेदनशील है। स्वयं दिव्यांग ही नहीं उनके प्रति परिवार और समाज की सोच व व्यवहार भी चिंतनीय है। अत्यधिक भावप्रवणता के कारण मानसिक दिव्यांगों को समुचित देखभाल की आवश्यकता हैं। उनके प्रति परिवार और समाज के दृष्टिकोण में बदलाव लाना भी युग की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी कहानियों में व्यक्त की गई मानसिक दिव्यांगों की वेदना, पीड़ा का अन्वेषण किया गया हैं।

बीज शब्द - मानसिक विकलांग, मानसिक दिव्यांग, दिव्यांग विमर्श, विकलांग विमर्श, हिन्दी कहानियाँ।

शोध आलेख - "देश भर में किए गए एक सर्वे के अनुसार, भारत की सामान्य जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत हिस्सा मानसिक बीमारियों से ग्रस्त है। इसके अलावा इनमें से लगभग 10 प्रतिशत लोगों को इमीडिएट मेडिकल केयर की आवश्यकता होती है। ऊपर दिए गए आँकड़ों के मुताबिक या तथ्यों को देखते हुए हमें जरूर इस स्थिति का एहसास होगा कि इस मानसिक विकृति का सामाजिक परिणाम कितना भयावह होगा।"(1)

मानसिक दिव्यांगता जिसका अर्थ है अविकसित, अर्धविकसित अथवा उन्माद या पागलपन की वह स्थिति जिसमें रोगी असामान्य प्रतीत होता है तथा उसे किसी न किसी संस्था अथवा विशेष उपचार की अनिवार्यता अनुभूत की जाती है। यह जनमत: भी हो सकती है, दुर्घटनाजन्य भी, प्रसव पूर्व या प्रसवोत्तर भी। इससे पीड़ित व्यक्ति बोलने, उठने, बैठने, चलने, फिरने अथवा

वैशाली सिंघल
शोधार्थी,
एम.जे.पी. रुहेलखंड विश्वविद्यालय
बरेली (उ. प्र.)
ईमेल- Vaishalisinghal072@gmail.com

अपने सामान्य दैनिक कार्यों को पूर्ण करने में कठिनाई का अनुभव करता हैं। इनके प्राय: सभी कार्यों में असामान्य गति लक्षित होती हैं। तथा ऐसे व्यक्तियों को प्राय: विशेष देखरेख की आवश्यकता होती है।

हिन्दी साहित्य विविध विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, विशेषताओं का कोष्ठागार है। हिन्दी साहित्य द्वारा समाज के प्रत्येक आर्तजन को अभिव्यक्ति मिली है। दलित, अल्पसंख्यक, स्त्री, वृद्ध, आदिवासी आदि समाज के सभी पीड़ित समुदाय की मनोव्यथा का सूक्ष्म चित्रांकन हिन्दी साहित्य सागर में मोतियों की तरह सराबोर हैं। ऐसे में दिव्यांगों की मनोव्यथा का चित्रांकन होना सदी के नवोत्थान का परिचायक है।

हिन्दी कहानियों का विकास यदि देखें तो इसमें पर्याप्त विविधता परिलक्षित होती है। आधुनिक काल में सन् 1900 से हिन्दी कहानी विधा का सूत्रपात होता है। तत्पश्चात युग प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद जी का आगमन होता है। मुंशी प्रेमचंद जी हिन्दी कहानी के क्षेत्र में मिल के पत्थर सिद्ध हुए है। पूस की रात, पंच परमेश्वर, सौत, कफन, ईदगाह आदि के द्वारा आदर्श और यथार्थ का सामान्य हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। तत्पश्चात मनोवैज्ञानिक कहानीकार, जैसे इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र आदि के द्वारा मानव मन के सूक्ष्म उदगारों का सृजन हुआ। हिन्दी कहानी विभिन्न आंदोलनों द्वारा पुष्पित होती रही। वर्तमान 21वीं सदी में हिन्दी कहानी द्वारा एक नवीन विमर्श - दिव्यांग विमर्श का शुभारंभ हुआ है। हालाँकि यह अभिनव विमर्श है परंतु इसके बीज 20 सदी की कहानियों से ही मिलने लगते हैं। जैसे फणीश्वरनाथ रेणु की 'ठेस', कथा सम्राट प्रेमचंद की 'पत्नी से पति', महादेवी वर्मा जी की 'गूँगिया', अज्ञेय की 'खितीन बाबू' आदि कहानियाँ दिव्यांग विमर्श के प्रमाण हैं। परंतु एक विमर्श के रूप में दिव्यांगों हेतु चिंतन 21 वीं सदी में ही आरंभ हुआ। दिव्यांगों को मुख्यत: दो श्रेणियाँ में बाँटा गया है - एक शारीरिक दिव्यांग, दूसरे मानसिक दिव्यांग। हिन्दी कहानियों में मानसिक दिव्यांगों को दृष्टिगत रखते हुए अनेक सुंदर व मर्मस्पर्शी कहानियों का सृजन हुआ है जिनका अनुसंधान निम्नवत है - लेखक महेंद्र देवेश्वर 'दीपक' की 'एक रोटी जली हुई' शीर्षक कहानी में एक दिव्यांग बच्ची है जो गंभीर व्याधि से बच तो जाती है परंतु मानसिक रूप से वह विक्षिप्तावस्था में पहुँच जाती है। परिणामस्वरूप उसके पिता उसके प्रति अजनबी स्वरूप व्यवहार करने लगते हैं तथा एक दिन वह घर छोड़कर चले जाते हैं। मानसिक रूप से दिव्यांग बच्चों को सहानुभूति व संवेदना का ना मिल पाना दिव्यांग बच्चों की मार्मिक स्थिति का परिचायक हैं। सर्वप्रथम विक्षिप्तावस्था के बालक दूसरी ओर देखरेख करने वाले माता पिता से वंचित हो जाना पीड़ा को द्विगुणित कर देता हैं। निश्चय ही यह कहानी पाठकों को मानसिक दिव्यांग बच्चों की वेदना से द्रवीभूत कराने में सफल सिद्ध हुई हैं। लेखक सत्यराज की 'छोटू' शीर्षक कहानी में छोटू नायक है जो कि जन्मत: मानसिक रूप से दिव्यांग है। अनेक चिकित्सकों के उपचार पश्चात भी वह स्वस्थ नहीं हो पता है तथा उसकी विक्षिप्तता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उसका पागलपन पूरे परिवार के लिए भय और आतंक का केंद्र बन जाता है। एक दिन वह चूहे मारने की दवा खाकर मृत्यु का वरण कर लेता हैं। "यह कहानी मानसिक विकलांग छोटू की कहानी है जो बहुत उपद्रवी है। माँ-बाप के लाड़ के कारण उसकी यह विकलांगता और उग्रतर होती है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है।"(2)

नरेश पंडित की 'नीली घाटी में खुलती आँख' शीर्षक कहानी में सतमासा जियालाल नायक है जो कि 8 से 10 वर्ष की उम्र का सामान्य बालक दृष्टिगत होता है। परंतु "चौदहवें साल में जियालाल का शरीर अजीब तेजी से बढ़ना शुरू हुआ। उसे गजब की भूख लगने लगी। घर की रोटियाँ इसके पेट को पूरी नहीं पड़ती और जो कुछ भी इसके सामने पड़ता, उसे वह हजम कर जाता।"(3) वह पागल कुत्ते की खोपड़ी पर भी ऐसे प्रहार करता है कि वह वहीं ढेर हो जाता है। डॉक्टर शिवरतन मानघना का मंतव्य हैं - "जियालाल को जब पता चला कि लाहौरी लड़कियों को एजेंटों के जरिए शहर में बेचता है तो उसने उसे भी कुत्ते जैसा ही मारा।"(4) अर्ध विक्षिप्तता की स्थिति में होने के पश्चात भी वह समाज सेवा का उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। प्रसिद्ध हिन्दी नाटककार, उपन्यासकार और लघु कथा लेखक स्वदेश दीपक की 'बाल भगवान' शीर्षक कहानी मानसिक दिव्यांगों की उत्तम कहानियों में से एक है। इस कहानी में एक मानसिक व्यथा से पीड़ित बालक है। लेखक द्वारा उसका रेखांकन इस प्रकार हैं - "सर जितना बड़ा है, दिमाग उतना ही छोटा है। वह जन्म से ही ऐसा है। आयु बढ़ी, शरीर बढ़ा लेकिन दिमाग एक छोटे से ताले की तरह हमेशा से बंद है। वह पागल नहीं, सीधा भी नहीं, इधर की भाषा में सिद्ध है। सयाने दिमाग और पागल दिमाग के बीच के दिमागवाला।"(5) कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा इस अर्धविक्षिप्त बालक को ही बाल भगवान नाम से प्रसिद्ध किया गया है। ये स्वार्थपरायण लोग उस अर्धविक्षिप्त बालक को पैसा कमाने का जरिया बनाते हैं। तथा अंधविश्वासी समाज उसे भविष्य दृष्टा के रूप में सहर्ष स्वीकार भी कर लेता है। कहानी द्वारा स्वार्थी अवसरवादी लोगों का पर्दाफाश किया गया है जो लोभवश दिव्यांगों के साथ भी दुर्व्यवहार करने से नही कतराते। डॉक्टर अनीता सिंह की 'मंदबुद्धि' शीर्षक कहानी एक दिव्यांग मंदबुद्धि बालक के अपने माता-पिता के प्रति आत्मसमर्पण और कर्त्तव्यनिष्ठता की कहानी है। कथा नायक राजेश के पिता अमरलाल और माता दुलारी अपने बड़े बेटे राजेश के मंदबुद्धि होने के कारण दुखी दंपति हैं। राजेश के भविष्य से चिंतित उसके पिता उसे अपने ही साथ खेती किसानी, गाय भैंस को चारा खिलाने इत्यादि कार्य में दक्ष कर देते है। इस प्रकार अपने कार्य के प्रति उसकी कर्मठता को देखते हुए एक गरीब कृषक उसे अपनी कन्या से विवाह का प्रस्ताव देता है। जिससे उसके पिता सहर्ष स्वीकार कर उसका विवाह संपन्न करा देते हैं। समय बीतने के साथ ही अन्य बच्चे विवाह और नौकरी हेतु अलग-अलग स्थानो पर रहने लगते हैं तथा घर में केवल राजेश, उसकी

पत्नी और माता-पिता ही शेष रह जाते हैं। वृद्धावस्था के कारण माँ पार्किसन से पीड़ित हो जाती हैं परंतु राजेश के प्राणपण समर्पण अवलोकनीय हैं - "वह सुबह से शाम तक माँ की सेवा में लगा रहता यहाँ तक की दैनिक क्रिया से निवृत करना नहलाना कपड़े पहनना खाना खिलाना खिलाना करवट बदलवाना सारे काम मन लगाकर करता।"(6) राजेश की सेवा परायणता को देखकर उसके पिता अमरलाल कहते हैं - "दुलारी, हमारे और भी बच्चे मंदबुद्धि रहते तो कितना अच्छा होता।....जिन बच्चों की तरफ से निश्चिंत थे कि वह सबल हैं, सकलांग हैं, सक्षम हैं, आज वही बच्चे तेरी विकलांगता की हालत में तुझसे मुँह मोड़ लिए हैं और यह मंदबुद्धि विकलांग अपनी विकलांगता नहीं, बल्कि सकलांगता का परिचय देकर तेरी दिन-रात सेवा कर रहा है।"(7) लेखिका सिम्मी हर्षिता की कहानी 'अनिमंत्रित' का केंद्रबिंदु मनु जन्म से ही मानसिक रूप से दिव्यांग बालक है। वह इधर-उधर दौड़ता रहता है। कभी घर वाले उसे उठाकर, पड़कर सामान की तरह बंद कर देते हैं और वह कमरे में चिल्लाता रहता है। खिड़कियों और दरवाजे से बच्चे उसे देखकर पागल कहकर चढ़ते-रुलाते हैं। वह शरीर से तो विकसित हो रहा है परंतु उसका मस्तिष्क अभी भी विकसित नहीं हो पा रहा है। इसी उधेड़बुन में एक दिन उसकी माँ की अनुपस्थिति में उसकी बड़ी बहन गुस्से में कह देती है - "बैल की तरह बड़े होते जा रहे हो... शर्म नहीं आती तुम्हें? तुम क्यों जीवित हो अब तक? क्यों जीने का तुम्हें बहुत मोह है? तुम्हें भला जीकर करना भी क्या है यहाँ...?"(8) प्रस्तुत कहानी द्वारा मानसिक दिव्यांग बालक पर उसके स्वजनों द्वारा किया गया दुर्व्यवहार समाज के यथार्थ को पूर्ण मार्मिकता के साथ उद्घाटित करता हैं। दिव्यांगों की वेदना को सहज, स्पष्ट व संवेदनशील भाषा द्वारा अभिव्यंजित किया गया हैं।

मानसिक दिव्यांगों में प्राय: हीन ग्रंथि परिलक्षित होती है। हीन ग्रंथि से तात्पर्य है स्वयं को श्रेष्ठ या सर्वश्रेष्ठ समझ लेना तथा दूसरों की अनदेखी करना। ऐसे में अनेकांशत: द्वंद उत्पन्न होता है परिणामस्वरूप अंतर्विरोध का आगमन होता है। एडलर के मतानुसार - "सामान्यत: सभी मनोग्रंथियों का मुख्य कारण हीनता या श्रेष्ठता की ग्रंथियाँ है।"(9) अहम और कुंठा जैसी ग्रंथियाँ व्यक्ति के बहिर्मुखी और अंतर्मुखी चरित्र को प्रभावित करती है। इससे मानव स्वभाव और उसका संपूर्ण जीवन आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित होता है। इन्हीं हीन ग्रंथियों का विवेचन हिन्दी कहानियों में प्रभावपूर्ण रूप से अंकित किया गया हैं। सुषमा मुनींद्र की 'हस्ती मिटती नहीं हमारी' शीर्षक कहानी की नायिका अंबी कुरूप और चेचक के दाग होने के कारण दुखित है। हीन ग्रंथि का शिकार होने के कारण वह अपनी कुरूपता को कम करने हेतु चेहरे पर पाउडर, माथे पर सुंदर बिंदी और आँखों में काजल लगाती है। तत्पश्चात भी वह पति द्वारा अपमानित होती रहती है। हीन ग्रंथि की शिकार इस नायिका का दर्द वास्तव में समाज के यथार्थ को ही उद्घाटित करता हैं। लेखिका शिवानी की 'चील-गाड़ी' शीर्षक कहानी एक ऐसी महिला की व्यथा कथा है जो यक्ष्मा रोग से पीड़ित है तथा उसका चेहरा भी क्षयग्रस्त हो गया है। मात्र 7 वर्ष वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के उपरांत वह विधवा हो जाती है। परंतु इन सब से संघर्ष करते हुए वह अपनी मेहनत और लगन से जीवन में ऊँचाइयों को प्राप्त करती है। उसकी जिजीविषा और कर्मठता प्रशंसनीय है। सचेतन कहानी आंदोलन के प्रवर्तक महीप सिंह द्वारा रचित 'और और वृत' शीर्षक कहानी की नायिका का चरित्रांकन इस प्रकार किया गया हैं - "यह अंधेड़ आयु की हड्डियों का ढांचा मात्र थी। रंग उसका बहुत काला तो नहीं था पर ऐसा मटमैला था जिसके सामने गहरा काला रंग अच्छा लगता है। आँखो पर पुराने फ्रेम का एक चश्मा और उसके पीछे छिपी आँखो से झाँकती हुई एक बड़ी डरावनी- सी कठोरता। आँखो की वह कठोरता सारे चेहरे पर बिखरी हुई थी।"(10) स्वयं की इस कुरूपता के कारण वह हीन ग्रंथि से ग्रस्त रहने को विवश है। समाज की उपेक्षा और लांछना उसके दुख में 'जले पर नमक छिड़कने' का कार्य करती हैं। कहानीकार ने समाज की संवेदनहीनता और दिव्यांगों की मानसिक पीड़ा का सजीव चित्रांकन स्तुत्य कहानी में सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है।

निष्कर्षस्वरूप साहित्यकारों द्वारा अभिव्यंजित कहानियों के माध्यम से मानसिक दिव्यांगों की वेदना का सूक्ष्म दृश्यांकन किया गया है। दिव्यांगों की स्वयं की पीड़ा, समाज से प्राप्त उपेक्षा और अन्यत्र संघर्षों से लड़ते हुए भी जीवन में सफलता अर्जित करना निश्चित रूप से किसी भी सकलांग को आश्चर्यचकित कर देता हैं। दिव्यांगों की ऐसी पीड़ादायक स्थिति को देखकर अनायास ही मन में सहानुभूति का भाव मुखरित होने लगता है। एवं समाज की संवेदनहीनता पर ग्लानि से पाठक का हृदय द्रविभूत हो जाता हैं। वास्तव में, समय की आवश्यकता है कि दिव्यांगों के सुधार हेतु उचित कदम उठाए जाए एवं उन्हें सशक्त व आत्मनिर्भर बनाया जाए।

000

संदर्भ- 1 (संपा) आनंद कश्यप : विकलांग-विमर्श विविध सोपान, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ संख्या 74। 2विनय कुमार पाठक: विकलांग विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 177। 3वही, पृ संख्या 178। 4वही, पृ संख्या 178। ५ 5https://www.hindisamay.com 6विनय कुमार पाठक: विकलांग विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 181। 7वही, पृ संख्या 181। 8 डॉक्टर कविता यादव: समकालीन कथा साहित्य में निशक्त केंद्रित रचनाएँ, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 127। 9विनय कुमार पाठक: विकलांग विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 183। 10वही, पृ संख्या 184। 11 डॉक्टर कविता यादव: समकालीन कथा साहित्य में निशक्त केंद्रित रचनाएँ, पंकज बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ संख्या 127।

(शोध आलेख)

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में निम्नवर्गीय चेतना

शोध लेखक : राणा कुमार झा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

शोध सार-कथा साहित्य के सन्दर्भ में जब भी हम फणीश्वरनाथ रेणु की चर्चा करते हैं; समाज की परिधि पर केंद्रित उपेक्षित और वंचित समुदाय की समस्याएँ चित्रात्मक बिम्ब में हमारे सामने उपस्थित हो जाती हैं। वास्तव में रेणु जी अंचल विशेष की समस्या को उसके सांस्कृतिक परिवेश में इस प्रकार से उभारते हैं कि पाठक उसे स्वयं की कथा-सा अनुभूत करने लगता है। यह रेणु के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें समाज की उपस्थिति ही नहीं है बल्कि इसके ही समानांतर समाज में भी इसकी उपस्थिति बरकरार है। उनके द्वारा वर्णित निम्नवर्गीय प्रसंग का कथानक पाठक को अपने रंग में इस प्रकार भिगोता है कि सबका स्वत: ही साधारणीकरण हो जाता है।

रेणु ने अपने लेखन ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन में संघर्ष पर विशेष बल दिया है। वे कहते थे- "दिव्य प्रतिवाद से हरदम यह जीवन जलता है।" रेणु जी के इन वक्तव्यों से उनके कथा साहित्य की समग्रता, उद्देश्य एवं उस पूर्णता का सुराग मिल सकता है, जिसकी तलाश वे आजीवन गाँव के किसान, खेतिहर-मजदूर, शोषित एवं वंचित आदि पात्रों में करते रहे। निम्नवर्गीय चेतना के सन्दर्भ में अंतोनियो ग्राम्शी ने जिस सर्वहारा वर्ग से सम्बंधित शोषित समाज की चर्चा की है। रेणु के कथा साहित्य में उसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति विद्यमान है। उन्होंने सर्वप्रथम समाज की परिधि पर स्थित उन पात्रों को केंद्र में लाने की कोशिश की जो वर्षों से साहित्य में उपेक्षित या अनुपस्थित थे। इसके लिए आंचलिकता का व्यवस्थित उद्घाटन कर उसमें निम्नवर्गीय पात्रों को नायक-नायिका के रूप में स्थापित करने का साहित्यिक प्रयत्न रेणु जी द्वारा जिम्मेदारीपूर्ण तरीके से किया गया है।

उनके द्वारा रचित अन्य उपन्यास एवं कहानी विधा में भी स्थानीय चरित्र को उसके अपने ही भावात्मक राग में उपस्थित किया गया है। उदाहरण के लिए 'पंचलाइट' कहानी में महतो टोली के लोग जब पेट्रोमैक्स खरीद कर लाते हैं तो राजपूत टोली के लोग उसे जलाने हेतु पाँच बार कान पकड़ कर उठने-बैठने की सलाह देते हैं। यहाँ यह गौर करना चाहिए कि पंचलाइट जलाने से अनभिज्ञ समाज के लिए ही यह प्रसंग विशेष हो सकता है, जो सामान्यत: पिछड़ा हो।

बीज शब्द- सबाल्टर्न साहित्य, आंचलिकता, औपनिवेशिकता, सामंती संरचना, निम्नवर्गीय चेतना, जोतदारी, विस्थापन, लोकवृत्ति, हाशिया वर्ग, स्वामित्व, इत्यादि।

शोध आलेख-फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य की एक बड़ी विशेषता है कि उनकी अधिकांश कथाएँ परिवेश के सन्दर्भ में लगभग एक-दूसरे के समानांतर है। यहाँ अधिकांश कथावस्तु ग्रामीण अंचल के हैं। इसलिए उनके साहित्य में सभी समीक्षकों को सर्वप्रथम आंचलिकता का ही दर्शन होता है। यहाँ हमें आंचालिकता को क्षेत्रीयपन से नहीं बल्कि स्थानिक समस्याओं से जोड़ कर देखना चहिए, क्योंकि सभी रचना अपनी विशेष स्थानिकता को स्वयं में समाहित किए रहती है। वास्तव में रेणु जी के लेखकीय व्यक्तित्व का आलोचनात्मक चेतना के स्तर पर सम्पूर्ण निखार नहीं हो सका है। हिन्दी कथा साहित्य में स्थानीय बोली के सम्मिश्रण पर उन्हें आंचलिक रचनाकार होने की उपमा मिली लेकिन वास्तव में उनकी समस्या की स्थानिकता में सार्वभौमिकता अंतर्निहित है और उनके इस लेखकीय अस्मिता का आधार है- 'निम्नवर्गीय चेतना।' इसलिए फणीश्वरनाथ रेणु को सिर्फ आंचलिकता का सन्दर्भ देकर स्थानीय कथाकार के रूप में उपस्थित करना वास्तव में उनके साथ न्याय नहीं होगा।

वैश्विक कथा साहित्य में निम्नवर्गीय चेतना की एक अल्प समृद्ध परम्परा रही है। इस सैद्धांतिकी से सम्बन्धित जितने भी साहित्य रचे गए उसकी वैचारिकी से सम्बन्धित ज्ञान का प्रसार समाज तक नहीं हो सका या हुआ भी तो कुछ विशेष बौद्धिक वर्ग तक ही सीमित रहा। रेणु की कहानी में ग्रामीण किसान से लेकर खेतिहर मजदूर और पतनशील सामंती संरचना को एक साथ देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'संवदिया' कहानी में लेखक ने टूटती हुई सामंती संरचना को बड़ी मार्मिकता के साथ दिखाया है। कथानुसार जहाँ परिवार की महिला को मेहंदी

राणा कुमार झा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
बिड़ला 'ब' छात्रावास, कमरा सं.- 128
बी. एच. यू, वाराणसी 221005 उप्र
मोबाइल- 9076973523
ईमेल- ranakumarjha123@gmail.com

लगाकर ही गाँव की नाइन परिवार पालता था; उसी परिवार की बड़ी बहुरिया अब राशन का उधार नहीं चुका पा रही है। इसलिए वह इस व्यवस्था को छोड़कर अपने यहाँ लौटने का विचार कर रही है। संवाद प्रेषक हरगोबिन तक जब यह सूचना पहुँचती है कि बड़ी बहुरिया हमेशा के लिए अपना गाँव जाने की सोच रही है तो उसका हृदय अत्यन्त विकल हो उठता है। वह संवाद लेकर थाना बिंहपुर पहुँचते ही अत्यन्त भावुक हो उठता है। बाद में वहाँ रुकने के बाद दूसरे दिन भी समाचार नहीं सुना पाता है और यह संकल्प लेकर वापस आ जाता है कि अब बड़ी बहुरिया को कोई कष्ट न हो। इसके लिए वह जो भी संभव हो सब करेगा। बाद में बड़ी बहुरिया भी हरगोबिन की बात से सहमत होकर अपने ही गाँव में रहना पसंद करती है। परती परिकथा में लुत्तो अधीनस्थ चेतना रहित जीवन चाहता है और तत्कालीन जमींदारी व्यवस्था के खिलाफ़ प्रत्यक्ष संघर्ष छेड़ देता है। इस घटना के बावजूद जमींदार के उत्तराधिकारी पुत्र जित्तन उसे क्षमा कर देता है और कहता है- "हमारे गाँव की मिट्टी में सांस्कृतिक सोना फल सकता है।" 1 इस तरह से फणीश्वरनाथ रेणु पर नेहरू के आधुनिक समावेशी विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। प्रखर स्वतंत्रता सेनानी रेणु स्वतंत्रता उपरांत भी एक साहित्यकार होने के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी अत्यन्त सक्रिय रहे और समाज की समस्याओं का निरंतर संधान करते रहे।

रेणु जी नैतिक रूप से बेहद ईमानदार छवि के कथाकार रहे। अपने जीवन में जो स्वयं अनुभव करते या अपनी आँखों से देखते उसी पर निम्नवर्गीय परिप्रेक्ष्य में कोई रचना करते थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने जब देश में आपातकाल लागू किया तो रेणु ने इसका अपने स्तर पर पुरजोर विरोध किया लेकिन कोई असर नहीं होने पर उन्होंने स्वयं अपने पेंशन बंद करा लिए, जबकि उस समय वे विशद आर्थिक समस्या से जूझ रहे थे। कवि अज्ञेय जब रेणु जी से मिलने पटना पहुँचे तो वे उन्हें साथ लेकर वहाँ के बाढ़ की विभीषिका का आकलन करने पहुँच गए जिसके बाद उन्होंने 'पटना - जलप्रलय' नामक संवेदनशील रिपोर्ताज की रचना की। इसमें बिहार के बाढ़ से लोगों के अस्थाई पलायन को हाशिया वर्ग के जीवन-संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। उनकी अधिकांश रचना में उपेक्षित और वंचित समाज की पीड़ा ही साहित्य का केंद्र रहा है। उन्होंने तत्कालीन कथा साहित्य की लेखन परम्परा और सैद्धांतिकी की परवाह किए बिना निरंतर स्थानीय परिप्रेक्ष्य से सम्बंधित लेखन ही करते रहे। तत्कालीन दौर में सबसे आखिरी पंक्ति में खड़े समाज को साहित्य के केंद्र में लाने के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी उनकी सामाजिक-साहित्यिक अभिव्यक्ति, जिसे रेणु जी ने बखूबी निभाया।

फणीश्वरनाथ रेणु ने जिस लोक साहित्य की रचना की वास्तव में वह सबाल्टर्न विचारधारा से गहरा अंतर्संबंध रखता है। उनके कथा साहित्य की एक ऐसी पारिस्थितिकी है, जिसमें एक तत्त्व के बिना दूसरा अधूरा लगता है। इस प्रकार यहाँ कथानक, पात्र एवं भाषा शैली इत्यादि सब एक-दूसरे के पूरक हैं। अज्ञेय ने रेणु की इस विशेषता पर मुग्ध होकर कहा था कि - " 'रेणु मुझे बड़े भाई- सा मानते थे और मैं उसे अनुज-सा। पता नहीं भाई-भाई के बीच की सहज प्रतिस्पर्धा का अनुभव कभी हुआ या नहीं, पर मुझे तो कभी-कभी अवश्य ईर्ष्या होती थी उनके इन चरित्रों को अपने सामने पाकर - कितनी वैविध्य भरी कितनी समृद्ध और कितनी खरी थी रेणु की वह दुनिया जिसे वह कितने - निरायास ढंग से सामने मूर्त कर देते थे।" 2 कथा साहित्य में ऐसा प्रयोग रेणु उस समय कर रहे थे जब हिन्दी में यह व्यवस्थित रूप में उपलब्ध नहीं था। इसलिए उनके साहित्य को आंचलिकता के बंधन में बाँधना सही नहीं है। यहाँ आंचलिकता एक विशेष और प्रबल साहित्यिक गुण हो सकती हैं लेकिन इसके ही आधार पर समग्र मूल्यांकन करना उचित नहीं होगा।

रेणु ने स्थानीय समस्या को साहित्य के केंद्र में लाया और अत्यन्त मशक्कत करने के बाद समाज ने उसे अपनी स्वीकृति भी दी। इस विषय पर रेणु ने हमेशा ध्यान दिया कि अभाव या निर्धनता के मूल में अशिक्षा सबसे अहम कारक है। इसके लिए वे किसी आलोचना या चुनौती से घबराकर पीछे नहीं मुड़े। 'मैला आँचल' जैसे चर्चित उपन्यास लिखने पर भी उन्होंने कभी अपना गंवईपन नहीं छोड़ा बल्कि उसे सहर्ष स्वीकार भी किया। मैला आँचल की भूमिका को इसकी सबसे बड़ी नज़ीर के रूप में देखा जा सकता है। अपने सबसे चर्चित लोकप्रिय उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है- "इसमें फूल भी है शूल भी धूल भी है, गुलाब भी कीचड़ भी है, चन्दन भी सुन्दरता भी है, कुरूपता भी, मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।" 3 अपनी गुणवत्ता और पाठक की इसमें असाधारण रुचि ने आलोचकों को इसके भविष्य पर विचार करने के लिए बाध्य कर दिया। उनकी कथा में लोकवृत्ति का ऐसा मिश्रण है कि वह पाठक ही नहीं बल्कि ऐसे सभी जन को उस ओर विशेष रूप से आकर्षित करता है, जो अपनी अंचल के समाज एवं संस्कृति की अस्मिता से स्वयं को जोड़कर रखना चाहते हैं।

रेणु जी अंचल की बोलियों को अपने साहित्य में विशेष रूप से स्थान दिए हैं, जिससे उनका साहित्य सामान्य जन को अपनी कहानी सी प्रतीत होती है। वास्तव में यह किसी भी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए सबसे अच्छी पहल है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि - हिन्दी बिना जनपदों की बोलियों को साथ लिये उन्नति कर ही नहीं सकती। भाषा की दृष्टि से जनपदों में बेहिसाब मसाला भरा पड़ा है।" 4. वास्तव में साहित्यिक रूप से बोलियों का प्रयोग भाषा को टिकाऊ बनाने का सबसे बेहतरीन पहल है, जिसे रेणु जी ने बखूबी निभाया। रेणु के कथा साहित्य पर स्थानीय होने का जो भी आरोप लगा है ; उसका मूल आधार अंचल विशेष की बोलियों का प्रयोग ही है। साहित्यिक कृति में भाषा का विकास एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और भाषा का विकास बोलियों से होता है। इस प्रकार इसमें

निम्नवर्गीय अस्मिता का बोध उनकी अपनी शब्दावली में अभिव्यक्त हो सका है, जिसमें वे स्वयं की पीड़ा को महसूस कर सकते हैं।

रेणु के बाद आंचलिकता से जुड़े साहित्य लिखने वालों की एक अलग साहित्यिक परम्परा चल पड़ी और इसका उतरोत्तर विकास हुआ। हालाँकि, कोई भी कथा अपनी स्थानिकता से रहित नहीं होता है। रेणु के साहित्य की इससे इतर एक विशेषता है कि इसमें क्षेत्रीय बोलियों का पुट मिलता है जो तुलनात्मक दृष्टिकोण से अन्य रचनाकारों की अपेक्षा अधिक है और फणीश्वरनाथ रेणु को आंचलिक रचनाकार घोषित करने में यह एक प्रमुख कारक है। आजादी के बाद समाज जिस उम्मीद से अपने सपने संजोए थे उसे उन्होंने अपनी ही आँखों से बिखरते भी देखा। स्वतंत्रता का मोहभंग इतने कम समय में हो जाए; वास्तव में इसे आत्मसात करना आसान नहीं रहा। इस प्रकार राष्ट्र निर्माण एवं सामान्य उपेक्षित एवं वंचित जनता के अधिकार की बात इसमें एक-दूसरे के समानांतर है।

भाषा के दृष्टिकोण से जिस विषय पर उन्होंने लिखा उसमें उसी अंचल की बोली को स्थान दिया है। मैला आँचल में रेणु जी ने विविध निम्नवर्गीय पात्र की समस्याओं को उजागर किया है। इसमें किसान, स्त्री, खेतिहर-मजदूर, दलित, आदिवासी आदि कई वर्ग अपनी विशेष समस्या के साथ उपस्थित है। उदाहरण के लिए मैला आँचल में लक्ष्मी दासी की समस्या इस बात का प्रमाण है कि - "असहाय औरत को देवता के संरक्षण में भी सुकून नहीं मिल सकता।" 5

सभी क्षेत्र की सामंती संरचना में यह विशेषता पायी जाती है कि बनी-बनायी संरचना के भीतर जीवनयापन करने वाली जनता को आदर्श माना जाता है। हालाँकि, यह विचार शोषित को मानसिक गुलाम बनाने में सर्वाधिक योगदान करता है। यह विचार वर्षों तक उनके अंतर्मन में यह पैठ बना लेता है कि लघु हैं। यह हीन भावना को जन्म देता है। इस मानसिकता से निकलने में शासितों की कई पीढ़ी बीत जाती है। सामंत वर्ग शासित को अधिकांश प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधन से वंचित रखता है ताकि उन्हें आसानी से नियंत्रित किया जा सके। उन्हें इस प्रकार से नियंत्रित करने की साजिश की गई है, जैसे- शासक के रहम से ही शोषित का जीवनयापन संभव है। वास्तव में यह इसके विपरीत होता है। फणीश्वरनाथ रेणु का सम्पूर्ण कथा साहित्य इसी निम्नवर्गीय चेतना पर आधारित है। हालाँकि, अधिकांश समीक्षकों ने उन्हें आंचलिकता और लोक साहित्य के दायरे में रखा है। फणीश्वरनाथ रेणु का प्रथम उपन्यास मैला आँचल भी औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी सैनिकों द्वारा भारतीयों पर शोषण की घटना से शुरू होता है। इस तरह से फणीश्वरनाथ रेणु की रचना में शोषण का चक्र मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित दिखाई पड़ता है। 'परती परिकथा' के सन्दर्भ में कृषक समस्या पर प्रसिद्ध आलोचक मधुरेश ने लिखा है कि- स्वामित्व का प्रश्न उतना बड़ा नहीं है, जितना कि जोतदार का प्रश्न है। बड़े किसानों के लिए सीमा का प्रश्न स्वामित्व का प्रश्न है, छोटे किसानों के लिए जोतदारी - बटाई का प्रश्न अस्तित्व और अधिकार का प्रश्न है।" 6

फणीश्वरनाथ रेणु को वैश्विक कथा साहित्य के समानांतर रखने के लिए उनकी रचना का विचारों एवं सिद्धांतों के साथ संयोजन अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी के समकालीन आलोचक मैनेजर पाण्डेय साहित्य में समाज की उपस्थिति पर विशेष बल देते हैं। उन्होंने कहा है कि- "कथा साहित्य में आंचलिकता के आंदोलन का समाजशास्त्रीय - अध्ययन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दे सकता है।" 7इस प्रकार साहित्य में समाज की उपस्थिति का एक प्रमुख कारक आंचलिकता भी है, जिसमें समाज अपने मूल सांस्कृतिक रूप में उपस्थित होता है। आंचलिक रचनाओं में यह विशेष ख़ूबी होता है कि इसमें नायक-नायिका कोई विशेष पात्र नहीं होता बल्कि समस्त अंचल ही इसमें शामिल हो जाता है और विशेष रूप से उन पात्रों का चरित्र ही उभरता है, जो अधिक संघर्षी हो। समाज की परिधि पर स्थित पात्र के जीवन में अधिक संघर्ष और शोषण होता है। इसलिए वह अधिकांशत: निम्नवर्गीय चेतना से सम्बंधित होते हैं। इस प्रकार आंचलिकता में निम्नवर्गीय चेतना विशेष रूप से निहित होता है।

जुलूस उपन्यास में जुमापुर (वर्तमान बाँग्लादेश) से विस्थापित जनता कई प्रकार के शोषण का शिकार होती है। सर्वप्रथम साम्प्रदायिकता की आड़ में काम वासना से प्रेरित सामंती कासिम, पवित्रा को पाने के लिए उनके परिवार पर हमला कर उसके सभी सदस्यों की हत्या कर देता है। इस घटना से विक्षुब्ध और भयभीत जनता पवित्रा के नेतृत्व में जुमापुर से मालदह, मालदह से कटिहार, कटिहार से पटना, पटना से बेतिया, और अंत में पूर्णिया के नवीनगर आती हैं। यहाँ भी उन्हें स्थानीय भेदभाव का सामना करना पड़ता है। यहाँ उन्हें अपने अस्तित्व और पहचान की लड़ाई लड़नी पड़ती है। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण सवाल है कि विस्थापन से पुनर्वासन तक पवित्रा के प्राकृतिक मानवीय अधिकार का क्या हुआ ? इस प्रकार रेणु का अधिकांश कथा साहित्य निम्नवर्गीय चेतना से प्रेरित है।

000

संदर्भ-

1 परती कथा, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, चौदहवाँ संस्करण 2020, पृ. सं. - 348, 2भारत यायावर, रेणु का है अन्दाजे बयाँ और, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ. सं. - 182, 3मैला आँचल (प्रथम संस्करण की भूमिका), फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 1984, 4पृथ्वी-पुत्र, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. सं. - 150, 5हिन्दी का गद्द - साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तेरहवाँ संस्करण, 2020, पृ. सं. - 110, 6फणीश्वरनाथ रेणु और मार्क्सवादी आलोचना, सम्पादक: मधुरेश, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. सं. - 67, 7साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), तृतीय, संस्करण, 2023, पृ. सं. - 47

शोध आलेख

(शोध आलेख)

तत्कालीन समाज पर बौद्ध विहारों का प्रभाव

शोध लेखक : डॉ. अभिषित त्रिपाठी पोस्ट-डॉक्टोरलफेलो (भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद- नई दिल्ली)

भारतवर्ष के इतिहास में बौद्ध युग का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह युग भारतीय विचार परंपरा की दृष्टि में अत्यंत ही उथल-पुथल रहा है। सामाजिक और संस्कृत नवचेतना के इस युग में भगवान बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुषों का इस देश में जन्म हुआ जिन्होंने संसार को सत्य और अहिंसा का संदेश दिया, जो दु:खों से पीड़ित मानव के लिए वरदान हो गया। उन्होंने धार्मिक जगत को संघीय जीवन पद्धति दी जिसका आगे आने वाले समय के संप्रदाय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इस युग में कई नए मतों का उदय हुआ। जिन्होंने तात्कालिक भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों तथा अंधविश्वासों के प्रतिकार का मार्ग प्रस्तुत किया। जातिवाद का सर्वप्रथम विरोध बुद्ध तथा महावीर ने किया। उन्होंने वेद तथा ब्राह्मण की सत्ता को भी चुनौती दी। भगवान बुद्ध ने अपने धर्म का उपदेश आम जन मानस की भाषा में दिए जिससे वे सभी के लिए बोधगम्य हो सके। ब्राह्मण ग्रंथ दुरूह होने के कारण जनता के लिए दुर्बोध हो गए थे। अत: नवीन विचारों का जनमानस पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। भगवान बुद्ध के धर्म उपदेश का राजा तथा जनता दोनों में स्वागत किया। बुद्ध के समकालीन अनेक प्रमुख ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार ही नहीं किया बल्कि इसके दार्शनिक आधार को सुदृढ़ बनाया। भगवान बुद्ध ने अपने दर्शन का प्रमुख आधार इन दोनों तत्वों को बनाया - पहले उन्होंने दर्शन की जटिलताओं में न जाकर एक सर्वबोधगम्य आचार संहिता के पालन का उपदेश दिया और तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक रीति रिवाज का विरोध ना करके एक सुधारक के रूप में तत्कालीन कुरीतियों के प्रतिकार का प्रयास किया। इन दोनों कर्म से बौद्ध धर्म सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और अपने युग के चेतन को बहुलांश में प्रभावित कर सका। बौद्ध मत का व्यापक प्रचार हुआ और क्रमश: बौद्ध पालि साहित्य समृद्धि होता गया। वैदिक युग के श्रुति -स्मृति परंपरा का अनुसरण करते हुए सर्वप्रथम बुद्ध वचनों को सुरक्षित रखा गया परंतु कालांतर में उन्हें लिपिबद्ध कर दिया गया। इस प्रकार उसे वह रूप प्रदान किया गया जो अब तक सुरक्षित है। यह साहित्य भंडार बुद्ध युग के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास के ज्ञान के लिए एक बहुमूल्य निधि है। जिसमें समकालीन समाज का प्रमाणिक विवरण उपलब्ध होता है।

किसी भी युग के सांस्कृतिक जीवन के विवरण के लिए कथा साहित्य के महत्त्व की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। कहानी समाज का प्रतिबिंब होती है। इस युग में समाज में बड़ी जड़ता और अंधविश्वास आ गया था। जातिवाद की भावना बड़ी प्रबल हो गई थी। समाज में ऊँच- नीच की भावनाओं की जड़ें बड़ी गहराई तक पहुँच गई थीं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित चतुर्वर्ण की कल्पना से सार्थक भिन्न जातिवाद की भावना समाज में व्याप्त हो गई थी। बुद्ध जन्म के समय का समाज जातिवाद के रोग से ग्रस्त होकर जर्जर होने लगा था। उपनिषद युग में ही उच-नीच की भावना की निरर्थकता अनुभव की जाने लगी थी और इसके विरोध में विचार व्यक्त किए जाने लगे थे। इसी परंपरा में बुद्ध और महावीर जैसे सुधारकों का छठी शताब्दी ईसा पूर्व में प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध धर्म के उदय के साथ सर्वथा एक नवीन लोक-दर्शन और संस्कृति को जन्म दिया जिसका केंद्र बिंदु मुख्यत: मनुष्य ही था। इस लोक - दर्शन संस्कृति का मुख्य सूत्रधार मानव था। बौद्ध दर्शन में सिर्फ मानवीय धर्म के क्षेत्र में क्रांतिकारी विकास नहीं हुआ बल्कि कर्म के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण चिंतन प्रस्तुत हुआ और कर्म को ही मनुष्य का सबसे बड़ा साथी समझ गया है। मनुष्य अपने कर्मों के ही द्वारा इस इस भव - बंधन के सर्वोच्च पद पर पहुँच सकता है। जिसे बौद्ध दर्शन में निर्वाण कहा गया है। कर्म प्रधानता संस्कृति की झलक दो रूपों में और भी स्पष्ट हो जाती है, प्रथम तो यह है कि वर्ण व्यवस्था को जन्मना न मानकर कर्म के आधार पर स्वीकार किया गया है और द्वितीय एक अतिप्रकृति सत्ता के रूप में ईश्वर को न स्वीकार किया जाना। कर्म प्रधानता के नए मापदंडों के अनुसार मनुष्य और उसके कर्म फल के बीच किसी परम सत्ता के अस्तित्व को ना स्वीकार किया गया जो की तत्कालीन समय में एक नया क्रांतिकारी विचार था जिसके परिणाम स्वरूप समाज में एक नई आशा की किरण उत्पन्न हुई। जिससे आम जनमानस को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि हम अपने कर्मों के

डॉ. अभिषित त्रिपाठी
पोस्ट-डॉक्टोरलफेलो
(भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद- नई दिल्ली)

आधार पर सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान बुद्ध के पहले मानव मात्र की गरिमा को इस तरह कभी भी रेखांकित नहीं किया गया था। भगवान बुद्ध के उपदेश का उद्देश्य उन लोगों को उत्तम मार्ग दिखाना था जो मार्ग से भटक गए थे। बुद्ध का ज्ञान संसार में व्याप्त दुखों से मनुष्य को मुक्त कराना ही एकमात्र उद्देश्य था। बुद्ध का ज्ञान संसार की अनित्यता और दु:खों से परितप्त मनुष्य की पीड़ा पर आधारित था।

बौद्ध दर्शन का मुख्य आधार स्तंभ करुणा, दया, प्रेम, अहिंसा जैसे मूल्य हैं। जबकि ईश्वर आत्मा एवं अति प्राकृतिक सत्ताओं के प्रति मौन दृष्टि ही अपनाया है ऐसा इसलिए है क्योंकि भगवान बुद्ध के चिंतन के केंद्र में मनुष्य और संबंधित सामाजिक आर्थिक मूल्य ही रहे हैं। गैर जीवनोपयोगी चिंतन यथा ईश्वर, आत्मा आदि को अव्याकृत प्रश्न के अंतर्गत रखते हुए उसे विचार के दायरे से बाहर रखना ही उचित समझा है। ऐसा इसलिए लगता है क्योंकि महात्मा बुद्ध व्यक्ति और उसके 'स्व' को विशेष स्थान देते हैं। व्यक्ति को स्वावलंबी बनने और अपने पथ का प्रदर्शक स्वयं बनने की विधा बुद्ध के दर्शन में प्रथम बार मिलती है। इसलिए महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों से यह कहा कि मेरे उपदेशों पर विश्वास रखो, बुद्धि से उन्हें समझने की कोशिश करो और हर एक उपदेश को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करो, पवित्र से पवित्र जीवन बिताओ और नियमित रूप से ध्यान और समाधि करो। उपरोक्त सभी विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हीं तात्कालिक परिस्थितियों के फल स्वरूप ही बौद्ध धर्म की उत्पत्ति हुई।किसी धर्म की उत्पत्ति से महत्त्वपूर्ण उस धर्म को व्यापकता प्रदान करने वाले कारक होते हैं।

सुव्यवस्थित बौद्ध भिक्षु विहारों के विकास का मनुष्य के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में बड़ा महत्त्व है। बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल में न तो सुव्यवस्थित संघ जीवन था और ना ही संघ जीवन के लिए उपयुक्त विहारों का अस्तित्व। आरंभ में भगवान बुद्ध ने अन्य ब्राह्मण परंपरा के सन्यासियों की भांति मार्ग अपनाया, वस्तुत: उन्होंने जो नियम अपने भिक्षुओं के लिए बनाए , तत्कालीन सन्यासियों के जीवन पद्धति से प्रभावित थे। बौद्ध भिक्षु भी अन्य तपस्वियों के समान केवल वर्षा काल में ही उपयुक्त आवासों का आश्रय लिया करते थे। शेष महीनों में भ्रमणशील रहा करते थे। उपसंपदा की दीक्षा देते समय भिक्षु को संबोधित कर कहा जाता था कि इस धर्म के अनुयायी को वृक्ष मूल को ही आवास बनाना पड़ेगा और आजीवन इस आदर्श का पालन करना पड़ेगा। पालि त्रिपिटक में इस बात के उल्लेख मिलते हैं कि बौद्ध भिक्षु अरण्य, वृक्ष मूल, पर्वत कंदरा, श्मशान भूमि, खुले मैदान तथा पुवाल के ढेर पर रहा करते थे। भिक्षुओं द्वारा पर्णशाला बनाकर अरण्य निवास करने तथा पर्वत कंदराओं में निवास के कई प्रमाण प्राप्त होते हैं।

कालांतर में बौद्ध भिक्षुओं की उत्तरोत्तर संख्या वृद्धि के कारण उनके आवास की समस्या भगवान बुद्ध के सामने प्रश्न के रूप में आया।भगवान बुद्ध ने इस समस्या के निवारण हेतु पाँच प्रकार के आवासों में रहने की अनुमति प्रदान कर दी। यह पाँच प्रकार की आवास निम्न थे-प्रासाद, विहार, अढ्डयोग, हम्मीय, गुहा। धीरे-धीरे इन आवासों का प्रयोग स्थाई निवास के लिए किया जाने लगा। जिसके फलस्वरूप धनी बौद्ध उपासक-उपासिकाओं द्वारा कई और विहारों का दान निरंतर होता रहा। राजगिरी के श्रेष्ठी ने सर्वप्रथम 60 विहार बनाकर संघ को दान दिया। संघ की स्थापना के बाद विहार निर्माण होने लगे भिक्षु तथा भिक्षुणियों के लिए हमेशा भ्रमणशील रहना सर्वथा वर्जित कर दिया गया। यह लोग विहार में ही ध्यान , अध्ययन आदि कार्य कुशलतापूर्वक करें इसकी सारी व्यवस्था विहारों में कर दी गई। प्राय: सभी विहार समतल भूमि पर मनाए गए हैं, जैसे तक्षशिला, नालंदा, जगद्दल , विक्रमशिला आदि।

बौद्ध विहारों की सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन में भूमिका के रूप में देखा जाए तो इसने तत्कालीन समाज के दासों, शूद्रों , गणिकाओं और महिलाओं की स्थिति में सुधार की काफी प्रयास किया जिसके फलस्वरूप समाज के इन वर्गों को एक उचित और सम्मान पूर्वक जीवन जीने का स्थान प्रदान किया। इन्हें अन्य लोगों की तरह इस भव- बंधन से मुक्ति के लिए मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करने का अधिकार भी नहीं था। इन्हीं सब कुरीतियाँ और सामाजिक बुराइयों को नष्ट करने के लिए एवं उनको इस लोक का सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के लिए बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ संघ की स्थापना के साथ ही इन वर्गों को उचित न्याय देने के लिए भगवान बुद्ध ने अपने साथ चलने के लिए प्रेरित किया। जिसके परिणाम स्वरूप इनकी संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि करती चली गई।

उस समय के समाज में दसों के क्रय-विक्रयादि जब सामान्य रूप से प्रचलित हो गए थे तब उस स्थिति में उनके मोक्ष की बात विचित्र लगती थी।। पर यह भारतीय समाज की अपनी विशेषता रही है जिससे अंतत दसों का दाशत्व को समाप्त कर दिया जाता था। पाली त्रिपिटक से ज्ञात होता है कि दास द्वारा सन्यास स्वीकार कर लेने से अथवा अपने स्वामी की इच्छा से अथवा अपने स्वामी को मुक्तिशुल्क चुका देने से दासत्व का अंत हो जाता है। दीर्घ निकाय में कहा गया है कि यदि कोई दास सन्यासी हो जाता है तो वह अभिवादन और उच्चासन तथा भिक्षु जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं जैसे चीवर, पिंडपात्र, आसन आदि का अधिकारी माना जाएगा। सोणनन्द- जातक (532) में वर्णित है कि एक ब्राह्मण गहपति ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय अपने सभी दसों को मुक्त कर दिया। वेस्सन्तर-जातक की कहानी के अनुसार शुल्क देकर दासत्व का अंत संभव था। राजा वेस्सन्तर ने अपने संतान दान के रूप में एक ब्राह्मण को दे दी तो अपने पुत्र से कहा पुत्र जाओ तुम अपनी मुक्ति के लिए इस ब्राह्मण को शत स्वर्ण निष्क देना और यदि तुम अपनी भगनी को भी मुक्त करना चाहोगे तो उसके लिए ब्राह्मण को दास,दासी, हाथी, घोड़े, बैल और स्वर्ण- निष्क सौ- सौ की संख्या में देना।

बुद्ध कालीन समाज में सामान्य नारी के समान गणिका के अचार में भी महानता एवं क्षुद्रता के गुणवावगुणों का होना स्वाभाविक है। जातक कथाओं में सद्गुण संपन्न तथा दुराचारिणी दोनों प्रकार की गणिकाओं के उदाहरण मिलते हैं। विनय पिटक में उपलब्ध प्रमाणों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में गणिकाओं को समुचित सम्मान मिला। वह अभिजात- वर्ग की तुष्टि का साधन- मात्र नहीं थी, उन्होंने गायन, वादन, नृत्य कला का यथोचित संरक्षण भी किया। उस समय की सबसे प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली जिसका आतिथ्य भगवान बुद्ध ने स्वीकार किया तथा उसके द्वारा आम्रपाली वन का भिक्षु संघ को दान करने की घटनाओं से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में गणिकाओं को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। यदि गणिका पुत्र प्रतिभा संपन्न होता तो उसे अपनी योग्यता के अनुरूप उच्च पद को प्राप्त करने में बाधा नहीं पड़ती थी। इसका सबसे प्रबल प्रमाण तो यही है कि प्रख्यात राज्य वैद्य जीवक का जन्म राजगिरी की गणिका सालवति के गर्भ से हुआ था। जातक कथाओं में प्राय उन गणिकाओं का वर्णन मिलता है जो समृद्धि थीं। आम्रपाली और सालवति राजगणिकाएँ थीं।वह राजधानियों की शोभा थीं।समाज में उनको धन, आदर और यश मिले। परंतु क्या यही बात एक सामान्य गणिका के विषय में कहीं जा सकती है। प्राय: समाज चाँदी, सोने के थोड़े से टुकड़ों के बदले शरीर विक्रय के कर्म को हेय- दृष्टि से देखा जाता था। इसे नीच कर्म की संज्ञा दी गई थी। नीचघर अथवा गणिकाघर और दुरत्थि- कुंभदासी सदृश शब्दों से यही अर्थ प्रतिभाषित होता है कि वैश्या-कर्म को समाज में सम्मान का स्थान कदापि नहीं दिया गया। इन्हीं सब विषमताओं को देखते हुए भगवान बुद्ध ने सबको अपने संघ में शरण दिये।

तत्कालीन समय में भी शूद्र वर्ग का कार्य अन्य तीन वर्गों का सेवा ही रहा है। बुद्ध युग में शूद्रों की स्थिति में किंचित परिवर्तन और सुधार हुआ। इस युग में सामाजिक व्यवस्था जन्मना आधारित न होकर कर्मणा आधारित हो गई। प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति परस्पर दूसरे वर्ग का कार्य कर सकता था। ऐसी स्थिति निश्चय ही एक संकट और संक्रमण को जन्म दिया और सामाजिक प्रतिद्वंद्विता की स्थिति उत्पन्न हो गई। शूद्रों के लिए सन्यास, दीक्षा , विद्या अध्ययन आदि की छूट न थी।वह जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को भी प्राप्त नहीं कर सकते थे। परंतु भगवान बुद्ध ने सद्धर्म के उपदेश में हर वर्ग एवं उम्र के लिए निर्बाध रूप से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कीए।अब सभी लोग अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा शान्त कर सकते थे और चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सामान रूप से भाग ले सकते थे। बहुत से लोगों ने सध्दर्म में दीक्षित होकर निर्वाण प्राप्त किया। वे अपने सत्कर्मों से समाज में भी प्रशंसनीय बन गए थे।

सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों में अगर देखा जाए तो विहारों की भूमिका का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान भारतीय शिक्षा पद्धति में एक नए युग की शुरुआत रहा है। बौद्ध विहार अपने प्रारंभिक काल में केवल बौद्ध भिक्षुओं के निवास स्थान के रूप में प्रयोग किए जाते थे। लेकिन धीरे-धीरे राजाओं और धनी श्रेष्ठी के द्वारा प्राप्त धन से बढ़ी सुख सुविधाओं के फल स्वरूप वहाँ पर अध्ययन अध्यापन का कार्य शुरू हुआ। शुरुआत में शिक्षा के रूप में केवल बौद्ध ग्रंथों एवं भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट शिक्षाओं का ही अध्ययन कराया जाता था। लेकिन आगे चलकर इसमें ज्योतिष, विज्ञान, कला आदि विषयों को भी शामिल किया गया और इन बौद्ध महाविहारों में भिक्षुओं के अलावा आम जनसाधारण भी शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। भारतीय शिक्षा पद्धति को नए आयाम तक पहुँचने में जिन महत्त्वपूर्ण बौद्ध विहारों की भूमिका रही उनमें नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, जगद्दल आदि प्रमुख थे। इन बौद्ध महाविहारों की प्रसिद्धि विदेश तक फैल गई थी। इसमें पढ़ने के लिए कई विदेशी नागरिक भी आते थे जिनमें फाह्यान और इत्सिंग प्रमुख थे।

उपरोक्त बुद्धकालीन सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों का पुनरावलोकन के माध्यम से हमारे लिए कहना सरल हो जाता है कि भारतीय संस्कृति एक अनवरत धार के रूप में आदिकाल से ही अपनी मूल विशेषताओं को समेटे हुए अपनी निरंतरता को बनाए हुए आज हमारे सामने विविध पक्षों को दर्शाती है।बौद्ध धर्म के उद्भव के बाद से ही बौद्ध विहार अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए आ रहे हैं। बौद्ध धर्म के विकास में जितना योगदान बुद्ध वचनों का है उससे कम बौद्ध विहारों का नहीं है। बौद्ध विहारों में न केवल बौद्ध धर्म के विकास में ही अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक , धार्मिक और आर्थिक इन सभी पहलुओं के लिए एक पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाई। बौद्ध विहारों के उद्भव ने इस समृद्ध परंपरा में अनेक अध्यायों को जोड़ने एवं उसे और भी प्रभावी व सशक्त बनाने में अपना अपूर्व योगदान दिया है।

000

संदर्भ-

डॉ मदन मोहन सिंह (2002): बुद्धकालीन समाज और धर्म, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी , पटना, पृष्ठ - 7, डॉ मदन मोहन सिंह (2002): बुद्धकालीन समाज और धर्म, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी , पटना, पृष्ठ - 8, प्रो0 अंगने लाल (2006):बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी, संस्थान लखनऊ, पृष्ठ -13, रामधारी सिंह दिनकर (1953): संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ - 126, राहुल सांकृत्यायन(1933):मज्झिम निकाय,1, हिन्दी अनुवाद, महाबोधि सभा, सारनाथ, प्रथम संस्करण, 1933 पृष्ठ - 268, वही, पृष्ठ -269,274,346, भिक्षु जगदीश कश्यप (1954): महाबोधि सभा सारनाथ, पृष्ठ- 116, कुमार दत्त, अर्ली बुद्धिस्ट मोनासिश्म , पृष्ठ -101, स्वामी द्वारका दास शास्त्री (1998- 99):महावग्ग, बौद्ध भारती, वाराणसी, पृष्ठ -1,4,117, दीर्घ निकाय, 1, पृष्ठ- 60-61, जातक,6, पृष्ठ- 546- 47, महावग्ग,6/30/1, महावग्ग,8/1/4, जातक, 3, पृष्ठ- 60, जातक, 3 पृष्ठ- 61, 4, पृष्ठ 249, जातक, 6, पृष्ठ -228, दिघ निकाय, "अग्गंज सूत्त"

(शोध आलेख)

केदारनाथ सिंह की प्रकृति से संबद्ध कविता में यथार्थ और सौंदर्य

शोध लेखक : नवनीत
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर

शोध सारांश- कवि केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं में जीवन के मूलभूत सौंदर्य को प्रकृति से जोड़ते हैं। मानव विकास के आदि से और अब तक मनुष्य ने यथार्थ चेतना के विभिन्न सोपान पार किये हैं। जिसमे उसकी प्रकृति के प्रति सौंदर्यवादी दृष्टि भी अपने मूल स्वरूप में स्वतंत्र ही रही है। कवि ने प्रकृति के सर्वत्र उस अनंत और मूल सौंदर्य को आज के संदर्भ में रूप बदलते हुये जरूर देखा है परंतु उसकी तात्विक स्थिति में कभी भी परिवर्तन नही होता। कवि ने सुंदरता की प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो स्थितियों से अवगत कराया है। कवि स्पष्ट करता है कि भिन्न-भिन्नि स्थितियों में प्रकृति और यथार्थ के प्रति मनुष्यों के भिन्न-भिन्न सौंदर्य की अनुभूतियाँ होती हैं। कवि कविता के माध्यम से स्पष्ट करता है कि प्रकृति अपने स्वभाविक स्वरूप में ही सर्वाधिक सुंदर और हितकारी होती है। प्रकृति के उदार स्वरूप को उभारकर कवि ने उसके प्रति मानव के संवेदनशील और यथार्थ दृष्टि को उजागर कर प्रकृति के द्वारा मनुष्य को आनंद प्रदान करने और जीवन देने हेतु मानव का कृतज्ञ बने रहने का आह्वाहन भी अपनी कविता के माध्यम से किया है।

बीज शब्द - स्थूलता, प्रत्यक्ष, परोक्ष, सहचर्य, आदिम मनोभाव, मूल नाभिकीय प्रवृत्ति, इंद्रीयानुभव।

कवि केदारनाथ सिंह ने शहर और ग्रामीण दोनों जीवन पर बिंबात्मक और प्रतीकात्मक तरीके से कविताएँ लिखी। परंतु इनकी दोनों तरह की कविताओं में प्रकृति कहीं ना कहीं मूल रूप से विद्यमान है। उनके अनुभव की भूमि इतनी विस्तृत है कि प्रकृति के संबंध में अपना एक विशेष गहन विचार सामान्य भाषा में प्रकट करते हैं। जहाँ वे भाव क्षेत्र में कविता को गहरी संवेदना और व्यापकता देते हैं वहीं वे कथ्य के स्तर पर उसे सूक्ष्मता के साथ कविता में जीवन की जटिलता के भीतर सहजता और सरलता से आगे बढ़ाते हैं। इसी सूक्ष्म अर्थबोध में वे यथार्थ को स्थूलता की जमीन से उतरने नहीं देते।

प्रकृति से संबद्ध कविता में यथार्थ और सौंदर्य की स्थिति को स्पष्ट करते हुए में आलोचक रामविलास शर्मा विचार व्यक्त करते है- "कालिदास के सौंदर्यबोध का मूल आधार उनका जीवन प्रेम है। यह जीवन मनुष्य, पशु और वनस्पति में सर्वत्र है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे विश्व में किसी अगोचर चेतना के दर्शन करते हैं उनके लिए यह जीवन घोर गोचर है। वह इंद्रिय बोध से अभिन्न है उससे परे नहीं। विलास और वैभव का यह कवि धरती के इतना निकट है जितना कोई भौतिकवादी कवि नही हुआ। उसे वर्षा के बाद धरती से उठने वाली सौंधी सुगंध अत्यंत प्रिय है। गर्मी के अंत में वर्षा होने पर हाथी बार-बार तालों की मिट्टी सुंघते हैं। रघुवंश, सर्ग -३"1

स्पष्ट है कि रामविलास शर्मा ने अपने इन शब्दों में कालिदास जैसे प्राचीन कवि का उदाहरण दिया है। जिसमें कवि ने सौंदर्य के सभी प्राकृतिक घटकों को रखकर उसमें ना दिखने वाले परोक्ष का वर्णन नहीं किया। वह प्रत्यक्ष यथार्थ की इंद्रीयबोध संवेदना के भौतिक आधार पर धरती, वर्षा, हाथी, मिट्टी आदि प्राकृतिक जड़-चेतन पदार्थ के अनुभव को विश्लेषित करता है।

केदारनाथ सिंह की भी कविताओं में यही प्रत्यक्ष अनुभूति प्रकृति के विभिन्न चित्र लेकर

नवनीत
हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय,श्रीनगर
हिन्दी विभाग -बिड़ला परिसर,
जिला-पौडी (उत्तराखण्ड)

जीवन के साक्षात सौंदर्य को विश्रांति के पलों में 'रोहू' प्रजाति की मछली की आँखों में देखती है। वह गंगा, प्रचंड लू, रोहू मछली की आँखें आदि प्रतीकों से जीवन को जीने की अपार इच्छाशक्ति से दिखाते हुये जीवन को सौंदर्य के यथार्थ रूप से अवगत कराने का प्रयत्न करते हैं। इस तरह के जीवन में उत्साह और ताजगी का अपार आनंद मौजूद रहता है - ''मैंने गंगा को देखा / प्रचंड लू के थपेड़ों के बाद / जब एक शाम / मुझे साहस और ताजगी की बेहद जरूरत थी, / मैंने गंगा को देखा एक रोहू मछली की / डब-डब आँख में / जहाँ जीने की अपार तरलता थी''2

इस संबंध में लेखक विनोद लिखते हैं- ''केदारनाथ सिंह की कविता में प्रकृति एक दूसरे से आँख चुराकर नहीं बल्कि हाथ में हाथ डालकर साथ साथ चलते हैं। प्रकृति के साहचर्य में केदारनाथ सिंह को साहस और ताजगी प्राप्त होती है।''3

यथार्थ और सौंदर्य में यदि यथार्थ क्या है? और सौंदर्य क्या है? प्रश्न से सूचित करें तो यथार्थ को प्रत्यक्ष रूप में एक वस्तु जैसी है उसे वैसा ही स्वीकार किया जाना माना जा सकता है। वहीं सौंदर्य इसी यथार्थ के सापेक्ष मानवीय भावों द्वारा आनंद की अवस्था में वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ स्वीकार्य भाव है।

यथार्थ को व्याख्यायित करते हुए नई कविता के संदर्भ में रामविलास शर्मा कहते हैं- ''यथार्थ कौन सा है जिसे नई कविता वहन या सहन करती है? उत्तर है जीवन और उसमें सत्य सबसे बड़ा यथार्थ है। और जीवन का सत्य क्या है? जीवन निस्सार नहीं, जीने के लिए है उसे जिया जा सकता है उसे भोगा जा सकता है उसके साथ मनुष्य होकर मनुष्य के स्तर पर अनुभूतियों को ग्रहण किया जा सकता है और उन से ओतप्रोत होकर जीवन की व्यापकता में सौंदर्य, रस, आनंद, बोध, अवबोध के स्तरों को ग्रहण किया जा सकता है''4

इस प्रकार लेखक ने यथार्थ स्थिति को जीवन के सत्य से जोड़ा है जीवन के होने का अस्तित्व उसके राग-विराग, आशा-निराशा, संघर्ष-विराम आदि जैसे द्वंद्वों के बीच की सूक्ष्म सीमा पर आनंद का आस्वादन करना ही सौंदर्य को परिभाषित करता है।

कवि अपनी कविताओं में सौंदर्य को व्यक्तिगत रूप में भी और वस्तुनिष्ठ रूप में भी जानने के पक्षधर से लगते हैं। वे इसी प्रकार के यथार्थ और सौंदर्य के दृष्टिकोण को समझते हैं। कवि केदारनाथ अनुभवजन्य और मानवीय आदिम मनोभावों के सापेक्ष तथा इस व्यापक जड़-चेतन संसार, परिवर्तनशील क्रिया-व्यापार, अनंत घटनाओं, मानवीय मन के विकास और इन सब में उसकी प्रकृति से निरंतर मूल साहचर्यता को रेखांकित करते हैं। वे सौंदर्य की मूल नाभिकीय प्रवृत्ति आनंद को रचते हैं- ''कभी सही साँझ / बिना किसी सूचना के / घुस जाओ इस शहर में / कभी आरती के आलोक में इसे अचानक देखो / अद्भुत है इसकी बनावट / यह आधा जल में है आधा मंत्र में / आधा फुल में है आधा शव में / आधा नींद में है आधा शंख में / अगर ध्यान से देखो / तो यह आधा है / और आधा नहीं है।''5

किसी स्थिति से गुजरते हुए बिल्कुल बोध और अवबोध के आधार पर जब हम बनारस शहर में घुस आएँगे तो कवि कई पहलुओं में पाठक से बनारस शहर को जानने और उसे जीने के रूप में दो अलग-अलग स्थितियों से स्पष्ट करते हैं। कवि बनारस शहर के जीवन का दो भागों में बंट जाने के लावण्यमयी बीम्ब तैयार करते हैं। यह दो भाग जल-मंत्र, फूल-शव , नींद-शंख तथा आधा है और आधा नहीं है में बंटे हुये हैं। इन दो भागों के मध्य ही जड़-चेतन रूप लिए हुए जीवन यथार्थ और सौंदर्य की सीमा रेखा तय करता है।

इसीलिये केदारनाथ सिंह के संबंध में लेखक अजय तिवारी लिखते हैं - ''नष्ट होती वास्तविकताओं के प्रति आग्रहपूर्ण ममता के कारण केदारनाथ सिंह नश्वरता की अनश्वरता से, वंचना का उपलब्धि से क्षतिपूर्ति नहीं करते। सत्ता और बोध का वस्तुगत संबंध निरूपित नहीं करते। वे वर्तमान की दृष्टि से अतीत को देखने के बजाय अतीत के फलक पर वर्तमान का बोध प्राप्त करते हैं।''6

कवि का यथार्थ और प्रकृति को सौंदर्य के साथ जोड़ना कवि के द्वारा जीवन को आनंद के असंख्य दृष्टिकोण देता है। जैसे सामान्यतरू किसी घने जंगल की किसी चट्टान में बहता झरना हर चेतनशील को उसकी मनोवृत्ति के सापेक्ष सुंदरता का आस्वादन कराएगा। कृषक के लिए खेतों की हरियाली जैसी सुखद अनुभूति, प्रेमी के लिए अपनी प्रेमिका के साथ गीत गुनगुनाने जैसा भाव, मित्र का मित्र के लिए उत्साह जैसा भाव आदि।

इसी तरह की बात केदारनाथ सिंह की कविता के प्रकृति सापेक्ष यथार्थ सौंदर्य में भी है। 'माँझी का पुल' कविता में एक पुराना पुल प्रत्येक प्राणी के लिए अलग-अलग विचार उत्पन्न करता है। परंतु रचनाकार उन सभी यथार्थ विचारों को अनुभूति के स्तर पर परिवर्तित कर निरपेक्ष रूप से एक परोक्ष और गहरा सौंदर्य उत्पन्न करता है। जो है तो निर्पेक्ष सा परंतु सभी से व्यक्तिगत सहचर्य स्थापित कर सकता है- ''मैंने पहली बार / स्कूल से लौटते हुए / उसकी लाल-लाल ऊँची मेहराबें देखी थी / माँझी के पुल में कितने पाए हैं? / उन्नीस कहता है जगदीश / बीस सनझू हज्जाम का खयाल है / कई बार यह संख्या तेईस चौबीस चली जाती है। / मछलियाँ अपनी भाषा में / क्या कहती हैं पुल को ? / सूँस और घड़ियाल क्या सोचते हैं ? / कछुओं को कैसा लगता है पुल / जब वे दोपहर बाद की रेती पर / अपनी पीठ फैलाकर / उसकी मेहराबें सेंकते हैं।''7

वास्तविकता की सृष्टि में नैसर्गिकता का भाव केदारनाथ सिंह जड़ और चेतन के समन्वित रूप से घिरे वातावरण में ढूंडते हैं। उनके विभिन्न दृश्य बिंबों में स्वतरू निर्मित पदाथरें में छुपी हुई अनुभव संवेदना लावण्यता लिए हुए है। कवि ने कल्पना प्रसूत ऐसे बिंबों को तैयार किया है जो पढ़ने वाले के लिए यथार्थ की सुंदरता के प्रति सत्य और जीवन के निकट रह सकने वाला आस्थावान विचार उत्पन्न करता है। भले ही कल्पना और यथार्थ विरोधी गुण वाले माने जाते हों। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का उद्धरण भी उचित है - ''यथार्थ चित्रण और कल्पना इन दोनों में भी

परस्पर विरोध विरोध नहीं है। मनुष्य आज जो कुछ है वह अपने समस्त पूर्व विकास का परिणाम है। इसमें उसका प्राग मानवीय प्राणी रूप में विकास भी शामिल है। उसका इंद्रियबोध, उसकी कल्पना सभी यथार्थवाद के अंतर्गत आते हैं। यथार्थवादी लेखक कल्पना द्वारा टाइप रचता है। अपने अनुभव की सामग्री से काम की चीजें चुनता और सजाता है और इनमें ऐसी कल्पित घटनाएँ ,पात्र आदि जोड़ता है जो ऐतिहासिक रूप से सत्य ना होकर भी यथार्थ के अनुरूप होते हैं"8

केदारनाथ सिंह अपनी कविता में ऐसे ही प्रतीकों का निर्माण करते हैं जो यथार्थ होते हुए भी कल्पना को प्राचीन रास्तों से गुजारते हैं। वे ऐसी कहावतें रखते हैं जो अनजान पाठक की प्रज्ञा में उतरकर अर्थ स्पष्ट होने पर चेतना में गहरा अनुभूतिजन्य सौंदर्य उत्पन्न करता है - मेरे बेटे कुएँ में कभी मत झांकना / जाना / पर उस ओर कभी मत जाना / जिधर उड़े जा रहे हो / काले-काले कौवे / हरा पत्ता / कभी मत तोड़ना / और अगर तोड़ना तो ऐसे / कि पेड़ को जरा भी न हो पीड़ा। / रात को रोटी जब भी तोड़ना / तो पहले सिर झुकाकर / गेहूँ के पौधे को याद कर लेना।"9

कवि ने किसान को मिले हुए परंपरागत संवेदना और विश्वास को यथार्थ और प्रकृति के बीच अनुभूति के गहरे और व्यापक जीवन से जोड़ा है। यह खासियत उनकी अक्सर कविताओं में मिलती है। पेड़ की सजीवता प्रकट करना, रोटी के बहाने गेहूँ के पौधे की त्याग प्रवृत्ति दिखाना, भोजन का सम्मान आदि द्वारा प्रकृति के सजीव-निर्जीव पदाथरें के मूक जीवन को अनुभव करके एक अमूर्त और परोक्ष सौंदर्यानुभूति से कवि द्वारा पाठक को अवगत करना है।

कविता के संबंध में डॉ. शेरपाल सिंह लिखते हैं- "यह एक सामाजिक प्राणी का भावबोध है।"10

इनकी कविताओं में एक प्रकार से ऐसा यथार्थ है जिसमें हर कोई पदार्थ अपने मौलिक रूप को खोजता नजर आता है। प्रकृति की हर बात भौतिकतावादी जगत में कहीं ना कहीं छोटी सी प्रतीत होती है ऐसी कविताओं में पानी की प्रार्थना, पानी था मैं, दाने, अकाल में दूब, कुदाल, नदियाँ, पृथ्वी रहेगी आदि अन्य भी शामिल हैं। वे सत्य को उसके एकात्मक रूप में पहचानने का प्रयत्न करते हैं। कवि का इंद्रीयानुभव और मन का अनुभव एक होकर पाठक के लिए वर्तमान स्थिति से आदमी स्थिति का सफर तय कर लेता है - "आज घर में घुसा / तो वहाँ अजब दृश्य था / सुनिए-मेरे बिस्तर ने कहा / यह रहा मेरा इस्तीफा / मैं अपने कपास के भीतर / वापस जाना चाहता हूँ। / उधर कुर्सी और मेज का / एक संयुक्त मोर्चा था / दोनों तड़पकर बोले - / जी आब बहुत हो चुका / आपको सहते-सहते / हमें भी बेतरह याद आ रहे हैं हमारे पेड़ / और उनके भीतर का वह जिंदा द्रव"11

केदारनाथ सिंह का सौंदर्य अनुभव इतना विशाल है कि आधुनिक हिन्दी कविताओं में यथार्थ और प्रकृति के मध्य जो भौतिकता हावी है उसमें कवि जीवनबोध युक्त संसार की निर्मिती करते हुए दिखते हैं। मानव चिंतन और संवेदना से युक्त वास्तविकता का जीने योग्य वह जीवन जिसमें कठोरता और मधुरता से पल-पल समय बदलता है। कवि ने कविता और सत्यता से उस जीवन को प्रकृति से जोड़कर 'सत्यम शिवम सुंदरम' के कथन के पास ला दिया है। कवि ने आधुनिक समाज के लिए मुक्ति का एक मार्ग निकालने का प्रयत्न किया है -

"मुक्ति का जब कोई रास्ता नहीं मिला / मैं लिखने बैठ गया हूँ पेड़ / यह जानते हुए कि लिखना पेड़ हो जाना है / मैं लिखना चाहती हूँ पानी / आदमी ,आदमी मैं लिखना चाहता हूँ"12

निष्कर्ष - कवि केदारनाथ सिंह वास्तविकता के परे कविता को न ले जाते हुए प्रत्यक्ष और सत्य घटनाओं को अपनी कविता में स्थान देते हैं। परंतु इनकी कविता केवल सत्य को दिखाते हुये नीरस विचार मात्र नही है। उसमें प्रकृति की गहरी अनुभूति और कवि के सच्चे जीवन सौन्दर्य की आत्मगत और वस्तुगत दोनों दृष्टियों का सहयोग है। जीवन के सभी पहलू सुख-दुख, प्रवृत्ति-निवृत्ति, प्रेम-तिरस्कार आदि कविता में अपने-अपने महत्त्व के साथ यथार्थ को सुंदर बनाते हैं। मानव के चारों ओर का प्राकृतिक वातावरण कहीं न कहीं इन भावो के साथ जुड़ ही जाता है और कवि इसी संयोग में कविता सृजन करते हैं कि कहीं न कहीं सृजन में मुक्ति की आशा छिपी होती है।

000

संदर्भ- 1- डॉ. रामविलाश शर्मा, आस्था और सौंदर्य, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नेताजी सुभाष मार्ग- नई दिल्ली, सं.- 2009, पृ.- 63, 2- केदारनाथ सिंह, अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दरियागंज- नई दिल्ली, सं.-2019, पृ.- 36, 3- सं-डॉ. मंजुला उपाध्याय, अथातो काव्य जिज्ञासा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज-नई दिल्ली, सं.-1996, पृ.-151, 4- डॉ. रामविलाश शर्मा, आस्था और सौंदर्य, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नेताजी सुभाष मार्ग- नई दिल्ली, सं.-2009, पृ.- 213, 5- केदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो, राधकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., जगतपुरी-दिल्ली, सं.- 2019, पृ.- 21-22, 6- अजय तिवारी, समकालीन कविता और कुलीनतावाद, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., अंसारी रोड दरियागंज- नई दिल्ली, सं. -1994, पृ.-170, 7- केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नेताजी सुभाष मार्ग- नई दिल्ली, सं.-2009, 8- डॉ. रामविलाश शर्मा, आस्था और सौंदर्य, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नेताजी सुभाष मार्ग- नई दिल्ली, सं.-2009, पृ.- 20, 9- केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नेताजी सुभाष मार्ग- नई दिल्ली, सं.- 2019, पृ.- 38-39, 10- डॉ. शेरपाल सिंह, केदारनाथ सिंह का काव्यलोक, विद्या प्रकाशन, गुजैनी- कानपुर, सं.- 2005, पृ.-126, 11- केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नेताजी सुभाष मार्ग- नई दिल्ली, सं.- 2009, पृ.- 13-14, 12- केदारनाथ सिंह, जमीन पक रही है, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दरियागंज- नई दिल्ली ,सं.- 2014, पृ.- 69

शोध आलेख

(शोध आलेख)

हंसा दीप कृत 'उम्र के शिखर पर खड़े लोग' कहानी संग्रह में वृद्धजन का जीवंत दस्तावेज़

शोध लेखक : पूजा, शोधार्थी, हिन्दी विभाग

शोध निर्देशक : डॉ. प्रो. कृष्णा जून, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

पूजा,
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक
मोबाइल- 7015414395
ईमेल- poojadeswal796@gmail.com

'वृद्ध' शब्द का अर्थ है - श्रेष्ठ, परिपक्व या फिर पका हुआ। वृद्धजन देश की अमूल्य निधि हैं। इसके पास एक ओर जीवनानुभवों का भंडार है। तो दूसरी तरफ, जीवन मूल्यों और चिरन्तन मूल्यों की थाती भी है। भारतीय संस्कृति में पितृऋण की बात कही गई है तो पश्चिमी देशों में वृद्धजन को 'ओल्ड इज़ गोल्ड' की संज्ञा दी जाती है। लेकिन वर्तमान समय में वृद्धजन की समस्या विचारणीय एवं सोचनीय है। युवा पीढ़ी वृद्धजन से कटती जा रही है। उनके लिए न घर में जगह है और न ही जीवन में। उन्हें घर में फालतू एवं निठ्ठलेपन का एहसास कराकर उपेक्षित एवं बोझिल भरा जीवन जीना पड़ता है। शरीर क्षीणकाय होकर रोगों का शिकार हो जाता है। अर्थलोलुपता, पूँजीकरण तथा रिस्तों में बाजारीकरण के परिणामस्वरूप वृद्धजन विसंगतिबोध, व्यर्थताबोध, कुंठित व अकेलेपन से जूझते अपमानपूर्ण जीवन जी रहे हैं। उनके जीवन की यह चौथी ऋतु अपनों के साथ के बिना दुश्कर होकर अभिशाप बन चुकी है। जिंदगी भर जिन अपनों के लिए वे मरते रहे, कमाते रहे, संचित करते रहे, आज जीवन के अंतिम मोड़ पर सब अपने पीछे छूट जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों ये दीर्घ जीवन दीर्घ अभिशाप बन गया हो।

प्रत्येक संतान का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह अपने वृद्ध माँ-बाप की बुढ़ापे में सेवा-सुश्रुषा करे, उनकी लाठी का सहारा बने। यजुर्वेद में भी कहा गया है- "यद्यपि पोश मातरं पुत्र: प्रभुदितों ध्यान। इतदगे अन्तणो भवाम्यहतौ पितरौ ममाँ 11"

अर्थात् जिन माता-पिता ने अपने अथक प्रयत्नों से पाल-पोस कर बड़ा किया है, अब मेरे बड़े होने पर जब वे अशक्त हो गए हैं तो वे 'जनक-जननी' किसी भी प्रकार से पीडित न हो, इस हेतु मैं सेवा, सत्कार से उन्हें संतुष्ट कर ऋण के भार से मुक्ति कर रहा हूँ। अत: उक्त श्लोक हमें अपने माता-पिता और अपने बुजुर्गों के प्रति उनकी सेवा-सुश्रुषा करने, उनका सम्मान करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

वृद्धजन को अनमोल धरोहर मानते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 14 दिसंबर 1990 से 1 अक्टूबर को अंतर्राष्ट्रीय वृद्ध दिवस मनाने का निर्णय लिया और 1991 से प्रतिवर्ष 1 अक्टूबर को वृद्ध दिवस मनाया जाता है।

सुप्रसिद्ध प्रवासी लेखिका हंसा दीप कृत 'उम्र के शिखर पर खड़े लोग' कहानी संग्रह सन् 2020 में किताबगंज प्रकाशन द्वारा राजस्थान से प्रकाशित हुआ। इनके अब तक चार उपन्यास- बंद मुठ्ठी, कुबेर, केसरिया बालम, काँच के घर तथा छ: कहानी संग्रह - चश्में अपने-अपने, उम्र के शिखर पर खड़े लोग, प्रवास में आस-पास, शत प्रतिशत, छोड़ आए वो गलियाँ तथा चेहरों पर टंगी तख्तियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, इनकी कहानियाँ गुजराती, पंजाबी एवं मराठी में अनुदित हो चुकी हैं। वर्तमान समय में ये टोरंटो विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं और इनका लेखन अबाध गति से जारी है। 'उम्र के शिखर पर खड़े लोग' शीर्षक संग्रह में लेखिका ने स्वयं को शामिल कर यह उद्घाटित करने का प्रयास किया है कि तन भले ही थकने लग जाए लेकिन मन की सक्रियता को बनाए रखना है।

'दो अलहदा छोर' शीर्षक कहानी सत्तर साल के दो बुजुर्गों (पुरुष-महिला) के खुशनुमा पलों की अनूठी दास्ताँ को बयाँ करती है जो बंधे बंधाए सामाजिक ढाँचे को चुनौती देते हैं। भरपूर जी लेने वाले खुशनुमा पलों से इतर इन्हें समाज की कतई परवाह नहीं होती कि समाज के लोग उन्हें क्या कहेंगें। वे युवा प्रेमियों की तरह लुक्का-छुप्पी खेलते हैं, एक-दूसरे को देखकर सीटी बजाते हैं, चॉकलेट खाते हैं और आपस में लड़का-लड़की कहकर संबोधित करते हैं और इन क्षणों का भरपूर आनंद लेते हैं। "भूल गए थे कि हम सात साल के नहीं सत्तर साल के हैं। जीतने का हौसला ऐसा था कि अपना पूरा दम लगाकर दौड़ रहे थे। कुछ ही पलों में एक-दूसरे को पकड़ने के लिए हाथ फैलाए, टकराए, गिरे और ऐसे गिरे की फिर उठ नहीं पाए।" यहाँ लेखिका ने शरीर के सौंदर्य को उद्घाटित करने की अपेक्षा मन के सौंदर्य को उद्घाटित किया है जिनसे प्रेम संबंध प्रगाढ़ होता है तथा शिखर की ओर उन्मुख लोग अपनी एकरसता वाली जिंदगी में प्रेम संबंधों के लिए मर्यादा की सीमाओं को लांघते प्रतीत होते हैं।

'हाशिये से बाहर' शीर्षक कहानी में रीतू मौर्य प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त है। रियूनियन का संदेश आते ही रीतू मोर्य अपने स्कूल में दोस्तों के साथ बिताए गए खुशनुमा पलों को स्मरण करने लगती है। "मैं बहुत खुश थी इतनी कि वह खुशी पिलकते-पिलकते बाहर आ रही थी। रियूनियन का संदेश जब मिला तो बीते जमाने के सारे साथियों की धुंधली तस्वीरें, सामने आने लगीं।... वे चेहरें जो सालों से जेहन में बने रहे, किशोरावस्था से अब सीधे वृद्धावस्था में दिखेंगे तो कैसा लगेगा। वे चुहलबाजियाँ, वे कक्षा की शैतानियाँ और वार्षिकोत्सव के वे कार्यक्रम जब सब अपने आपको किसी नाटक के पात्र में बदलकर सारे गाँव का भरपूर मनोरंजन करते थे।" लेकिन जैसे ही रीतू एक-एक करके अपने दोस्तों से मिलती है तो वह उनसे मिलकर निराश होती है; क्योंकि वे केवल हाय-हैलो की औपचारिक मुस्कान के साथ मिलते हैं, उनके चेहरे पर हर्षोल्लास का कोई भाव दिखाई नहीं देता। "वह हैरान थी कि सब आए तो हैं यहाँ पर पुरानी यादों के साथ वह समय नहीं जी रहे। यहाँ भी अपने आज में जी रहे हैं हाय-हैलो करते, थोड़ी बात करके औपचारिक मुस्कान देते और अपनी कुर्सी में धँस जाते।" क्योंकि वे सिर्फ तन से आते हैं मन से नहीं। उनका अस्तित्व बुझे हुए दीपक के समान प्रतीत होता है। जबकि रीतू जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी उम्मीदों, आशाओं का दीप जिलाए रखती है वह अपनी जिंदगी को सामने रखकर देखती है हाशिये पर नहीं। अत: विवेच्य कहानी में लेखिका ने उद्घाटित किया है कि शिखर की ओर बढ़ते लोगो को अपने भीतर थोडी आग, गर्मी, जोश, जुनून को जिंदा रखना चाहिए।

'उसकी मुस्कान' शीर्षक कहानी में बुलबुल नामक लड़की का किसी बुजुर्ग पुरुष के साथ लिव-इन में रहना और इनकी सेवा-सुश्रुशा करना उसके चहरे पर मुस्कान बनाए रखता है।

'एक मर्द एक औरत' शीर्षक कहानी परिवार में बहू-ससूर तथा पति-पत्नी संबंधों के इन आंतरिक रिश्तों की पवित्रता पर उँगली उठाते समाज का चित्र प्रस्तुत करती है। हँसता-खेलता सुखी परिवार ऐसे अनर्गल लांछनों का शिकार होता है जिसकी उन्होंने कदापि उम्मीद नहीं की थी। केशव बाबू अपनी बहू शिया के साथ ससूर वाला रिस्ता न रख पिता समान बर्ताव करते। उनके साथ ताश खेलना, गृहकायरें में हाथ बँटाना, मार्केट से सामान लेकर आना इत्यादि सब कायरें में उनके साथ रहते। शिया के पति यश अपने ऑफिस के कायरें में व्यस्त रहते। सासू माँ बहुत समय पहले स्वर्ग सिधार गई थी। अत: समाज बहू- ससुर के संबंधों पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर इनके मध्य दीवार का काम करता है। "क्यों यह समाज स्त्री और पुरुष के किसी भी संबंध को एक ही नाम देता है। समाज की आँखें उम्र से परे, रिश्तों से परे, श्रद्धा-विश्वास से परे एक ही नजर से देखती है।" समाज के चंद लोग अपने गिरेबाँ में झाँकने की बजाय दूसरों के घरों को टूटते देखकर खुश होते हैं। लेकिन मनुष्य में इतनी समझदारी अवश्य होनी चाहिए कि दो रिश्तों की पवित्रता का निर्णय अन्य व्यक्ति कैसे कर सकता है।

'खिलखिलाती धूप' शीर्षक कहानी में लेखिका ने उद्घाटित किया है कि उम्र के शिखर पर चढ़ते हुए बहुत-सी स्त्रियाँ वाचाल होने लगती हैं वे अपनी मस्ती में मदमस्त दिखाई पड़ती है। उन्हें किसी प्रकार की चिंता, दु:ख, भय नहीं होता। घर में भाई की मौत होने पर भी ये स्त्रियाँ धूप की तरह खिलखिलाती प्रतीत होती हैं। "बाहर अभी भी मृत्यु का सन्नाटा था। आसपास वाले सुन रहे हों, न सुन रहे हों इन बहनों को कोई परवाह नहीं थी।... अब खिलखिला रही थीं ऐसे जैसे कि अंदर का भरा सारा गुबार आज ही निकाल दो और हँस लो जितना हँसना है। अपनी मस्त हंसी से पुलकित थी। किसी अपने की कमी से दूर, अपने हसीन दिनों की हसीन यादों में मशगूल। विस्मृत स्मृतियाँ ताजा हो गई थी, किसी सूखे गमले में फूल खिलने की ताजगी लेकर।"

'विशेष अभी शेष है' शीर्षक कहानी उषा प्रियंवदा कृत वापसी कहानी की याद दिलाती है। सत्तर साल के आदेश बाबू को रिटायर होने की जितनी तमन्ना ताउम्र रही, वह मात्र 15 दिन में ही हवा होकर रह गई थी। न काम-काज के और न ही मन भर अनाज के। दुरस्त होते हुए भी ये बेवजह अस्पताल के चक्कर लगाते रहते, क्योंकि इन्हें शारीरिक बीमारी नहीं थी वरन् मानसिक बीमारी थी। वे भगवान से दुआ करते कि उन्हें कोई बड़ी बीमारी निकले जिससे शेष जिंदगी अस्पताल में ही बीते और जल्द ही इस दुनिया से अलविदा हो जाएँ। "जीवन का रस सूख जाए तो जीना बोझ तो होता ही है दूसरों का भी बोझ बढ़ा देता है।" इनके बहू-बेटे भी उपेक्षित व्यवहार करने लगते हैं। बुजुर्गावस्था की नीरस अकेलेपन भरी जिंदगी से तंग आकर आदेश बाबू मोहता के साथ अस्पताल में वॉलिंटियर का काम करने लगते हैं। जिस बुढ़ापे को वे कमजोरी मानते हैं अब वह उनकी ताकत बनकर उनके जीवन में स्फूर्ति का संचार करता हुआ नवीनता का आगाज करता है। ऐसा प्रतीत होता मानो बुझे हुए दिये में किसी ने तेल डाल दिया हो और जीने की अभिलाषा बढ़ गई हो। "जीवन मिला है तो हर पल क्यों न जी लिया जाए। अब वे मरना नहीं चाहते। अभी तो बहुत कुछ शेष है जो उन्हें करना है।" और जो शेष था वही उनके लिए विशेष था।

'और क्या देखोगे तुम' शीर्षक कहानी में गुजरात के भुज में आए भूकंप की त्रासदी का चित्रण है। 98 वर्षीय बुजुर्ग नंदू काका स्वयं को चुस्त, तंदरूस्त महसूस करते हैं। ये शारीरिक रूप से अवश्य बुढ़े हो गए हैं लेकिन मानसिक रूप से ये उतने ही जवान हैं जितने की 25 वर्षीय सैनिक गणतंत्र दिवस की परेड़ में भाग लेते दिखाई पड़ते हैं उनके जेहन में सारी यादें तरोताजा हैं कि दुनिया में कब, कौन से साल किस कोने में युद्ध हुआ। देश की अर्थव्यवस्था कब डगमगाई और बाढ़ ने अपनी तबाही से कितनी जाने लीं, सब बातें इन्हें विवरण में याद हैं। ये गाँव के एकमात्र सबसे बुजुर्ग व्यक्ति हैं। जब बेला से इन्हें पता चलता है कि भूकंप आने से सब कुछ तबाह हो गया है और विदेशी लोग हमारी मदद के लिए आए हैं। "कैसी विडम्बना है कि एक अठ्ठानवे साल का बूढ़ा अपने गाँव को मृत देखने के लिए जिंदा है। चहकता हुआ गाँव

भूतों का डेरा बन गया है, चारों और शांति थी, मौत थी और उस शांति में लोगों से चित्कारें भी शांत थी।" क्योंकि प्रकृति के तांडव ने सब कुछ तहस-नहस कर डाला। ऐसे में दर्द जब अपनी चरम सीमा को पार कर देता है तब दिल धड़कने की बजाय साँसे रुक जाती हैं, आँखें पत्थर बन जाती हैं, न मुख से आवाज निकलती है और न आँखों से आँसू। नंदू काका अपने घर के मलबे को देखकर भगवान से गुहार लगाते हैं कि हे भगवान आपने मुझे क्यो बचाया? मैं बहुत कुछ देख चुका हूँ। विवेच्य कहानी में लेखिका ने जीवन से हताश, निराश वृद्ध पुरुष की करूण मन:स्थिति का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है जो स्वयं को हट्टा-कट्टा, तरोताजा महसूस करते हैं।

'हरा पत्ता, पीला पत्ता' शीर्षक कहानी एक नवीन रंग को जन्म देती हैं जो केवल खुशियों का रंग था। इसमें एक अपनी हरितिमा पर खुश तथा दूसरा अपनी पीलिमा पर। कहानी का प्रमुख पात्र डॉ. एडम मिलर जीवन भर रोगों का निदान करता रहा लेकिन उम्र के शिखर पर चढ़ते-चढ़ते वह एक दिन स्वयं रोग ग्रस्त हो जाता है। "अब तो बस रह गया एक अकेला ठूँठ सा आदमी, न काम का, न काज का।" जिस मनुष्य ने अपना संपूर्ण जीवन हर्षोल्लास, शानदार, व्यस्त जीवन जीया हो, आज वह क्षीण, लाचार होकर जर्जर अवस्था में जी रहा है। इनके लिए सुखद संयोग तब बनता है जब पड़ोस की महिला अपने नन्हें बच्चे को इनके पास छोड़ जाती है ये बच्चे की किलकारियों से प्रसन्नचित होते हैं. दोनों में धीरे-धीरे संवाद स्थापित होता है। डॉ. मिलर कहते हैं, बेटा बड़े मत होना, छोटे रहना ही अच्छा है। इनकी ये मित्रता उन दो इंसानों की मित्रता प्रतीत होती है जो हमउम्र हैं रोज मिलकर बातें करते हैं एक-दूसरे से बहुत कुछ सीखते हैं तभी बार-बार ठहाके लगाते हैं। अत: बच्चे का सानिध्य डॉ. मिलर के जीवन में नया रंग भर देता है। मानों उनके जीवन की जीजिविषा बढ़ गई हो।

'पाँचवीं दीवार' शीर्षक कहानी में समता नामक पात्र प्राचार्या पद से सेवानिवृत्त होने के तदुपरांत राजनीति का रास्ता चुनती है वह स्वयं को बेहद आशान्वित पाती है। उसमें देश के लोगों के लिए कुछ करने का जो जज्बा है वह अद्भुत और प्रशंसनीय है। "वे भी एक मौका देना चाहती थी, इस पार या उस पार। अब अपने पंखों को अलग दिशा में और अधिक फैलाने का प्रयास बुरा नहीं था। वैसे भी रिटायरमेंट कागज पर छपा था दिमाग में नहीं।" एक ओर जहाँ जनता का भविष्य चारदीवारों में कैद था उसे अब पाँचवी दीवार की आवश्यकता थी।

'काई' शीर्षक कहानी वृद्धमन की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती है। उम्र के शिखर पर चढ़ते इस शरीर को बूढ़ा होना ही है लेकिन बेबस लाचार होने पर भी पेट भरने के लिए काम तो करना ही होगा। इसीलिए सैर पर जाते सूर्यकांत बाबू साइकिल वहीं मोड़ लेते हैं जहाँ बाईयाँ काम कर रही थी।

'दर्द और दवा' शीर्षक कहानी में दो बुजुर्ग सखियों की घनिष्ठता का चित्रांकन है। उम्र के शिखर पर चढ़ते हुए बुजुर्ग से परिवार के सदस्य उनके साथ संवाद स्थापित न कर दूरी बनाने लगते हैं। ऐसे में बुजुर्ग स्वयं को असहाय, अकेलेपन से जुझते, असहज महसूस करते हैं, और अस्वस्थ रहने लगते हैं। कहानी में बुजुर्ग महिला के बीमार होने पर समाज के भय से बहू-बेटे डॉक्टर को तो बुला लेते हैं ताकि समाज ये समझे कि इनके बहू-बेटे अपनी माँ की बहुत सेवा-सुश्रुषा करते है और ये कितनी सौभाग्यली माँ हैं, लेकिन वास्तव में वे उनकी देखभाल नहीं करते हैं। मृत्यु के अंतिम पड़ाव पर बहु-बेटे, बेटियाँ अपने स्वार्थ हित की ही सोचते हैं। बुजुर्ग माँ के जीवन के लिए नहीं। ऐसे में आजी की सखी उनके कान में फुसफुसाती है और उन्हें अमृतकौर देकर नवजीवन देती है। जब बहू-बेटे अंदर आते हैं तब दोनों सखियाँ परस्पर लड्डू खाती हुई खिलखिलाती हँसी हँस रही थी।

विवेच्य कहानी के माध्यम से लेखिका ने उद्घाटित किया है कि इंसान ही इंसान के दर्द की दवा है। उसे प्रत्येक रिश्ते की कदर करनी चाहिए।

'शून्य के भीतर' कहानी में जहाँ एक औरत का संपूर्ण जीवन मरीजों की देखभाल में, अपने परिवार में युवा होते भाई-बहनों की देखभाल, पढ़ाई-लिखाई, नौकरी में बीत जाता है और वह स्वयं के बारे में कदापि सोच नहीं पाती। वह सदैव दूसरों के प्रति सेवानिष्ठा, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं समर्पण भाव रखती है। बढ़ती उम्र के साथ स्वयं को असहज पाती है। "अब वह उम्र के उस मोड़ पर थी, जहाँ उसे किसी की मदद चाहिए लेकिन किसकी। जिनकी मदद वह करती रही, वे तो बहुत दूर थे, वे तो कभी आए नहीं उसके पास, वहीं चली जाती थी दौड़कर मदद का हाथ बढ़ाते हुए। अब वे कभी फोन नहीं करते। वही फोन करती इस उम्मीद से कि इस अकेलेपन को जानकर शायद कभी वे कहें कि - "दी यहीं आ जाओ।" लेकिन अब उसका शरीर जवाब देने लगा था। एक बार उसके सहकर्मी ने भी मुझे बच्चा गोद लेने के लिए कहा था लेकिन उस समय वह अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं हो पाई और अब बच्चा लेने की उम्र नहीं रही। उसे चहूँ ओर शून्य ही शून्य दिखाई देता है। ऐसे में वह बिल्ली पालने का निर्णय लेती है। इसी की देखभाल में लगी रहती है और बुजुर्गावस्था में इनके जीवन को नई दिशा मिलती है। धीरे-धीरे गिलहरी, टोमी इत्यादि के लिए पशु विहार खोल एक परिवार बना लेती है।

लेखिका ने सरल भाषा में बुजुर्गों के मन में नवीन ऊर्जा भर कर उनके जीवन में व्याप्त नकारात्मकता को सकारात्मकता में बदलने का उत्प्रेरक कार्य किया है। अत: संग्रह में संकलित सभी कहानियाँ वृद्धों के जीवन में जीवंतता और जीजिविषा को उद्घाटित करती हैं।

000

संदर्भ-

1. http://www.hindisamay.com, 2. हंसा दीप, उम्र के शिखर पर खड़े लोग, पृ., 15, 3. वही, पृ., 16, 4. वही, पृ., 22, 5 वही, पृ., 45, 6. वही, पृ., 56, 7 वही, पृ., 61, 8 वही, पृ., 68, 9. वही, पृ., 73, 10 वही, पृ., 74, 11 वही, पृ., 86, 12. वही, पृ., 107

(शोध आलेख)

रमणिका गुप्ता और भारतीय राजनीति

शोध लेखक : पूजा
हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,

ऐसे तो रमणिका गुप्ता जी हिन्दी दलित-चेतना की प्रखर साहित्यकार है। उनकी अधिकार साहित्यिक रचनाएँ दलितों की जिजीविषा और संघर्ष को समर्पित हैं। हिन्दी साहित्य की अधिकांश लेखिकाएँ मध्यम वर्ग से ताल्लुक रखती हैं। उनकी रचनाएँ भी प्राचीन रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मापदण्डों एवं आधुनिक सोच वैश्वीकरण, उदारीकरण के बीच झूलती साहित्यिक कृतियाँ हैं।

रमणिका गुप्ता ने राजनीति की राह की तरफ समाज-सेवा और साहित्य के दरवाजे से होकर रुख किया। धनबाद में रमणिका गुप्ता कला, साहित्य और समाज सेवा के साथ-साथ राजनीति की राह पर भी संघर्ष करने चल पड़ी।

''रमणिका गुप्ता की प्रस्तुत आत्मकथा 'हादसे' उनके ट्रेड यूनियन और राजनीतिक जीवन से जुड़े हादसों की दास्तान है। इन अछूते और लगभग अपरिचित अनुभव क्षेत्रों की प्रस्तुति से यह आत्मकथा महत्त्वपूर्ण हो गई है।''

अपनी तरह की अलग आत्मकथा 'हादसे' न केवल बिहार बल्कि सम्पूर्ण भारत के राजनीतिक परिवेश में स्त्रियों की स्थिति को तो केन्द्रित करती ही है, साथ ही यह भी प्रदर्शित करती है कि अगर महिला के पास सामाजिक हित से जुड़े मुद्दे हो, तो वह संघर्षों एवं अवरोधों के बावजूद राजनीति में अपनी सशक्त भूमिका निभाने में कामयाब हो जाती है। 'हादसे' में एक सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में भागीदारी रूप में प्रस्तुत करते हुए राजनीति में भूमाफिया, लठैतो, ठेकेदारों रंगदारां की दखल का भी पर्दाफाश करती है।

एक राजनीति कार्यकर्ता के रूप रमणिका गुप्ता ने बहुत ही सक्रिया एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कोयलरी ये ''ट्रेड यूनियन'' का गठन उनकी राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता के

पूजा
हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,
रोहतक

रूप में बहुत बड़ी उपलब्धि थी। उनका राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में योगदान कितने सच्चे, कितने मजदूर हितकारी रहा, इस बात का प्रमाण है, उनको मजदूरों कामिनों से मिला अटूट, प्रेम, विश्वास और लगाव आजीवन चला। एक सजग प्रयत्नशील, जुझारू एवं विद्रोही सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में रमणिका गुप्ता की सत्यता का प्रमाण है, देश की प्राचीन एवं बड़ी कंपनी 'टाटा' से उनका संघर्ष एवं परिणाम स्वरूप ''टाटा कंपनी'' का मजदूर हित की तरह उठाए गए हितकारी कदम।

तत्कालीन भारत में जो ''यूनियन'' पहले से विद्यमान थी उनके स्वार्थपरक किस्से सुनकर रमणिका गुप्ता को यूनियन के नाम से घृणा हो गई। लेकिन घाटों (टाटा कंपनी) के मजदूर एवं रेलीगढ़ा तथा गिद्दी के मजदूर भी, जिनके आंदोलन का नेतृत्व रमणिका गुप्ता कर रही थी वे यूनियन बनाने पर जोर देने लगी।

अंत में बहुत बहस के बाद रमणिका और उनके साथियों ने अपना एक अलग ''यूनियन'' का गठन किया था। जिसका उद्देश्य था राजनीतिक लड़ाइयों मजदूरों के साथ-साथ किसानों, नौजवनों और महिलाओं की भी सहभागिता हो रमणिका गुप्ता ने बराबर इस बात का ख्याल रखा कि हमारी यूनियन केवल अपनी रोटी (स्वार्थ) के लिए मजदूरों एवं किसानों के हितों को बेच न दे।

यूनियन का गठन रमणिका जी के जीवन की अहम घटना थी। इसके बाद आंदोलन के क्षेत्र में उनकी जड़े गहरे तक जम गई और एक के बाद एक कई आंदोलनों को सुचारू रूप से चलाया उन्होंने। यहीं से उनके जीवन की लम्बी लड़ाई शुरू हो गई, जहाँ वह व्यक्तिगत सुखों से ऊपर उठकर पूरे समूह, समष्टि के हितों की रक्षा के लिए आंदोलन में कूद पड़ी। वह लिखती है - ''उसमें अकेली 'मैं' नहीं थी बल्कि समष्टि रूप में। मैं समाहित हो गई थी उस समूह में और समूह व्याप्त हो गया था मुझमें।''

यूनियन गठन ने साहित्यिक प्रवृत्ति वाली रमणिका जी को रचनात्मकता का बोध एवं सृजनशीलता का सुख दिया। यूनियन की वजह से ही वह कभी निराशावादी नहीं बनी, बल्कि यूनियन ने ही उनमें हमेशा कुछ ना कुछ हासिल करने की आकांक्षा को एवं आकांक्षापूर्ति के रास्ते में आने वाली रुकावटों से संघर्ष करना सिखाया।

''संघर्ष जैसे-जैसे बढ़ता है, हौसला भी वैसे-वैसे ही बढ़ता है -आस्थाएँ दृढ़ होती है, विश्वास अडिग ही नहीं बनता बल्कि बिल्ड-अप भी होता है।

यूनियन के गठन के बाद केदला, झारखंड, कुजू, रेलीगढ़ा आदि कोयलरियों में काफी संघर्ष हुए। कुछ में हार मिली तो कुछ में जीत। रमणिका ने यूनियन का नामकरण 'कोयला श्रमिक संगठन' किया। जिसके अध्यक्ष श्रीकृष्ण सिंह और महासचिव नित्यानंद चुने गए।

यूनियन बनने के बाद 'कोयला श्रमिक संगठन' की सबसे बड़ी उपलब्धि मजदूरों का परिचय-पत्र था। हजारीबाग, गिरिडिह के कोयला खदानों में हजारों मजदूर काम करते थे। वे बेचारे दिन-रात मेहनत करते, अपनी मेहनत के हिसाब से बहुत कम पगार पाते एवं कभी किसी हादसे में यानि खदान दबने से उनकी जान चली जाती, तो उनका पूरा परिवार ही निराश्रित हो जाता था। कारण उनके पास कोई लिखित रिकॉर्ड नहीं होता था कि वे उस खदान के स्थायी मजदूर है। ठेकेदार अपने मुनाफे के लिए मजदूरों का खून चूसते थे। मजदूरों का कोई भी लिखित रिकॉर्ड नहीं रखा जाता था, कौन कहाँ काम करता है, क्या नाम है, हाजिरी, पगार आदि किसी का जिक्र नहीं रहता था। ताकि कभी भी किसी मजदूर को निकाला जा सके, उनके मेहनत की कमाई रोकी जा सके और कभी कोई दुर्घटना होने पर उनको मुआवजा भी ना देना पड़े।

रमणिका ने यूनियन के मजदूरों को उनका परिचय - पत्र दिलवाने के लिए कड़ा संघर्ष किया। परिचय-पत्र मिलने से सब कुछ उसमें दर्ज हो गया - मजदूरों को नाम स्थायित्व प्रथा अस्तिता बोध भी करा दिया। वह बहुत बड़ी उपलब्धि थी वह लिखती है - ''परेज बंगले पर अनशन के फलस्वरूप परिचय पत्र देने का निर्णय भी हुआ और टोकन -स्वरूप ही सही दस रुपये प्रति मजदूर की दर से बोनस-स्लिप के साथ बोनस भी मिला। इस बोनस खाते तथा बी-फार्म रजिस्टर का भरा जाना मजदूरों के लिए वरदान साबित हुआ चूंकि उनका रिकार्ड बन गया, जो पहले कभी नहीं बना था। इसी रिकॉर्ड के आधार पर नंबर के साथ परिचय-पत्र भी मजदूरों को मिला जो राष्ट्रीयकरण के बाद खदानों में उनकी नौकरी का प्रमाण पत्र माना गया।''

आंदोलनों के संघर्ष का सिलसिला लम्बा चला। जिसमें कभी रमणिका गुप्ता ने मजदूरों का हौंसला, विश्वास, उम्मीद देकर आगे बढ़ाया, तो कभी मजदूरों-किसानों ने इनके ऊपर होने वाले वार को खुद पर झेल लिया। इनकी परस्पर जुगलबंदी की कहानी पढ़कर आँखों में आँसू आ जाते हैं। जमींदारों, ठेकेदारों, भू-माफियाओं ने मजदूरों की संगठन-शक्ति को तोड़ने के लिए अनेक हथकंडे अपनाएँ। उनके भीतर फूट डालने की कोशिश की, तो कभी साजिश के तहत उनकी हत्या की मंशा से हिंसात्मक कार्यवाही की। लेकिन मजदूर टूटे नहीं लड़ते चले गए, जीतते चले गए। मजदूरों ने सब कुछ सहा पर हार न मानी। ना ही अपने नेताओं को कमजोर पड़ने दिया। मजदूरों की समूह शक्ति प्रेरक बनी।

''हड़तालों, प्रदर्शन, कोर्ट के घेराव, जज का घेराव, राज्यसभा की याचिका समिति के समक्ष गवाही, भूख हड़तालें, सुप्रीम कोर्ट तक मुकदमेबाजी, निषेधाज्ञा। खदान-बंदी भूखमरी, गोलीबारी तथा मौत सब सहा, पर झुकी नहीं। उसने अगल-बगल के गाँवों के पेड़ों के पत्ते डबाल कर खाए - चूहे के बिलों से धान बीनकर खाना जुटाया, कफन के लिए जुगाड बिठाया, देश-प्रदेश चंदे की खोज में गई - पर टूटी नहीं मजदूर न ही उसने मेरा या अपने साथियों पर भरोसा।''

राजनीति के क्षेत्रों में आने पर रमणिका गुप्ता को नेताओं से करीबी रिश्ता जोड़ने के बाद उनकी व्यावहारिक सच्चाईयों का पता चला। ये नेतागण किस प्रकार अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु सत्य का गला घोंट देते हैं यह देखकर रमणिका हतप्रभ थी। राजनीतिक

मूल्यों का ह्यस, महिलाओं का शोषण आदि इन नेताओं के लिए आम बात है। सत्ता हथियाने के लिए ये लोग धन, मादक द्रव्य, जातिवाद, दलित शोषण, सम्प्रदायवाद आदि अवैध तरीकों का प्रयोग करने लगे हैं। अब नेताओं द्वारा सामाजिक हित को सर्वोपरि न रखकर व्यक्तिगत हित को रखा जाता है।

आज के शासक वर्ग कोई भी कार्य नि:स्वार्थ भाव से नहीं करते। उनके द्वारा अपने स्वार्थों को सर्वोपरि रखा जाता है तब बाद में अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिया जाता है। मालिकों को किसी प्रकार का नुकसान न हो और मजदूरों को भी कुछ टुकड़े मिलते रहे। यहीं इन नेताओं, अफसरों और दलालों की तिकड़ियों का धंधा था। ये लोग इन गरीब मजदूरों की मजदूरी पर दिन-प्रतिदिन अमीर होते जाते हैं और गरीब और होता जाता है। मजदूर एवं इन मजदूरों के छोटे-बड़े नेता इनके जागीर होते हैं।

कोई भी नया अफसर आता, खासकर श्राम विभाग का उसे बी. पी. सिन्हा के यहाँ हाजिरी देनी ही होती थी। उनके यहाँ आयोजित रात्रि-भोज और शराब पार्टियों में आगे की राजनीति, रणनीति और यूनियन की कार्यनीति तय होती थी।''

राजनीति के क्षेत्र में लेखिका ने खुद के स्वतंत्र अस्तित्व की सामाजिक स्वीकारोक्ति के लिए काफी जद्योजहद की। उन्होंने न केवल राजनीति में अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया, बल्कि वह अपनी इच्छानुसार भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों की सदस्यता बनती रही। जब-जब उन्हें ऐसा लगा कि उनके साथ नाइंसाफी हो रही है, अथवा उसकी सोच एवं धारणाओं को तरजीह नहीं दी जा रही, तो इच्छानुसार उन्होंने पार्टी की सदस्यता ग्रहण की अथवा त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने कभी भी किसी भी जोर-दबाव को नहीं सहा, भले ही इसके लिए उन्हें राजनीतिक सुखों की तिलांजलि देनी पड़ी हो।

लोग स्त्री कार्यकर्ताओं को अपना कलेवा मानते थे जिसे भूख लगने पर खाने का स्वर्जित जन्मसिद्ध अधिकार उन्होंने प्राप्त कर रखा था। उनकी नजर में बिना किसी पुरुष नेता वृक्ष का सहारा लिए महिला नेता पनप और बढ़ नहीं सकती थी और मैं लता बनने को तैयार नहीं थी।''

दो बार विधानपरिषद सदस्या चुना जाना एवं एक बार विधानसभा सदस्या चुना जाना रमणिका गुप्ता की उन्हीं ईमानदार, कटिबद्ध एवं उद्देश्यपूर्ण संघर्षों का नतीजा रहा। आज जब राजनीति में इतनी गंदगी भर गई है भ्रष्टाचार, स्वार्थलोतुपता, अपराध, इसके पर्याय बनने लगे हैं, रमणिका गुप्ता जैसी सृजनशील एवं संवेदनशील नेता राजनीति के असल-स्वरूप को बचाए रखने में लगी है।

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि कोई भी राजनीतिक पार्टी आम आदमी का शोषण करने वाली नौकरशाही के भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए कटिबद्ध नहीं है। नौकरशाही में सुधार राजनीतिक दलों के हित में हैं, क्योंकि अक्सर वे नौकरशाहों की ढिलाई की सजा भुगतते हैं।

निष्कर्ष- निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज भी इक्कीसवीं सदी में नेताओं की मानसिकता वहीं की वहीं है। ये राजनेता लोग आगे कुछ और पीठ पीछे कुछ होते हैं, इनकी कथनी व करनी में जमीन - आसमान जितना अंतर होता है। ये बाहर से तो बड़े सज्जन, सभ्य दिखाई देगे, लेकिन अंदर से बहुत ही क्रूर, संवेदनहीन स्वार्थी होते हैं। ये नेतागण अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कुछ भी कर सकते हैं। किसी को मारना इनके लिए छोटी-सी बात होती है। कुर्सी को पाने की चाह में ये नेतागण किसी भी तरह का अवैध तरीका अपनाने को तैयार रहते हैं।

इस प्रकार की राजनैतिक दुर्दशा को देखकर रमणिका गुप्ता चुप नहीं रह सकी और उन्होंने जनमानस के दर्द को समझा और उन्हें अपने राजनीतिक अधिकारों को जानने के लिए प्रेरित किया।

000

संदर्भ-

रमणिका गुप्ता, हादसे, राधाकृष्ण पेपर बैक्स।, रमणिका गुप्ता, आपहुदरी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली- 110002,

https://www.apnimaati.com

नई पुस्तक

(गीत-नवगीत संग्रह)

नीलकंठी प्रार्थनाएँ

लेखक : रघुवीर शर्मा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

गीतकार रघुवीर शर्मा का यह नया संग्रह शिवना प्रकाशन द्वारा नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में प्रकाशित होकर आ रहा है। रघुवीर शर्मा पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- 'इन दिनों नवगीत को लेकर बहुत चर्चाएँ हो रही हैं। नवगीत का इतिहास, कथ्य और शिल्प के संदर्भ में बहुत कुछ कहा और लिखा जा रहा है। यह नवगीत की लोकप्रियता का सूचक है। प्रसन्नता का विषय है कि तमाम अवरोधों के बावजूद नवगीत ने धीरे-धीरे अपना पाठक वर्ग तैयार कर लिया है। इसका कारण अन्य विशेषताओं के साथ नवगीत की सरलता, संक्षिप्तता, कथ्य की गहनता और सम्प्रेषणियता है। मेरा प्रयास भी छोटे और सरल गीत लिखने का रहता है। इस प्रयास में मैं कितना सफल हुआ हूँ तथा मेरे गीत नवगीत है या नहीं इसका मूल्यांकन मेरे इस नवगीत संग्रह को पढ़कर विद्वतजन और सुधी पाठक करेंगे ही। आप सभी की यथोचित आलोचनाओं या प्रतिक्रियाओं से मुझे प्रसन्नता होगी और मेरी आगे की राह आसान होगी।'

000

शोध आलेख

(शोध आलेख)

रंवाई-जौनपुर के ऐतिहासिक पृष्ठ में एक मार्मिक अध्याय - 'तिलाड़ी कांड'

शोध लेखक : बिनीता मल्ल, शोधार्थी-हिन्दी विभाग, हे.न.ब.गढ़वाल विश्वविद्यालय

शोध सार- उत्तराखण्ड राज्य के रंवाई और जौनपुर अंचल का भारत के स्वाधीनता संग्राम में अथाह योगदान रहा है। यहाँ की पावन धरा पर अनेक आक्रांताओं के पद्चिन्ह प्राप्त होते हैं, जिन्होंने यहाँ की संस्कृति, परम्पराओं, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को तोड़ने का हर संभव प्रयास किया परन्तु क्षेत्र के महान व नेतृत्वपूर्ण समाजसेवियों, आन्दोलनकारियों और ग्रामीणों ने प्रत्येक आन्दोलन और मुश्किलों का डटकर सामना किया है। रंवाई-जौनपुर क्षेत्र बाहरी आक्रांताओं के साथ ही भीतरी(राजतंत्र)ाड्यंत्रों का भी शिकार हुआ है। राजतंत्र की कठोर तथा दमनात्मक प्रणाली के विरूद्ध यहाँ का वन आन्दोलन तिलाड़ी कांड के रूप में विख्यात है, जो कि रंवाई-जौनपुर के इतिहास के पन्नों में एक मार्मिक अध्याय के रूप में जाना जाता है।

मध्य हिमालय की उपत्यका में बसा रंवाई-जौनपुर क्षेत्र के इतिहास में रंवाई कांड/तिलाड़ी कांड (30 मई 1930 ई.) की घटना गढ़वाल के इतिहास का एक मार्मिक पृष्ठ है, जिसे जलियावाला बाग हत्याकांड की संज्ञा दी गई है। यहाँ का जन-जीवन पूर्णत: कृषि एवं वनों में उत्पादित वस्तुओं पर ही निर्भर था। स्वच्छंद जीवन जीने के अभ्यस्त रहे यहाँ का जनमानस प्रारम्भ से ही राज्य प्रतिबंधों की उपेक्षा करता रहा है। टिहरी शाषकों द्वारा नियुक्त फौजदार एवं कमीण-सयानों द्वारा रंवाई-जौनपुर की जनता पर अनेकों बार वनों व कृषि योग्य भूमि के उपभोग पर दंड-कर लगाए गए। प्रशासनिक व्यवस्था के नाम पर स्थानीय जनता का बार-बार शोषण होता रहा। राजकीय कोष की वृद्धि हेतु स्थानीय जनता से रोजगार छिनकर बाहर से ठेकेदारों को आमंत्रित किया गया। वनों को राज्य की संपति दर्शायी गई और वनों को अंग्रेज व्यक्ति विलसन को पट्टे पर दिया गया1। ''दीवान चक्रधर जुयाल ने घर में निर्मित होने वाली मदिरा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उसने राजकीय कोष की वृद्धि के लिए मदिरा के ठेकेदारों को शराब की दुकान खोलने के लिए आमंत्रित किया।''2 नए वन अधिनियम लागू होने पर रंवाई-जौनपुर की जनता के दिलों में घोर असंतोष फैल गया।राजशाही की इस दमनात्मक प्रणाली के विरोध स्वरूप तथा अपनी समस्याओं-शिकायतों को लेकर जनता टिहरी दरबार पहुँचती रही, जिसका परिणाम 30 मई 1930 ई. की तिलाड़ी कांड की घटना/आंदोलन के रूप में सामने आई है। इस आंदोलन में रंवाई से लेकर जौनपुर क्षेत्र के कई ग्रामीणों व समाज-सेवियों को अपनी शहादत देनी पड़ी। तत्कालीन शासक नरेंद्र शाह के शासन काल में राजतंत्र की अत्यंत दमनकारी एवं शोषणपरक नीति के तहत डी.एफ.ओ. (प्रभागीय वन अधिकारी) पद्म दत्त रतूड़ी द्वारा वनों का बंदोबस्त किया गया, जिसमें वनों की सीमाएँ ग्रामों व उनके खेत-खलिहानों, गोशालाओं तक निर्धारित की गई तथा प्रति पशु वार्षिक चुगान कर 50 पैसे निर्धारित किया गया और वनों से कोई भी वनस्पति बिना क्रय के नहीं ली जा सकती थी। इस कानून को लेकर रंवाई-जौनपुरवासियों ने जब अपनी असहमति जंगलात के ऑफिसरों के समक्ष प्रकट करते हुए कहा कि हम इतना चुगान कर नहीं दे सकते हैं, ऐसे में हमारे पशु कहाँ चरेंगे तो वन अधिकारियों से जवाब आया कि-''गाय बछियों के लिए सरकार अपना नुकसान नहीं उठायेगी। इन्हें पहाड़ों से नीचे गिरा दो।''3 ये शब्द धधकती ज्वाला को बढ़ाने के लिए पर्याप्त थे। रंवाई-जौनपुर वासियों ने राजशाही एवं सामंतशाही के विरुद्ध आन्दोलन व सभाएँ करनी शुरू कर दी। ग्राम खबेण्डी से बैजराम द्वारा 'आजाद पंचायत की स्थापना' की गई, जिसे क्षेत्रवासी 'पाँच सरकार' के नाम से जानते हैं। इस पाँच सरकार में बैजराम (ग्राम-खबेण्डी), कालिया सिंह (ग्राम-पाब) और दो सदस्य रंवाई के सम्मिलित थे। ''इस आन्दोलन की अगुवाई नैग्याणा गाँव के हीरा सिंह, कसेरू के दयाराम, खुबड़ी के बैजराम और जौनपुर से रामानन्द आदि ने की। इन लोगों के नेतृत्व में एक जत्था तिलाड़ी चाँद-डोखरी के लिए रवाना हुआ। जिसमें पालीगाड़ के मायाराम, द्वारगढ़ के मतीराम, रणजीत सिंह, रूप सिंह, वीर सिंह ग्राम ठाल के धर्म सिंह इत्यादि शामिल थे। इसमें एक दल पाब गाँव (जौनपुर) के सरदार भगत सिंह के नेतृत्व में गया जिसमें जयद्वार के बादर सिंह,

बिनीता मल्ल,
शोधार्थी-हिन्दी विभाग, हे.न.ब.गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर, उत्तराखण्ड,
मोबाइल-8449872931
ईमेल- binita04@gmail.com

पाब के कालिया सिंह, कलम सिंह टटोर, भूप सिंह टटोर, बद्री दत्त, पं. जाडूराम विरोड़, नागचंद जयद्वार, शिव सिंह बणगाँव, मोहन सिंह, हंसराम नथोलिया इत्यादि लोग थे।"4

रंवाई-जौनपुर की तत्कालीन राजधानी राजगढ़ी इस आन्दोलन का मुख्य केन्द्र था। उक्त समय राजा यूरोप (इंग्लैण्ड) की यात्रा पर गए थे लेकिन जाने से पूर्व वे एक कमेटी का गठन कर गए जिनमें दिवान चक्रधर जुयाल, वजीर हरिकृष्ण रतूड़ी, और देवेन्द्र सकलानी के साथ कुछ अन्य दरबारियों को राज-काज चलाने का कार्यभार सौंप गए थे।

20 मई 1930 ई. को वन अधिकारी पद्म दत्त रतूड़ी ने दयाराम, राम प्रसाद, जमन सिंह व रूद्र सिंह को वनों में आग लगाने व नुकसान पहुँचाने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया। राजगढ़ी की अदालत द्वारा उन्हें कारावास की सजा सुनाई गई और टिहरी जेलभिजवाने का आदेश दिया गया। जब यह खबर आन्दोलनकारियों तक पहुँची तो वे गिरफ्तार आन्दोलनकारी साथियों को छुड़वाने के लिए चल पड़े, जहाँ डंडियाल गाँव के समीप उनकी मुठभेड़ डी.एफ.ओ. पद्म दत्त रतूड़ी सहित अन्य वनाधिकारियों से हो गई। पद्म दत्त रतूड़ी द्वारा गोलियाँ चलाई गई। जिसमें किशन सिंह (नेग्याणा), जूना सिंह, अजीत सिंह मारे गए और कई घायल हो गए। आन्दोलनकारियों ने एस.डी.एम. (उप प्रभागीय न्यायाधीश) सुरेन्द्र दत्त नौटियाल पर गोली चलाकर उन्हें घायल कर दिया। अन्य वनाधिकारी, कर्मचारी भाग निकले। आन्दोलनकारियों द्वारा गिरफ्तार साथियों को छुड़वाया गया व मृत साथियों के शवों को अपने साथ ले जाया गया। इस घटना ने क्षेत्रवासियों तथा आन्दोलनकारियों के मन में राजतंत्र के प्रति ओर घृणा व प्रतिशोध की भावना भर दी। अपने साथियों की मृत्यु का बदला लेने के लिए वे (ग्रामीण, आन्दोलनकारी) तिलाड़ी के मैदान में (30 मई 1930) एकत्रित होकर बैठक करने लगे लेकिन इस बैठक की खबर दीवान चक्रधर जुयाल तक पहले ही पहुँच गई थी। उसने सेना सहित तिलाड़ी के मैदान को तीन ओर से घेर लिया चौथी तरफ यमुना नदी का तेज जल प्रवाह था। जैसे ही दीवान ने सीटी बजाई सेना ने निहत्थे लोगों पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी जिससे भगदड़ मच गई। कई लोग तो जान बचाने के लिए यमुना नदी में कूद पड़े कुछ घायल हो गए और सत्रह लोग गोलियों के शिकार होकर मारे गए। उस समय दीवान का व्यवहार जनरल डायर के ही समान क्रूर एवं निर्दयी था। लाशों व घायलों के शरीर से सेना द्वारा आभूषण आदि लूटे गए और सबूत मिटाने के लिए मृत शरीरों को बोरे में भरकर यमुना के जल प्रवाह में बहा दिया गया और बचे हुए आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। तिलाड़ी के मैदान में दीवान चक्रधर द्वारा की गई निर्मम हत्याकांड की प्रतिध्वनि इस लोकगीत में सुनी जा सकती है- 'ऐसी गढ़ी पैंसी, मु ना मारिंया चक्रधर / मेरी एकत्या भैंसी। / तिमला को लाबू, मु ना मारिंया चक्रधर / मेरा बुड्या बाबू। / भंग कू घोट कन कटु चक्रधर / कुई गंगा पड़ौ छुटी।'

(अर्थात्- एक व्यक्ति कहता है कि हे चक्रधर ! मुझे मत मारना, मेरी एक भैंस है जिसे मुझे ही दुहाना पड़ता है और एक बूढ़ा बाप है जिसका मैं ही एक सहारा हूँ। तू किस हृदय से राइफल से गोलियों की चोटे कर रहा है। तेरी गोलियों से कोई मर गया तो कोई यमुना में डूब गया है।) जब इस कांड की जानकारी राजा तक पहुँची तो उन्होंने यूरोप से वापस आकर एक जाँच कमेटी बिठाई और दीवान आदि कर्मचारियों की सराहना करते हुए पकड़े गए 68 अभियुक्तों को एक से बीस वर्ष की सजा सुनाई गई। जिनमें से 15 व्यक्तियों की टिहरी जेल में ही मृत्यु होने की सूचना मिलती है। क्षेत्र के कुछ गणमान्य व्यक्तियों का यह भी कहना है कि राजा के यूरोप से लौटने के पश्चात् उन्होंने दीवान चक्रधर, पद्मदत्त रतूड़ी सहित अन्य अधिकारियों को नौकरी से बर्खास्त कर दिया था। साथ ही चुगान कर 50 पैसे प्रति जानवर से हटाकर 2 पैसे निश्चित किया गया लेकिन कुछ समय पश्चात् आन्दोलनकारियों की प्रार्थना पर 2 पैसे का चुगान कर भी हटा दिया गया। राजा के संबंध में ये अलग-अलग मत दिए गए हैं कि राजा दीवान के कृत्य से प्रसन्न थे या नहीं। एक मत के अनुसार राजा ने उन्हें उनके पद से पदच्युत कर दिया था। खैर राजा ने क्षेत्रवासियों पर से पशु चुगान कर व अन्य वन नियमों को हटाकर प्रजा के दिलों में थोड़ी बहुत जगह अवश्य बना ली थी लेकिन रंवाई-जौनपुर क्षेत्र के इतिहास में उक्त घटना एक काले पृष्ठ के रूप में सदैव अंकित रहेगी। तिलाड़ी में हुए शहीदों को प्रत्येक वर्ष 30 मई के दिन शहीद दिवस के रूप में मनाकर याद किया जाता है। तिलाड़ी आंदोलन में शामिल जौनपुरवासियों की सूची5 -सरदार भगत सिंह-ग्राम पाब, बादर सिंह, कालिया सिंह, चुन्नी राम-ग्राम खरसोन, कलम सिंह-ग्राम टटोर, भूप सिंह, लटू राम-ग्राम विरोड़, दया राम, शेर सिंह सयाणा-ग्राम म्याणी, नागचन्द-ग्राम जैद्वार, भौत राम, रूप चन्द, नैन सिंह (लम्बरदार) - ग्राम बणगाँव, शिव सिंह, जय सिंह-ग्राम सूरासू, खड़क सिंह, मोहन सिंह-ग्राम द्वारगढ़, हंस राम, नागचन्द, कालू, फत्ते सिंह, नथोलिया-ग्राम बुराड़ी, मायाराम पुत्र शोभाराम-ग्राम ओतड़, 500 रुपये जुर्माना, 6 वर्ष की जेल, मुकुन्द राम पुत्र आनन्द राम-ग्राम घराड़ा, 200रुपये जुर्माना, 3 वर्ष की जेल।

000

संदर्भ- 1- उत्तराखण्ड का जन इतिहास लोक संस्कृति एवं समाज, सम्पादक- डॉ. विजय बहुगुणा, समय साक्ष्य, देहरादून, 2017 ई., पृ.सं.-395-396, 2-उत्तराखण्ड का जन इतिहास लोक संस्कृति एवं समाज, सम्पादक- डॉ. विजय बहुगुणा, समय साक्ष्य, देहरादून, 2017 ई., पृ.सं.-402, 3-हिमालयी सरोकारों का दस्तावेज 'धाद'(ग्रंथ आयोजन-1), सम्पादक -सुरेश नौटियाल, अभिकथन पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, संस्करण-प्रथम अक्टूबर 1994 ई., पृ.सं.-286, 4- जौनपुर सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास, सुरेन्द्र पुण्डिर, समय साक्ष्य, देहरादून, 2014 ई., पृ.सं.-138-139, 5-जौनपुर सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास, सुरेन्द्र पुण्डिर, समय साक्ष्य, देहरादून 2014 ई.,पृ.सं.-165-166

(शोध आलेख)

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'कुठाव' उपन्यास में उच्च वर्ग के द्वारा निम्न वर्ग की स्त्रियों का शारीरिक शोषण

शोध लेखक : देवेन्द्र कुमार
शोध निर्देशक : डॉ. कृष्णा जून, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

आरम्भ में जब हमारा समाज चार भागों में विभाजित हुआ तो उसका मुख्य आधार व्यवसाय था पर धीरे-धीरे ये विभाजन उच्चता एवं निम्नता में परिवर्तन हो गया। उच्च वर्ग बन गया स्वामी एवं इन्होंने निम्न वर्ग को अपना गुलाम बना लिया उसका शोषण करना आरम्भ कर दिया उन से उनके अधिकार छीन लिए और उन्हें निम्न कार्य करने के लिए विवश किया। अगर ये ऐसा न करते तो भूख से मर जाते और अपने पेट की आग मिटाने के लिए ये निम्न स्तर के कार्य करते रहे। दूसरी तरफ उच्च वर्ग के लोगों ने एक अचूक शस्त्र खोज निकाला निम्न वर्ग का शोषण करने के लिए वो था इनका समाज से बहिष्कार। निम्न वर्ग के लोग जब निम्न स्तर का कार्य करने से मना करते तो इनका समाज से बहिष्कार कर दिया जाता था इसी के भय से निम्न वर्ग के लोग चाह कर भी उच्च वर्ग का विरोध नही कर सका और इनको परवस बनाता गया और उच्च वर्ग इनका शोषण करता रहा।

भारतीय समाज में स्त्री को देवी माना जाता है पर यह अवधारणा शत्-प्रतिशत असत्य है क्योंकि ये केवल शास्त्रों तक परिसीमित है वास्तव में स्त्री को केवल वासना की वस्तु मानकर उसका उपभोग मात्र किया जाता है। पुरुष स्त्री के उभरे अंग देखकर उस पर झपट पड़ता है और उसके शरीर को नोंच लेना चहता है अगर वो अपने शरीर को नुचवाती रहे तो उचित है लेकिन जैसे ही वो विरोध करती है तो उसको दुर्जेय परिणाम भुगतने पड़ते है।

'कुठाँव' अब्दुल बिस्मिल्लाह का एक विशिष्ट उपन्यास है। इस उपन्यास में निम्न वर्ग के शोषण का यथार्थ वर्णन हुआ है मुख्यत: स्त्रियों का शोषण। उच्च वर्ग का मानना है कि निम्न वर्ग एवं उनकी स्त्रियों की इज्जत एवं मान-सम्मान नही होता है उनका किसी भी समय शारीरिक उपभोग किया जा सकता है।

ठाकुर गजेन्दर सितारा को प्रतिदिन स्कूल छोड़ने और लेने जाता था और अवसर मिलते ही उससे अपनी हवस पूर्ण करता था। दूसरी तरफ उसकी माँ को एम.एल.ए. का स्वप्न दिखा कर कर उसका मुँह बंद कर चुका था। "वह उसकी भूख को शांत करने लगा। सितारा की भूख और बढ़ती गई। गजेन्दर अब हद से ज़्यादा बढ़ने लगा। माँ सब भाँप रही थी। मगर बुरा हो ऐसी औरत का जो अपनी ही बेटी को दोज़ख़ में झोंक रही थी। मगर उसका भी क्या क़सूर? गजेन्दर उसे

देवेन्द्र कुमार, शोधार्थी
हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

सब्ज़बाग़ दिखाने लगा। एम..एल..ए. बन जाने का लालच दिया।"01 उच्च वर्ग के लोग बहुत से लालच देकर निम्न वर्ग की स्त्रियों का शारीरिक शोषण करते है और जब उसका मन भर जाता है तो इन्हें सिरे से नकार देते है।

गजेन्दर सितारा को अपनी हवस का शिकार बना रहा था तो मक़बूल ने भी अवसर का लाभ उठाना चाहा मगर वो सफल नही हो पाया तो उसने सितारो को बदनाम करना आरम्भ कर दिया। "बीच में गजेन्दर के दोस्त मक़बूल ने भी सितारा की आग में अपना अंग सेंकने की कोशिश की। मगर गजेन्दर भड़क गया। तब वह प्रचार करने लगा कि सितारा तो उसकी रखैल है।"02 उच्च वर्ग के पुरुष एवं उनके साथ रहने वाले पुरुष चाहते है कि वो निम्न वर्ग की स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बनाये अगर ये इस कार्य में सफल हो जाए तो ठीक है और सफल नहीं हो पाते हैं तो ये स्त्री को कलंकित कर देते हैं।

नईम सितारा और उसकी माँ गड़बड़ा के मेले में गए हुए थे। रात को जब सितारा और उसकी माँ के पास ठंड से बचने के लिए उचित कपड़े न होने के कारण सितारा को उसकी माँ नईम के तम्बू में भेज देती है तो सितारा तम्बू में चली जाती है नईम इस अवसर को दोनों हाथों से लपक लेता है। "अचानक सितारा को अपने बदन पर एक सरसराहट का अनुभव हुआ और वह चित्त हो गई। मानो अपने एक अंग को खींच जाने से वह अकबका गई।"03 सितारा जो तेरह-चौदह वर्ष की लड़की थी नईम ने उसके शरीर का उपयोग किया और आगे भी करता रहा।

नईम सितारा के शरीर का उपयोग गड़बड़ा के मेले में कर चुका था। सितारा की माँ और भाई नईम के पिता का बहुत सम्मान करते थे उसी का लाभ उठाकर वो सितारा का उसी के घर पर अवसर मिलते ही शारीरिक उपयोग करता रहा-"नईम ने अगला प्रश्न किया तो पता चला कि वे नदी की ओर गई हैं। नईम ने अपना काम शुरू किया। उसका एक हाथ सितारा की शमीज़ के भीतर गया।"04 निम्न वर्ग के लोग इनके सामने बोल भी नही सकते है वो इसी का लाभ उठाकर निडर होकर निम्न वर्ग की स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बना लेते है। नईम सितारा के शरीर का स्वाद बहुत बार चख चुका था और वो चाहता था आगे भी निरन्तर ऐसा ही होता रहे। वो पढ़ने के लिए बाहर गया था और उसका विवाह भी निर्धारित हो चुका था किसी अन्य लड़की से। वह सितारा को याद करता है- "सितारा से उसे जो कुछ मिलना था, मिल चुका था कि आगे भी मिलता रहेगा। सितारा उसकी प्रेमिका नहीं थी। न वह सितारा का प्रेमी था। सितारा उसकी एक मात्र प्रयोगशाला थी। उसके चाचा की बेटी ज़ुबैदा उसकी मंगेतर थी।"05 उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग की स्त्री का मात्र प्रयोग करते हैं वो चाहते हैं कि ये प्रयोग हमेशा चलता रहे और इनकी तृप्ति होती रहे इन स्त्रियों से न तो ये विवाह करते है और न ही ये इनकी प्रेमिका होती है ये तो इनकी केवल प्रयोगशाला होती है जिसका केवल ये प्रयोग करते हैं।

नईम के जहन में हमेशा वासना छाई रहती है और वो वासना हमेशा निम्न वर्ग की स्त्री के द्वारा पूर्ण होती है। लेकिन जब रफीक नईम को कहता है-"क्या आप किसी ऐसी लड़की से शादी करने को तैयार हो जाएँगे जो ख़ाँ साहबों के ख़ानदान की न हो या जिसकी जाति का कोई अता-पता न हो? "क्या बकवास की बात है।"06 उच्च वर्ग के लोग स्त्री के शरीर का उपयोग करते समय जाति को कोई महत्त्व नही देते है मगर विवाह करते हुए जाति को बहुत अधिक महत्त्व देते है। निम्न जाति की स्त्री से ये विवाह करने की स्वप्न में भी नहीं सोच सकते हैं क्योंकि उस समय वो तुच्छ हो जाती है। नईम एवं उनके मित्र आपस में बाते करते है तो बीच में टोकते हुए हुमा यथार्थ स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है-"हम इसी समाज की बात कर रहे थे, जो एक लौंडे के गुदान में मुँह मारने में तो शर्म नही करता, मगर अपना गू उसी लौंडे के घरवालों से साफ़ करवाता है। अब ज़रा सोचिए कि यह ख़ानदान की औरतों का क्या हाल करता होगा ?"07 उच्च वर्ग के पुरुष अवसर देखते रहते हैं कि निम्न वर्ग की स्त्री कब उनके चंगुल में फँसे और वो अपनी हवस को मिटा ले क्योंकि वो उन्हे सुलभता से प्राप्त हो जाती है और ये विरोध भी नहीं कर सकती है अगर ऐसा होता भी है तो उसे विभिन्न लालच देकर दबाया जा सकता है।

नईम सितारा पर केवल अपना एकाधिकार समझता था। जब वो अपने घर पर आ जाता है तो चाहता है कि सितारा के साथ फिर से शारीरिक संबंध स्थापित कर सके मगर सितारा उससे अच्छे से बात नहीं करती है तो नईम उसे मनाने का प्रयास करता है-"मेरे और तुम्हारे तअल्लुक़ात ऐसे रहे हैं, कि....हम तो मियाँ बीवी जैसे रह चुके हैं न।

"वे सब पुरानी बातें है। तब मेरा बचपना था मैं कुछ नहीं जानती थी।"08 नईम तेरह-चौदह साल की नासमझ लड़की सितारा का शारीरिक शोषण कर चुके थे वो अब भी चाहते है ये सब जारी रहे। वो नहीं चाहता है कि ये सब बंद हो उसे लगता है कि ये सब बंद हो जाएगा तो वो अपनी वासना को कैसे शांत करेगा।

उच्च वर्ग के लोग जिस स्त्री का शारीरिक उपभोग कर चुके है वो फिर से उसका शारीरिक उपभोग करना चाहते हैं लेकिन स्त्री इसका विरोध करती है तो वो उसे मना लेना चाहते हैं कुछ भी करके। वो नहीं चाहते हैं कि स्त्री उन्हें अपने शारीरिक उपभोग करने से मना करे।

"तो क्या इससे पुराना सब ख़त्म हो गया? जो कुछ हो गया है वह तो बदलने से रहा।" सितारा चुप।

"बोलो। मैं पूछता हूँ, क्या तुम फिर से पहले जैसी हो जाओगी? नही न। फिर ?"09 नईम को लगता है कि सितारा अब नहीं मानने वाली है तो वो उसे कहता है तुम पहले जैसी (पवित्र) तो हो नहीं जाओगी हमारे संबंध जैसे थे वो वैसे ही चलते रहे। नईम हर संभव प्रयास कर रहा था कि सितारा फिर से अपना शरीर मुझे समर्पित कर दे ताकि वो फिर से उसे नोचता रहे। नईम सितारा को समझाता है। नईम के लिए सितारा मात्र प्रयोग कि वस्तु थी पर वो नहीं चाहता था की उसका प्रयोग कोई अन्य व्यक्ति करे और जब उसे पता चलता है कि उसके जाने के बाद उसके शारीरिक संबंध

गजेन्दर एवं मक़बूल से रहे हैं तो वो क्रोध में सितारा से पूछता है-"सितारा तुम मुझे सिर्फ़ यह बता दो कि ठाकुर गजेन्दर सिंह और मक़बूल से तुम्हारे वैसे तअल्लुक़ात तो नहीं रहे, जैसे मुझसे थे।"10 उच्च वर्ग का पुरुष यह सहन नहीं कर पाता है कि जिसका शारीरिक उपयोग वह कर रहा है उसका शारीरिक उपयोग कोई अन्य पुरुष करे उस पर केवल उसका एकाधिकार रहे और जब सितारा यह सब सुन कर मौन रहती है तो उसका संदेह सत्य में बदल गया तो नईम कहता है-"अगर ऐसा कुछ हुआ है तो मैं उनका खून कर दूँगा। मैं एक-एक को गोली मार दूँगा। सितारा सिर्फ़ मेरी है और मेरी ही रहेगी। सितारा की रूह मेरी है, उसका जिस्म मेरा है।"11 सितारा नईम की प्रेमीका नहीं थी। निम्न जाति की होने के कारण वो सितारा से विवाह भी नहीं करना चाहता था क्योंकि नईम का विवाह ज़ुबैदा से तय हो गया था लेकिन फिर भी वो नहीं चाहता था कि सितारा के शरीर पर किसी और का अधिकार हो।

इद्दन चाहती थी की उसकी पुत्री उच्च वर्ग के घर की बहू बने इस के लिए वो दो बार प्रयास कर चुकी थी पर वो अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाई थी और एक दिन ख़ाँ साहब के घर पर ग्याहवीं शरीफ़ पर्व के अवसर पर इलाहाबाद से फुन्नन मियाँ आए हुए थे और सितारा एवं उसकी माँ इनको शरबत और पान दे रही थी तो फुन्नन मियाँ कहते हैं-"जिस गंदी औरत के हाथों से आपने मुझे पान खिलाना चाहा वह हेलिन है और जो शरबत लेकर आई वह हेलिन की बेटी है। आप खाइए-पीजिए इन भंगिनो-हेलिनो का छुआ हुआ। मुझे बख़्श दीजिए।"12 इद्दन अपनी जाति को छुपाए हुए थी। वो चाहती थी कि सितारा उच्च वर्ग के घर की बहू बने लेकिन सत्य का पता चलने के बाद इनका स्वप्न समाप्त हो गया था और वो सत्य सितारा को बता देती है की हम हेलिन है और फुन्नन मियाँ तुम्हारे पिता है। इद्दन के सामने उसका अतीत फिर से उपस्थित हो जाता है। इद्दन का विवाह सुबराती से होता है सुबराती की माँ ख़ाँ साहब के यहाँ खुड्डी साफ करती थी लेकिन सास के बीमार होने के कारण इद्दन को ख़ाँ साहब के यहाँ न चाहते हुए भी ख़ाँ साहब के दबाव एवं पति की मार-पीट के बाद खुड्डी साफ करने के लिए जाना पड़ता है तो ख़ाँ साहब का पुत्र अवसर देखकर इद्दन का शारीरिक शोषण करता है। "असलम इद्दन को दबोच लेता है। इद्दन ख़ुद को छुड़ाने की बहुत कोशिश करती है, मगर सफल नहीं होती। असलम उसी मुद्रा में दरवाज़े की अन्दरूनी साँकल लगाता है और इद्दन को अपनी चारपाई पर लगभग पटक-सा देता है। फिर वह इद्दन को नोचने-खसोटने लगता है।"13 असलम के घर पर कोई नहीं होता है उसी का लाभ उठाकर वह इद्दन का बलात्कार करता है। असलम जब इद्दन का बलात्कार करके उसे जाने को कहता है पर इद्दन अपनी इज़्जत की दुहाई देते हुए रोती है तो असलम कहता है मैंने तुम्हे मारा-पीटा नहीं है रो क्यों रही हो इस पर इद्दन कहती है।

"मार-पीट लेते साहब तो अच्छा था, मगर आपने तो मेरी इज्जत को ही तार-तार कर दिया। अब मैं किसको क्या मुँह दिखाऊँगी?"

"तुम लोगों के पास क्या इज़्ज़त नाम की भी कोई चीज़ होती है?"14

उच्च वर्ग के लोगों के अनुसार निम्न वर्ग की स्त्रियों की कोई इज़्ज़त नहीं होती है उनका जब चाहे बलात्कार किया जा सकता है और ये चाहते हैं जब तक इनका मन न भर जाए तब तक ये काम जारी रहे अगर ऐसा नहीं होता है तो वो इनको बदनाम करने की चेतावनी देते है। असलम निरंतर इद्दन का बलात्कार करता रहा-"इसी तरह असलम मियाँ लगातार इद्दन का बलात्कार करते रहे और इद्दन बेचारी बगैर कोई आवाज उठाए उनके हवस का शिकार बनती रही।"15 इद्दन का पति नशे में रहता था और वो ख़ाँ साहबों से बहुत डरता था इद्दन के पास असलम से बचने का कोई मार्ग नहीं था।

जब नईम समाज के द्वारा बहिष्कार करवा कर भी सितारा का विवाह नहीं रोक पाता है तो वो सितारा के दूल्हे को भड़काते हुए उसे कहने लगा-"आपका जिस लड़की से अक़्द होने वाला है, वह बहुत गिरी हुई लड़की है। वह गोपालगंज में बुरी तरह बदनाम है क्योंकि माफ कीजिएगा, मैं इल्ज़ाम नहीं लगा रहा हूँ बल्कि यह सब लोग जानते है कि यहाँ के एक हिन्दू से नाजायज़ ताल्लुक़ात रहे है।"16 उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों से मान-सम्मान एवं समान-सूचक शब्दों से बात नहीं करते हैं लेकिन जब उन्हें स्वयं के स्वार्थ सिद्ध करने हो तो ये सब कुछ कर सकते है। अंत में सितारा का विवाह टूट जाता है।

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि उच्च वर्ग के लोग हमेशा अपनी हवस को महत्त्व देते है। वैसे तो ये निम्न वर्ग एवं जाति को तुच्छ बताकर उनकी छूई वस्तुओं का उपयोग नहीं करते हैं मगर उसके शरीर का उपयोग कर लेते हैं इन से प्रेम नहीं कर सकते हैं और विवाह करने के बारे में तो स्वप्न मे भी नहीं सोच सकते हैं लेकिन शरीर का उपभोग करते समय तो निम्न वर्ग की स्त्री सवर्ण हो जाती है मगर शारीरिक उपभोग के बाद वो फिर से तुच्छ हो जाती है।

उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग की स्त्री का बलात्कार कर देते हैं और वो उनका बलात्कार मन भरने तक करते हैं अगर स्त्री इनका विरोध करे तो उसे चेतावनी देकर चुप कर दिया जाता है। जब स्त्री उसे अपना शारीरिक उपभोग करने से मना करती है तो उसकी बदनामी चारो तरफ करके उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। उच्च वर्ग के लोग नहीं चाहते हैं कि जिस स्त्री का शारीरिक उपभोग उसने किया है उसके शरीर पर किसी अन्य पुरुष का अधिकार हो ऐसा होने पर वो क्रोधित हो जाते है और उनका विवाह तक नहीं होने देते हैं।

000

संदर्भ-

01.अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुठाँव, पृ. 80, 02.वही, पृ. 81, 03.वही, पृ. 16, 04.वही, पृ. 19, 05.वही, पृ. 28, 06.वही, पृ. 50, 07.वही, पृ. 55, 08.वही, पृ. 101, 09.वही, पृ. 102, 10.वही, पृ. 102, 11.वही, पृ. 103, 12.वही, पृ. 122, 13.वही, पृ. 149, 14.वही, पृ. 149, 15.वही, पृ. 150, 16.वही, पृ. 174

शोध आलेख

(शोध आलेख)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भाषा संबंधी अशुद्धियाँ : कारण एवं उपाय

शोध लेखक : विनय कुमार सिंह शोधार्थी, शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

शोध निर्देशक : अनोज राज प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

विनय कुमार सिंह
शोधार्थी, शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय,
स्वामी विवेकानन्द सुभारती
विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांश- भाषा मनुष्य के भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। संसार में उत्पन्न प्रत्येक प्राणी, पशु, पक्षी, वृक्ष एवं नदी इत्यादि सभी अपने भावों की अभिव्यक्ति किसी न किसी भाषा के माध्यम से करते है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भाषा को लेकर जो एक विकट समस्या हमारे सामने आ रही है। वह है भाषागत अशुद्धियाँ। यह समस्या किसी एक विद्यालय के विद्यार्थियों में नहीं पाई जाती बल्कि सभी प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में कम या अधिक पाई जाती है। चाहे वह विद्यालय सरकारी, अनुदानित, स्ववित्तपोषित अथवा शहरी क्षेत्र में स्थित हों या ग्रामीण क्षेत्र में स्थित हो। यह बड़ी विडंबना की बात है कि आज हिन्दी माध्यम, संस्कृत माध्यम तथा अंग्रेजी माध्यम में पढ़े अधिकांश विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के बावजूद भी शुद्ध हिन्दी, संस्कृत व अंग्रेजी पढ़ना लिखना तथा बोलना नहीं जानते। यह समस्या केवल तीन भाषाओं तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह समस्या अन्य भाषाओं में भी देखने को मिलती हैं। इस समस्या से न केवल हमारे वर्तमान समय के विद्यार्थी प्रभावित है बल्कि भविष्य में हमारे आने वाली पीढ़ी में भी इसके स्थानान्तरण होनी की पूरी संभावना है। इस लेख का उदेश्य प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों, शिक्षकों, शिक्षिकाओं को भाषागत अशुद्धियों से अवगत कराना है ताकि वे भाषागत अशुद्धियों के कारणों व परिणामों को जानकर उनका उपयुक्त समाधान कर सकें।

शब्द कुंजी-भाषा, अशुद्धियाँ, कारण, उपाय

प्रस्तावना- मनुष्य अपने भावों और विचारों को बोलकर या लिखकर प्रकट करता है। संसार के जड़-चेतन मौन रूप में अपने भावों को प्रकट करते हैं। भाषा शब्द का प्रयोग विचारों अथवा भावों की अभिव्यक्ति हेतु उन सभी साधनों के लिए प्रयुक्त होता है, जो चेतन प्राणियों एवं जड़ पदार्थों में देखे एवं सुने जाते हैं जैसे मानव परस्पर अपने विचार-विनिमय के लिए जिन सार्थक ध्वनि संकेतों को अपनाता है वह सभी भाषा कहलाती है। हमारे संविधान के 17 वें भाग में अनुच्छेद 343 से 351 तक तथा आठवीं अनुसूची भाषा से सम्बन्धित है। भाषा की महत्ता को सभी आयोगों ने स्वीकार किया तथा त्रिभाषा सूत्र को सभी राज्यों द्वारा अपनाने तथा क्रियान्वयन का सुझाव दिया। संभवत: इन्हीं पक्षों को दृष्टिगत रखकर ही बच्चों में भाषा को प्रभावशाली बनाने तथा उनके विकास से सम्बन्धित आवश्यकताओं पर ध्यान देना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), हैलिडे (1994), क्रुस (1986) तथा स्टीफन (1998) ने इस बिन्दु पर बल दिया है कि बच्चों की भाषा को शामिल करके ही उन्हें पढ़ने-लिखने, सीखने के बारे में विचार करने तथा समझ विकसित कर पठन क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है। द्विवेदी (1987) के अनुसार "भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।" तिवारी (1971) ने भाषा को केवल सम्प्रेषण का माध्यम नहीं वरन् चिन्तन-मनन का आधार भी मानते हैं। कृष्ण कुमार के अनुसार भाषा बच्चों को व्यक्तित्व को आकार देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) सरकार और समाज को ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए, जिनसे अध्यापकों का निर्माण व उन्हें सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिले। चोकसे ने अपने शोध पत्र भोपाल शहर के कक्षा 6 वीं के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा संबंधी त्रुटियों का उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में पाया कि हिन्दी और उर्दू मातृभाषा वाले हिन्दी वर्तनी की त्रुटियों में अत्यधिक त्रुटियाँ करते है। चौधरी एवं सिंघल (2020) ने अपने शोध पत्र उच्च प्राथमिक स्तर के विद्याथियों में हिन्दी भाषा संबंधी अशुद्धियों एवं कारकों के अध्ययन में पाया कि प्रादेशिक भाषा का प्रभाव, ध्वनि तंत्र में विकार, असावधानी, लिपि का अधूरा ज्ञान, हिन्दी भाषा के प्रति अरुचि, विद्यार्थियों द्वारा ध्यान न दिया जाना तथा अभ्यास की कमी, शिक्षक द्वारा ध्यान न देना एवं शिक्षक द्वारा स्वयं अशुद्ध उच्चारण पाया जाना। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भाषा संबंधी अशुद्धियाँ अधिक देखने को मिल रही हैं जिसकी पुष्टि पूर्व के कुछ सर्वेक्षण से भी पता चला है। राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण (2014), एन0सी0ई0आर0टी0 के द्वारा यह सर्वेक्षण सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के अन्तर्गत विद्यालयों

के अधिगम स्तर की गुणवत्ता की जाँच एवं सम्पूर्ण सरकारी शिक्षा व्यवस्था की स्थिति का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस सर्वेक्षण से अलग-अलग प्रदेशों के विद्यार्थियों में औसतन बहुत अधिक पाया गया। इससे यह समझ में आता है कि शैक्षिक परिणामों की गुणवत्ता पूरे देश में एक समान नहीं है। एनसीईआरटी (2012-13) के अध्ययन द्वारा कक्षा-3 के विद्यार्थियों को पढ़ने-लिखने व समझ को आँकने के लिए राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण में मौजूदा भाषा विकास समझ के साथ सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने के पुनरीक्षण की आवश्यकता का सुझाव देती है। ऐन्युअल स्टेटस ऑफ एज्युकेशन रिपोर्ट (2016) ने सरकारी विद्यालयों के प्राथमिक कक्षाओं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों का भिन्न-भिन्न स्तरों पर पढ़ने की योग्यता संबंधी सर्वेक्षण को निम्न रूप में प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय स्तर पर कक्षा तीन के ऐसे बच्चों के अनुपात में वृद्धि हुई जो कक्षा 1 के स्तर का पाठ पढ़ सकते हैं। 2014 में यह अनुपात 40.2 प्रतिशत था जो कि 2016 में बढ़कर 42.5: हो गया जबकि वर्ष दर 2011 से 2016 तक कक्षा 5 के बच्चों के पढ़ने की योग्यता लगभग समान रही। परन्तु राष्ट्रीय स्तर पर 2014 से लगातार कक्षा 8 के विद्यार्थियों में पढ़ने की योग्यता में गिरावट पायी गई। इसके अलावा असर (2016) ने प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों में अंग्रेजी भाषा पढ़ने की योग्यता संबंधी आकड़ों को प्रस्तुत किया और देखा कि 2009 में कक्षा 3 के 28.8: बच्चे अंग्रेजी के सामान्य शब्द पढ़ने में समर्थ थे जब कि 2016 में यह संख्या बढ़कर 32: हो गई। लेकिन 2016 में कक्षा 5 के 24.5: बच्चें अंग्रेजी के सामान्य वाक्य पढ़ने में समर्थ थे जो 2009 से लेकर वर्तमान समय में इस संख्या में अधिक बदलाव नहीं पाया गया। इसके अलावा उच्च प्राथमिक कक्षाओं में भी यह स्थिति अत्यन्त शोचनीय रही। जैसे 2009 में कक्षा 8 में नामाकिंत 60.2: बच्चे अंग्रेजी के सामान्य वाक्य पढ़ सकते थे 2014 में यह संख्या 46.7: हो गई तथा 2016 में यह संख्या कम होकर 42.2: हो गई। सिंह (2023) ने अपने अध्ययन में भी माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी भाषा संबंधी त्रुटियों का अध्ययन किया जिसमें सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी 41.68: अनुदानित विद्यार्थी 55.34: व स्ववित्तपोषित 37.98: वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ पायी। भाषा की शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक छात्रों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों से परिचित हों और यथासम्भव उन्हें दूर करने का प्रयास करें। प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं के छात्र द्वारा लिखने व बोलने में की जाने वाली अशुद्ध शब्द निम्न हैं- 'ष' के स्थान पर 'प' लिख देने की अशुद्धि जैसे विषय को विपय लिखना। 'ब' के स्थान पर 'व' लिख देना जैसे बहुत का वहुत लिखना। 'ठ' के स्थान पर 'ट' लिख देना जैसे षष्ठ का षष्ट लिखना। 'श', 'ष' तथा 'स' की अशुद्धि जैसे मनुष्यता का मनुश्यता लिखना। आकर्षक का आकर्शक लिखना, विषय का विपय लिखना। वर्णमाला के उच्चारण में 'अ' को 'आ' या 'अं' बोलते हैं। शब्द के अन्त में लिखते 'इ' हैं और कहते 'ई' हैं जैसे कवि को कवी। 'ड़' और 'ढ़' में भेद नहीं करते जैसे पढ़ना को पड़ना। सड़ना को सरना। 'र' को 'ड़' बोलते है जैसे कमरा को कमड़ा।

अशुद्धियों के प्रकार- मात्राओं की अशुद्धियाँ, संयुक्त अक्षरों की अशुद्धियाँ, रेफ की अशुद्धियाँ, अनुनासिकता की अशुद्धियाँ, चन्द्रबिन्दु एवं अनुस्वार की अशुद्धियाँ, अल्पप्राण एवं महाप्राण की अशुद्धियाँ, स्वर-भक्ति की अशुद्धियाँ, स्वर-लोप की अशुद्धियाँ, वर्ण-लोप की अशुद्धियाँ, स्वरागम की अशुद्धियाँ, विसर्ग संबंधी अशुद्धियाँ, विराम चिन्ह की अशुद्धियाँ, शिरोरेखा की अशुद्धियाँ, 'न' और 'ण' की अशुद्धियाँ, 'क्ष' और 'छ' कि अशुद्धियाँ।

अशुद्धियों के कारण- छात्रों के उच्चारण में अनेक दोष आ जाते हैं और वे अशुद्ध उच्चारण करने लगते हैं। अशुद्ध उच्चारण के प्राय: निम्नलिखित कारण होते हैं। ध्वनि-लोपन-किसी ध्वनि का लोप कर देना। ध्वनि-विकृति-किसी ध्वनि का अल्प उच्चारण या अति-उच्चारण करना। ध्वनि-विपर्यय-किसी ध्वनि को उलट-पलट देना, ध्वनि का सही ज्ञान न होना, उच्चारण के साधारण नियमों का ज्ञान न होना, सुर, अनुतान, बलाघात आदि का अनुचित प्रयोग, हकलाना एवं तुतलाना, दोषयुक्त श्रवण प्रक्रिया (कम सुनना), स्थानीय बोलियों का प्रभाव, शब्दलाघव की प्रवृत्ति, अध्यापक द्वारा निर्देशन की कमी, छात्रों के उच्चारण का अशुद्ध होना, लिखने में शीघ्रता करना, सुलेख का अभ्यास न करना, क्षेत्रीय भाषा का प्रभाव, वर्णो में उच्चारण की कुछ समता होना, मात्राओं का ठीक से ज्ञान न होना, त्रुटियों का उचित संशोधन न होना, रूप-रचना का ज्ञान न होना, लिपि में समुचित ज्ञान का अभाव, पुस्तक में मुद्रण की अशुद्धियाँ।

अशुद्धियों के उपाय - जोशी (2013) ने अपने लेख 'हिन्दी वर्तनी की समस्या' में कहा कि हिन्दी वर्तनी को स्थिरता प्रदान करने के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा मानक वर्तनी को विद्यालयों में प्रारम्भ से ही लागू किया जाय तथा जन सामान्य को भी वर्तनी के इस मानक से अवगत कराया जाय। अंदलीब (2018) ने अपने शोध पत्र में उपाय बताया कि उपचारात्मक हस्तक्षेप कार्यक्रम शिक्षक प्रशिक्षुओं की वर्तनीगत अशुद्धियों को कम करने में प्रभावकारी है। चित्रलेखा एवं कुमार (2017) ने अपने लेख भाषा संबंधी अशुद्धियाँ में उपाय बताया कि श्रुतलेख, क्रियात्मक शोध कराना, मूल्यांकन एवं आकलन प्रतियोगिता, दायित्व, उत्कृष्ट भाषा वाले अध्यापकों की नियुक्ति, भाषागत परीक्षा तथा अर्थबोध के साथ-साथ भाषागत अशुद्धियों पर भी ध्यान देना चाहिए।

यदि अध्यापक व छात्र निम्नलिखित उपाय कर लें तो छात्रों के उच्चारण व लेखन में सुधार कर सकते हैं - उच्चारण सुधार का प्रयास प्रारम्भिक स्तर में ही होना चाहिए। प्रारम्भ में उच्चारण अशुद्ध हो जाने पर बाद की कक्षाओं में सुधारना कठिन हो जाता है। जिन छात्रों का उच्चारण अशुद्ध हो उनका अनुकरण अन्य छात्र न कर पाएँ इसका ध्यान रखा गया। कक्षा में मौखिक कार्य के पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाय। यदि संकोच, डर या

आत्मविश्वास की कमी के कारण उच्चारण अशुद्ध हो रहा है तो अध्यापक को चाहिए कि छात्र के प्रति सहानुभूति एवं धैर्य के साथ व्यवहार करे। छात्रों में शुद्ध उच्चारण करने की आकांक्षा जागृत की जाय। उन्हे परिनिष्ठित उच्चारण करने के लिए प्रेरित किया जाए। अध्यापक अपने उच्चारण भी सुधार लें। उच्चारण-शिक्षा में अनुकरण का विशेष महत्त्व है। उच्चारण प्रतियोगिताओं का आयोजन करके पुरस्कार की व्यवस्था की जाय। इससे छात्र उच्चारण सुधारने का प्रयास करेंगे। यथासम्भव सुलेख का अभ्यास कराना। श्रुतलेख का समय-समय पर अभ्यास। शब्द-लेख सम्बन्धी खेल का आयोजन करना। मुद्रण की अशुद्धियों का यथासम्भव संशोधन कराना। श्यामपट्ट पर लिखते समय बहुत भ्रमपूर्ण शब्दों की सूची तैयार कराना तथा उन शब्दों को श्यामपट्ट पर लिख कर छात्रों को शुद्ध लिखने का अभ्यास कराना।

वर्तनी सुधार प्रयोजनाएँ - समय के बदलने के साथ-साथ शिक्षा का स्तर उतरोत्तर गिरता जा रहा है। इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि बालक ही नहीं अपितु शिक्षक भी वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों को साधारण सी बात मानते हैं। वास्तव में यदि देखा जाय तो आज की यह साधारण सी बात ही आगे चलकर घातक सिद्ध हो सकती है। हिन्दी का स्वरूप सर्वथा विक्षिप्त हो जाएगा। इसलिए अभी से इस संबंध में विशेष ध्यान देने कि आवश्यकता है। जिन पाठशालाओं में अधिकांश छात्र प्राय: वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ करते हैं। उन्हें वर्तनी सुधार सम्बन्धी छोटी-छोटी प्रायोजनाओं को अपनी पाठशालाओं में कार्यान्वित करना चाहिए उदाहरण स्वरूप वर्तनी सुधार सम्बन्धी एक प्रायोजना का संक्षिप्त क्रियान्वयन आगे दिया जा रहा है पहले आप वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों का पता लगाइए। उनके कारणों का पता लगाइए और अन्त में उन्हें दूर करने का प्रयत्न कीजिए। इस कार्य को आप व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही रुपों में कर सकते हैं। बालकों की वर्तनी सम्बन्धी व्यक्तिगत अशुद्धियों को दूर करने का एक प्रयोजन इस प्रकार लायी जा सकती है कि बालकों की एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकालने का आयोजन कीजिए। बालक नि:सन्देह बहुत सी अशुद्धियाँ करेंगे। एक कुशल शिक्षक, जो इस प्रायोजना का प्रभारी हो प्रत्येक पत्रिका में बालकों की वर्तनी सम्बन्धी इन अशुद्धियों को देखे उन्हें व्यक्गित रूप से समझाए कि वह अशुद्धि किस प्रकार दूर की जा सकती है। इस प्रकार प्रति माह ऐसा ही करने पर वर्ष के अन्त तक छात्रों की बहुत सी अशुद्धियों को दूर किया जा सकता है। परन्तु यह ध्यान अवश्य रहे कि प्रभारी अध्यापक प्रायोजना में रुचि लें स्वयं वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ न करता हो तथा अधिक से अधिक छात्रों को लिखने के लिए प्रोत्साहित कर सके।

निष्कर्ष- उपयुक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि एक अध्यापक अपने जीवन काल में हजारों विद्यार्थियों को समान निर्णय में अपना योगदान देने के लिए तैयार करता है। जहाँ शिक्षक एक सभ्य समाज का निर्माता है उसके द्वारा की गई कोई छोटी या बड़ी गलती का प्रभाव समाज पर पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए शिक्षक व शिक्षिकाओं से यह आशा की जाती है कि वे अपने-अपने क्षेत्र में पारंगत ही न हों बल्कि उन्हें भाषा का उचित ज्ञान भी हो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह देखा जा रहा है कि अशुद्धियों को रोकना और उनका संशोधन शिक्षक का एक मुख्य कार्य है और साथ ही बड़ा अरुचिकर और श्रमसाध्य भी। परन्तु यदि अभ्यासों की कठिनाई उतरोत्तर बढ़ाई जाएँ और बालकों की कठिनाइयों का शिक्षक पहले ही से अनुमान कर ले तो न अशुद्धियाँ ही अधिक होगीं और न बालकों में गलत आदत ही पड़ने की आशंका रहेगी। अशुद्धि शुद्ध करने की अपेक्षा अशुद्धि रोकना ही शिक्षा सिद्धांत की दृष्टि से उचित है। फिर भी अशुद्धियाँ होंगी ही। इनको किस प्रकार और किस सीमा तक ठीक किया जाए और क्या सब अशुद्धियों को शिक्षक ही शुद्ध कर दें, इन समस्याओं पर पहले से ही विचार कर लेना चाहिए।

000

संदर्भ- एन.ई.पी. (1986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, एन.ई.पी. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, अंदलीब, (2018), हिन्दी माध्यम के शिक्षक-प्रशिक्षक की वर्तनीगत अशुद्धियों के निराकरण हेतु उपचारात्मक हस्तक्षेप कार्यक्रम के प्रभाव का प्रयोगात्मक अध्ययन, प्राथमिक शिक्षक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, शोध पत्रिका वर्ष 42 अंक 3 जुलाई 2018। जोशी, आर0 (2013), हिन्दी वर्तनी की समस्या, शोध पत्र, इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ कामर्स, आटोन एण्ड साइन्स, वैल्यूम 4, इशु 3, दुबे, एस0 हिन्दी शिक्षण, साहित्य प्रकाशन, आगरा। राज, ए., सिंह, वि. (2023). माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में लेखन-वाचन सम्बन्धी त्रुटियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोध पत्र, भैरवी शोध पत्रिका वर्ष 2023 अंक 27, राज, ए., सिंह, वि. (2023). माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोध पत्र, वाल्यूम जुन 2023 कानपुर फिलाशफर, राज, ए., सिंह, वि. (2023). माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन, शोध पत्र, शोध दिशा बिजनौर 62/1 जून 2023, राज, ए., सिंह, वि. (2023). हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का भौगोलिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोध पत्र, सत्राची पटना शोधांक वाल्यूम 40 सितम्बर 2023, राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण (2014). नई दिल्ली : एनसीईआरटी., राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005). नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी., राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने (2016). आठवीं अखिल भारतीय स्कूल शिक्षा सर्वेक्षणण् ऑल इण्डिया स्कूल एजुकेशन सर्वे, शर्मा, बी0 (2003), हिन्दी शिक्षण, साहित्य प्रकाशन, आगरा। हैलिडे, एम0 (1994). ए लैंग्वेज डेवलपमेंट एपोच टू एजूकेशन कानफ्रेंस पेपर

(शोध आलेख)

औपनिषदीय संस्कृति तथा स्वामी विवेकानंद का विश्वधर्म

शोध लेखक : शोधार्थी- बिन्दु डनसेना (हिन्दी) शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगाँव (छ.ग.)

डॉ. हरनाम सिंह अलरेजा सहायक प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र) शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय राजनांदगाँव (छ.ग.)

शोध संक्षेपिका -तत्व मीमांसा विवेचनाएँ भारतीय दर्शन और समकालीन भारतीय दार्शनिकों में दिखालाई पड़ती है यदि उनके स्रोत की तलाश की जाए तो निसंदेह वह हमें उपनिषदों में प्राप्त होती है। उपनिषद् भारतीय संस्कृति और दर्शन के आधारभूत और प्रामाणिक ग्रंथ है। स्वामी विवेकानंद ने उपनिषदों की संस्कृति का व्यावहारिक रूप अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के जीवन में देखा था। उन्होंने उपनिषदों से चली आ रही इसी सांस्कृतिक परंपरा और रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा पर आधारित विश्व धर्म के सिद्धांत का सृजन किया। विश्वधर्म का सिद्धांत इसलिए सार्वभौमिक तथा प्रासंगिक है क्योंकि यह अलग-अलग धार्मिक विचारों, मतों तथा वादो का समन्वय करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी विवेकानंद के इसी विश्वधर्म के सिद्धांत का विवेचन करते हुए, इसकी वैचारिक अवधारणा के मूल भाव को, उपनिषदों से संबद्ध किया गया है।

प्राचीन काल से प्रवाहित, संचालित भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, भारतीय सामाजिक अवधारणाएँ, भारतीय दर्शन, तथा धर्म, भारतीय व्यक्तिगत जीवन शैली में इस कदर अर्न्तमुक्त है कि इन्हें इस आधुनिक युग में भी परम्परा से विच्छिन्न करना असंभव है। भारतीय दार्शनिक तत्व मीमांसा की प्राय: सभी शाखाएँ सत्य क्या है, की तलाश, आध्यात्मिक साधनों की विवेचनाओं द्वारा करती है और भारतीय समाज में भौतिक या लौकिक जगत से परे एक अलौकिक या पारलौकिक जगत की सत्यता में अटूट विश्वास है। इसे ही स्वामी विवेकानंद ने समझा और यह कहा कि - ''मैंने पाश्चात्य देशों में भ्रमण किया है और मैं भिन्न भिन्न जातियों से मिला जुला हूँ और मुझे यह लगा कि प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक जाति का एक ना एक विशिष्ट आदर्श अवश्य होता है राष्ट्र के समस्त जीवन में संचार करने वाला एक महत्त्वपूर्ण आदर्श, कह सकते है कि वह आदर्श राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ होती है। परन्तु भारत का मेरूदण्ड राजनीति नही है, सैन्यशक्ति भी नहीं है और न याँत्रिक शक्ति ही है, वरन है धर्म केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है और उसी को हमें रखना भी है।'' 1

यह सत्य भी है कि किसी भी देश का बेहतर विकास, सुधार या परिवर्तन उस देश के चिंतन, मूल्यों, रहन-सहन, जलवायु, भूगोल आदि को आधार बनाकर ही संभव हो सकता है। आयातित विचारधाराएँ आकर्षक तो होती है, किन्तु उनका लुभावनी रूप समस्याओं का ठोस समाधान नहीं कर पाता है। फिर भारत तो इतना प्राचीन देश है कि इसके जमीन की कोख से उनके विचारधाराओं, पंथो, संप्रदाओं का निरंतर जन्म होते रहता है। धर्म यहाँ के लोगों में रक्त के साथ बहता है। विवेकानंद कहते है कि -''हिन्दू एक विचित्र व्यक्ति होता है। वह हर काम धार्मिक -ढंग से करता है वह धार्मिक -ढंग से खाता है, धार्मिक -ढंग से सोता है, प्रात:काल धार्मिक -ढंग से जागता है, धार्मिक -ढंग से सत्कर्म करता है और धार्मिक -ढंग से बुराई भी करता है।'' 2

भारतीय जीवन शैली से धर्म को पृथक नहीं किया जा सकता है। इसलिए स्वामी विवेकानंद

शोधार्थी- बिन्दु डनसेना (हिन्दी)
शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय
राजनांदगाँव (छ.ग.)

ने भारत की जिन समस्याओं को, परिव्राजक बनकर, भ्रमण करते हुए देखा, समझा था उन्हीं के निदान को अपने धार्मिक और दार्शनिक चिंतन का आधार बनाया।

स्वामी विवेकानंद के धार्मिक दार्शनिक मत को व्यावहारिक वेदांत कहा जाता है। इस व्यावहारिक वेदांत में उनके विश्वधर्म का प्रत्यय भी समाहित है। हम कह सकते है कि विवेकानंद की दार्शनिक मान्यता औपनिषदीय तत्वमीमांसा की व्यावहारिक व्याख्या है।

उन्होने स्वयं कहा है कि - ''मुझे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार के एक महापुरुष के पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करने का महासौभाग्य मिला था, जिसका सम्पूर्ण जीवन ही उपनिषदों के महा समन्वय का स्वरूप था। उन्हें देखने पर मालूम होता था, मानो उपनिषदों के भाव वास्तव में मानवरूप धारण करके प्रकट हुए हो।''3 हालाँकि उनका यह कथन, अपने गुरू रामकृष्ण के प्रति असीम आदर हेतु प्रयुक्त हुआ है लेकिन उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन से ही शिक्षा प्राप्त कर, अपने विचारगत कर्मशैली की नींव तैयार की थी। उपनिषदों की तत्वमीमांसा की अविरोधवाद समन्वय विशेषता, अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि सभी मतो का सामंजस्य करती है।

इसीलिए, भारतीय दर्शन की प्राय: सभी शाखाएँ उपनिषदों को ही अपना दार्शनिक आधार बनाती है। स्वामी विवेकानंद को, अपने विचारों को स्थापित करने के लिए दो सशक्त आधार थे। सैद्धांतिक औपनिषदीय चिंतन परम्परा तथा व्यावहारिक, उपनिषदों के मर्म को प्रकटीकृत करता अपने गुरू रामकृश्ण परमहंस का जीवन अत: उन्होंने भी एक अविरोधवाद, समन्वयवादी सार्वभौमिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, जो भारतीय संस्कृति की मूल पहचान है।

भारत के दार्शनिक, धार्मिक ढांचे को समझने में अनेक विचारकों को कठनाई होती है। चिंतको को लगता है कि प्राचीन ग्रंथों और विचारकों द्वारा की गई व्याख्याएँ इसलिए अतार्किक है क्योंकि ये परस्पर विरोधी हैं। इनमें सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत को एक साथ स्वीकार किया गया है। स्वामी विवेकानंद की आलोचना का भी यही आधार है कि उनके चिंतन में सगुण और निर्गुण का तालमेल है। वे मूर्तिमान ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म दोनों स्वीकार करते है। लेकिन स्वामी विवेकानंद को यह ज्ञात था और उन्होंने अपने दर्शन या विचारों को किसी एक खांचे में बाँधने की कोशिश नहीं की। वे कहते थे -''द्वैतवादियों और अद्वैतवादियों को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नही है। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम है, अत्यंत अद्भूत है और वे परस्पर विरोधी नहीं है, उनमें अपूर्व सामंजस्य विद्यमान है, एक तत्व मानों दूसरे का सोपान स्वरूप है।'' 4

वास्तव में यह जो भेद या भिन्नता दिखलाई दे रही है विवेकानंद के अनुसार उस परमसत् का भेद नहीं है, यह हमारा दृष्टिभेद है। वे इस दृष्टिभेद और विविधता की व्याख्या हेतु यह दृष्टांत देतें है - ''हम जलपात्र लेकर जलाशय में जल भरने आए। कोई कटोरी लाया, कोई घड़ा लाया, कोई बाल्टी लाया इत्यादि, अब जब हमनें जल भर लिया, तो क्या देखते हैं कि प्रत्येक पात्र के जल ने स्वभावत: अपने अपने पात्र का आकार धारण किया है। परन्तु प्रत्येक पात्र में वही एक जल है जो सबके पास है।''5

इसी प्रकार प्रत्येक मत की सत् को व्याख्यायित करने की एक विशिष्ट दृष्टि है और इसी दृष्टि से, वह सत् को, द्वैत या अद्वैत आदि दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, वस्तुत: सत तो एक ही है। विवेकानंद ने यह समझया था उपनिषदों में सत् या तत्व की बहुविध व्याख्या है। इसी प्रकार भारतीय समाज में देवताओं के बहुविध आस्था जन्य रूप भी है। यदि पारमार्थिक दृष्टिकोण को मूल मानकर व्यावहारिक जगत की विवर्त या मिथ्या व्याख्या की जाए तो जगत की समस्याओं को भी अवास्तविक मानना पड़ेगा। यह दृष्टिकोण भारत देश की कमजोरियों, निर्धनता का हल नही हो सकता है अत: उन्होने धर्म विवेचना में जगत् को, सत्य रखते हुए, इसकी विविधता को स्वीकार करते हुए, इसमें निहित सार्वभौमिक मूल तत्व सत् को अपने दार्शनिक विचारधारा में स्थापित किया।

स्वामी विवेकानंद की दर्शन पद्धति को जानने की कोशिश करे तो सर्वप्रथम वे यह स्पष्टत: स्वीकार करते हैं कि अध्यात्मिक नियम शाश्वत है, ''जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत मनुष्यों के पता लगाने से पूर्व ही अपना काम करता चला आया था और आज यदि मनुष्य जाति उसे भूल भी जाए तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा, ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत का शासन करने वाले नियमों के संबंध में भी है।'' 6 और इन आध्यात्मिक नियमों के पुष्टिकरण हेतु स्वामी विवेकानंद एक पद्धति बतलाते हैं। उनके अनुसार - ''सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्ति के दो मूल सूत्र है एक सूत्र तो यह है कि विशेष को सामन्य से और सामान्य को सर्वव्यापी तत्व की पृष्ठभूमि में जानना। दूसरा सूत्र यह है कि यदि किसी वस्तु की व्याख्या करनी हो तो जहाँ तक हो सकें, उस वस्तु के स्वरूप से उसकी व्याख्या करना।''7

सामान्य सर्वव्यापी तत्व क्या है? तथा मूल स्वरूप तक पहुँचने का मार्ग या साधन क्या है? यदि विवेकानंद साहित्य में निहित स्वामी विवेकानंद के विचारों में इन प्रश्नों की खोज की जाए तो वें इसे इस प्रकार बतलाते है कि प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, दर्शन विचारधारा में मूलत: तीन भाग या तीन चरण होते है जिसे वें आनुष्ठानिक भाग, पौराणिक भाग तथा दार्शनिक भाग कहते है। धर्म के आनुष्ठानिक भाग में उसके अनुयायियों हेतु एक साधना पद्धति होती है जो ज्ञान, भक्ति या कर्मादि पर या किन्हीं भिन्न भिन्न कर्मकाण्डों पर आधारित हो सकती है। भारत में यह आनुष्ठानिक साधन पद्धति की स्वतंत्रता होने के कारण, प्राचीन काल से असंख्य पद्धतियाँ और धार्मिक क्रियाएँ देखी जा सकती है। धर्म के दूसरे पौराणिक भाग में उस धर्म की नींव को मजबूत करने वाले विचारक, साधक और उनकी उस धर्म संबंधी विस्तृत विवेचनाएँ होती है, किसी भी पंथ या धर्म की परम्परा के प्रवर्तक, नायक, उसके पौराणिक भाग के अंतर्गत आ जाते है। जो अपने धार्मिक विचारधारा को एक आस्थावान और तार्किक

रूप प्रदान करते हैं। यदि किसी धर्म के इन दोनो रूपों के अलावा उसके मूल रूप को देखा जाए तो स्वामी विवेकानंद उसे, उस धर्म का दार्शनिक भाग कहते है। यही उस धर्म की मूल शाश्वत मान्यता होती है। यह सभी धर्मो में सर्वोच्च तत्व होती है और यही वह सार्वभौमिक और एक समान अवधारणा है जिससे प्रारम्भिक विविधताओं, वैषम्य से उठकर समन्वय स्थापित किया जा सकता है। इस स्वामी विवेकानंद ने अपने शब्दों में बतलाया है कि - ''हम देखते है प्रत्येक धर्म में तीन भाग है, मैं अवश्य ही प्रसिद्ध और प्रचलित धर्मो की बात कहता हूँ। पहला है दार्शनिक भाव, इसमें उस धर्म का सारा विषय अर्थात् मूल तत्व, उद्देश्य, उसकी प्राप्ति के साधन निहित होते है। दूसरा है पौराणिक भाग यह स्थूल उदाहरणों के द्वारा दार्शनिक भाग को स्पष्ट करता है। इसमें मनुष्यों और अलौकिक पुरुषों के जीवन के उपाख्यान आदि होते हैं। इसमें दार्शनिक तत्व, मनुष्यों या अतिप्राकृतिक पुरुषों के थोड़े बहुत काल्पनिक जीवन के उदाहरण द्वारा समझाए जाते है। तीसरा है आनुष्ठानिक भाग यह धर्म का स्थूल भाग है। इसमें पूजा पद्धति, आचार, अनुष्ठान, विविध शरीरिक अंग विन्यास पुष्प, धूप, धूनी, पृभृति, नाना प्रकार की इन्द्रियग्राहन वस्तुएँ है। इन सबको मिलाकर आनुष्ठानिक धर्म का संगठन होता है।'' 8

इस प्रकार देखा जाए तो हर पंथ, धर्म में प्रारम्भिक वैषम्य सहज है किन्तु अंत में साध्यरूप में, सभी समान हो जाते है। इसी विविधता, वैषम्य और सामान्य एकत्व को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानंद बतलाते है। कि ''इसके पहले में एक बात तुमसे पूछता हूँ पृथ्वी के धर्म क्या परस्पर विरोधी है? मेरा आशय उन ब्रह्मचारों से नहीं है, जिसमें महान विचार आवेष्ठित है मेरा आशय विभिन्न धर्मो में व्यवहृत, मंदिर, भाषा क्रियाकाण्ड, शास्त्र प्रभूति की विविधता से नहीं है, मैं प्रत्येक धर्म के भीतर की आत्मा की बात कहता हूँ।'' 9

विश्व धर्म के प्रत्यय का भाव यही एक सर्वव्यापी सार्वभौमिक दार्शनिक भाग है, न कि वैषम्यमयी अनुष्ठानिक या पौराणिक भाग। विश्व धर्म का अर्थ कतई यह नहीं है, कि सारे विश्व का कोई एक ही धर्म हो वरन् स्वामी विवेकानंद का तो यह मानना है कि संसार में जितने मानव है उतने ही धर्म होने चाहिए। सभी को अपने स्वभावानुकुल अपने धर्म का अविष्कार स्वयं करना चाहिए। वे कहते है कि - ''मैं प्रार्थना करता हूँ उनकी संख्या वृद्धि होते होते संसार में जितने मनुष्य है, उतने ही सम्प्रदाय हो जाए, जिसमें धर्म राज्य में प्रत्येक मनुष्य अपने पथ से अपनी व्यक्तिगत चिंतन प्रणाली के अनुसार चल सके।'' 10

विवेकानंद के अनुसार धर्म का यह सार्वभौमिक मूलस्वरूप तो मानव के अंदर रहता है इसलिए ''धर्म का अर्थ है उस ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति'' 11 यह आंतरिक रूप से अनिवार्यत: प्रकटीकृत होता है, बस इसके प्रकटन का साधन भिन्न भिन्न होता है। कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता अत: उस धर्म से जो सबके अंदर एक ही प्रकार का विद्यमान है कोई भी बच नही सकता है।'' मेरी यह आस्था है कि धार्मिक विचार मनुष्य की रचना मे ही सन्निहित है और यह बात यहाँ तक सत्य है कि मनुष्य धर्म का त्याग तब तक नहीं कर सकता जब तक उसका शरीर है, मन है, मस्तिष्क है, जीवन है।''12

एक ऐसे दार्शनिक विचार को स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें अविरोध है, जिसमें प्रारंभिक रूप में विषमता अवश्य दिखती हो किन्तु अंत में सभी में एकत्व स्वरूप की अनुभूति हो जाती हो।

भगिनी निवेदिता ने एक बार इसी विचार को जब स्वामी विवेकानंद के समक्ष एक दृष्टांत द्वारा प्रस्तुत करते हुए उनसे कहा कि ''मुझे सहसा ऐसा बोध हुआ कि विभिन्न धर्म मानों विभिन्न भाषाएँ मात्र है और हमें हर व्यक्ति से उसी की भाषा में बोलना चाहिए। उनका चेहरा आनंद से खिल उठा और वें कहने लगे हाँ रामकृष्ण परमहंस ही मात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने इसकी शिक्षा दी। वें ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थें जिनमें यह कहने का साहस था कि हमें सभी लोगों से उनकी अपनी भाषा में ही बोलना चाहिए।'' 13

इस प्रकार उपनिषदों के पवित्र सूत्रों से चलता हुआ, रामकृष्ण में प्रकट हुआ भारत का यह सांस्कृतिक वैशिष्ठ, विवेकानंद के विचारों द्वारा पूरे विश्व में स्थापित होता है और वैषम्य को, भिन्नता को, विविधता को जीवन का चिन्ह मानकर स्वीकार करता है तथा साथ ही साथ सभी के अंदर एक सत्य की खोजकर मानव को साथ मिलकर रहने की तार्किक शिक्षा देता है। वें कहते है - ''मैं शमशान जैसी भूमि में नही रहना चाहता, मैं मनुष्यों के संसार में मनुष्य होना चाहता हूँ। विविधता जीवन का चिन्ह है। भिन्नता विचार का प्रथम चिन्ह है। मैं प्रार्थना करता हूँ पंथ बढ़े और अंत में इतने पंथ हो जाए जितने मानव प्राणी है।'' 14

यही स्वामी विवेकानंद का धर्म संबंधी वैश्विक विचार तथा व्यावहारिक वेदांत का स्वरूप है।

000

संदर्भ- 1 विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड पृष्ठ - 35, अद्वैत आश्रम, कोलकाता - 2014, 2 विवेकानंद साहित्य, प्रथम खण्ड पृष्ठ 270, अद्वैत आश्रम कोलकाता- 2014, 3 विवेकानंद साहित्य, पंचम खण्ड पृष्ठ 147, अद्वैत आश्रम कोलकाता- 2014, 4 वही, पृष्ठ - 129, 5 विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड पृष्ठ 147, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2012, 6 विवेकानंद साहित्य, प्रथम खण्ड पृष्ठ - 8, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2014, 7 विवेकानंद साहित्य, अष्टम खण्ड पृष्ठ - 38, अद्वैत आश्रम कोलकाता, 8 विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड पृष्ठ - 141, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2012, 9 वही पृष्ठ - 129, 10 विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड -पृष्ठ - 128, अद्वैत आश्रम कोलकाता 2012, 11 विवेकानंद साहित्य, द्वितीय खण्ड पृष्ठ - 328, अद्वैत आश्रम कोलकाता, 12 वही, पृष्ठ -264, 13 निवेदिता भगिनी, स्वामी विवेकानंद जैसा उन्हे देखा अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानंद पृष्ठ - 102, रामकृष्ण मठ, नागपुर - 2018, 14 रोला रोमां - विवेकानंद की जीवनी, अनुवादक डॉ. रघुराज गुप्त पृष्ठ - 203,, अद्वैत आश्रम, कोलकाता - 2017

(शोध आलेख)

सूफी काव्य में योग साधना का प्रभाव

शोध लेखक : ज्योति कुमारी
हिन्दी विभाग- महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय
शोध निर्देशक : डॉ. शमा खान
सह आचार्य हिन्दी विभाग
राजकिय कन्या महाविद्यालय
अजमेर

ज्योति कुमारी, शोधार्थी
हिन्दी विभाग- महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय
अजमेर, राजस्थान

भारतीय सूफी अपनी प्रेम साधना के अन्तर्गत नाथ -योगी सम्प्रदाय की अनेक यौगिक क्रियाओं का समावेश करते थे। अपनी प्रेम गाथाओं में वे शरीर के भीतर कल्पित किये गए विविध महत्त्वपूर्ण स्थलों के वर्णन रूपकों की सहायता से किया करते थे। तदानुसार उन्होंने प्रत्येक साधक के लिए क्रमश: नीचे से ऊपर की ओर बढ़ने की विभिन्न आध्यात्मिक स्थितियों के मुकामात को भी निर्दिष्ट किया था। उन्होंने इसी दृष्टि से चार ऐसे पदों की कल्पना की थी जिन्हें वे क्रमश: आलमे नासूत (भौतिक जीवन) आलमें मलकूत (चित्रजगत), आलमें जबरूत (आनन्दमय जगह) तथा आलमे लाहूत(सत्य जगह) कहा करते थे। कभी - कभी एक आलमें हाहूत नामक रहस्यपूर्ण जगत का भी नाम लेते थे। अपने अन्तिम ध्येय तक पहुचना उनकी सिद्धावस्था कहलाती थी। जिसे वे 'बका' (परमात्मा में लीन स्थिति) और कभी 'फना' (अपनी पृथक सत्ता की प्रतीति से पूर्णतय: रहित हो जाना) कहते थे।

सूफीयों ने ईरान से आकर हिन्दुओं के अद्वैतवाद का ज्ञान प्राप्त किया और योग साधना की कई बातें सीखीं। सिंध में अबू-अली प्राणायाम की विधि जानते थे। योग साधना (हठ योग कुण्डलिनी) तन्त्र तथा रयायन का प्रभाव सूफीयों ने यहीं से ग्रहण किया। दोनों ही अज्ञात तत्व के अन्वेषक थे। अत: एक दूसरे से प्रभावित होना स्वभाविक था। सूफीयों पर नाथ पंथ की कई बातों का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रत्येक सूफी प्रेमाख्यान में साधक का बाना धारण करते समय नायक सांसारिक मोहमाया से विरक्त हो जाता है। उसका साधक का वेष नाथयोगी का होता है। क्योंकि ये मेखला, श्रृरगी, गुदरी, खप्पर, कर्णमुद्रा, झोला आदि धारण करते हैं।1

सूफी मत के दार्शनिक सिद्धान्तों, साधना पद्धतियों का वर्णन करते हुए कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में भारतीय अहिंसा, सगुण भक्ति, अवतारवाद, जन्मजन्मान्तरवाद , द्वैतवाद आदि दार्शनिक एवं धार्मिक विश्वासों का समन्वय भी किया है। योग के अभ्यास के बिना मानव की न तो ग्रन्थियाँ खुलती है ना वह उस स्तर पर पहुँचता है जहाँ अध्यात्म का मनन और चिंतन सहज हो जाता है। योग समन्वित सूफी साधना का अनुसरण करने वालों को भूख प्यास सहनी पड़ती है। एकान्त में रहकर मौन धारण करना पड़ता है। इस प्रकार उसे चितवृत्तियों के निरोध में सफलता मिलती है। इसके पश्चात् साधक 'आरिफ' (प्रज्ञा सम्पन्न) कहलाने के योग्य हो जाते है। किन्तु मुरीद (शिष्य) को ज्ञान प्राप्त होने से पूर्व अनेक मानसिक भूमियों को भी पार करना पड़ता है। सूफी साधना के अन्तर्गत इन्हें मुकामात कहते हैं। उक्त सोपानों और दशाओं से साधना मार्ग में उतरोत्तर अग्रसर होता हुआ साधक ''नासूत'', 'मलकूत', 'जबरूत', और 'लाहूत' को प्राप्त होता है। जहाँ परम सत्ता में लीन हो जाता है। यही योग साधना का परम लक्ष्य है। वस्तु: चित्तवृत का निरोध करने में सहायता करने वाली समस्त बाह्य एवं आन्तरिक क्रियाएँ सूफी साधना में साधन रूप में ही मान्य हैं। सूफी और संत दोनों मतों में शौच को आवश्यक माना गया है। शौच (शारीरिक और मानसिक पवित्रता) सन्तोष (कर्मफल की इच्छा ना करना) तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राप्ति के सम्मलित रूप को नियम कहते हैं। रत्न सेन नव सोलह-सौ (योगियो) कुँवर के साथ समुद्र पार करने उस समय मल्लाह के मुख से कवि ने समुद्र पार करने की व्याज से नियम को योग दर्शन को साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। 'दस माह एक जाई कोइ करम धरण सत नेम' अर्थात उस समुद्र के पार दस लोगो में से कोई एक ही कर सकता हैं क्योंकि वहाँ तक जाने के लिए या उस पार पहुचने के लिए धर्म, कर्म, सत्य और नियम का पालन करना पड़ता है। यहाँ कवि ने धर्म, सत्य और नियम का परमात्मा के मार्ग के साधन बतलाकर योग दर्शन के नियम की और संकेत किया है। पदमावत के ग्यारहवें खण्ड (प्रेमखण्ड) में हीरामन तोते ने राज रत्न सेन से साधना की सिद्धि (पदमावती से मिलन) के लिए तप की आवश्यकता बताते हुए कहा है- साधन्ह सिद्धन पाया जै सहि साधव तप।2

योग दर्शन में 'आसन' का बड़ा महत्त्व है। सुख पूर्वक बैठना ही आसन कहलाता है। पद्मावत के सत्रहवें अध्याय में राजा रत्न सेन बीस हजार योगियों के साथ मंडप (मन्दिर) में पहुँचा तो मन्दिर में एक अकूट शब्द (प्रेम द्वारा ही बैकुन्ठ को प्राप्त करना) सुनाई पड़ता है।

उसके पश्चात उन्होंने शेर के चमड़े पर बैठ कर अपनी साधना प्रारम्भ करने का वर्णन किया है- बैठ सिंह छाला होई तपा। पद्मावती पद्मावती जपा।3

इस प्रकार यहाँ योग दर्शन के अन्तर्गत आसन का विवेचन हुआ है। योगदर्शन में आसन की सिद्धि के बाद प्राणायाम करने का विधान है। पद्मावत में प्राणायाम का विवेचन हुआ है- ' तू मन नो यू मारिकै स्वाँसा। जौं पै मरहिं अपुहि कस नासा।4

शरीर की शुद्धि केवल प्राणायाम द्वारा ही सम्भव है। निरन्तर प्राणायाम करने से शरीर को सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है। प्राणायाम मंझन की दृष्टि में प्रथम और अन्तिम सोपान है। यह इतना सरल भी नहीं है कि आसानी से सीखा जा सके। व्यक्ति इतना दुर्बल है कि वह यौगिक तपस्या नहीं कर पाता। प्राणायाम से शरीर की शुद्धि और उसके बाद अनहद नाद की अनुभूति और उसके बाद मिलन की स्थिति होती है।

अब सुनु करम बात किछ, आई निरगुण रूप बैसुलौ आई। / तन सों अरघ लोहि गहि साधॉ अगिनि होय के डोल बतासा। जहाँ न लै औ कोऊ एकौ करतुति। 5 हीरामन तोते के मुख से पदमिनी का रूप वर्णन सुन कर राजा उसके ध्यान में बेसुध हो गया।

अपने ध्यान की गंभीरता में, समाधि की अवस्था में उस परम ज्योति के सामीप्य की आनन्दमय अनुभूति हो रही थी। जिसके भंग होने पर वह दुख प्रकट करता है। आवत जग बालक जस रोवा। उठा रोइ हा ज्ञान से खोवा। हौ तो यहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मसनपुर आएउ कहाँ? कोइ उपकार मसन कर कीन्हा। सकति हँकारि जीव हरि नीन्हा।6

यहाँ राजा का पद्मिनी के ध्यान में बेसुध होना कहकर साधक भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर सानिध्य प्राप्त की व्यंजना की गई है। समाधि योग का अन्तिम कदम है और योग यात्रा का अन्तिम पड़ाव। जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र होता है और ध्यान का स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है। समाधि अत्यन्त आनन्द दायक और निर्विकार हो जाने वाली स्थिति है। इस स्थिति में आत्म दर्शन, मंत्र का साक्षात्कार ,ज्ञान का प्रकाश अथवा ध्येय की प्राप्ति का चमत्कारिक कार्य हुआ है। चित्रावली में नायक द्वारा ध्यान मग्न समाधि का वर्णन हुआ है- " कुँवर ध्यान धरी बैठे तहा। परम रूप की आसा जहाँ। परम आस लगी जिमि भयां कुँवर चित अतपात पिमि चित्रावली विरह की, कहौ सुनौ अब बात।7

आध्यात्मिक पक्ष में मानस मन की साधना अन्तिम स्थल है। इस स्थिति के पश्चात ही योगी को परमेश्वर का साक्षात्कार होने लगता है। तभी तो मानसार के समीप पहुँचते ही सभी योगी अस्तु अस्तु कह उठे - " अस्तु अस्तु योगी सब बोले, अन्ध जौ अंहै नयन विधि खोले।8

योग शब्द का तात्पर्य ही आत्मा परमात्मा का मिलन है। मृगावती में भी मोक्ष का वर्णन हुआ है। मृगावती का सरोवर तट पर आकर आत्म समर्पण करना आत्मा परमात्मा के मिलन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है- " कुंवर कहा कस तौर न मानु, तोह जीव हूँ आपन जाँनू।9

सूफी काव्य में हठ योग आया है। जायसी के अलावा कई अन्य सूफी सन्तों ने अपने काव्य में साधनात्मक रहस्यवाद (हठयोग) को अपनाया है। सिंहलगढ़ के वर्णन में कवि ने हठ योग की प्रक्रियाओं से साक्षात्कार करवाया है- नव पंवरी पर दसवं दुआंसं। तेहि पर बाजि रही ध्रिया रू। / नव पंवरी बीकी नवखण्डा। नवहं जो चढै जोइ ब्रह्यण्ड। / कनक सिला गढ़ि सीढ़ी लाई। जग मयाहि गढ़ उपर ताई।10

इनमें शरीर के नव द्वार, ब्रह्यण्ड, सुषम्ना मार्ग आदि का संकेत है। मृगावती में भी नायक और नायिका को सूर्य और चन्द्र का शंकर और पार्वती (शक्ति) के द्वारा प्रयुक्त करके हठ योग का संकेत किया है। इसे शिव शक्ति का मिलन भी कहा जा सकता है - " शंकर सुर मढ़ी तप जाई। पारवती ससि रति कहं आई। 11

इस हठ योग के अन्तर्गत इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी का भी वर्णन हुआ है। पदमावती रत्नसेन के इस कथन पर कि मैं जन्मभर तुमसे अलग नहीं रहूँगा कहती है- आँसे राजकुमार नहिं मानो। खेलु सारि पास तौ जानौ।12

श्लेष से पदमावती के वाक्य में तीन अर्थ है। इसमें एक है - योग में तुम इडा पिंगला को मिला सके तो समझूगीं कि हम कुण्डलिनी या सुषुम्ना से सनिध्य प्राप्त कर चुके हो। सूफी जिसे वस्ल कहते हैं। उसे ही योगी महासुख की स्थिति मानते हैं। सहजयान के अनुसार मस्तिक में सहस्त्रदल कमल है। उसी में महासुख का निवास है। वहाँ सहज सुन्दरी के साथ शुद्ध योगी शास्वत रूप से महासुख प्राप्त करता है। जायसी ने इसे कविलास कहा है- " सात खण्ड ऊपर कविलासु। तहं सो बाजारि रोज सुखवासु।13

सूफी मत में संतों की तरह अद्वैतवाद की अवधारणा प्राप्त होती है। कुतुबन ने प्रेमी और प्रेमिका के मिलन के भाव को व्यक्त करते हुए लिखा है कि नेत्र एक दूसरे से मिलने पर वे इस प्रकार समरस हो जाते है जैसे पानी में बूँद मिल जाती है। दोनों एक दूसरे पर इस प्रकार अनुरक्त होते है कि उनके दो शरीर न होकर मानो एक ही हो गए हैं- "लोचन चारि होत मिली जाहीं। जस पानी मंह बूँद समाही दुई न रहे एकै मै गाता। वह वांह गत वो हा वोहि वह गत।14

सूफी साधना में निर्गुण ब्रह्म पर बल दिया गया है यहाँ निर्गुण ब्रह्म की साधना में प्रेम है। वे नाथ पंथियों की तरह नीरस ब्रह्म की बात नहीं करते है। मंझन निर्गुण निराकार ब्रह्म की साधना करते है और हरि का स्मरण भी। वे हरि (ईश्वर) की व्यापकता स्वीकार करते हुए कहते है। "हरि-हरि कहाँ गएँऊ कहँ रहेऊ। का किछु लिहेऊ का कहेऊँ। कुंवर बात कहिबै लई बीच नीदं मोहि हरि लै गई।15

दूसरी ओर इन्होंने इस रचना के प्रारम्भ में ही ईश्वर स्मरण के पश्चात मोहम्मद शाह का भी स्मरण किया है। उन्होंने हिन्दू देवी देवताओं का जो स्मरण किया है वहाँ योग साधना का प्रयोग उनकी उदार धार्मिक प्रवृत्ति का ही परिचायक है। प्रेम आमोलिक नग संयसारा। जेहि जिसे प्रेम को धनि औतारा। प्रेम हाट चर्हु दिसि है पसरी गौ बनिजौ जे लोइ। / लाहा और फूल गाश्रृक जनि दहकावे

कोई'' ।16

योग की साधना के फलस्वरूप जो व्यक्ति आर्दश व्यवहार, समता का आचरण, निष्काम कर्म और प्राणी जगत से स्नेह रखता है वही योगी है। योगिक व्यक्ति की वह भव्य एवं उदात्त कल्पना साधारण व्यक्ति तो साकार नहीं कर सकता परन्तु योग के नियमित अभ्यास से साधारण व्यक्ति को जीवन में भी कुछ उपयुक्त परिवर्तन आते हैं। आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि के अभ्यास से कोई भी व्यक्ति उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। उसका मन चंचलता, अस्थिरता से पीड़ित नहीं होता। इन्द्रियों पर काबू पाने के लिए वह योग्य बनता है। ''कहेसि कि जोगी बैठु संभारी। सिद्ध कहत सुनु भवन उधारी जोगी नाऊँ लहु पावहु। भरि खप्पर बैसाइ जेंवावहु' ।17

जायसी ने इस देह में ब्रह्माण्ड कि अवस्थिति मानी है और कहा है कि रक्त, मांस तथा पंचभूतों से युक्त यह देह में प्रेम का स्थान सबसे ऊपर है। चौदह भुवन मनुष्य के शरीर में ही है। अत: पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड है। पदमावत कथा में चितौड़गढ शरीर है, रत्नसेन ,सिंहल हृदय, पदमावती बुद्धि, हीरामन तोता गुरू, नागमति प्रपंच, राघव चेतन शैतान और अल्लाउद्दीन माया है। मै यह अस्थ पंडितन्ह बुझा।18

योग साधना में पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में करके काम, क्रोध ,तृष्णा ,मद माधुर्यता को छोड़कर मन को एकाग्र करने को कहा है। उसी प्रकार मृगावती में भी इन पाँचों को वश में करने को स्तुति खण्ड के तीसरे छन्द में कहा गया। शरीर के अंहकार को समाप्त करने से ही मानसिक विकार समाप्त हो सकते है- '' काम कोह तिरना मन (मद) रैनि भए पाछे पछितावा। पावक पवन धुरि औपानी जब लगिह हंहि एक सत्य।19

अर्थात् शारीरिक धर्म से मुक्ति मिल जाने पर काम क्रोध आदि विकारों से मनुष्य को छुटकारा मिल जाता है, शारीरिक धर्म से मुक्ति पाने के लिए अहम को समाप्त करके सिद्ध बनना पड़ता है। इसके लिए गुरु की आवश्यकता होती है। योग में मंत्र सिद्धि का भी विवेचन है। मृगावती में ''गडरिया खण्ड'' और परावत भवन खण्ड में मंत्र शक्ति का उल्लेख है। इसी तरह मंत्र शब्द का अनेक बार प्रयोग इसमें हुआ है। मंत्र का अर्थ यहाँ उपाय, परामर्श आदि है। गडरिया खण्ड में नायक गुफा के अन्दर पड़ने पर विलाप करते हुए कहता है - '' कहि कै तौ यह झुखह लगा।

एकै मंत्रन चित नर जागा। अर्थात वह संताप करने लगा किन्तु एक भी मंत्र उसके चित में नहीं लगा। इसी तरह परावत भवन खण्ड में मंत्र शक्ति से शैया का आना, चार मोर आकर नाचना, फिर उसे पुरुष बनाना आदि का वर्णन है। यथा - ''बहुरी मंत्र बोलन्हि दुई बोला रोज संवरि चलि आइ।20

योग के अनुसार इन्द्रियों की बाह्यवृति को (काम, क्रोध) सब ओर से समेट कर मन में विलीन करने का प्रत्याहार है। इसी तरह शायद प्रत्याहार की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए ही कवि ने पहले स्तुति खण्ड में ही ईश्वर की खोज के लिए काम, क्रोध, तृष्णा, मद और माया को छोड़ने कहा है। '' काम क्रोध तिश्ना मन (मद) माया पंच बिषा पहि कत्त।21

तत्कालीन समय में योग साधना के विभिन्न रूप प्रचलित थे लेकिन उसका अर्थ क्रियात्मक रूप क्रमबद्धता आदि का ज्ञान इन सूफी काव्यों में अधूरा दिखाई देता है। इनमें कहीं किसी भी तरह के योग का क्रमबद्ध क्रियात्मक वर्णन नहीं मिलता है। इसमें योग का प्रभाव तो अवश्य मिलता है क्योकि इनमें अनेक बार योग के विभिन्न प्रकार अर्थात हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, राजयोग आदि से सम्बन्धित बातों का उल्लेख भी मिलता है। ज्यादातर हठयोग से सम्बन्धित परिभाषिक शब्दावली का प्रयोग ही हुआ है। वैसे देखा जाए तो सूफियों में यह योग साधना नाथ पंथियों से पूरी तरह प्रभावित है।

निष्कर्ष- सूफी योग साधना भारतीय संतों के आचार विचार और परिवेश से सम्बन्धित है। सूफी साहित्य में योग के प्रतीक और परिचायात्मक शब्द मिलते है। सूफियों की विचारधारा में नि:सदेह योग प्रवाह का विलक्षण योग था। सूफियों की इस योग साधना से संतों की निर्गुण शाखा अधिक समर्थ है। आत्मा और परमात्मा के मिलन की पहेली सूफियों ने कहानियों के माध्यम से समझाने की कोशिश की है। इनके काव्यों में योग साधना के साथ-साथ नैतिकता के संकेत भी मिलते है। सूफी मत के दार्शनिक सिद्धान्तों, साधना पद्धतियों का वर्णन करते हुए कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में भारतीय अहिंसा, सगुण भक्ति, अवतारवाद का समन्वय करके साम्प्रदायिक सौहार्द्र में भी योगदान दिया है। सूफियों की मूल साधना प्रेम हृदय की वस्तु है और शरीर उसकी पूर्ति का माध्यम है। शरीर और मन की शक्तियों को नियोजित करने के लिए सूफी साधना क्षेत्र में भी उसी प्रकार की क्रियाओं और विधियों का समावेश किया गया है जिस प्रकार की विधियाँ संत साहित्य के योग मार्ग में निहित हैं।

000

संदर्भ- 1.निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव - डॉ. रामविलास शर्मा पृ. 194, 2.जायसी ग्रन्थवली सटीक डॉ. रामविलास शर्मा पृ. 123-8, 3.वही पृ. 167-1, 4.पदमावत वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. 216-3, 5.मंझन मधुमालती सम्पादक माता प्रसाद गुप्त पृ. 40, 6.जायसी ग्रन्थावली सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल पृ. 59, 7.सम्पादक चित्रावली सत्यजीत वर्मा खण्ड 59-7-9, 8.पदमावती का काव्य वैभव, डॉ. मनमोहन गौतम - पृ. 22, 9.मध्य युगीन प्रेमाख्यान- डॉ. श्याम मनोहर पाण्डे पृ. 68, 10.पदमावती का काव्य वैभव डॉ. मनमोहन गौतम - पृ. 14, 11.मृगावती - माता प्रसाद गुप्ता छन्द. 228, 12.पदमावत - वासुदेव शरण अग्रवाल छन्द 312, 13.पदमावत - वासुदेव शरण अग्रवाल छन्द 191-1, 14.मृगावती - माता प्रसाद गुप्ता पृ. 2 छन्द.3-7, 15.मधुमालती (सं.) माता प्रसाद गुप्ता नृ 32, 16.मधुमालती (सं.) माता प्रसाद गुप्ता नृ 35, 17.सं. चित्रावली - सत्यजीत वर्मा छंद 23-6, 18.जायसी - ग्रन्थावली माता प्रसाद गुप्ता पृ 562, 19.मृगावती - माता प्रसाद गुप्ता पृ. 2, 20.मृगावती - माता प्रसाद गुप्ता पृ.153, 21.मृगावती - माता प्रसाद गुप्ता पृ 2 छन्द.3-5

शोध आलेख

(शोध आलेख)

लक्ष्मण मस्तूरिया के छत्तीसगढ़ी गीतों में जनजागरण की अभिव्यक्ति (छत्तीसगढ़ अंचल के संदर्भ में)

शोध लेखक : चैतराम यादव
शोध निर्देशक : डॉ. बी.एन.जागृत (हिन्दी विभाग)शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय राजनांदगाँव

चैतराम यादव
भारत भुषण सचान (चैतराम) महामाया चौक, वार्ड-46, बसंतपुर, स्टेट बैंक एटीएम के पास राजनांदगाँव, जिला-राजनांदगाँव, पिन-491441(छ.ग.)
मोबाइल- 9669411506
ईमेल- chaitramyadavrjn@gmail.com

विषय प्रवेश - लक्ष्मण मस्तूरिया के गीतों में छत्तीसगढ़ के मिट्टी की सोंधी खुशबू,उपजाऊ भूमि पर लहलहाते, हरे-भरे फसल हो या प्रगतिशील विचारों का सृजन आदि स्वरूप समाहित है। यहाँ की धरती सदैव ही उर्वर रही है व छत्तीसगढ़ की माटी ने अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरर्राष्ट्रीय स्तर के तर्कशील और विचारवान महापुरुषों को जन्म दिया है जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के साथ ही राज्य में सामाजिक चेतना जागृत कर जनोद्धार के कार्य में बढ़-चढ़कर भाग लिया। यहाँ की जनता सीधे-सादे और भोले-भाले होने के बाद भी प्रारंभ से ही सही और गलत का तर्क करने में अत्यंत पटु रहे है। जब विदेशी ताकतों के बर्बरतापूर्ण शासन से मुक्ति की बात आई तब भी यहाँ के वीरों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर आजादी की जंग लड़ी। अपने कर्त्तव्य पथ पर चलते हुए छत्तीसगढ़ के स्वाभिमान की रक्षा के लिए सर्वप्रथम वीर नारायण सिंह और उनके परवर्ती कितने ही लोग स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए। ठीक ऐसे ही बात जब महात्मा गाँधी के अहिंसावादी आंदोलन की चली तब भी यहाँ की जनता ने उनके कदम से कदम मिलाकर साथ दिया। सुंदरलाल शर्मा, पंडित रविशंकर शुक्ल, वामनराव लाखे, माधवराव सप्रे, ठाकुर प्यारेलाल सिंह आदि अनेक स्वतंत्रता सेनानियों ने तन मन धन से समर्पित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय होकर राज्य के साथ ही देश की सेवा की।

जिन्होंने अपने स्थानीय लोकभाषा के माध्यम से यहाँ की जनता को संघर्ष, स्वाभिमान तथा भक्ति के साथ स्वावलंबन का पाठ पढ़ाकर संवेदनशील,सक्षम और आत्मनिर्भर बनाने में भरपूर योगदान दिया है।

लक्ष्मण मस्तुरिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व- लक्ष्मण मस्तुरिया का जन्म छत्तीसगढ़ राज्य में बिलासपुर जिला के ग्राम मस्तूरी में 7 जून 1949 को हुआ था। उन्होंने हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर के बाद, साहित्यिक जीवन की शुरुआत पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा स्तंभ लेखन से हुई। उनके द्वारा छत्तीसगढ़ी सांस्कृतिक जागरण मंच चंदैनी-गोंदा के सर्वाधिक गीतों का सृजन किया गया। देवारडेरा और कारी जैसे प्रसिद्ध लोकमंच के गीतों के वे रचयिता हैं। आकाशवाणी व दूरदर्शन के अधिकांश केंद्रों में उनकी रचनाएँ प्रसारित होती रही है। वे दूरदर्शन रायपुर से प्रसारित धारावाहिक लोकसुर के निर्माता थे। म्यूजिक इंडिया पालीडोर द्वारा उनके लगभग 40 गीतों के ग्रामोफोन रिकॉर्ड्स, सैकड़ों कैसेट, सीडी एल्बम प्रसारित की गई है। छत्तीसगढ़ी के अनेक लोकप्रिय फिल्म जैसे-मोर छइया भुइयाँ, 'मोर संग चलव', 'अंगना', भोला छत्तीसगढ़िया', 'पिंजरा के मैना', 'पुन्नी के चंदा', 'माटी मोर महतारी', 'मया के बंधना', 'अंगना', 'बइरी सजन', 'भांवर', 'जहुरिया जागो रे' आदि में गीत लिखा है।

लक्ष्मण मस्तुरिया के प्रकाशित साहित्य- 1. माटी कहे कुम्हार से (छत्तीसगढ़ी निबंध संग्रह) 2. सांवरी (छत्तीसगढ़ी काव्य संग्रह) 3. मोर संग चलव (छत्तीसगढ़ी गीत संग्रह) 4. सिर्फ सत्य के लिए (हिन्दी काव्य संग्रह) 5. छत्तीसगढ़ी गुनान गोठ (छत्तीसगढ़ी निबंध संग्रह) 6. सोनाखान के आगी (अमर शहीद वीर नारायण की वीर गाथा काव्य) 7. हमु बेटा भूईया के (छत्तीसगढ़ी काव्य संग्रह) 8. गवई-गंगा (छत्तीसगढ़ी गीत संकलन) 9. घुनही बसुरिया (छत्तीसगढ़ी गीत संकलन) 10. चंदैनी गोंदा में लक्ष्मण मस्तुरिया के गीत 11. छत्तीसगढ़ के माटी (छत्तीसगढ़ दर्शन)

लक्ष्मण मस्तुरिया की कविताओं में जनजागरण की अभिव्यक्ति- लक्ष्मण मस्तुरिया ने अपने छत्तीसगढ़ी कविता तथा गीतों में जनचेतना एवं जनजागृति को विशेष महत्त्व दिया। उनके द्वारा "चंदैनी गोंदा" सांस्कृतिक मंच के लिए अनेक गीत लिखे गए जिसका गाँव-गाँव में मंचन किया गया। वे अपने गीतों के माध्यम से लोगों को सामाजिक बुराइयों से निवृत्त होकर ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों-अशिक्षा, अंधविश्वास ऊँच-नीच और छुआछूत आदि को तिरोहित कर समाज में एकता और भाईचारा की भावना को प्रबल करने के लिये कृत संकल्प थे। समाज के सभी पक्षों पर उनकी लेखनी समान रूप से चली है। वे देश की रक्षा के लिए सीमा पर डटे जवानों का उत्साह बढ़ाते हुए लिखते है- "चल जवान कदम-कदम चल / तोर संग है जनगण

के बल / रक्षक तै देश अउ सुराज के / बजूर बनके गाज सही ढल / भारत के तंय सपूत, सिव तपसी रूद्र रूप / तोर बल म देश खड़े, हिम्मती मतंग धूत।"1

छत्तीसगढ़ की जनता में निहित आत्मविश्वास और आत्म सम्मान को उन्होंने सदैव गौरवान्वित किया है। छत्तीसगढ़िया के बलिष्ठ शरीर और कोमल हृदय का गान उन्होंने अपने अधिकांश गीतों में इंगित किया है- "मंय छत्तीसगढ़िया अव ग

भारत माँ के रतन बेटा बढ़िया आंव रे / सोन उगाथौं माटी खाथों / मान ल देके हाँसी पाँथौ / खेती खार संग मोर मितानी / घाम मयारू हितवा पाथौं / देश मया के भारत गीता / दाई ददा मोर राम अउ सीता / दया मया मोर परवा छानी / पर के सेवा मोर सिखानी।"2

मस्तुरिया जी ने न सिर्फ छत्तीसगढ़ की महिमा का वर्णन अपने गीतों में किया बल्कि भारत की संस्कृति और यहाँ के विरासत का भी मुक्त कंठ से प्रशंसा कर छत्तीसगढ़ वासियों में देश गौरव की भावना का सृजन किया है- "जहाँ राम हे रहीम हे, ईसा गुरु गोविंद नाम हे / चंदन कस कसमीर / कन्याकुमारी कुमकुम / छम छमा छम गुजर भुंइ / बंगभूमि रुमझुम / जईसे एक बाँसुरी म सात सुर तान हे / सबो धरम एक मरम / साज आनी-बानी / रूप एक आवाज एक/ एक हवा पानी / जेकर देह देश गाँव जइसे प्रान हे।"3

अपनी सबसे प्रसिद्ध रचना "मोर संग चलव रे" के माध्यम से वे समाज के सभी वर्ग के लोगों को एक पंक्ति में खड़ा होकर चलने के लिए प्रेरित करते हुए दीन-हीन लोगों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के प्रति सदैव संघर्शरत रहने के लिये आत्मश्विास का संदेश दिया- "मोर संग चलव रे, मोर संग चलव जी / वो गिरे थके हपटे मन अउ परे डरे मनखे मन / मोर संग चलव रे मोर संग चलव ग / अमरइया कस जुड़ छाव म मोर संग बइठ जुड़ा लव / पानी पीलव मैं सागर आंव / दुख पीरा बिसरा लव / नवा जोत लव नवा गाँव बर, रसता नवा गढ़व रे / मोर संग चलव जी.....।"4

छतीसगढ़ कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की 70 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। मस्तुरिया जी किसान का कर्त्तव्य बताते हुए उन्हें भावी संघर्षों के लिए तैयार रहने की प्रेरणा देते है। स्वयं किसान पुत्र होने के नाते वे जानते हैं कि किसानों का जीवन आसान नहीं है। किंतु पूरे देश के भरण पोषण का दायित्व किसानों पर ही निर्भर है- "मोर राजा दुलरवा बेटा / तंय नंगरिहा बन जाबे। / मनखे के मनखेपन खातिर, / तय समूहे जूझ जाबे / माटी के मरजाद रखे बर, / भभक के बुझ जाबे। / भारत माँ के लाज रखे बर, / पहरिया बन जाबे..... तंय नगरिहा बन जाबे।"5

आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए कबीर और संत धर्मदास की परम्परा के अनुरूप मस्तुरिया जी ने धार्मिक उपदेश को अपने जागरण के गीतों में समाहित किया है- "ना -रूप गुन बिन हे बेकाम / ज्ञान -बुध बिन सेवा बेदाम / त्याग बिन ध -बल हे हराम / धरम बिन तन हे सरहा चाम / बाढ़े मन गुन गौरव सभिमान / होवै गुरु माता-पिता के मान / भइया हो अइसे करो कुछ काम / के जुग-जुग होवै तुंहर नाम।"6

नेताओं के पिछलग्गू बनकर घूमने वाले और कर्त्तव्य विमुख लोगों को लताड़ते हुए कवि समझाते है कि नेता के हाथों किसी की भलाई नही हो सकती। मेहनत से ही भला हो सकता है। नेता अपना स्वार्थ पूर्ण होने के बाद भूल जाएगें फिर पछतावा के अलावा कुछ भी हाथ नही आएगा- "तोर जागे बिना छत्तीसगढ़ राज नई जगै / नेता-मंत्री के जय बोले म तोर भाग नइ जगै / अब लूट ले अधिकार लुटइया के हाथ ले / गुंगवाए रोए गाय म कुछ हाथ नइ लगै।"7

बिना विवेक के काम करने वाले लोगो को समझते हुए कहते हैं कि गुणहीन व्यक्ति को कभी भी महत्त्व प्राप्त नही होता। प्रकृति का नियम है कि जिससे कुछ भी प्राप्त होने की संभावना नजर नही आती उसे दरकिनार कर दिया जाता है- "झरगे जेखर डारा पाना / वो रुखवा तीर अब कोन बइठे / सरहा डोरी कोन बंधाही / कतको जोरे कतको अंइठे / सूक्खा मधुमक्खी के छत्ता ले / मधुरस झारत है।"8

मस्तुरिया जी ने अपने अनेक कविताओं में मेहनत की महिमा का मुक्तकंठ बखान किया है। स्वयं मेहनतकश किसान घर में जन्म लेने से उनको मेहनत के महत्त्व का स्वाभाविक ज्ञान है। वे मानते है कि मेहनत से ही मान सम्मान और स्वाभिमान को बचा सकते है- "मनखे के जिनगी तो, मेहनत के नाम हे / मेहनत के पीछू म मनखे के दाम हे / आसा-बिसवास मन-हिरदे सम्मान भरो / जुरमिल के काम करो रे / जिनगी निरमान करो रे / मेहनत के बल दुनिया म नाम करो।"9

आज के समय मे राजनीतिक पार्टियों की वजह से जो सामाजिक विखंडन की स्थिति उत्पन्न हुई है उसका उल्लेख करते हैं। आज एक ही गाँव मे लोग विभिन्न राजनीतिक पार्टियों में बटें हुए हैं जिससे आपसी मतभेद और विरोध के कारण सामाजिक एकता को क्षति पहुँच रही है- "राजनीति के गदहा / घोड़ा के चाल म चलगे / गाँव-बस्ती-परिवार / पार्टी-पार्टी म बदलगे।"10

कवि लोगों को अपने हक और अधिकार के लिए सजग करते हुए कहते है- "हक पायेबर लड़ना पड़थे / जिए खातिर मरना पड़थे / त्याग तपसिया म खपना परथे / तब पीढ़ी के पीरा हरथे।"11

कवि जनता को शारीरिक और मानसिक सुचिता के साथ ही परिवेश की स्वच्छता के लिए सजग करते है। प्रकृति की शुद्धता से स्वास्थ्य का सीधा संबंध बताते हुए लोगो को जागरूक करने का प्रयास करते हैं- "साफ रहे बने कुआ बावली / तरिया नदिया के पानी / बाग बगीचा खेती खार / नाली घर परवा छानी / साफ हवा पानी है भैया / सब ले बड़े दवाई।"12

शासन-प्रशासन में नौकरशाही के माध्यम से गाँव के गरीब और भोले-भाले जनता की अज्ञानता का फायदा उठाकर नित्य प्रति होने वाली वसूली और रिश्वतखोरी के मामले पर कुठाराघात करते हुए कहते हैं- "ले देके काम चलाना जग बेवहार होगे हे / दफ्तर के शिष्टाचार भ्रष्टाचार हो गे हे / ईमान धरम त्याग सब निस्सार हो गे हे / बड़े मनखे के

पहिचान बंगला कार हो गे हे।"13

समाज मे शिक्षा के अभाव और अंधविश्वास तथा रूढ़िवादिता के कारण सर्वत्र व्याप्त ऊँच-नीच की भावना को मिटाकर एक साथ रहने में ही सबकी भलाई बताते हुए लिखते हैं- "मानुस के एक जात, सब धरम के एक बात / भेदभाव छोड़ सबो, आगू बढ़बो साथ-साथ / जुरमिल के रहिबो सबो संगी हो अंजोर के / अब नवा बिहान करना हे।"14

जीवन में शिक्षा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए लोगों को ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रेरित करते रहे हैं। शिक्षा से बड़ा साथी कोई नहीं है। इसके अभाव में जीवन भर पछताने के अलावा कोई चारा नही बचता- "संगी साथी भले भुला दे अक्षर ज्ञान संग देथे / अल्हा ठल्हा दुख बीपत म जीव पीरा हर लेथे / पढ़े-लिखे के अवसर म जे निरक्षत रहि जाथे / छटपटात जिनगी भर रहिथे मरे बेरा पछताथे।"15

मस्तुरिया जी ने छत्तीसगढ़ की महान विभूतियों के माध्यम से लोगों को जगाने का पुनीत कार्य किया। अपने लघु काव्य संकलन "सोनाखान के आगी" के माध्यम से छत्तीसगढ़ की स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम शहीद वीर नारायण सिंह के संघर्ष और शहादत को मूर्तिमान किया है।

काव्य के प्रारंभ में भारत देश और छत्तीसगढ़ राज्य का महिमामंडन करते हैं- "धरम धाम भारत भुइंया के / मंझ म हे छत्तीसगढ़ राज / जिन्हा के माटी सोनहा धनहा / लोहा कोयला उगले खान।"16

कवि ने समाज में विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त दुराचार तथा अत्याचार के विरुद्ध सामुहिक रूप से प्रतिरोध को बल दिया है। धर्म शास्त्रों में भी अन्याय सहने को पाप की श्रेणी में रखा गया है- "अनियायी के अनियाय सहना / सब ले बड़े होथे अनियाय / काट के पापी ल खुद कट जावे / धरम-करम गीता गुण गाए।"17

"सत्य भले ही परेशान हो सकता है किन्तु पराजित नहीं" की उक्ति को चरितार्थ करते हुए कवि ने शहीद वीर नारायण सिंह के अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत को अन्याय का प्रतिकार बताते हुए जनता को सदैव अत्याचार के विरुद्ध लामबंद होकर विरोध करने के लिये प्रेरित किया है- "अन्यायी कट कचरा होथे / न्यायी खप के सोन समान / धरमी जागे अलख जगावे / पापी के मुँह कसे लगाम।"18

छत्तीसगढ़ की धरती में कितनो ही महापुरुष हुए है जिन्होंने न्याय की स्थापना के लिए अन्याय के विरुद्ध जमकर लोहा लिया है- "असने कतको बीर खपे है / छत्तीसगढ़ के माटी म / कांध ले कांध मिला के रेंगे / देश के सुख-दुख पाती म।"19

जब भी देश के स्वाभिमान पर आँच आती है तो उसकी रक्षा के लिए अपने व्यक्तिगत हित को तिलांजलि देकर राष्ट्र सेवा के लिए समर्पित होने का जज्बा देशवासियों के लिये आवश्यक है- "जय माटी जय जन्म भूमि के / जय हो भारत मैया के / बोलौ जागो जुरिया जावौ / रूप धरो वीरसैया के।"20

देश की जनता को हर परिस्थिति में अन्याय का प्रतिकार करना ही चाहिए। कवि जनता को आव्हान करते हैं कि समाज विरोधी ताकतों के विरुद्ध संगठित होकर संघर्ष करने से ही समाज मे सुधार संभव हो सकता है- "अरे नाग तै काट नहीं त / जी भर के फूफकार तो रे / अरे बाघ तै मार नहीं त / गरज गरज धुत्तकार तो रे।"21

निश्कर्श -लक्ष्मण मस्तुरिया जी ने छत्तीसगढ़ की जनता के समाजिक और आर्थिक विकास के साथ ही उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से सबल बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। उनकी कविताएँ और गीत गाँव-गली और खेत-खलिहानों में आज भी मधुर आवाजों में गूँजते रहते है। खेतों में काम करता किसान "मोर संग चलव रे" गाते हुए जब काम में तल्लीन रहता है तो उसे पता ही नही चलता कि कब सुबह से शाम हो गई। मस्तुरिया जी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के गीतों की रचना तो की ही इसके अतिरिक्त अपने उपदेश परक कविताओं के माध्यम से बहुत ही सहजता से जनमानस को प्रभावित किया। उन्होंने राम और रहीम के भेद को खत्म करके व्यर्थ के कलह से लोगो को बचाकर एकता स्थापित किया और मेहनत की पूजा का पथ प्रदर्शन किया, जिसका परिणाम यह है कि छत्तीसगढ़ आज साम्प्रदायिकता के कलंक से कोसों दूर है।

000

संदर्भ- 1. मस्तुरिया, लक्ष्मण - "मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर , पृष्ठ -16 2. मस्तुरिय, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ -17 3. मस्तुरिय, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ -18 4. मस्तुरिया, लक्ष्मण - "मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ -21 5. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ -22 6. मस्तुरिय, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर पृष्ठ -51 7. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर , पृष्ठ- 62 8. मस्तुरिया, लक्ष्मण - "मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ -63 9. मस्तुरिय, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ- 64 10. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर , पृष्ठ -80 11. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"मोर संग चलव" वैभव प्रकाशन रायपुर, , पृष्ठ -87 12. मस्तुरिया, लक्ष्मण - "सांवरी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर,पृष्ठ -02 13. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सांवरी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर , पृष्ठ -07 14. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सांवरी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर,, पृष्ठ -11 15. मस्तुरिया, लक्ष्मण - "सांवरी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर , पृष्ठ - 70 16. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सोनाखान के आगी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ - 09 17. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सोनाखान के आगी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ- 21 18. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सोनाखान के आगी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ - 23 19. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सोनाखान के आगी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर, पृष्ठ -29 20. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सोनाखान के आगी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर पृष्ठ -31 21. मस्तुरिया, लक्ष्मण -"सोनाखान के आगी" लोकसुर प्रकाशन रायपुर पृष्ठ- 31

शोध आलेख

(शोध आलेख)

गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों में नारी जीवन के विविध आयाम

शोध लेखक : नवीन चंद्र भट्ट एवं प्रो. गुड्डी बिष्ट पंवार

नवीन चंद्र भट्ट एवं प्रो. गुड्डी बिष्ट पंवार, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), श्रीनगर गढ़वाल-246174

सारांश :- हिमालय भारतीय संस्कृति का उद्गम स्थल है। गढ़वाल हिमालय का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व इस प्रकार से देखा जा सकता है कि महाभारत काल में पांडव स्वर्गारोहण, महर्षि वेदव्यासजी जी ने पुराणों की रचना तथा आदिपुरुष मनु के द्वारा सृष्टि सृजन का कार्य इसी गढ़वाल हिमालय से किया गया। हिमालय प्राचीन काल से ही कवि एवं लेखकों के साहित्य का केंद्र बिंदु रहा है। गढ़वाल हिमालय की संस्कृति एवं परम्पराएँ समृद्धि है जो इसे भारत के अन्य राज्यों से एक अलग पहचान देते हैं। गढ़वाल हिमालय की लोक संस्कृति के परिचायक यहाँ के लोकगीत, लोकनाटक, लोकगाथाएँ एवं लोक परंपराएँ है। गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों में भाव पक्ष की प्रधानता हैं जो हृदय की सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकट होते हैं। गढ़वाल हिमालय में लोकगीतों की समृद्ध परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। मानव उत्पत्ति के साथ से ही लोकगीतों का उद्गम माना जाता रहा है। लोकगीत श्रुति एवं मौखिक परम्परा से एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित होते हैं। लोकगीत अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं, जिनके द्वारा समाज मे घटित होने वाली घटना जीवन के सुख-दु:ख, वेदना, समस्या व कठिनाईयों का विस्तार से वर्णन मिलता है। गढ़वाल हिमालय के लोकगीत स्त्रियों के एकांत व अकेलेपन के साथी हैं। इनमे स्त्रियों की खुशियाँ, हर्ष, उल्लास, अवसाद और तकलीफों का वर्णन है। ये करुण लोकगीत उनके हृदय और आत्मा की पुकार है। गढ़वाल हिमालय के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीतों को सहेजना व संरक्षण का कार्य गढ़वाल हिमालय की स्त्रियों द्वारा किया गया है जिसमे ये लोकगीत माँ से बेटी को, सास से बहु को विरासत के रूप मे प्राप्त हुए है जो वनों से लकड़ी- घास लाते, पानी लाते, खेतों में कार्य करते, बच्चों के पालन-पोषण करते समय मौखिक रूप से सुने जा सकते हैं जिनमें प्रेम, सुख दु:ख, आस उम्मीद की एक किरण है।

मूल शब्द :- गढ़वाल, हिमालय, नारी, लोकगीत, मायका, खुद, वेदना, एकांत, संघर्ष।

गढ़वाल हिमालय- प्रकृति के नैसर्गिक गुणों से युक्त उत्तराखण्ड हिमालय की गोद में बसा है। आयरें द्वारा वैदिक मंत्रोचार में यहाँ की प्रकृति, पर्वत, नदियों एवं तीर्थ स्थलों का गुणगान सुनाई देता है। यह स्थान प्राचीन काल से ही ऋषि - मुनियों व योगियों की तपस्थली तथा शिव-पार्वती की निवासस्थली के रूप में जाना जाता है। ''भारतीय संस्कृति का आरम्भ हिमालय से होता है। हिमालय, वह अकाल पुरुष है, जो सृष्टि के प्रारम्भिक काल से भू-मण्डल के मध्य मंे स्थिर खड़ा है। वेद में वर्णित पुरुष सूक्त के अनुसार सृष्टि रचना से पूर्व प्रथम पुरुष हिरण्यगर्भ के रूप में आता है, जो प्रालेय सागर के अथाह जल के मध्य में अकेला होता है। पुरुष सूक्त का वह परम पुरुष, एक पाद से प्रकट होता है। वहीं से विराट ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और विराट से क्षुद्र विराट प्रकट होता है और पीछे से वसुन्धरा (मही), शरीर (देव, मानव, तिर्यक आदि) की उत्पत्ति होती है।''1 केदारखण्ड तथा मानसखण्ड से मिलकर 9 नवंबर 2000 को हिमालयी राज्य के रूप में उत्तराखण्ड राज्य का गठन हुआ।केदारखण्ड को ही वर्तमान गढ़वाल हिमालय के नाम से जाना जाता है। हिमालय प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति का केन्द्र रहा है। ''हिमालय की उपत्यकाओं में भारतीय संस्कृति का उदय हुआ, उस संस्कृति का जो अनेक आघात सहकर भी ज्यों की त्यों अक्षुण्य बनी हुई है। इसका मनमोहन सौंदर्य कलाकारों और चित्रकारों को अनायास ही मोहित कर लेता है।''2 प्राचीन धर्मग्रंथों में गढ़वाल को रुद्रहिमालय, स्वर्गभूमि व तपोभूमि के नाम से जाना जाता है।

गढ़वाल हिमालय की नारी- ''गढ़वाल हिमालय में महिलाओं के कार्यभार एवं सामाजिक स्थिति पर किये गए अध्ययनों में पाया गया है कि पर्वतीय क्षेत्रों में लैंगिक असमानता, भौगौलिक जटिलता के कारण कठिन जीवन यापन, अशिक्षा एवं आर्थिक क्षेत्रों के अभाव तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के अभाव में महिलाएँ जटिल जीवन जीने के लिए विवश हैं। समुचित विकास एवं रोजगार के अभाव के कारण पुरुष सदस्यों के पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन के कारण महिलाओं पर न केवल परिवार की मुख्य जिम्मेदारी आ जाती है वरन् कृषि, पशुपालन,

कृषि से सम्बन्धित अन्य कार्य भी उनको ही करने पड़ते हैं।"3

"गढ़वाल अनेक स्वरों में गाता है ये स्वर जीवन की व्यापक भाव-भूमियों से उपजे स्वर है जिनके लिए कोई विषय वर्जित नही। वहाँ के लोकगीतों को रचने वाली लोक की प्रत्येक सजीव सवाक् इकाई हृदय से कवि है।"4 लोकगीतों में स्त्री मन की करुण वेदना के साथ-साथ आत्मस्वाभिमान की भावना भी है जिसमें वह अपने परिवार, समाज, ग्राम्य जीवन में होने वाली घटनाओं का वर्णन करती है जिसका स्पष्ट प्रभाव लोकगीतों मैं दिखाई देता है। यही कारण है कि लोकगीतों में उस समय के परिवार समाज व ग्राम्य जीवन की वह समस्त जानकारी प्राप्त होती है जो उस दौर में रही होंगी।

"गढ़वाल का सामाजिक जीवन उत्साह जीवंतता, मनोरंजन व कौतुहल से भरपूर है। संगीत वाद्यों व नृत्यों का तो यहाँ के जनजीवन में विशेष स्थान है। घास काटने वाली महिलाओं के खुदेड (करुण गान) शादी विवाहों ,तीज, त्यौहारों की माँगल (मंगल गायन) चैत मास में वादी वादिणियों (नर्तक-नर्तकी) के श्रृंगारगीत की धुने आज भी अपनी विशिष्ट पहचान रखती है।"5

गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों में नारी- "लोकगीत लोक जीवन के बीच से उपजते हैं। वे बनाये नही जाते वरन् सावन के उमड़ते - घुमड़ते बादलों की तरह बरसते है। हमें मालूम नही होता कि उन्हें किसने कब रच डाला, फिर भी वे परब्रह्म की भांति अनादि अनंत और सर्वव्यापी होते है। वे कभी पराये नही लगते क्योंकि उनमें हमारी अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है।"6

गढ़वाल हिमालय का वातावरण पूर्ण आध्यात्मिक है जिसमें विवाह के शुभ अवसर पर सुहागिन स्त्रियों द्वारा अपने ईष्ट व कुल देवता से कल्याण के लिए मंगल कामना करते हुए वे कहती है- "जौ जस दे खोली का गणेश, / जौ जस दे मोरी का नारैण। / जौ जस दे भूमि को भुम्याल, / जौ जस दे पंचनाम देवता। / जौ जस दे पितर देवता।"7

अर्थात घर में प्रवेश करने वाले द्वार के रक्षक गणेश सिद्धि दें, नारायण यश दे, भूम्याल अन्न-धन्न में वृद्धि दे, पंचनाम देवता व पित्र देवता वंश में वृद्धि दे। कन्यादान की महत्ता सर्वविदित है। गढ़वाल हिमालय में अन्न-धन्न, गज व अश्वदान से भी बड़ा दान कन्यादान को माना गया है। "दे देवा बाबा जी कन्या को दान, / दानू मा को दान कन्या को दान। / जिमिदान भूमिदान सब कोई देला, / तुम देल्या बाबाजी कन्या को दान।"8

विवाह में विदाई के क्षण करुणा प्रधान होते है जिसमे पिता के हृदय से लगती हुई बेटी अपने ससुराल के लिए कहती है कि बादलों से घिरे काले घने पर्वतों के बीच से जाते हुए मुझे डर लगता है। उस परदेश अकेले कैसे जाऊँगी जहाँ मुझे कोई नही जानता जिस पर पिता अपनी पुत्री को आश्वासन देते हुए कहते है कि बेटी तेरे आगे मैं बारात भेजूंगा तथा पीछे - पीछे हाथी, घोड़े भेजूंगा। तेरे साथ तेरे भाई आएँगे। तुझे अकेले नही भेजेंगे। "काला डांडा पीछ बाबा जी, काली च कुरेड़ी। / बाबा जी एखुली मीं लगदी डैर ! / कनकैक जौलू बाबा जी बिराणा बिदेस ? / आग दिऊलू बेटी त्वे सकल जनीत, / पीछ दिऊलू बेटी त्वै हाथी घोड़ा ! / त्वै दगड़ा जाला लाडी तेरा दीदा भूला, / त्वै तईं बेटी मीं एकुली ना भेजूं ! "9

गढ़वाल हिमालय की दुर्गम भौगोलिक परिस्थिति व स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव होने पर सन्तान उत्पत्ति एक कठिन कार्य है जिसमें कई माताएँ संतान उत्पत्ति से पहले ही प्रसव पीड़ा के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं। गढ़वाल हिमालय के एक लोकगीत में सकुशल संतान उत्पत्ति पर एक नारी द्वारा भौरे को माध्यम बना कर मायके सकुशल होने का संदेश भेजा जाता है- "जादौं भौरा बाबा जी का पास, / हमारा, कुशल-मंगल सुणें आई, / कल्याण बोल आई। / धियाण' तुमारी बोलण भौंरा, / जाल तोड्यो-रण जोत्यो, / कल्याण बोल आई, / कुशल बोली आई।"10

गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों की सबसे बड़ी सुंदरता यह है कि इसमें प्रकृति के विभिन्न तत्वों पेड-पौधें, फूल, पक्षी व ऋतुओ को माध्यम बनाकर अपने संयोग एवं वियोग पक्ष को उकेरा गया है। "फूल फूलीन अनमन भाँति, / माँजी, बाँज बुराँस की कॉपळी मौळी। / सुमायाँ सेलपाड़ो कुंजो फूलेय / बण की सबी लगूली फूली गैन।"11

अनेक प्रकार के फूल खिल गए हैं। बाँज, बुरांश और काफल के पेड़ो पर कोपलें आ गई है। वनों में सुमैया, सिलपडा और कुंजो के छोटे छोटे पेडों पर रंग बिरंगे पुष्प खिले हैं और बेलों में नई बहार आई है।

गढ़वाल हिमालय अपनी प्राकृतिक नैसर्गिकता के लिए प्रसिद्ध है जिसमे गढ़वाल हिमालय की संघर्षशील नारी अपने जीवन की आस उम्मीद को प्रकृति में खोजती हुई अपने मायके की पूर्व की स्मृतियों को याद करते हुए व्याकुल और निराश हो जाती है। "मैरा मैत का देश न बास, / न बास घुघती। / बोई सुणली आँसु ढोळली, / बाबा सुणलो सासु मानलो / नणद सुणली ताणा' मारली, / न बास घुघती।"12

गढ़वाल हिमालय की नारी अपने मायके की याद में घुगुति (कबूतर प्रजाति) की पक्षी को कहती है कि गा मत तेरी वजह से मुझे अपने मायके की याद आती है मेरी माँ सुनेगी तो रोयेगी, पिता सुनेंगे तो सास को मनाएँगे और ननद सुनेंगी तो ताने मारेगी। गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों में जीवन की कठोरता के मध्य ससुराल में दु:खपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए मायके से संबंधित करुण स्मृतियों को व्यक्त किया गया है। हिमालय की बिषम भौगोलिक परिस्थितियों में भी श्रम, आर्थिक अभाव, पति का दुर्व्यवहार तथा सास और ननद के ताने किसी यातना से कम नही होते। ससुराल के इस निर्मम कठोर वातावरण में मायके की ओर लालायित हो जाना स्वाभाविक है वह मायके के पर्वत, वन, फूल, पक्षी को अपनी भावना से याद करती है। "आई गैन ऋतु बौड़ी, दांई जस फेरो, / फूली गैन बण बीच ग्वीराळ बुराँस, / झपन्याळी डाल्यूँ मा घूघती घूरली, / गैरी-गैरी गदन्यो मा म्योलड़ी बोलली। / ऊँची-ऊँची डाल्यूँ मा कफू बाँसलो।"13

बसंत ऋतु फिर लौट कर आ गई है। वनों में बाँज, क्वेराल के पेड़ों पर फूल खिले हैं,

ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर और घाटियों में चकोर और कोयल अपनी मधुर ध्वनि कर रहे हैं।

गढ़वाल हिमालय की विकट भौगोलिक परिस्थिति होने के कारण यहाँ संसाधन सीमित हैं जिस कारण रोजगार के कारण पुरुषों को परदेश मैं रहना पड़ता है और होली-दीवाली त्यौहारों पर ही गाँव आना होता है। यहाँ के लोकगीतों में स्त्री के मन के उस सन्नाटे का वर्णन किया गया है जिसमें वह अपने पति का इंतजार करते हुए कहती है- "जब आए कातिक मंगसीर मैना, / गौं की दीदी-मुली मैतुड़ा गैना ! / मेरी आँखी लगीं रैन बाट्यों मा, / स्वामी जी गैन कश्मीर घाट्यों मा ! / स्वामीक भेजीन द्वी चार चीठी, / मैं खुद लगीं छ पूष मौ बीटी।"14

गढ़वाल हिमालय की नारी अपने एकांत और अकेलेपन में कहती है कि कार्तिक मास आ गया है गाँव की बड़ी और छोटी बहनें अपने मायके चले गई हैं मैं अपने पति का इंतजार कर रही हूँ। स्वामी जी फौज में कश्मीर घाटी चले गए हैं जिनको मैंने दो-चार चिट्ठियाँ भेजी है मुझे उनकी याद पौष मास से आ रही है अर्थात वह अपने पति को एक वर्ष से याद कर रही है। जो फौज की नौकरी में कश्मीर घाटी में हैं। ससुराल का संघर्षपूर्ण जीवन सास ससुर के ताने व परिवार की जिम्मेदारियों को पूर्ण करते करते अपने सुख व मायके को भूल जाती है। इन लोकगीतों में एक खीझ, शिकायत तथा रोष की भावना है, जिसमें भाग्य तक को कोशा जाता है की पूर्व जन्म के बुरे कर्म होने पर यह जीवन मिला जिसमें संघर्ष है, अभाव है, वह श्रम है। "त्वै मा दया नी ब्वै त कैमा होण ? / मी कू जनो घर ब्वै, तनी वैगे बोण। /मी नी जाणदी कब दिन होन्द, / मी नी जाणदी कब रात औन्द ! / एकी रात जाणू हैकी रात आणू, / सैरी जवानी पुंगड्यों मा बिताणू।"15

गढ़वाल हिमालय की नारी श्रम और अभाव में जीवन यापन करते हुए अपने माँ से शिकायत करती है कि माँ तुझमें मेरे प्रति दया का भाव नही था जो मुझे इस जगह ब्याह जहाँ न दिन का पता चलता है ना रात का मेरी जवानी का सारा जीवन खेतों में काम करते हुए बीत गया है। एक सुबह जा रही हूँ और शाम को घर आ रही हूँ।

गढ़वाल हिमालय के लोक जीवन का आधार यहाँ की नारियाँ है जो यहाँ के दैनिक जीवन में भोर से लेकर साँझ होने तक निरन्तर अपने कार्य को कर्त्तव्यनिष्ठता के साथ निर्वाह करती है। गढ़वाल हिमालय के विषम भौगोलिक परिस्थितियों में भी वह निरंतर अपने कार्य के प्रति उत्तरदायी रहती है।

गढ़वाल हिमालय के लोक गीत नारी जीवन का प्रतिनिधित्व करते है जिसमें गढ़वाल हिमालय की समस्याएँ, संसाधनों की कमी, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन एवं मूलभूत आवश्यकताओं की कमी के पश्चात भी हिमालय की नारी अपने उत्तरदायित्वो का निर्वाह करती है।

निष्कर्ष- गढ़वाल हिमालय की नारी त्याग, सहिष्णुता और कर्त्तव्य परायणता की जीवित प्रतिमूर्ति है। गढ़वाल हिमालय की विषम भौगोलिक परिस्थितियों में शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार के सीमित साधनों के बीच जीवन निर्वाह करना चुनौती पूर्ण कार्य है। पुरुषों का रोजगार के लिए सेना में तथा बाहर शहरों में पलायन के मध्य परिवार की सभी जिम्मेदारियों का निर्वाह महिलाओं द्वारा ही करना पड़ता है। गढ़वाल हिमालय के लोक गीतों का एक बड़ा भाग स्त्रीयों के गीतों का है जो मूलत: श्रम की पीड़ाओं से उपजे हैं। सास - ससुर की देखभाल, बच्चों का लालन-पालन, खेती, मवेशियों के लिए चारा तथा ईधन के लिए जंगल से लकड़ी आदि सभी कार्य महिलाओं को ही करने पड़ते है। गढ़वाल हिमालय के लोक गीत नारी मन व हृदय की भाव भूमि से उपजे हैं, जिसमें अपने मायके की खुद (याद), एकांत, सुख-दुख, अकेलापन व संघर्ष है। गढ़वाल हिमालय की नारी इन संघर्ष में भी स्वयं में सक्षम एवं आत्मनिर्भर है। समाज में नारी हर क्षेत्र और कार्य का प्रतिनिधित्व कर रही है।

000

संदर्भ-

1. रावत, शिवराज सिंह, केदार हिमालय और पंच केदार विनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून प्रकाशन 2006, पृष्ठ 30। 2. प्रेमी, विश्वम्भर सहाय, हिमालय में भारतीय संस्कृति चैतन्य प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन 1965 पृष्ठ 1। 3. भट्ट, गिरीश चंद्र, गढ़वाल हिमालय में 2013 की प्राकृतिक आपदा, विनसर पब्लिशिंग कम्पनी, देहरादून प्रकाशन वर्ष 2019, पृष्ठ 165। 4. चातक, डॉ. गोविन्द, गढ़वाली लोकगीत, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2019, आमुख। 5. पंवार, डॉ. सरिता गढ़वाल के सामाजिक - आर्थिक विकास में स्वैच्छिक संस्थाओ की भूमिका रिसर्च इंडिया प्रेस नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ 17। 6. चातक, डॉ. गोविंद गढ़वाली लोकगीत :- एक सांस्कृतिक अध्ययन तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 44। 7. बाबुलकर, मोहनलाल, गढ़वाली लोक-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, समय साक्ष्य, देहरादून प्रकाशन वर्ष 2022, पृष्ठ 50। 8. बाबुलकर, मोहनलाल, गढ़वाली लोक-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, समय साक्ष्य, देहरादून, संस्करण 2022, पृष्ठ 56। 9. चातक, डॉ. गोविन्द, भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्य हिमालय तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1990 पृष्ठ 143। 10. बाबुलकर, मोहनलाल, गढ़वाली लोक-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, समय साक्ष्य, देहरादून, संस्करण 2022, पृष्ठ 47। 11. चातक, डॉ. गोविन्द, गढ़वाली लोकगीत विविधा तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2001, पृष्ठ 74। 12. बाबुलकर, मोहनलाल, गढ़वाली लोक-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, समय साक्ष्य, देहरादून, संस्करण 2022, पृष्ठ 74। 13. बाबुलकर, मोहनलाल, गढ़वाली लोक-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, समय साक्ष्य, देहरादून, संस्करण 2022, पृष्ठ 72-73। 14. चातक, डॉ. गोविन्द, गढ़वाली लोकगीत विविधा तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2001, पृष्ठ 88। 15. चातक, डॉ. गोविन्द, गढ़वाली लोकगीत विविधा तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2001, पृष्ठ 89।

(शोध आलेख)

'मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी' में गाँधी जी और गीता दर्शन

शोध लेखक : मनीष कुमार
शोधार्थी हिन्दी विभाग
एन.ए.एस. (पीजी) कॉलिज, मेरठ (उप्र)

शोध सार : गाँधी जी का संपूर्ण जीवन प्राणी मात्र की सेवा को समर्पित और संघषरें से पूर्ण रहा है उन्होंने हमेशा दलित दमित और अधिकार हीन लोगों के हित को साधने के लिए एक प्रारंभिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक संघर्ष किया। उनके जीवन में स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे अंधविश्वास छुआछूत जाति संघर्ष अस्पृश्यता आदि को समाप्त करने के लक्ष्य साथ साथ चलते रहे। उनकी संपूर्ण जीवन यात्रा में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, निस्वार्थ सेवा, समभाव और स्वाबलंबन रूपी सहयात्री रहे। श्रीमद्भागवत गीता हिंदू धर्म का ऐसा धर्म ग्रंथ है, जिसके भाव और ज्ञान को शब्दों में वर्णित करने की अपेक्षा जीवन में उतारना श्रेष्ठतम कार्य है। यह सर्वमान्य है कि गीता का पूर्ण कथन उपनिषद् आदि शास्त्रों की शिक्षा पर आधारित है।

बीज शब्द : सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, निस्वार्थ सेवा, समभाव स्वाबलंबन आत्मकथा आसक्ति कर्मयोग स्वाध्याय सत्याग्रह

मूल आलेख : गीता में मानव जीवन की प्रत्येक विधा के लिए पथ प्रदर्शन मिलता है। चारों वर्ण और चारों आश्रमों में रहते हुए मनुष्य के जीवन भर के लिए पथ प्रदर्शन का यह एक अद्वितीय ग्रंथ है।

नष्टो .....तव।। अध्याय 18, श्लोक-73 हे कृष्ण आपकी कृपा से मेरा भ्रम (मोह) नष्ट हो गया है। मेरी स्मृति लौट आई है (सब बातें मेरी समझ में आ गई है) और मैं संशय रहित होकर आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

श्रीमद् भागवत गीता की भाषा भी सरल है, थोड़ा अभ्यास करने से भी मनुष्य उसको सहज ही समझ सकता है इसके आचरण से एक साधारण मनुष्य भी महापुरुष बन सकता है। गीता माता अपने ज्ञान से संपूर्ण मानव जाति की जीवन निर्मात्री बन सकती है।

गाँधी जी के एक साधारण मानव से महात्मा बनने के पीछे गीता का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके बारे में उनकी आत्मकथा से पता चलता है। गीता के बारे में गाँधी जी लिखते हैं- "आखिर के साल..... किया करते थे।"

गीता के संबंध में दूसरा विवरण भी उन की आत्मकथा में ही मिलता है।

"विलायत में रहते हुए ... इस प्रकार मैंने उन भाइयों के साथ गीता पढ़ना शुरू किया।

ध्यायतो .....कामात्क्रोधोभिजायते।। क्रोधाद् .....बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। अध्याय 2 श्लोक 62 और 63

(विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष को उन विषयों में आसक्ति पैदा होती है फिर आसक्ति से कामना पैदा होती है और कामना से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से मूढता पैदा होती है। मूढता से स्मृति लोप होता है और स्मृति लोक से बुद्धि नष्ट हो जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसका खुद का नाश हो जाता है)।

इन श्लोकों ..... सहायता की है।"

गाँधी जी के जीवन में गीता का अनन्य महत्त्व रहा। "गीता पर .... गीता से समझी।"

गीता का प्रभाव उनके सार्वजनिक और निजी दोनों जीवन पर पड़ा उन्होंने अपने बड़े भाई को पत्र लिखा। "आज तक ..... में खर्च होगा।"

गाँधी जी का संपूर्ण जीवन उनके कर्मयोग को प्रदर्शित करता है। मनुष्य इंद्रियों को नियंत्रण में रखकर किया गया कर्म श्रेष्ठ होता है। मन को नियंत्रण में किया बिना इंद्रियों को कर्म से रोकना शास्त्र के अनुसार विद्वान व्यक्ति के लक्षण नहीं हैं।

यस्त्विन्द्रियाणि .....विशिष्यते।। अध्याय 3 श्लोक 7 जो मन से इंद्रियों को नियंत्रण में करके अनासक्त हुआ कर्म इंद्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वही श्रेष्ठ है।

गाँधी जी की मानव सेवा में अटूट आस्था थी, क्योंकि वह मानव सेवा को ही ईश्वर सेवा

मनीष कुमार
शोधार्थी हिन्दी विभाग
एन.ए.एस. (पीजी) कॉलिज, मेरठ
(उप्र)

मानते थे बिना किसी फल की इच्छा किए हुए। पूरे जीवन उन्होंने सहायता योग्य मानव एवं समाजों की सेवा की गीता में इसी को निष्काम कर्म कहा गया है।

गाँधी जी के जीवन में सभी मानवीय गुण जिन्हें हम दिव्य गुण भी कह सकते हैं। पूर्णतया प्रतिबिंबित होते हैं। प्राणी मात्र की सेवा के लिए अपने निजी एवं पारिवारिक सुखों का त्याग परिवारिक वियोग उनके लिए जैसे साधारण बात थी।

''बाल बच्चों ..... परम पुरुषार्थ है।''

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोह: .....चाभयमेव च।। अहिंसा .....पृथग्विधा:।। अध्याय 10 श्लोक नंबर 4 और 5

बुद्धि ज्ञान मोह से पृथक होना क्षमा सत्य इंद्रियों और मन पर नियंत्रण मन की शांति सुख दुख उत्पत्ति और मृत्यु भय तथा अभय अहिंसा समता संतोष तप परिश्रम दान यश और अपयश यह प्राणियों की नाना प्रकार की स्थितियाँ मेरे से ही होती हैं।

गाँधी जी स्वयं भी मानते थे कि उपवास से तन की शुद्धि हो सकती हैपर मन की शुद्धि तो ईश्वरीय कृपा से ही हो सकती है। ''मेला मन .....ईश्वरी प्रसाद से ही छूटता है।''

गाँधी जी के विचार से कर्त्तव्य परायणता जीवन के लिए अनिवार्य सिद्धांतों में से एक है। गाँधी जी ने पूरे जीवन अपने कर्त्तव्यों का पूर्णतया निर्वहन किया उनका जीवन और कर्म क्षेत्र अत्यंत विस्तृत होने के कारण अत्यंत विसंगतियाँ और कष्टपूर्ण स्थितियाँ उनके साथ रही, फिर भी उन्होंने कभी फिर भी उन्होंने कभी भी कर्त्तव्यों को भार नहीं समझा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते .....संगोरत्वकर्मणि।। अध्याय 2 श्लोक 47 कर्म करना तो तेरा अधिकार है। पर इसके फल में कभी नहीं तू अपने कर्मों के फल को अपना हेतु ना बनना और मैं ही अकरम अर्थात कर्म ने करने में प्रीति रख।

गाँधी जी ने जीवन में कभी किसी काम को छोटा नहीं माना दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले हिंदुस्तान वासियों की बस्तियाँ काफी गंदी पाई जाती थी। गाँधी जी को यह बात अस्वीकार्य थी कि देश के संदर्भ में भारतीयों को एक दोषपूर्ण दृष्टिकोण के साथ देखा जाए इसलिए उन्होंने स्वयं इस बुराई को मिटाने का बीड़ा उठाया। ''समाज के एक भी अंग का ..... जब डरबन में फ्लैग के प्रकोप का डर पैदा हुआ।''

गाँधी जी ने बाह्य आडंबरओं का त्याग किया उन्होंने प्रत्येक कर्म के भाव को समझा और उसके अनुसार अपने कायरें को क्रियान्वित किया गीता स्वाध्याय के बाद का उनका संपूर्ण जीवन सभी प्रकार के दिखावा से दूर केवल कर्मयोगी के रूप में ही रहा। ''मैं जनेऊ धारण ..... जनेऊ धारण करने की आपकी बातें मेरे गले नहीं उतरती।''

गाँधी जी सभी प्रकार के भेदभाव से परे होकर प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखते हुए अपनी जीवन यात्रा में आगे बढ़ते रहते हैं। दक्षिण अफ्रीका में हुए बोअर युद्ध में घायल सैनिकों की सेवा करते समय उन्होंने किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के कारण उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था परंतु फिर भी जब युद्ध में घायल गोरे सैनिकों की सेवा करने का अवसर उन्हीं मिला तो उन्होंने बिना किसी भेदभाव के पूर्ण तन्मयता के साथ युद्ध में घायल सैनिकों की सेवा की।

अद्वेष्टा .....क्षमी।। संतुष्ट: .....में प्रिय:।। अध्याय 12 श्लोक 13 और 14 सब भूतों में द्वेष भाव से रहित होकर सबसे मित्रता और दया का भाव रखकर ममता से रहित होकर अहंकार को छोड़कर सुख दुख में समान भाव रखता हुआ क्षमा के भाव से रह

वह निरंतर ध्यान योग का अभ्यास करता हुआ संतुष्ट मन से मन पर नियंत्रण रखता हुआ दृढ़ निश्चय से मेरे अर्थात् परमात्मा के मन और बुद्धि को अर्पण करता हुआ मेरा अर्थात् परमात्मा का जो भक्त है वह मुझे प्रिय है।

गाँधी जी का संपूर्ण जीवन सत्य को ग्रहण करने में और असत्य का त्याग करने में ही व्यतीत हुआ। अपने संपूर्ण जीवन में वह सत्य एवं अहिंसा का शोध करते रहे विभिन्न प्रकरणों के माध्यम से उनकी सत्य की खोज को देखा जा सकता है और वह सत्य को अहिंसा से किस प्रकार जोड़ते हैं। यह भी समझा जा सकता है।

सत्य के शोध.....संसार को हानि पहुँचती है।''

विद्याविनयसंपन्ने .....पण्डिता: समदर्शिन:।। अध्याय 5 श्लोक 18 विद्या तथा विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाँडाल को समभाव से देखने वाला पंडित कहा जाता है।

स्वाध्याय उनकी दैनिक जीवन का अनिवार्य कर्म था। गाँधी जी ने अपने संपूर्ण जीवन में उच्च नैतिक आदशरें का पालन किया और अपने जीवन को इस प्रकार बनाया की आज ही नहीं वरन आने वाले समय तक भी वह प्रेरणा के पात्र रहेंगे।

यद्यदाचरति .....लोकस्तदनुवर्तते।। अध्याय 3 श्लोक 21 श्रेष्ठ पुरुष जैसा जैसा आचरण करते हैं। अन्य साधारण जन भी वैसा ही करते है जो वह अर्थात श्रेष्ठ पुरुष प्रमाण स्वरूप करता है वैसा ही दूसरे करते हैं।

गाँधी जी की धर्म संबंधी अवधारणा अत्यंत व्यापक एवं शोध परक रही उन्होंने विभिन्न धर्म ग्रंथों से संबंधित ग्रंथों का अध्ययन किया और पाया कि कोई भी धर्म संपूर्ण रूप से सही नहीं है। वह जीवन पर्यंत सत्य की खोज में नित नए प्रयोग करते रहे। दक्षिण अफ्रीका में उन्हें उन्होंने ईसाई धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया हिंदू धर्म ग्रंथों का भी अध्ययन किया बाइबल को भी पढ़ा कुरान को भी पढ़ा तथा दूसरी कुछ इस्लामी किताबें भी पढ़े।

''पर जिस तरह में ईसाई धर्म .....यदि वेद ईश्वर प्रणीत है, तो बाइबल और कुरान क्यों नहीं?''

''मैक्समूलर की 'हिंदुस्तान क्या सिखाता है?' .....उत्पन्न नहीं हुआ।''

श्रेयान्स्वधर्मो .....किल्बिषम्।। अध्याय 18 श्लोक 47 अपने वर्ण अर्थात जो गुण कर्म और स्वभाव से निश्चित हुआ है का धर्म सामान्य रूप से पालन किया हुआ भी दूसरे की कुशलता से पालन किए धर्म से श्रेष्ठ होता है, क्योंकि स्वभाव से वर्ण नियत होता है इस कारण अपने स्वभाव से किए गए कर्म से दोष

का भागी नहीं होता।

गाँधी जी का परिवार मात्र उनके रक्त संबंधी ही नहीं थे, बल्कि समस्त जनता को उन्होंने अपना परिवार समझा और उनके दुखों को समाप्त करने के लिए और उनके कल्याण के लिए एक पिता की तरह भूमिका निभाई गाँधी जी में जैसी त्याग की भावना थी। वह अन्यंत्र कहीं देखने को नहीं मिलती।

असक्तिरनभिष्वङ्ग:

.....समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।। अध्याय 13 श्लोक 9 पुत्र स्त्री गृह आदि में मोह ना रखना, ममता का अभाव, प्रिय और अप्रिय में चित्त को समान रखना।

गाँधी जी ने अपने जीवन में आहार संबंधी भी अनेक प्रयोग किए फलाहार से अन्नाहार से और उपवास से मिलने वाले परिणामों का उन्होंने अपनी आत्मकथा में बड़ा अच्छा विवरण प्रस्तुत किया है। गाँधी जी सात्विक आहार के समर्थक थे।

आयु: .....सात्त्विकप्रिया:।। अध्याय 17 श्लोक 8 आयु बुद्धि बल आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ाने वाला तथा स्थिर रखने वाला रसरस युक्त तथा रुचिकर भोजन सात्विक प्रवृत्ति वालों को प्रिय होता है।

गाँधी जी का जीवन एक साधारण जीवन से शुरू होकर एक तपस्वी जीवन तक पहुँच जाता है। गीता में सात्विक तप और तपस्या का जो अर्थ दिया गया है। वह उनकी जीवन में पूर्णरूपेण उतरता दिखाई देता है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं .....उच्यते।। अध्याय 17 श्लोक 14 दिव्यजनों अर्थात विद्वानों अथवा विशेष गुणों से युक्त ब्राह्मणों और ज्ञानी जनों का पूजन पवित्रता सरलता ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर संबंधित तप कहलाते हैं।

अनुद्वेगकरं .....उच्यते।। अध्याय 17 श्लोक 15 क्रोध के बिना प्रिय हित करने वाला सत्य भाषण स्वाध्याय का स्वभाव यह वाणी का तप कहलाता है।

मन: .....मानसमुच्यते।। अध्याय 17 श्लोक 16 मन की प्रसन्नता शांति मोह न अपने पर नियंत्रण और पवित्रता यह मन संबंधी तप कहा जाता है।

गिलबर्ट मुरे का हिबर्ट जर्नल में गाँधी पर कथन- "ऐसा व्यक्ति जिसे इंद्रिय सुख ....उनकी आत्मा एवं आत्मबल को नहीं।"

गाँधी जी में अन्याय का प्रतिरोध करने की उच्च स्तरीय भावना थी और उन्होंने किसी भी रूप में अन्याय को देखा, वह रंगभेद या नस्लवाद या हीनता या राष्ट्रीयता से संबंधित हो, उसका उन्होंने पुरजोर विरोध किया। ऐसे विरोध के दौरान सत्य और अहिंसा उनके सत्याग्रह युद्ध के अस्त्र होते थे। सत्याग्रह की उनकी धारणा में यह भी शामिल था कि प्रतिपक्ष को हृदय परिवर्तन का प्रदर्शन करने का अवसर दिया जाए

उनके अनुसार एक आदर्श सत्याग्रही सत्य और शांति प्रेमी होता है। वह गलत काम करने वालों के खिलाफ संघर्ष करते हुए हँसकर कष्ट सहन करता है। यह संघर्ष उसके सत्य प्रेम का ही अंग होता है। एक सच्चे सत्याग्रही की प्रकृति में घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसके अलावा वह एकदम निडर होता है, चाहे जो परिणाम हों बुराई के सामने नहीं झुकता। गाँधी जी की दृष्टि में अहिंसा कायरों, कमजोरों का अस्त्र नहीं है। केवल निडर और बहादुर व्यक्ति लोग ही इसका उपयोग कर सकते हैं, वे हिंसा को कायरता से अधिक स्वीकार्य समझते हैं। "अहिंसा हमारी .....हथियार उठाते देखना अधिक पसंद करूँगा।"

गाँधी जी ने जनसामान्य के दुखों को अपना दुख समझा गाँधी जी भारत के ऐसे पहले राष्ट्रवादी नेता थे, जिन्होंने अपने जीवन और जीवन पद्धति को साधारण जनता के जीवन से एकाकार कर लिया था।

आत्मौपम्येन .....परमो मत:।। अध्याय 6 श्लोक 32 अपने को सब के सदृश आत्मज्ञान जानकर सब स्थान पर समान दिखता है। वह सबके सुख और सब के दुख में अपने को भी समझता है। वह परम योगी माना गया है।

शायद गाँधी जी एकमात्र ऐसे व्यक्ति रहे होंगे, जिन्होंने गीता में वर्णित समस्त मानवीय गुणों को अपने जीवन में आत्मसात कर लिया था। इन मानवीय गुणों को हम दैवीय गुणों के नाम से भी संबोधित कर सकते हैं। गीता में जिन दिव्य गुणों का वर्णन है। वह गाँधी जी के जीवन में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

अहिंसा .....ह्रीरचापलम्।। अध्याय 16 श्लोक 2 अहिंसा सत्य कहना क्रोध ना करना त्याग शांति सब प्राणी से दया भाव विनम्रता बुरे कर्म का त्याग इंद्रियों में दृढ़ता।

तेज: .....भारत।। अध्याय 16 श्लोक 3 तेज, क्षमा करने के लिए तत्पर, धैर्य और मन वचन कर्म की शुद्धता, किसी का बुरा ना विचारना, अपने में अभिमान ना करना इन भावों को देवी संपदा मानना चाहिए।

गाँधी जी ने जिस प्रकार गीता को अपने जीवन में आत्मसात करके अपने कर्म क्षेत्र में प्रस्तुत किया, उसके आधार पर कहा जा सकता है, क्यों उनका जीवन दर्शन गीता का दर्शन था।

000

संदर्भ- वही, पृष्ठ संख्या 251, गाँधी, मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी, पृ.सं. 18, वही, पृष्ठ संख्या 80-81, वही, पृष्ठ संख्या 265-266, वही ,पृष्ठ संख्या 266, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.सं. 65, गाँधी, मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी, पृ.सं. 255, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.सं. 160, गाँधी, मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी, पृ.सं. 332, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.सं. 50, गाँधी, मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी, पृ.सं. 222, वही, पृष्ठ संख्या 390, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता 1997, पृ.सं. 191, गाँधी, मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी, पृ.सं. 276-277, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, 1997, पृ.सं. 104, वही ,पृष्ठ संख्या 71, गाँधी, मेरे सत्य के साथ प्रयोग की कहानी, पृ.सं. 147, वही ,पृष्ठ संख्या 168, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.सं. 245, वही ,पृष्ठ संख्या 196, वही ,पृष्ठ संख्या 229, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.सं. 230, वही, वही, राजीव अहीर, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं. 313, विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ.सं. 279, गुरूदत्त, श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.सं. 119, वही, वही

शोध आलेख

(शोध आलेख)

स्त्री देह से परे स्त्रीत्व का संधान करती सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ

शोध लेखक : डॉ. योगेन्द्र सिंह
प्रो. नवीन चंद्र लोहनी
हिन्दी विभाग विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारतीय संस्कृति में स्त्री को परिवार व समाज की केंद्रीय धूरी के रूप में माना जाता रहा है। जनन प्रक्रिया से लेकर परिवार के भरण-पोषण तक सभी प्रकार के कर्त्तव्यों का निर्वहन स्त्रियाँ करती हैं, फिर चाहे परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक रहा हो अथवा मातृसत्तात्मक। प्रत्येक देशकाल एवं परिवेश में स्त्रियों ने स्वयं की योग्यता एवं महत्त्व को दर्शाया है। अपने कर्त्तव्यबोध की पूर्ति में स्त्री जाति ने न केवल अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की आहुति पितृसत्तात्मक समाज के दंभ के समक्ष दी है। अपितु अपने स्वाभिमान से भी समझौता किया है। पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में समाज में सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली स्त्रियों को हाशिए पर धकेलकर उन्हें अस्तित्वहीन कर दिया गया। आधुनिक युग में साहित्य एवं कला ने स्त्री देह से परे जाकर स्त्रीत्व की नई परिभाषा एवं मानदंड गढ़े हैं। यकायक साहित्य में स्त्री जीवन के विविध पक्षों एवं उनसे जूझती नारी पात्रों ने अपने स्वयं के स्वतंत्र अस्तित्व को निर्धारित किया है। वह सभी नियम, कायदे और सिद्धांत जिनकी आड़ में सदियों से इन्हें छला जाता रहा है; स्त्रियों ने उन दायरों की सीमाओं को लांघा है। स्त्री स्वातंत्र्य एवं मुक्ति चेतना के इस संघर्ष में एक दो नहीं अपितु सैकड़ों महिला साहित्यकारों ने इस आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है और यह आंदोलन हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है, जिसके केंद्र में स्त्री देह नहीं अपितु स्त्री का संपूर्ण जीवन उत्थान है।

सुधा ओम ढींगरा ऐसी महिला साहित्यकार हैं जिन्होंने देश एवं परदेश दोनों ही परिवेशों में स्त्री जीवन की विषमताओं का अपनी कहानियों में सूक्ष्म अन्वेषण किया है। आपकी रचना-दृष्टि भारतीय स्त्री के साथ-साथ विदेशी समाज एवं स्त्रियों के जीवन द्वंद्व को भी सफलतापूर्वक उजागर करती हैं। इस प्रकार आप केवल भारतीय समाज में ही स्त्री जीवन के उतार-चढ़ावों को ही चित्रित नहीं करती है अपितु भारत से बाहर भी न केवल महसूस करती हैं अपितु इस संघर्ष से जूझती हैं। आपकी कथा-दृष्टि भारतीय महिला के साथ-साथ परदेशी स्त्रियों के जीवन संघर्ष को भी सूक्ष्मता से विश्लेषण करती हैं। वस्तुत: सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ भारतीय एवं विदेशी परिवेश में स्त्री संघर्ष एवं स्वातंत्र्य का बोध कराती है जिनमें एक ओर भारतीय महिला की परंपराओं एवं मूल्यों के द्वंद्व से उपजा अकेलापन एवं अर्थहीनता है तो वहीं दूसरी ओर विदेश में महिलाओं की आधुनिकता एवं स्वतंत्रता के दंभ में सब कुछ समाप्त हो जाने की त्रासदी समाहित है।

सुधा ओम ढींगरा का कहानी संग्रह 'कौन-सी जमीन अपनी' बहुचर्चित रहा है। इस संग्रह में सम्मिलित कहानियों ने अपने कथ्य एवं शिल्प की विशिष्टता से सभी का ध्यानाकर्षित किया है। यद्यपि इस संग्रह की कहानियाँ विविध विषयों पर आधारित है किंतु फिर भी उनमें स्त्री जीवन की बहुआयामी छवियाँ चित्रित हुई हैं। इस संग्रह में सम्मिलित 'क्षितिज से परे', 'उसका आकाश धुँधला है' एवं 'एक परिचय की खोज' कहानियों में लेखिका ने स्त्री जीवन एवं उसकी विषम परिस्थितियों को उजागर किया है। 'क्षितिज से परे' इस संग्रह की विशिष्ट कहानी है। यह मुख्यत: दांपत्य जीवन में स्त्री की उपेक्षित स्थिति को आधार बनाकर लिखी गई कहानी है। भारतीय पुरुष भारत में रहकर तो स्त्री के प्रति दुर्व्यवहार करता ही है। विदेशों में बसने के पश्चात् भी उसकी इस मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आता है। कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने प्रस्तुत कहानी के पात्र सुलभ व उनकी पत्नी सारंगी के दांपत्य जीवन एवं उसमें आए अलगाव के माध्यम से भारतीय पुरुषों की स्त्रियों के प्रति आधिपत्य की मानसिकता का उद्घाटन किया है। लगभग आधी सदी साथ रहकर भी वे दोनों एक-दूसरे से अपरिचित ही रहे। ना तो कभी प्रोफेसर पति सुलभ अपनी पत्नी को उनके हिस्से का मान-सम्मान दे सकें और ना ही उनकी पत्नी सारंगी उनसे अपना अधिकार माँग सकीं। प्रोफेसर सुलभ व सारंगी की शादी के समय वे यहाँ शोध कार्य कर रहे थे। सारंगी जब उनके साथ यहाँ आई तो उसके लिए चुनौती दोहरी थी। पहली बार विदेश प्रवास में सामंजस्य बिठाना और अपनी नई बनी गृहस्थी को सँभालना। उसने वह सब अकेले किया जो दोनों पति-पत्नी मिलकर करते हैं। कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने उन दोनों के

डॉ. योगेन्द्र सिंह
हिन्दी विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
मोबाइल- 9837127252
ईमेल- yogendrasin77@gmail.com

वैवाहिक जीवन में व्याप्त नीरसता को इस रूप में दर्शाया है "रो पड़ी थी, 'बोलिए, मैं ऐसा क्या करूँ कि आप खुश हो जाएँ। बोलिए" मैं रोती-रोती उनसे लिपटती गई। इन्होंने मेरा समर्पण स्वीकार किया। कठपुतली की तरह समर्पित रही हूँ, उन्हें ही खुश करने में लगी रही, वे खुश नहीं हुए।"1 स्त्री-पुरुष संबंध विशेषकर दांपत्य संबंध काम-तृप्ति का साधन मात्र नहीं है अपितु ये एक-दूसरे के आत्मीय मिलन का सौंदर्य विद्यान है। मगर अमेरिका में बसकर भी प्रोफेसर सुलभ भारतीय मानसिकता को नहीं छोड़ सकें और अपनी पत्नी सारंगी को उपेक्षित ही करते रहें। "अलग होने का बहुत बार सोचा था। बच्चे भी साथ देने को तैयार थे, वे मेरे दर्द को समझते थे, बस मर्यादा में बंधी रही। उसी को मेरे पति ने मेरी कमजोरी समझा।"2 लाज-शर्म और मर्यादा स्त्रियों के आभूषण कहें जाते हैं परंतु वास्तविकता में ये इन्हें बाँधे रखने वाली बेड़िया हैं। जिनमें बंधी ये ना तो अपनी बात कह पाती है और ना ही इन बंधनों से निकल पाती है। यहाँ लेखिका सुधा ओम ढींगरा ने स्त्री के चैतन्य रूप को दर्शाया है जो स्त्री सदियों से परंपरा और मर्यादाओं से बंधी थी आज शिक्षा प्राप्त करके अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है; यही भावबोध प्रस्तुत कहानी में प्रतिपादित हुआ है। भारतीय समाज की स्त्रियों के प्रति इसी कुंठित मानसिकता को सुधा जी ने अपनी कहानी 'लड़की थी वह' में बखूबी ढंग से रेखांकित किया हैं "पोटली में एक नवजात शिशु लिपटा हुआ पड़ा है और कुतिया ने अपने स्तनों के सहारे उसे समेटा हुआ है जैसे उसे दूध पिला रही है पापा ने गठरी की तरह लिपटा बच्चा खोला, लड़की थी वह।"3

भारतीय परिवेश पर केंद्रित कहानी 'उसका आकाश धुँधला है' में कहानीकार सुधा ओम ढींगरा, स्त्री जीवन का दयनीय चित्र खींचती है। 'उसका आकाश धुँधला है' कहानी भारतीय स्त्री की व्यथा-कथा कहती है। कॉलेज में सुरभि और सुहानी दोनों दोस्त थी और यह दोस्ती उनकी शादी के बाद भी ऐसे ही रही। सुरभि की शादी अमेरिका में कार्यरत भारतीय अंकूर रामपाल से हो गई तो सुहानी को अपने प्रेमी सुधीर चाना से प्रेम में धोखा मिला, जिससे वह पूरी तरह टूट गई। पुरुषों के लिए स्त्रियाँ केवल उनकी क्षणिक अनुभूतियों की साक्षी होती है, कहानी में सुहानी एवं उसके प्रेमी सुधीर चाना के संबंधों के माध्यम से सुधा जी ने इसी ओर ध्यानाकर्षित किया है। परिवार ने उसका विवाह सुरेन्द्र के साथ कर दिया। सुरेन्द्र ने विवाह वाली रात से ही उसके ऊपर अपने पुरुषत्व को ऐसा दिखाना शुरू किया कि उसका स्त्रीत्व इससे कभी उबर ही नहीं पाया। "यह सौंदर्य प्रतिमा तो हमारे प्रारब्ध में थी। वह गधा कैसे ले जा सकता था ? और उसके बाद वह पति का अधिकार प्राप्त करने लगा था।"4 पति के अधिकार की सीमा लांघना स्त्री के लिए अवांछनीय है। सुहानी इसी अधिकार के बोझ तले दबती चली गई। एक के बाद एक तीन पुत्रियों के जन्म ने उसे और अधिक जवाबदेहियों में दबा दिया। कॉलेज में हॉकी की बेहतरीन खिलाड़ी रही सुहानी अपने जीवन के खेल में इस तरह हारेगी; किसी ने नहीं सोचा था। सुधा ओम ढींगरा ने सुहानी की इसी दीन-हीन अवस्था के वाया भारतीय स्त्री की वेदना को कहानी के इस वक्तव्य में बखूबी रेखांकित किया है "प्यार का भी मानव ने आधुनिकीकरण कर दिया है। अपनी सुविधानुसार इसकी आड़ में हृदय की कुटिलता को छिपा जाता है।"5 इस प्रेमाघात की सबसे बड़ी भुक्तभोगी स्त्रियाँ ही बनती हैं। ये अपने कोमल हृदय में जो छवि बसा लेती है उससे उम्र भर बाहर नहीं निकल पाती। कहानी की पात्र सुहानी की जीवन नियति भी यही थी। इसी संग्रह की एक और कहानी 'परिचय की खोज' में भी कहानीकार ने क्षणिक प्रेम में धोखा खाई स्त्री के आत्मसंघर्ष व वेदना को उजागर किया है। कहानी का पात्र अपने उपन्यास में जो कथानक रचता हैं ठीक वहीं घटनाक्रम उनके जीवन में घटित हो चुका है। लेकिन वह अपने जीवन के इस सत्य को न तो नायिका को छोड़ते समय स्वीकारते हैं और न ही लोकप्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद अपनाते हैं। नतीजतन वह दर-बदर अपनी एक अद्द पहचान के लिए भटकती रहती हैं "आप ही बताएँ मेरा क्या परिचय हो सकता है? क्या परिचय दूँ मैं किसी को। जिस दिन ढूँढ़ लिया बता दूँगी।"6

'विष-बीज' कहानी; एक विक्षिप्त मानसिकता से ग्रसित अमेरिकन युवक की कहानी है। वह युवक अपने बचपन में महिलाओं द्वारा की गई ज़्यादतियों के कारण कुंठाग्रस्त हो जाता है और बड़ा होने पर महिलाओं के साथ-बलात्कार और उनकी हत्या करके अपना प्रतिशोध लेता है। अपनी इसी कुंठित मानसिकता के कारण वह अनेक महिलाओं का जीवन बर्बाद कर देता है। उसकी महिलाओं के प्रति हिंसक मानसिकता को कहानीकार ने इस प्रकार उद्घाटित किया है "ये जख्म जो बचपन में कई औरतों ने मुझे दिए। तब सत्ता उनके हाथ में थी, उन्होंने मेरा शोषण किया। मेरा शोषण होने दिया। अब सत्ता मेरे हाथ में है। इसी वर्ग से नफ़रत है।"7 कहानी के पुरुष पात्र की स्त्रियों के प्रति यहीं नफरत हिंसात्मक होकर; कई स्त्रियों के अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर देती है। उसकी हिंसात्मक प्रवृत्ति और क्रूरता को यहाँ देखा जा सकता है "मैंने अपनी सौतेली माँ और उन औरतों को गोली मारी; जिन्होंने मेरा बचपन तबाह कर दिया। मेरा शारीरिक शोषण किया और करवाया।"8

'बेघर सच' स्त्री जीवन की विड़ंबनाओं को उघाड़ती; इस संग्रह की एक और महत्त्वपूर्ण कहानी है। कहानी की पात्र रंजना के माध्यम से कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने स्त्री के वास्तविक घर की तलाश की है। एक स्त्री का जब जन्म होता है तो उसके पिता का घर ही उसका घर होता है किंतु जैसे ही उसकी शादी होती है, उसके पिता का घर उसका अपना घर नहीं रहता बल्कि उसके पति का घर ही उसका घर हो जाता है "शादी के समय दादी ने कहा था, रंजो अब तुम्हारा अपना घर होगा, जिसमें तुम और तुम्हारा पति रहेंगे। उसने भी सोचा चलो अब अपने घर को वह अपनी इच्छानुसार सजाएगी, सँवारेगी।"9 मगर क्या वास्तविकता में यह घर उसका बन पाया। संजय के साथ दांपत्य जीवन में दस वर्ष

रहने के बाद भी संजय उसे पूरी तरह से समझ ही नहीं पाया। वह उस पर उसके मित्र चित्रकार सदोष से प्रेम-संबंध होने का आरोप लगाकर घर से निकाल बाहर कर देता है "रंजना के अंदर कुछ टूट गया। अपना पर्स उठाया और बिना कुछ कहे इस खाली मकान में आ गई।"10 औरत अपना सारा जीवन जिस घर-परिवार को संवारने में लगा देती है। पुरुष प्रधान समाज एक पल नहीं लगाता उसे घर से बेघर करने में। रंजना के साथ भी यहीं हुआ। कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने इस कहानी के माध्यम से स्त्री जीवन के ऐसे सत्य पर दृष्टिपात किया है जिसे वह समय रहते सोच ही नहीं पाती। मगर कहानी में उठाया गया प्रश्न; बड़ा वाजिब है; आखिरकार स्त्री का वास्तविक घर कोई है भी या नहीं। पुरुष प्रधान समाज ने बड़ी ही सजगता से उसे ऐसे घर का मालिक बनाया है, जो उसका है ही नहीं। इस संदर्भ में डॉ. समीर प्रजापति का यह कथन समीचीन ही है "पुल्लिंगी समाज की तानाशाही के चलते स्त्री के लिए 'घर' का प्रश्न सुलझने के बजाए जस का तस बना हुआ है। घर स्त्री के जीवन और अस्तित्व से जुड़ा होता है। अपने खून-पसीने से सींचे घर को स्त्री न छोड़ना चाहती है और न तोड़ना। लेकिन यही घर की पुरुष सत्ता जब उसके स्वाभिमान और सम्मान के चिथड़े उड़ाये, उसके वजूद को ललकारे तो उस घर को छोड़ने या तोड़ने को वह विवश हो जाती है। इसी यथार्थ का निरूपण हुआ है 'बेघर सच' की कथा नायिका रंजना के जरिए। रंजना जैसी अनेक स्त्रियाँ है जो आजीवन इस उत्तर को ढूँढ़ नहीं पाती कि आखिर उनका घर कौन-सा है।"11 स्त्री की यही तलाश; उसके आत्मनिर्भर होने पर ही पूर्ण होगी। जिस तरह कहानी में 'बेघर सच' की पात्र रंजना की पूर्ण हुई है।

'और आँसू टपकते रहे' इस कहानी संग्रह की एक संवेदनशील और मार्मिक कहानी है। यह कहानी पूर्णत: भारतीय परिवेश पर आधारित है। इस कहानी में कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने भारतीय समाज में प्रचलित 'मिथक' 'पुरुषों द्वारा स्त्रियों का शोषण होता है' को तोड़ा है क्योंकि यहाँ कहानी की पात्र युवा लड़की को वेश्यावृत्ति और अंत मृत्यु की ओर धकेलने वाली उसकी सौतली माँ तथा अन्य स्त्रियाँ ही थी। वह आत्म-स्वाभिमानी लड़की यह स्वीकार न कर सकी "कोमल ने तेजी से खिड़की के नीचे देखा, वह किसी का हाथ लगने से पहले तीन मंजिल से नीचे कूद गई थी। सड़क पर भीड़ लगी है; क्योंकि ऊपर से ट्रक गुजर गया था। कोमल के आँसू टपकने लगे दूसरे दिन अखबारों में आया कि मिनर्वा होटल के पास एक लड़की ट्रक दुर्घटना में मारी गई। कोमल के आँसू टपक-टपक कर अखबार की इस सुर्खी को भिगोते रहे।"12 स्त्री जीवन के मार्मिक दुखद अंत को दर्शाती यह कहानी; स्त्री जीवन के ऐसे स्याह पक्षों को उजागर करती है, जिसमें एक स्त्री ही दूसरी स्त्री की हंता बनी हुई है।

प्रवासी स्त्री की इसी वेदना को प्रसीता पी इस प्रकार उजागर करती हैं "सुधा जी ने अपनी कहानियों द्वारा भारतीय स्त्री का प्रवासी द्वंद्व दिखाया है। भारतीय नारी द्वारा विदेश अनुभव की जानेवाली विवशता, छटपटाहट, विचारों में उत्पन्न द्वंद्व आदि को भी उकेरा है।"13 स्पष्ट है सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में चित्रित स्त्री परंपरागत भारतीय स्त्री की छवि को तोड़कर अपनी स्वतंत्र व आत्मनिर्भर छवि को गढ़ने का प्रयास करती है। इसमें वह बहुत हद तक सफल भी होती है, किंतु फिर भी उसे पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था से टकराना ही पड़ता है। फिर वह चाहे 'बेघर सच' कहानी की पात्र रंजना हो या फिर 'अँधेरा-उजाला' कहानी की स्त्री पात्र डॉ. इला हो। सभी को अपने हिस्से का आकाश स्वयं ही बनाना पड़ा है। अस्तु सुधा ओम ढींगरा की कहानियों का अवलोकन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि आपके स्त्री पात्र भारतीय स्त्री की देहवादी परिधियों का बार-बार उल्लंघन करते हैं, वे स्त्री जीवन की पहचान स्त्री सौंदर्य के उपादानों में नहीं अपितु स्त्री अस्तित्व की निजी पहचान को गढ़ने में मानते हैं। कहानीकार सुधा ओम ढींगरा की स्त्री विषयक यह धारणा उनके स्त्री पात्रों में भी नज़र आती हैं। इसलिए ये पात्र परिस्थितियों के सामने समर्पण करने के बजाए उनसे जूझते नज़र आते हैं। वस्तुत: सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री का लोकवृत स्त्री देह के इतर बना है, जिसमें उसका स्त्री होना जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक आवश्यक उसकी समानता और स्वतंत्र अस्तित्व का होना है। सुधा ओम ढींगरा के स्त्री पात्र इसी स्वतंत्र चेतना दृष्टि से संपन्न है और समाज में पूर्व प्रचलित स्त्री धारणा के इतर एक चैतन्य लोक का निर्माण करने के लिए संघर्षरत् हैं।

000

संदर्भ-

1ढींगरा, सुधा ओम, क्षितिज से परे, कौन-सी जमीन अपनी, भावना प्रकाशन, दिल्ली-91, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 86, 2वही, पृ. 92, 3वही, पृ. 94, 4ढींगरा, सुधा ओम, लड़की थी वह, कौन-सी जमीन अपनी, भावना प्रकाशन, दिल्ली-91, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 53, 5ढींगरा, सुधा ओम, उसका आकाश धुँधला है, कौन-सी जमीन अपनी, भावना प्रकाशन, दिल्ली-91, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 119, 6वही, पृ. 112, 7ढींगरा, सुधा ओम, परिचय की खोज, कौन-सी जमीन अपनी, भावना प्रकाशन, दिल्ली-91, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 126, 8ढींगरा, सुधा ओम, विष-बीज, सच कुछ और था, शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001, प्रथम संस्करण 2017, पृ. 78, 9वही, पृ. 79-80, 10ढींगरा, सुधा ओम, बेघर सच, सच कुछ और था, शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001, प्रथम संस्करण 2017, पृ. 110, 11वही, पृ. 115, 12प्रजापति, डॉ॰ समीर, अनुभूत यथार्थ का इन्द्रधनुषी संसार: सच कुछ और था, अनुसंधान (त्रैमासिक शोध पत्रिका), जनवरी-जून 2020, पृ. 130, 13ढींगरा, सुधा ओम, और आँसू टपकते रहे, शिवना प्रकाशन, सीहोर-466001, प्रथम संस्करण 2017, पृ. 104, 14पी॰, प्रसीता, प्रवासी भारतीय की समस्याएँ एवं संवेदनाएँ (सुधा ओम ढींगरा के विशेष संदर्भ में), शिवना प्रकाशन, सिहोर-466001, प्रथम संस्करण 2018, पृ. 100-101

(शोध आलेख)

पंकज सुबीर की कहानियों में सांप्रदायिकता

शोध लेखक : वर्षा गजानन पाटील, शोध छात्र, शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर, महाराष्ट्र

सांप्रदायिकता के विषैले रूप को चित्रित करते हुए मानवता की रक्षा करने का प्रयास हिन्दी साहित्य में सदियों से हो रहा है। भारत में सदियों से सांप्रदायिकता की समस्या बनी रही है। वर्तमान में उसने अत्यंत खतरनाक रूप धारण किया है। इस को दूर करने के लिए विचारक, साहित्यकार, असांप्रदायिक दार्शनिक, समाज सुधारक आदि अपनी अपनी सीमाओं में प्रयत्नशील हैं। फिर भी समस्या गंभीर ही बनती रही है। सांप्रदायिकता को दूर करने में साहित्यिक रचना विशेषकर कहानियाँ उल्लेखनीय भूमिका निभाती आ रही है। सामाजिक समस्याओं को दूर कर समाज को बदलने की शक्ति साहित्य में निहित है। सांप्रदायिकता के विकराल रूप को दर्शाकर सद्भाव की स्थापना करने का आह्वान करनेवाली अनेक कहानियों की रचना हिन्दी साहित्य में हुई है। पंकज सुबीर की कहानी इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं।

पंकज सुबीर ने अपने समूचे लेखन में अपने समय की तमाम स्थितियों, समस्याओं, संबंधों, संघर्षों और चिन्ताओं कों अभिव्यक्ति किया है। उनके समय की राजनीति, समाज, धर्म, संप्रदाय आदि सभी अनुभव समाकर उनके साहित्य में उत्तरे हैं। इसलिए उनका साहित्य उनका पूरा समय है, पूरा समाज है। हिंदू - मुस्लिम एक साथ थे। फिर भी रह रहकर लगता था कि वे दोनों दो तरफ के मनुष्य है और यह सोच टकराहट पैदा करती थी। पंकज सुबीर जैसे लेखक और इन्सान के लिए यह अलगाव और टकराहट सह्य नहीं है। वे हर स्तर पर हिन्दु मुसलमान में सद्भावना पैदा करना चाहते है। वे जानते है कि दोनों एक ही ईश्वर की संतानें हैं। मानवीय स्तर पर उनमें कोई भी भेद-भाव उचित नहीं है। यह भेद-भाव मनुष्यता को झुलसाता है, आपसी भाई चारे क्षत-विक्षत करता है, सामाजिक माहौल को बेचैन करता है और उस एकता की शक्ति को कमज़ोर करता है। इसलिए पंकज सुबीर सांप्रदायिक एकता को बनाए रखना महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अपने साहित्य के माध्यम से अपनी मान्यता को अभिव्यक्त करते है कि व्यक्ति, समाज और देश के हित के लिए उन्हें एक रहना होगा। हमारे देश और समाज विभिन्न जातियों और धर्मों के लोगों से बना है। उनके बीच सद्भाव एकता और अभेद रहेगा तभी समाज और राष्ट्र सशक्त होगा, स्वस्थ और प्रसन्न रहेगा। मनुष्य जीवन शांतिपूर्ण संपन्न होगा।

पंकज सुबीर ने सांप्रदायिकता की समस्या पर उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने कहानियों के माध्यम से सांप्रदायिकता के कारण, उसे उत्पन्न मुसीबतें और दोनों में एकता स्थापित करने के लिए होने वाले प्रयासों को अपने कहानियों के माध्यम से जनता के सामने खुलकर प्रस्तुत किया है। साथ ही उन्हें मिटाने का प्रयास भी किया है। भारतीय कथा साहित्य में प्रेमचंद से लेकर पंकज सुबीर तक अनेक साहित्यकारों ने सांप्रदायिक सद्भावना के महत्त्व के संदर्भ में जातीय सद्भाव के महत्त्व को समझा और भारी जोखिम उठाकर उसके विकास का रास्ता तैयार किया। वे हर स्तर पर हिन्दु-मुसलमान में सद्भावना पैदा करना चाहते है।

पंकज सुबीर के कहानियों में सांप्रदायिकता- पंकज सुबीर और उनका साहित्य आज के संदर्भ में अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। पंकज सुबीर का कहानी साहित्य सांप्रदायिकता के विरुद्ध चुनौती देता है। संघर्ष की प्रेरणा देता है और सांप्रदायिकता के विभिन्न पहलुओं से साक्षात्कार कराता है। भारत में सांप्रदायिक एकता बनाए रखने की तड़प पंकज सुबीर ने सदैव अपने कहानियों के ज़रिये बयान की हैं। वे अक्सर कहते है कि देश की उन्नति के लिए हिंदू और मुस्लिम दोनों को एक साथ मिलकर देश की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करना चाहिए। पंकज सुबीर 'ये वो सहर तो नहीं' उपन्यास में बताते हैं कि सन् 1857 में अंग्रेज़ों को भगाने के लिए हिंदूओं और मुसलमानों ने जो एकता की मिसाल खड़े कि थी। आजकल समाज की भलाई के लिए वही एकता की जरूरत हैं। पंकज सुबीर की कहानियों में सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ 'रामभरोस हाली का मरना', 'नफीसा', 'घेराव', 'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ, 'जनाब सलीम लंगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी', 'लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का', 'तुम लोग' आदि कहानियों में सांप्रदायिकता को प्रस्तुत किया है। पंकज सुबीर ने अपने पात्रों के

वर्षा गजानन पाटील,
शोध छात्र, शिवाजी विश्वविद्यालय
कोल्हापुर, महाराष्ट्र

माध्यम से सांप्रदायिकता से जुडे जिन सवालों का अंबार हमारे सामने खड़ा किया है वे सभी सवाल आज भी हमारे आमने-सामने घूम रहे हैं।

वर्तमान समय में धर्म अपने प्रति पूर्ण समर्पण की माँग करता है। और संप्रदाय इसका कट्टर संरक्षक बन गया है। हर धर्म को अपने विकास एवं अपने प्रभुत्व के लिए अनुयायियों की आवश्यकता होती है और इनका समूह ही संप्रदाय कहलाता है। संप्रदाय किसी भी धर्म का वर्चस्व स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बिपिन चंद्र लिखते हैं "धर्म सांप्रदायिकता का अंर्तनिहित कारण नहीं है। यह सिर्फ सांप्रदायिकों का वाहन है।" बिपिन चंद्र - सांप्रदायिकता एक अध्ययन, पृ 39 धर्म व्यक्ति में आस्था ही जागृत नहीं करता बल्कि व्यक्ति को धर्म के नाम पर संरक्षण देता है और अपने समूह में शामिल कर उसे सुरक्षा देता है और इसी प्रकार अपने संगठन में भी मजबूती प्रदान करता है। हर धर्म में सेवाभाव को प्रमुखता से स्थान दिया गया है लेकिन वास्तविकता यह है कि किसी भी व्यक्ति की सेवा निश्छल होकर नहीं की जाती। उस व्यक्ति की सेवा अथवा सहायता यह देख कर होती है कि वह उस धर्म का है या नहीं।

पंकज सुबीर की लगभग सभी सांप्रदायिक कहानियों में लोगों के निजी स्वार्थ के कारण दंगों की पृष्ठभूमि तैयार की दिखाई देती है। लेखक ने 'लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का' कहानी में हिंदू लड़की और मुसलमान लड़के में प्रेम हो जाने के बाद हिंदू लड़की का पिता जो हिंदू राजनीति में है वह लड़के के परिवार वालों को धार्मिक उलझनों में फंसा कर गाँव में बड़े दंगे की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इसी प्रकार कहानी 'घेराव' में भी एक आवारा लड़का लड़की को सताता है। तो लड़की की माँ हंगामा खड़ा करती है कि हिंदुओं की बस्ती में एक मुसलमान लड़का आकर लड़कियों को छेड़ता है और हिंदू लोग शांत बैठे हैं। इस बात से हिंदू युवा उनके दिमाग मैं मुसलमान लड़के को सबक सिखाने की बात आ जाती है और वह लोग, "वजह चाहे जो भी रही हो लेकिन आसमान से सुबह का भगवा सिन्दूरी रंग हटा और उधर शहर भगवा हो गया। सारे शहर में गले में केसरिया चिन्दी डाले हुए लोग नजर आने लगे। जैसे-जैसे दिन चढ़ने लगा केसरिया चिन्दियों की संख्या भी बढ़ने और चढ़ने लगी।" पंकज सुबीर - ईस्ट इंडिया कंपनी, घेराव पृ 36 इस प्रकार हिंदू युवा दंगे के पोस्टरों में तैयार करते हैं। 'नफीसा' कहानी में भी हिंदू और मुस्लिम प्रेमियों के कारण शहर आग के हवाले हो जाता है, लेखक कहते हैं, "मुस्लिम लड़की, हिन्दू लड़के से प्रेम करने से पहले उसका धर्म पूछना भूल गई थी।" पंकज सुबीर - महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ, नफीसा पृ 99 इस प्रकार से लेखक ने लगभग सभी सांप्रदायिक कहानियों में सांप्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले लोगों के बारे में विस्तृत से लिखा है।

जब-जब सांप्रदायिक दंगे होते हैं तब-तब इनमें सबसे ज्यादा हत्या होती हुई दिखाई देती है। लेखक ने साहित्य में जितने भी सांप्रदायिक दंगे दिखाए हैं उन सभी दंगों के पीछे हत्या करने का हेतु ही रहा है। जैसे 'नफीसा' कहानी के अंतर्गत दंगों के कारण नफीसा को अपना पति और बेटा खोने की नौबत आती है। 'घेराव' कहानी में हिंदू भीड़ से मुसलमान युवकों की हत्या की जाती है। 'रामभरोस हाली का मरना' कहानी में भी रामभरोस की हत्या उसका मालिक खत्री करता है और पास के ही एक मुस्लिम मंसूरी के खेत में उसका प्रेत फेंक देता है। जिससे लोगों को लगता है कि मुस्लिम मसूरी ने हिंदू रामभरोस की हत्या की है। 'लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का' कहानी में हिंदू लड़की से प्रेम करने के कारण एक मुस्लिम लड़के के परिवार के तीन चाचा और लड़के के दो चचेरे भाई और लड़के के पिता की हत्या दंगों के बीच की जाती है। लेखक लिखते है, "हरा रंग और गाँव दोनों भिड़ गए। भिड़ गए आपस में गाँव भारी पड़ा। बहुत भारी। कुछ मारे गए, कुछ भागने में कामयाब रहे। लड़के का पिता, और लड़के के तीनों चाचा और लड़के के दो चचेरे भाई। कुल छः घटनास्थल पर ही....। बाक़ी के घायल। कुछ गंभीर। एक चचेरे भाई ने अस्पताल में आकर दम तोड़ा।" पंकज सुबीर- कसाब. गाँधी@ यरवदा.in लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का पृ 48 साथ ही 'जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी' कहानी में सलीम लंगड़े की हत्या उसके मुसलमान होने के कारण ही की जाती है। सलीम लंगड़े और शीला देवी के संबंधों के बारे में जब गाँव और शीला देवी के घर में पता चलता है तो लोगों की भृकुटियाँ तन जाती है। शीला के घर और गाँव वालों को उसके नाजायज संबंध से कुछ लेना देना नहीं है तो हिंदू होते हुए मुस्लिम के साथ संबंध रखने के कारण परेशानी है। उनका मानना है कि "जब हिना का अत्तर पहचाना गया, तो भृकुटियाँ तन गई और मुट्ठियाँ भिंच गई। चंदन का इत्र होता, तो चलो बात दवा दी जाती, लेकिन हिना का अत्तर?" पंकज सुबीर- चौपड़े की चुड़ैले, जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी पृ 23 लेखक ने सभी सांप्रदायिक कहानियों में सांप्रदायिकता के कारण होने वाली हत्या के बारे में विस्तार से लिखा है। निजी स्वार्थ के कारण यह हत्याएँ होती है लेकिन उन्हें धर्म खतरे में है ऐसा बताया जाता है। जिससे भीड़ पर शैतान हावी होता है और किसी ना किसी की जान उसमें चली जाती है।

पाकिस्तान विभाजन से हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरे का विश्वास नहीं जीत पाए थे। व्यक्ति के रहन-सहन से ही उसकी पहचान कर उस पर अविश्वास जताने लगे थे। बात-बातों में उसको जलील करना आम बात हो गई थी और विरोध करने वालों की मार-पीट होती थी। ऐसी समस्याएँ देश में घटित हो रही थी। लेखक लिखते हैं "अब उसके गले में काले सफेद चौखाने का गमछा परमानेंट डला रहता है और सिर पर गोल जालीदार टोपी भी दादी बढ़ गई है। वही हो रहती है। माथे पर काला निशान हल्का-हल्का दिखाई देने लगा है।" पंकज सुबीर- कसाब. गाँधी@ यरवदा.in लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का पृ 49 वर्तमान में भी पहनावे और खानपान से लोग एक दूसरे की धर्म को

पहचानते हैं। यह सदियों से होता आया है। इस विवाद के चलते रहने में ही बहुत से लोगों के हित जुड़े हुए हैं। यह सब कुछ राजनीति से संचालित है, इसका धर्म से कोई संबंध नहीं है।

विभाजन के बाद हिन्दू-मुस्लिम कर्मचारियों के साथ भेदभाव शुरू हो गया। हिन्दू कर्मचारियों को रोजगार दिया गया। ऐसा ही भेदभाव पंकज ने 'कुफ्र' कहानी में दिखाया है। जफर 'कुफ्र' कहानी का नायक है। जो बेरोजगारी से त्रस्त है। उसकी बेरोजगारी का कारण उसका मुस्लिम होना है। उस पर परिवार की जिम्मेदारी है। उसके परिवार में पत्नी और तीन बेटे है जो भूख का शिकार बनते जा रहे है। इसी कारण जफर नई नौकरी तलाश रहा है, लेकिन उसके मुसलमान होने से उसे कोई नौकरी नहीं दे रहा है। जफर कहता है, "जैसे ही अपना नाम बताता हूँ वैसे ही लोगों के माथे पर शिकन पड़ जाती है। जैसे मैं मुसलमान न होकर कोई जानवर हूँ।" पंकज सुबीर- ईस्ट इंडिया कंपनी, कुफ्र पृ12 जफर का मानना है कि वह आदमी न होकर जानवर है। जफर कहता है, "जब पेट में रोटियाँ छम - छम करके नाच रही हो, तब होता है आदमी हिंदू या मुसलमान, वरना तो हम एक ही जात के हैं भूखमरों की जात के। हिंदू या मुसलमान होने का रईसी शोक पालना हमारी औकात से बाहर की चीज़ हैं।" पंकज सुबीर- ईस्ट इंडिया कंपनी, कुफ्र पृ 12 अत जफर भी विवश होकार बच्चों को शनि मंदिर में भेज देता है। जफर के धर्म में उसे कुफ्र माना जाता है। लेकिन गरीबी से बड़ा कुफ्र शायद किस और चीज़ का नहीं होता है।

'लव जिहाद, उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का' कहानी में हिंदू लड़की का मुस्लिम लड़के के साथ प्रेम करने के कारण होने वाला हश्र दिखाई देता है। सांप्रदायिक हिंदुओं में होने वाली परंपरा के कारण लड़कियों को स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। लेखक लिखते हैं, "परम्पराओं की रक्षा करना। परम्पराएँ जिनमें लड़की को को-एड में नहीं पढ़ाना, मोबाइल से दूर रखना और हँसने मुस्कुराने से भी दूर रखना शामिल था। और हाँ हरे रंग से भी। गाढ़े हरे रंग से।" पंकज सुबीर- कसाब. गाँधी@ यरवदा.in, लव जिहाद उर्फ़ उदास आँखों वाला लड़का पृ 37 इस प्रकार से धर्म और सांप्रदायिकता को डर कर स्त्रियों के शिक्षा और स्वतंत्र पर अंकुश लगाया जाता है।

पंकज सुबीर ने साहित्य के द्वारा भारतीय समाज में हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता के कारण हो रही नाजुक मामलों को जन मानस तक पहुँचाया है। हमारे समाज में छोटी-छोटी बातों को लेकर सांप्रदायिक दंगे होते हैं तो लेखक अपने साहित्य के ज़रिये सांप्रदायिक एकता को बनाये रखने का संदेश देते हैं। लेखक ने साहित्य में हिंदू-मुस्लिम के बीच सांप्रदायिकता के कारण होने वाले अनेक दंगों को प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही लेखक ने एक ओर हिंदू-मुस्लिम के बीच पहले किस प्रकार से एकता थी यह भी दिखाया है। किस प्रकार से एक साथ मिल-जुल कर रहते थे। एक दूसरे के साथ भाईचारे का संबंध बनाए रहते थे। हिंदू और मुसलमानों के बीच की एकता को भी लेखक ने विस्तृत से साहित्य में प्रस्तुत किया है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम का निवास इतना घुला-मिला हुआ था, कि वे हर गाँव और शहर के अन्दर कमोवेश एक साथ रहा करते थे। जिनको एक पाकिस्तान बन जाने से दोनों को अलग-अलग कर देना आसान काम नहीं था। दोनों एक दूसरे के साथ सुख-दुख में एक साथ रहते थे। जैसे कि लेखक ने कहानी 'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ', 'नफीसा', 'तुम लोग', 'फ़रिश्ता', 'मेरे रश्के क़मर', 'रंग दोस्ती के' आदि कहानियों में लेखक ने हिंदू मुस्लिम परिवारों के बीच आपसी प्रेम दिखाया है।

'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ' कहानी के मुख्य पात्र भासा हिंदू बहुल इलाके में अपना मुस्लिम परिवार लेकर रहते हैं और खुद को महफूज मानते हैं। हिंदू परिवारों को ही अपने लोग मानते हैं। इसीलिए उनके साथ अपनों जैसा व्यवहार करते हैं। पड़ोस के हिंदू परिवार के राहुल को अपने बेटे जैसा मानते हैं। साथ ही राहुल भी भासा और उनके परिवार के साथ लगाव महसूस करता है। भासा की पत्नी के हाथ की पूरियाँ खाना राहुल को पसंद होता है। राहुल के घर वाले भी भासा के घर राहुल को हर महीने खाना खाने के लिए भेजते हैं। राहुल के रिश्तेदार जब इस बात पर आपत्ति उठाते हैं। उनका मानना है कि मांस मच्छी खाने वाले के घर पर पूजा पार्टी ब्राह्मण को खाने पर भेजना धर्म को नष्ट करने जैसा है। तो राहुल की माँ बताती है कि "माँस-मच्छी खाते हैं तो क्या? राहुल के लिए तो खीर-पूरी ही बनाते हैं। और माँस-मच्छी खाने से ही कोई अगर अपवित्र हो जाता हो, तो फिर तो बहुत से ब्राह्मणों के घर भी हमें खाना नहीं खाना चाहिए, उनके घरों में भी बहुत लोग माँस-मच्छी खाते हैं।" पंकज सुबीर- चौपड़े की चुड़ैल, इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ, पृ 106 भासा के लिए उसके अपनो में उसके मजहब वाले नहीं है तो उसके सुख-दुख में बराबर साथ रहने वाले उसकी मोहल्ले के लोग हैं।

निष्कर्ष- पंकज सुबीर के कहानियों में सांप्रदायिकता के अध्ययन के पश्चात प्रस्तुत होता है कि समाज में एकरूपता, समानता और समान अधिकार प्रत्येक स्तर पर न्याय व मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए, जिससे समाज में प्रेम सौहार्द का माहोल स्थापित हो सके। भारत सदियों से अपनी अखंडता एवं एकता के लिए विश्व भर में जाना जाता है। भारत एक ऐसा राष्ट्र है जिसमे विभिन्न प्रकार की जातियाँ, उपजातियाँ तथा विभिन्न धर्म जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, यहूदी इसाई, पारसी, जैन, बौद्ध और अन्य सभी धर्मावलम्बी सदियों से प्रेम पूर्वक रहते आए है। परंतु आज तत्कालीन समय में भारत अग्नि के उस भूखण्ड पर खड़ा है जिसका नाम साम्प्रदायिकता है। जिस दिन यह भूखण्ड विचलित हो गया उस दिन हमें समाज में केवल वर्ग संघर्ष, हत्याएँ, लूटमार, अत्याचार, बलात्कार तथा अमानवीयता ही दिखाई देती है। इसलिए इस भीषण समस्या से मुक्ति पाने के लिए हम सभी को धर्म की अन्धता से बचना चाहिए। पंकज सुबीर ने अपने कहानियों में साम्प्रदायिकता का प्रतिरोध किया है तथा समाज में प्रेम और सद्भाव का राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रस्तुत किया है।

000

(शोध आलेख)

सूरदास के काव्य में 'लोक-जीवन के विविध परिदृश्य'

शोध लेखक : मु. ज़ाहिद रज़ा सिद्दीकी
असिस्टेंट प्रोफेसर

बीज शब्द - संस्कृति, ब्रज, श्रीकृष्ण, मथुरा, सूरदास, गोपियाँ, श्रृंगार, गोचारण।

शोध आलेख -

सूरदास पीढ़ियों से चले आ रहे लोक- संस्कारों में प्रकट होने वाले लोक-संस्कृति के कवि हैं। उन्होंने अपने काव्य में ब्रज - संस्कृति का वर्णन किया है। इस वर्णन में उन्होंने नायक कृष्ण को प्रत्येक दृष्टिकोण से लोक-जीवन के निकट लाने की चेष्टा की है। कृष्ण की बाल्य-काल और यौवन-काल कितने मनोहर हैं ! उनके बीच नाना मनोरम परिस्थितियों के विशद् चित्रण द्वारा सूरदासजी ने जीवन की जो रमणीयता सामने रखी, उससे गिरे हुए हृदय नाच उठे।" वात्सल्य और 'श्रृंगार' के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आए।"2 हिन्दी-साहित्य में श्रृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने। हिन्दू संस्कृति और लोक - जीवन से जुड़े तमाम संस्कार उनके यहाँ दिखाई पड़ते हैं। सूर की कविता में ब्रज -संस्कृति और श्रीकृष्ण के बहाने इन पारम्परिक लोक - छवियों का चित्रण तो है ही इन सबसे अधिक लोक-जीवन की वे अभिव्यक्तियाँ हैं जो सूर काव्य को विशिष्ट बनाती है। ब्रज की चारागाही और पशुपालन संस्कृति, मनुष्य, पशु-पक्षी और प्रकृति के साहचर्य से उपजी लोक - जीवन की अद्भूत झाँकी सूर काव्य के वैभव का विस्तार करती हैं। उन्होंने अपने काव्य में प्रत्यक्ष रूप से तो सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन नहीं किया है, परन्तु अपने इष्ट-देव के माध्यम से अपने समय के प्रचलित सभी संस्कारों सामाजिक व्यवस्थाओं और मनोविनोद के साधनों का वर्णन किया है।" ब्रज - प्रान्त की सामाजिक परिस्थितियों का जितना विस्तृत वर्णन हमें सूर के काव्य में मिलता है उतना किसी भी इतिहास- ग्रन्थ में नहीं मिलता।"3 सूर की कविता समाज के पीछे चलने या उसकी आलोचना करने के स्थान पर उस सामंती समाज की व्यवस्थाओं संस्थाओं और रूढ़ियों के दमनकारी प्रभावों का विरोध करती हुई एक ऐसे समाज की रचना करती है, जिसमें लोक और शास्त्र के बंधनों से स्वतन्त्र मानवीय भावों और मानवीय संबंधों का सहज विकास संभव हुआ है। उन्होंने कृष्ण के बाल-लीला के पदों में सामाजिक परिस्थितियों के वास्तविक चित्र प्रस्तुत किए हैं। कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा - गमन की दिनचर्या का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। इस वर्णन में अतिश्योक्ति का आश्रय स्वाभाविक है, परन्तु ये अतिश्योक्तियाँ तत्कालीन रीति रिवाजों की अनुमति में बाधक नहीं है - "गोकुल प्रगट भए हरि राई"

वाले पद से ही ब्रज के रीति-रिवाजों का प्रारंभ हो जाता है। नंद-यशोदा के यहाँ पुत्रोत्पति सौभाग्य की बात है। कृष्ण के जन्म के समय गोपियाँ बधावा लेकर जाती हैं सोने की थाल में दूध, दही, रोचना आदि। नेग लेने वालों का आपस में झगड़ना,नार छेदन में विलम्ब, गोकुल निवासियों का नन्द के घर आना, यशोदा - नन्द द्वारा सगुन के भेंटों को स्वीकार करना और पुन: उन्हें उपहार देना, कृष्ण जन्मोत्सव को लोक - सौन्दर्य से भर देता है - "ब्रज भयो महर के पूत जब यह बात सुनी।/ सुनि आनन्दे सब लोग, गोकुल गनक गुनी।।"4

इन सभी विषयों को सूर ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि और प्रतिभा के बल से अत्यंत सजीव एंव प्रभावशाली बना दिया है। कृष्ण के बाल चरित्र का प्रभाव नन्द, यशोदा आदि परिवार के लोगों और पड़ोसियों पर दिखाई पड़ता है। सूर का बाल-वर्णन पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध है। कृष्ण के छोटे- छोटे पैरों से चलने, मक्खन चुराकर खाने या इधर-उधर नटखटी करने पर नन्द बाबा और यशोदा मैया का कभी पुलकित होना, कभी खीझना, कभी गोपियों का प्रेम से उलाहना देना

मु. ज़ाहिद रज़ा सिद्दीकी
असिस्टेंट प्रोफेसर
अल-हिदाया कालेज ऑफ एजुकेशन,
अलीगढ़ (उ.प्र.)
मोबाइल- 9648631718
ईमेल- zaheedsheikh027@gmailcom

आदि बातें जनसमूह के भीतर आनन्द का संचार करती दिखाई देती हैं - "मैया मैं नहीं माखन खायो।/ ग्वाल - वाल सब वैर पड़े हैं, बरखस मुख लपटायौ।।"5

कवि ने बालकों में होने वाली अनेक दशाओं की सुन्दर स्वाभाविक अभिव्यंजना की है। 'स्पर्धा' का भाव देखिए, जो बालकों में स्वाभाविक होता है, इन वाक्यों में व्यंजित हो रहा है - "मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी ! / किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी / तू जो कहती 'बल' की बेनी ज्यों है लाबी मोटी।।"6

इसी प्रकार बालकों में क्षोभ के ये वचन देखिए- "खेलत में को काको गोसैंयाँ ? / जाति-पांती हम तें कछु नाहिं, न बसत तुम्हारी छैंयाँ / अति अधिकार जनावत यातें, अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ।।"7

सूरदास के बाल -वर्णन का प्रत्येक पद नवीन भाव, नवीन अभिव्यक्ति और नवीन कला का घोतक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बाल-लीला के पदों पर विचार करते हुए कहा है- "जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य-जीवन का चित्रण इन्होंने किया है, उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया ।"8 सूर काव्य में सूरसागर के उत्कृष्ट स्थल वे हैं जहाँ कवि ने बालकृष्ण की लीलाओं का और गोपियों के संयोग श्रृंगार का वर्णन किया है। बाललीला वर्णन में सूरकाव्य की उत्कृष्टता का रहस्य स्वाभाविक है।" बालकृष्ण की लीलाओं का चित्रण लोकोत्तर भूमि पर नहीं बल्कि लोक-सामान्य भूमि पर किया गया है ।"9 वे हमारे देखे-सुने बच्चों जैसा आचरण करते हैं इसलिए उनका वर्णन मार्मिक एवं आकर्षक लगता है। सूर काव्य का सबसे सृजनात्मक पक्ष चारागाही और पशु-पालन संस्कृति के चित्रण में दिखाई देता है। सूर चारागाही संस्कृति के सबसे सशक्त कवि हैं। गोचारण ब्रज की संस्कृति एवं लोक-जीवन से जुड़ा पहलू है। गोचारण के बीच ही कृष्ण की लोक छवि उभरती है यहीं कृष्ण की लीला का रूपायन होता है। यह संस्कृति ग्राम्य संस्कृति से जुड़ा है। इसके द्वारा सूर मध्ययुगीन सामंती संस्कृति के समानान्तर सामाजिक और ग्रामीण संस्कृति को महत्त्व प्रदान करते हैं। गोचारण के हेतु जाते देखकर कृष्ण की बाल- स्वभाव- सुलभ अनुकरण की प्रवृत्ति जाग उठती है। वे स्वयं भी गाय चराने के लिए जाना चाहते हैं- "मैया हौं गाई चरावन जैहौं, / तू कहि महर नन्द बाबा सौं, बड़ो भयौ न डरेहौं"10

प्रकृति की सुरम्य पृष्ठभूमि पर गोचारण के अत्यंत सुन्दर दृश्य सूरदास जी ने चित्रित किए हैं। ग्वाल-बालों की स्वाभाविक सरल चित्तवृत्तियों के साथ उनके क्रिया-कलापों के भी अनेक चित्र सूरसागर में दिखते हैं। सूर ने जमुना के कछारों के बीच गोचारण के बड़े सुन्दर दृश्यों का विधान किया है-"मैया री ! मोहिं दाऊ टेरत। मोकौं वनफल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत"11

हास-परिहास और छेड़छाड़ के साथ प्रेम - व्यवहार का अत्यन्त स्वाभाविक आरम्भ सूर ने दिखाया है।" नित्य अपने बीच चलते-फिरते, हँसते-बोलते, वन में गाय चराते देखते-देखते गोपियाँ कृष्ण में अनुरक्त होती हैं और कृष्ण गोपियों में। इस प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं, सहसा उठ खड़े हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप में नहीं ।"12 एक साथ रहते-रहते भी दो प्राणियों में स्वभावत: प्रेम हो जाता है। कृष्ण एक तो बाल्यावस्था से ही गोपियों के बीच रहे, दूसरे सुन्दरता में भी अद्वितीय थे। बालक्रीड़ा इस प्रकार क्रमश: यौवन - क्रीड़ा के रूप में परिणत होती गई कि सन्धि का पता ही नहीं चलता - "खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी। / सूर श्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।।"13

राधा और कृष्ण के विशेष लगाव की उत्पत्ति सूर ने रूप के आकर्षण द्वारा ही कही है। इस खेल ही खेल में इतनी बड़ी बात पैदा हो गई है जो अद्वितीय प्रेम का घोतक है - "बूझत श्याम, कौन तू गोरी ! कहाँ रहति, काकी तू बूटी ? देखी नाहिं कहूँ ब्रज-खोरी।।"14

आचार्य शुक्ल ने सूर के प्रकृति पर लिखा है - "बाललीला के आगे फिर उस गोचारण का मनोरम दृश्य सामने आता है, जो मनुष्य जाति की अत्यंत प्राचीन प्रति होने के कारण अनेक देशों के काव्य का प्रिय विषय रहा है।"15 श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुँचा है। वियोग की जितनी अन्तर्दशाएँ हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यत: हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं। आरम्भ वात्सल्य रस के वियोग-पक्ष से हुआ है। कृष्ण के मथुरा से न लौटने पर नन्द और यशोदा दु:ख के सागर में मग्न हो गए हैं। अनेक दु:खात्मक भाव-तरंगें उनके हृदय में उठती हैं, कभी यशोदा नन्द से खीझकर कहती हैं- " छाँड़ि सनेह चले मथुरा, कत दौरि न चीर गह्यो। फाटि न गई बज्र की छाती, कत यह सूल सह्यो।"16

इस पर नन्द यशोदा पर उलट पडते हैं- "तब तू मरिबोई करति।/ कठिन हिय करि तब जो बाध्यो, अब वृथा करि मरति।।"17

यह 'झुंझलाहट' वियोग- जन्य है, प्रेम-भाव के ही अन्तर्गत है और कितनी स्वाभाविक है! सुख-शान्ति के भंग का कैसा यथातथ्य चित्र है। गहरी 'उत्सुकता' और 'अधीरता' के बीच विरक्ति (निर्वेद) और तिरस्कार-मिश्रित खिझलाहट' का यह मेल कैसा अनूठा उतरा है। यशोदा नन्द से कहती हैं- " नन्द ! ब्रज लीजै ठोंकि बजाए। / देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहँ गोकुल के राय।"18

'ठोंकि बजाय' में कितनी व्यंजना है। 'तुम अपना ब्रज अच्छी तरह सँभालो, तुम्हें इसका गहरा लोभ है, मैं तो जाती हूँ।' एक-एक वाक्य के साथ हृदय लिपटा हुआ आता दिखाई दे रहा है। एक वाक्य दो-दो, तीन-तीन भावों से लदा हुआ है। ग्वाल सखाओं की भी यही दशा हो रही है। कभी वे व्याकुल और अधीर होते हैं, कभी कृष्ण की निष्ठुरता पर पर क्षुब्ध होकर कहते हैं- "भए हरि मधुपुरी-राजा, बड़े बंस कहाय। / सूत मागध बदत विरुदहि बरनि बसुधौ तात। / राजभूषन अंग भ्राजत, अहिर कहत लजात।।"19

कृष्ण के प्रवास काल में उद्धव ब्रज आगमन पर,'गोपी- उद्धव' संवाद में भी माँ

यशोदा की विरह दशा का वर्णन हुआ है। ये वे पुत्र की कुशलता के लिए चिंतित आशंकित रहती हैं। गोपियों की तरह ही वे भी उद्धव के द्वारा देवकी को एक माँ का संदेश भेजती हैं कि वे तो देवकी के पुत्र कृष्ण का पालन-पोषण करने वाली एक धाय मात्र हैं, फिर भी उस पुत्र की चिंता यशोदा को दिन-रात लगी रहती है। वियुक्त प्रिय पुत्र के सुख के अनिश्चय की 'शंका' तक न पहुँचती हुई भावना, 'दीनता' और क्षोभ जन्य 'उदासीनता' किस प्रकार इन वचनों से टपक रही है- " संदेशो देवकी सों कहियो / हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करति ही रहियो तुम तो टेव जानतिहि हैहौ तउ मोहिं कहि आबै। प्रात उठेत मेरे लाल लड़तेहि, माखन रोटी भावै।।"20

कृष्ण राजभवन में जा पहुँचे हैं यह जानते हुए भी यशोदा के प्रेमपूर्ण हृदय में यह बात जल्दी नहीं बैठती कि कृष्ण के सुख का ध्यान जितना वे रखती थीं उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। रसमग्न हृदय ही ऐसी दशाओं का अनुभव कर सकता है। गोपियों की वियोग-दशा का जो धारा-प्रवाह वर्णन है, उसका तो कहना ही क्या है? न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीतर है। संयोग और वियोग दो अंग होने से श्रृंगार की व्यापकता बहुत अधिक है। इसी से वह रसराज कहलाता है। कृष्ण के चले जाने पर सायं-प्रभात तो उसी प्रकार होते हैं, पर - "मदन गोपाल बिना या तन की सबै बात बदली।"

ब्रज में पहले सायंकाल में जो मनोहर दृश्य देखने में आया करता था वह अब बाहर नहीं दिखाई पडता, पर मन से 'उसकी 'स्मृति' नहीं जाती - " एहि बेरियाँ बन तें ब्रज आवते। / दूरहिं तें वह बेनु अधर धरि बारंबार बजावते।।"21

वियोग-श्रृंगार की दृष्टि से सूरदास का 'भ्रमरगीत' विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य में से एक है। गोपियों के वाग्वैदग्ध्य को देखकर ही आचार्य शुक्ल ने 'भ्रमरगीत सार' में लिखा है - "सूरदासजी में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्राय: उतनी चतुरता वाग्विदग्धता भी है। गोपियों के वचन में कितनी विदग्धता और वक्रता भरी है।"22 वियोग के कारण रात गोपियों को साँपिन सी लग रही है। साँपिन की पीठ काली और पेट सफेद होता है। ऐसी पद्धति है कि वह काटकर उलट जाती है, जिससे सफेद भाग ऊपर हो जाता है। बरसात की अँधेरी रात में कभी-कभी बादलों के हट जाने से जो चाँदनी फैल जाती है वह ऐसी ही लगती है- "पिया बिनु साँपिनि कारी राति। / कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वे जाति।"23

सूरदासजी का विरह-स्थल जिस प्रकार घर की चहारदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारों, करील के कुंजों और वनस्थलियों तक फैला है, उसी प्रकार उनका विरह - वर्णन भी ' बैरनि भई रतियाँ और साँपिन भई सेजिया' तक ही न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुँचता है। जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं और बहुत दिनों के बाद गोकुल वापस नहीं आते तब वह ज्ञानोपदेश द्वारा गोपियों को समझाने-बुझाने के लिए अपने सखा उद्धव को ब्रज में भेजा। उद्धव को ब्रज भेजने का कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान का का बड़ा गर्व था, कृष्ण का उन्हें गोपियों के पास भेजने में यह अभिप्राय था कि वे उनकी प्रीति की गूढ़ता और तन्मयता देखकर शिक्षा ग्रहण करें।

"जदुपति जानि उद्धव-रीति। / जेहि प्रगट निज सखा कहियत करत भाव अनीति। बिरह-दुख जहँ नाहिं जामत, नाहिं उपजत प्रेम"24

उद्धव के ब्रज में दिखाई पड़ते ही सारे ब्रजवासी उन्हें घेर लेते हैं। वे नन्द यशोदा से संदेसा कह चुकने के उपरान्त गोपियों की ओर फिरकर कृष्ण के संदेश के रूप में ज्ञान - चर्चा छेड़ते हैं। उद्धव को देखते ही गोपियों को संबंध - भावना के - कारण कृष्ण के मिलने का - सा सुख हुआ - "ऊधो ! पा लौं भले आए। / तुम देखे जनु माधव देखे, तुम त्रय ताप नसाए।"25

प्रिय के संबंध से बहुत-सी वस्तुएँ प्रिय लगने लगती हैं। यही बात यहाँ अपने स्वाभाविक रूप में दिखाई गई है। जो कोई पथिक उधर से होकर निकलता है उसे रोककर गोपियाँ अपना सन्देशा कहने लगती हैं। अब तो यह दशा है कि इसी डर से पथिकों ने उधर से होकर जाना ही छोड़ दिया है। 'सूरदास सदेसन के डर पथिक न वा मग जात।' ज्यों ही उद्धव अपना ज्ञान - सन्देश सुनाना आरम्भ करते हैं, त्यों ही गोपियाँ चकपकाकर पूछने लगती हैं- "हम सों कहत कौन सी बातें / सुनि, ऊधो! हम समझत नाहीं, फिर बूझति हैं तातें।।"26

समग्रत: सूरदास का श्रृंगार-वर्णन काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक- दोनों ही दृष्टियों से सशक्त है। इसमें जितनी गहनता है उतनी ही व्यापकता भी विद्यमान है। सूरदास के काव्य में प्रेम-श्रृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

000

संदर्भ- 1द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-112, 2शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, पृष्ठ-16, 3 शर्मा, डा. हरवंशलाल, सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ-77, 78, 4वही, पृष्ठ- 164, 5वही, पृष्ठ- 167, 6शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, पृष्ठ - 21, 7शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 123, 8शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, सूरदास, पृष्ठ-159, 9त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी आलोचना, पृष्ठ- 69, 10शर्मा, डा. हरवंशलाल, सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ-325, 11वही, पृष्ठ- 326, 12शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, सूरदास, पृष्ठ-161, 13वही, पृष्ठ-163, 14शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, पृष्ठ-23, 15शर्मा, डा. रामविलास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, पृष्ठ- 22, 16शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, पृष्ठ - 27, 17वही, पृष्ठ- 27, 18वही, पृष्ठ- 27, 28, 19वही, पृष्ठ- 28, 20शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, सूरदास, पृष्ठ-167, 21वही, पृष्ठ-169, 22शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, पृष्ठ - 36, 23वही, पृष्ठ- 29, 24वही, पृष्ठ-44, 25वही, पृष्ठ- 45, 26वही, पृष्ठ- 46,

(शोध आलेख)

भाषा की उपादेयता को रचते पंकज सुबीर

शोध लेखक : डॉ. अमित कुमार
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)

साहित्य वर्तमान मानव जीवन को अभिव्यक्त करने का सबसे सरल माध्यम है। साहित्यकार अपने रचनाओं के माध्यम से, समाज को देखते हूए मानव जीवन की व्याख्या वर्तमान संदर्भ में करता है। वे अपनी रचनाओं को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए विभिन्न शैलियों तथा भाषा का प्रयोग करता रहता है; क्योंकि किसी भी साहित्यिक कृति की प्राण बिन्दु उसकी भाषा या शैली होती है। भाषा और शैली के माध्यम से कथाकार अपने कथ्य में जान फुकता है और उसे पाठकों के सामने जीवंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। भाषा, शैली और शब्दों में पाठक इतना डूब जाता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि वह किसी और की कथा देख, सुन और पढ़ रहा है या खुद की कथा। कथाकार पाठक को भाषा, शब्द और शैली के माध्यम से अपनी रचनाओं में बांधे रहता है।

साहित्य में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। वह रचना को मूर्त रूप प्रदान करता है। भाषा के द्वारा सुंदर रचना का जन्म होता है। भाषा के द्वारा लेखक अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। सरल भाषा ही प्रभावात्मक सिद्ध होती है। अत: रचनाकार भाषा में विविध पूर्ण शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करता है। साहित्य में तत्सम, तद्भव, और विदेशी शब्दों एवं विभिन्न वाक्यों का प्रयोग भाषा को स्वभाविक बनाता है। भाषा में आए मुहावरे, लोकोक्तियां और शक्तियों से भाषा रोचक बन जाती है। पंकज सुबीर जिस परिवेश में पले-बढ़े और गहनता से जुड़े; उस परिवेश को उन्होंने आंचलिक भाषा में चित्रित किया है। भाषा की इस विशेषता के कारण पंकज सुबीर की सृजनात्मकता और प्रतिभा का परिचय होता है।

पंकज सुबीर अपने कथ्य को सरल और मनोरंजन पूर्ण बनाने के लिए भाषा की नई प्रस्तुति करते हैं जिससे पाठक का मन उनके कथ्य से जुड़ा रहता है। वे प्राय: भाषा का हमेशा ध्यान रखते हैं कि किस तरह की भाषा का कब और कहाँ प्रयोग करना है। 'ये वे सहर तो नहीं' उपन्यास में प्रशासन द्वारा जीवित व्यक्ति को मृत घोषित किए जाने पर जीवित व्यक्ति प्रशासन को गलत ठहराने में भाषा का बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया है- "कलेक्टर बोला 'पूँ', एस.डी.एम. बोल 'पूँ', तहसीलदार बोला 'पूँ', नायाब बोला 'पूँ', गिरदावर बोला 'पूँ', पटवारी बोला 'पूँ', चौकीदार बोला 'पूँ', सबने बोला 'पूँ', धरती भी बोली 'पूँ', अम्बर भी बोला 'पूँ', हर तरफ हर दिशा से पूँ ही पूँ। जो भी ना बोला पूँ तो उसकी भी हो गई पूँ।"1 पंकज सुबीर भाषा के माध्यम से पूरी प्रशासनिक व्यवस्था की पोल खोल कर रख देते हैं। जो आज पूरे समाज को दीमक की तरह दिखाई पड़ते हैं। सुबीर भाषा का इस्तेमाल कहाँ करना है, कब करना है और किस भाषा में करना है या किस लोकोक्ति में करना है; बखूबी जानते हैं।

आधुनिकता के इस दौर में नए-नए उपकरण आ चुके हैं और मनुष्यों ने भी आधुनिक उपकरणों की सहायता से अपने विचारों और भाषाओं के आदान-प्रदान में इसका सहारा लेना प्रारंभ कर दिया है। इसी उपकरणों में फोलेटनिक भाषा का रूप ज्यादा प्रचलित है। जिससे माध्यम से मनुष्य एक शहर से दूसरे शहर, एक देश से दूसरे देश तक अपने संबंधियों, रिश्तेदारों आदि से अपने विचारों का आदान-प्रदान कर वार्तालाप कर सकता है। फोलेटनिक भाषा प्रयोग साहित्य में भी खूब किया जाने लगा है। पंकज सुबीर की रचनाओं में भी फोलेटनिक भाषा का प्रयोग देखा जा सकता है। 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था' उपन्यास में फोलेटनिक भाषा का प्रयोग किया गया है जिसमें दो व्यक्ति सांप्रदायिक दंगे की स्थिति पर चर्चा करते हुए कहते है।– "सर प्रणाम करता हूँ। भारत बोल रहा हूँ। ...खुश रहिए, जीते रहिए.. कैसे हो भारत ? बहुत दिनों बाद याद आई ? बहुत व्यस्त हो गए हो ? ...मैं ठीक हूँ, आप बताइए कैसे हैं ? सब ठीक है

डॉ. अमित कुमार
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
विल्सन कॉलेज, गिरगांव चौपाटी,
मुंबई, महाराष्ट्र- 400007
मोबाइल- 7720955627
ईमेल- dr.amitkumar4391@gmail.com

? आपके उस तरफ तो नहीं है दंगे का असर? ...नहीं भारत मैं तो ठीक हूँ, लेकिन शाहनवाज और उसका परिवार फंसा हुआ है दंगे में।"2 पंकज सुबीर अपनी रचनाओं में इस तरह की आधुनिक तकनीकी की भाषाओं का प्रयोग बड़ी ही सहजता के साथ करते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान की जानकारी लेने के लिए प्रायः सुबीर जी फोलेटनिक भाषा का इस्तेमाल करते रहते हैं। पंकज सुबीर की भाषा प्रक्रिया को बताते हुए डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी लिखते हैं कि- "उपन्यास की भाषा, कहन और जिस प्रकार का विषय उपन्यास में उठाया और जिस प्रकार उसका निर्वाह किया, वह किसी भी लेखक को आत्ममुग्ध करने के लिए बहुत है।"3

पंकज सुबीर ग्रामीण और शहरी भाषा का प्रयोग कर शब्दों का एक ऐसा जाल बुनते हैं कि पाठक उसकी तरफ स्वयं खींचा चला आता है। उनकी रचनाओं में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी भाषा के शब्दों की बहुलता है। इस क्रम में पंकज सुबीर ने ढेर सारे मालवी शब्दों के... अर्थ सूचित किए हैं। इस किस्म के शब्दार्थ परोसने की ज़रूरत न रेणु के यहाँ थी और न राही मासूम रज़ा के यहाँ थी। इसमें कई ठेठ स्थानीय शब्द अपने आप में विलक्षणता प्रदर्शित करते हैं। चुरमना, जानपाड़ा, छर्रा, धोक, झोट्टम- झोंट, निंदड़िया (नींद), घींचड़िया (गरदन), उँदरा (चूहा), जुगाड़, ढिबरी, निरात, लटठ्म-लट्ठा, मसान धक्या, राँड, माँड, नोन-तेल, डुगरिया, चिकसी बँधे, टोरा-टोरी आदि जैसे शब्द अपनी प्रयोगवत्ता में ही अर्थ बतलाते हैं; तो दूसरी तरफ विदेशी शब्दों का प्रयोग किया गया है- ट्रेनिंग, गार्डन, जेसीबी, डायरी, पेंशन, जनरल, आफिसर, दिक्कत, हिफाजत, तफसील, दस्तावेज, रेसीडेंसी, महफूज, अजीम, इल्जाम आदि शब्द सामान्य लोगों की समझ के अनुसार प्रयुक्त हुए हैं। पंकज सुबीर की रचना प्रक्रिया में ये शब्द बहुत ही सहजता से आते हैं, कहीं भी वो जबरदस्ती से नहीं गए हैं। इनकी रचनाओं में भाषा शैली का चातुर्य स्पष्ट झलकता है। इसी संदर्भ में साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा भाषा पर बातचीत करते हुए कहते हैं कि- "विषय, भाषा, शैली, और बुनावट काबिल -ए-तारीफ़ है। मैं पंकज सुबीर को बधाई देता हूँ।"4 पंकज सुबीर ने ग्रामीण जीवन एवं शहरी जीवन की समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उन्होंने भाषा में शब्द चयन इस प्रकार निर्मित किए हैं कि वह अपनी सहजता में सबको आकर्षित करते हैं। पंकज सुबीर घटना, परिवेश, पात्र एवं स्थितियों के अनुसार अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशज शब्दों का सटीक प्रयोग किया है। पंकज सुबीर अपने साहित्य में भाषा का प्रयोग एक हथियार के रूप में करते हैं; जो पाठक वर्ग को अपने आगोश में लिए रहता है।

पंकज सुबीर ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में मानव जीवन में प्रयोग होने वाले मुहावरों का समग्रता से प्रयोग किए हैं। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त ये मुहावरे इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं- फूल कर कुप्पा होना (बहुत खुश होना), चर्बी बढ़ जाना (मदांध होना), उगते सूरज को सलामी देना (बचपन में ही बच्चे के अनुभव को पहचान लेना), गूलर के फूल होना (न दिखाई पड़ना), सातवें आसमान पर चढ़ना (बहुत अधिक घमंडी होना), मुफ्त की गंगा में हराम के गोते मारना (किसी और कि संपत्ति को लूटना), ओखली में सिर देना (जानबूझ कर संकट मोल लेना), कुछ नहीं होने से कुछ होना भला (जो मिले उसे स्वीकार करना) 'अकाल में उत्सव' से। पैरों के नीचे से जमीन खिसकना (हक्का बक्का होना), ढ़ाक के तीन पात होना (सदा एक-सी दशा में रहना), सोने पर सुहागा (अत्यधिक गुणवान), नीम चढ़ा करेला (कुटिल स्वभाव वाले मनुष्य बुरी संगत में पड़ कर और बिगड़ जाते हैं), सर पर पैर रख कर भागना (बहुत तेजी से भागना) 'जनाब सलीम लँगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी' से। उड़ती चिड़िया के पर गिनना (अनुभवी होना), पुत का पालना पाँव में (अच्छे गुणों के लक्षण बचपन में ही पता चल जाते हैं), खोदा पहाण निकला चूहा (अधिक मेहनत में कम फल मिलना), उछल पड़ना (खुश होना), साँप सूँघ जाना (एकदम गुपचुप हो जाना) 'सुबह अब होती है, अब होती है.. अब होती है' से। उड़ती चिड़िया के पर गिनना (किसी कार्य में दक्ष होना) 'इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ..' से। सैया भये कोतवाल अब डर काहे का (संबंधी के ऊंचे पद का लाभ उठाना), आग में घी डालना (क्रोध भड़काना), न रहेगी बाँस और न बजेगी बाँसुरी (झगड़े या मुसीबत के मूल कारण को नष्ट कर देना), सेर पर सवा सेर (शक्तिशाली व्यक्ति का सामना उससे भी शक्तिशाली व्यक्ति से होना), बेगानी शादी में अब्दुल्ला (दूसरे की वस्तु पर अपना अधिकार समझना), ईंट से ईंट बजा देना (नष्ट भ्रष्ट कर देना), भरे बाजार में पगड़ी उछालना (बेइज्जत करना) 'ये वो सहर तो नहीं ' आदि से। मुहावरों के प्रयोग से पंकज सुबीर ने अपनी भाषा को एक नए आयाम प्रदान करते हैं जिससे भाषा की रोचकता बनी रहती है। इसके साथ ही साथ विषयवस्तु एवं पात्रों के मन को जानने और समझने में भी मदद मिलती है। पंकज सुबीर के कथा साहित्य में मुहावरों का प्रयोग अर्थपूर्ण और स्वभाविकता के साथ हुआ है। नगेन्द्र नागदेव पंकज सुबीर के लेखन शैली के बारे में लिखते हैं कि- "उनकी लेखन शैली में निरंतर व्यंग्य की उपस्थिति व्यवस्था पर करारा आक्षेप करती चलती है। गाँवों में बातचीत में हर स्थिति के लिए बड़े सटीक मुहावरे प्रचलित होते हैं और लेखक नें उन मुहावरों का बहुतायात से और बखूबी प्रयोग किया है।"5

पंकज सुबीर ने अपनी कहानियों में मुहावरों का प्रयोग तो किया ही है, साथ ही साथ मुहावरों का सृजन भी किया है। अपनी कहानी 'जनाब सलीम लंगड़े और श्रीमती शीला जी की जवानी' में 'चाँदनी पीना' क रूप में एक नए मुहावरे की खोज की है। मुहावरे का प्रयोग करने में पंकज सुबीर अग्रणी दिखाई पड़ते हैं और रचनाओं में भाषा के मार्मिक पक्ष को उजागर करते हैं। वह मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं, और उनकी दशा-दिशा, रहन-सहन, समस्याओं, को आम बोल-चाल की भाषा में, अनेक मुहावरों के माध्यम से दिखाने का प्रयास करते हैं। कभी-

कभी तो ऐसा लगता है कि वे अपने कथा साहित्य को नहीं रच रहे हैं बल्कि मुहावरे उनके कथा साहित्य को रच रहे हैं। मुहावरे उनकी लेखनी का अंग बन गए है।

साहित्य के क्षेत्र में अभिव्यंजना के विशिष्ट प्रणाली है। जिनमें भावों का बोध प्रतीकों के माध्यम से कराया जाता है। प्रतीकात्मक भाषा में प्रतीकों का सहारा लेकर गूढ तथ्यों को उभारा जाता है। जब किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना के दृश्य को अभिधा द्वारा प्रस्तुत करना असंगत लगता है; तब प्रतीकों की योजनाएं की जाती है। प्रतीक हमारे विभिन्न अनुभवों से युक्त होने के कारण अदृश्य, गोचर और नितांत मनोभावों को साकार रूप प्रदान करते हैं। प्रतीकों के माध्यम से भाव-विचार और मनोस्थितियों को अभिव्यक्ति देने पर जोर दिया और इसके लिए इस बार बात सीधे ना कहकर सांकेतिक भाषा में व्यक्त करने की प्रणाली अपनाई। इस तरह इसमें सीधे बात ना कह कर प्रतीकों के माध्यम से कही जाती है। पंकज सुबीर ने अपने साहित्य में गरीबी, शोषण, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, स्वार्थपरता और विद्रोह आदि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं को व्यक्त करने के लिए व्यंगात्मक प्रतीकों का प्रयोग किया है।

'अकाल में उत्सव' उपन्यास में बिम्बों के माध्यम से पंकज सुबीर ने किसानों जीवन की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत किया है। किसान जीवन के सामाजिक, आर्थिक और ग्रामीण परिवेश को बिम्ब के माध्यम उजागर किया है। पंकज सुबीर के यहाँ दृश्य पक्ष प्रमुख है। उपन्यास शुरू होने के कुछ ही देर बाद कमला के पैर से तोड़ी (पायल)। नाम के अंतिम जेवर के उतरने का एक सशक्त दृश्य लेकर सामने आता है। यह दृश्य पाठक को स्तब्ध कर जाता है। देहरी के बाहर बैठा रामप्रसाद और देहरी के अंदर बैठी कमला। देहरी को पार करके कमला का पैर बाहर निकला है जिसमें चाँदी की तोड़ी लटक रही है। तोड़ी (पायल) का पेंच कमला से खुल नहीं रहा है, इसलिए उसने अपने पैर को देहरी के बाहर कर दिया है ताकी रामप्रसाद पेंच को खोल दे। तोड़ी (पायल) को बेचे जाने के बाद सुनार के द्वारा उसे गलाए जाने का दृश्य और भावात्मक है। जिसका चित्रण पंकज सुबीर इस प्रकार करते हैं- "वही तोड़ियाँ अब टुकड़ों में बँट कर पिघलने के लिए तैयार की जा रही थीं। तोड़ी.., तोड़ी जा रही थी। खट्ट.. जैसे ही कारीगर ने तोड़ी के किनारे पर लगी चाँदी के स्क्रू या ढिबरी को एक प्लास टाइप के काटने वाले औजार से ताकत लगा कर काटा, वैसे ही रामप्रसाद के मुँह से निकला 'निरात (आहिस्ता) से..।"6 यह दृश्य विजुअलाइज़ेशन के सारे तत्त्वों को अपने में समाहित किए हुए है। पाठक इसको पढ़ता ही नहीं है बल्कि देखता भी है। यह दृश्य में तोड़ी का टुकड़े-टुकड़े करना, काटना फिर उसे गला देना वर्तमान समय में किसान जीवन की सच्चाई को उजागर करती है। इसके लिए उन्होंने नाट्यात्मक और चित्रात्मक शैली का आधार लिया है। कभी-कभी लगता है, यह उपन्यास फिल्मांकन के लिए रचा गया है। पंकज सुबीर ने अपने साहित्य में गरीबी, शोषण, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, स्वार्थपरता, विवशता, आक्रोश और विद्रोह आदि को व्यक्त करने के लिए व्यंग्यात्मक प्रतीकों का प्रयोग किया है। जो व्यक्ति, वस्तु और घटना आदि से संबंधित है। पंकज सुबीर ने प्रतीकों का चयन लोक जीवन के उस सामान्य परिवेश से किया है, जिसमें हम यथार्थ रूप में जीते हैं। पंकज सुबीर ने अपने साहित्य में स्थितियों और तथ्यों की प्रस्तुति के लिए प्रतीकों का सार्थक उपयोग किया है।

पंकज सुबीर अपने उपन्यास में सरकारी व्यवस्था पर पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि "सरकारी व्यवस्था शेर के शिकार करने के समान होती है, जब शेर अपने शिकार में से भर पेट खा लेता है, तो बाकी का शिकार अपने से छोटे जानवरों, मतलब गीदड़ों आदि के लिए छोड़ देते हैं। गीदड़ भी जब पेट भर लेते हैं, तो फिर अपने से छोटे लकड़बग्घों, गिद्धों आदि के लिए छोड़ देते हैं। सरकारी व्यवस्था में देश की राजधानी होती है शेर, वह शिकार करती है योजनाओं का।" यहाँ लेखक ने 'शेर', 'गीदड़', 'लकड़बग्घा' और 'गिद्धों' का प्रयोग प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जिनके तले आम जीवन पीस रहा है या कुचला जा रहा है। इस पूरे कथन के माध्यम से वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था का कठ्ठा-चिठ्ठा खोल रख देते हैं। किस प्रकार आज गरीबों, किसानों, मजदूरों आदि के लिए तो योजनाएं बनाई जाती है लेकिन क्या यह योजनाएं उन लोगों तक पहुँच पा रही है? यह बहुत बड़ा प्रश्न है आज के समय का। इस प्रकार स्पष्ट है कि पंकज सुबीर अपनी रचनाओं की कथावस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए सजीव बिंबों एवं सार्थक प्रतीकों का प्रयोग किया है, जो आमजन की गरीबी, बेबसी के साथ ही धार्मिक-सांप्रदायिक तत्वों की बुराईयों, सत्ताधीशों की अराजकता, तथा प्रशासनिक व्यवस्था के खोखलेपन को अत्यंत रचनात्मक ढंग से खोलने का प्रयास किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पंकज सुबीर की भाषा कला अद्भुत है। वे अपने भाषायी जादू से साहित्य को ही समृद्ध नहीं करते बल्कि समाज में चल रहे उथल-पुथल को स्थिर करने का प्रयास करते हैं। पंकज सुबीर का भाषा का ज्ञान इतना बेजोड़ है कि वे कठिन से कठिन वाक्यों को बड़ी ही सरलता के साथ पाठक वर्ग के सामने उपस्थित कर देते हैं जिससे पाठक वर्ग उस वाक्य को बड़ी सहजता के साथ ग्रहण कर लेता है।

000

संदर्भ -

1.पंकज सुबीर, ये वो सहर तो नहीं, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.- 29, 2.पंकज सुबीर, जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था, शिवना प्रकाशन, म. प्र., पृ. सं.- 83, 3.सं.- डॉ. सुधा ओम ढींगरा, विमर्श-अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, म. प्र., पृ. सं.- 52, 4.सं.- डॉ. सुधा ओम ढींगरा, विमर्श-अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, म. प्र., पृ. सं.-234, 5.सं.- डॉ. सुधा ओम ढींगरा, विमर्श-अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, म. प्र., पृ. सं.-115, 6.पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, म. प्र., पृ. सं.- 109-110

शोध आलेख

(शोध आलेख)

स्त्री कहानीकारों की कहानियों में पारिवारिक समस्याएँ

डॉ. परमजीत एस. पनेसर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

परिवार समाज की एक ऐसी संस्था है जिसे मानव ने आत्म संरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन के विकास के लिए स्थापित की है। भारतीय संस्कृति में परिवार के इसी विशद् दृष्टिकोण को चरितार्थ करते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को बल मिला है। पारिवारिक जीवन का समाज में अपना एक अलग मूल्य है। भारतीय परिवार में 'संयुक्त परिवार' अपना विशेष महत्त्व रखता है लेकिन औद्योगिक, वैज्ञानिक तकनीकी विकास की प्रक्रिया, शहरीकरण, पाश्चात्य सभ्यता, आधुनिक विचार प्रणाली, भौतिक सुविधाओं का आकर्षण आदि के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार टूटने लगे। आज का व्यक्ति नए मानवीय दृष्टिकोणों और आयामों की खोज करता है। पारिवारिक विघटन एवं उसकी समस्याओं की विडम्बना के बारे में पुष्पपाल सिंह का मत है -'आज मानवीय रिश्ते उसी रूप में मान्य नहीं रहे जैसे पहले थे।' संयुक्त परिवार के विघटन और रोजी-रोटी की तलाश में परिवार के सदस्यों का बाहर जाकर बस जाना आदि के परिणाम स्वरूप परिवार के सदस्य अपनी छोटी - छोटी इकाईयों तक ही अपने को सीमित रखने लगे है। मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी होकर बहुत सारे आत्मिक संबंधों को बेमानी बना रहा है। माँ-बाप, पिता-पुत्र, पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी, भाई-भाई आदि के बीच अनाम दूरियाँ आ गई जिसके कारण ये संबंध दरकने लगे। समकालीन कहानी में इन संबंधों के विषय में बहुत अधिक लिखा गया है।'1 आजादी के बाद नवें दशक तक आते-आते पारिवारिक प्रणाली में स्पष्ट रूप से अनेक परिवर्तन आ चुके थे। मन्नू भण्डारी, उषा प्रियवंदा, मालती जोशी, शिवानी, मेहरून्निसा परवेज, ममता कालिया, सूर्यबाला, राजी सेठ, मृदुला गर्ग आदि स्त्री कहानीकारों ने पारिवारिक जीवन की आधुनिक समस्याओं का मार्मिक एवं यथार्थ चित्रांकन किया है।

उषा प्रियवंदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' कहानी में पारिवारिक संबंधों में ह्रास का एक सशक्त उदाहरण प्रस्तुत हुआ है। आर्थिक स्वार्थ मनुष्य को इतना अंधा कर देता है कि उसके लिए न कोई संबंध न कोई रिश्ता न कोई भावना, किसी प्रकार का महत्त्व नहीं रखती। सुबोध ने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए नौकरी से इस्तीफा दिया, आगे चलकर उसे नौकरी नहीं मिली। जो बहन पहले दादा - दादा करके उसके आगे पीछे चलती थी, वह बहन अब नौकरी करने लगती है तो दादा के साथ उपेक्षित व्यवहार भी करती है। छोटी - छोटी बातों के लिए उसे बहन से अपमानित होना पड़ता है। 'जब वृन्दा नौकरी नहीं करती थी तब सुबोध बेकार न था। अब खाना वृन्दा की सुविधा के अनुसार बनता था। तब वृन्दा और माँ दोनों उसके इन्तजार में बैठी रहती थी, वृन्दा हमेशा बाद में खाती थी, सुबोध की दिनचर्या के अनुसार घर के काम होते थे पर।'2 सुरंग कहानी में बेटे की मृत्यु से माँ इतनी दु:खी हो गई कि उसे अपनी लड़कियों का कोई ख्याल नहीं हैं -' भाई को मरे नौ साल बीत गए हैं। माँ का पूजा पाठ तभी से शुरू हुआ था जो कि अब इतना बढ़ गया है कि वह प्राय: घर से बाहर ही रहने लगी।'3

मालती जोशी की 'बेडिया' कहानी की माँ ने भी बेटे की मृत्यु के कारण अपना मन बेटियों से विरक्त कर पूजा पाठ में लगा दिया। आज नई पीढ़ी भटकन की अवस्था में है। नए के प्रति मोह भी है और पुरानें को छोड़ नहीं पा रही है जैसे कि नई पीढी जब अपने माँ-बाप, दादा-दादी या अन्य किसी बड़े से पुरानी शान - शौकत, वैभव, प्रेम-प्यार आदि की बातें सुनती है तो नई पीढ़ी को उसके प्रति मोह भी होता है और आधुनिकता को वह छोड़ नहीं पाती। संस्कार ग्रस्त मन पश्चिम की नकल तो करता है लेकिन बाद में अपनी मान्यताओं की उपेक्षा करके पछताता भी है। 'गुब्बारे की लाश' कहानी में माँ एक ओर बेटी को आजादी देना चाहती है परन्तु रूढिग्रस्त परम्परावादी संस्कारशील मन के कारण वह आजादी नहीं दे पाती है। 'अगरबत्ती' कहानी में जवान बेटे को परिवार की जिम्मेदारी उठानी चाहिए थी, अपनी माँ और बहन का ख्याल रखना चाहिए था परन्तु बी.ए. पास होकर भी वह कोई काम धाम नहीं करता था। '..... और पाँच फुट दस इंच का वीर सिंह माँ की कमाई की रोटी तोड़ता माँ की कमाई के कपड़े पहनता, बीड़ी-सिगरेट फूँकता - घूमता फिरता।'4 लड़को का यही दायित्वहीन व्यवहार पारिवारिक सम्बन्धों में

डॉ. परमजीत एस. पनेसर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री के. आर कटारा आर्ट्स कॉलेज
शामलाजी, गुजरात
ईमेल- pspanesar1966@gmail.com

ह्रास का कारण बनता है। 'दो कहानियों के बीच' का सनातन भी कर्त्तव्य समझ कर उससे जो बनता है वह परिवार के लिए करता है।

सूर्यबाला की 'रमन की चाची' कहानी में जेठानी जान बूझकर देवरानी को उसके पति की सेवा का मौका नहीं देती थी। जब परिवार के सदस्यों द्वारा और विशेष रूप से स्त्री द्वारा पीड़ित हो जाती है तो पारिवारिक समस्या सामाजिक समस्या के रूप में परिवर्तित हो जाती है- 'चाचा खाना खा रहे होते तो अम्मा पंखा झूला रही होती और सिड़ी-गुड़ी से चाची कहीं किसी कोठरी में दाल पछोर रही होती, अरे उसे पता तो होना चाहिए कि उसका आदमी खा रहा है, पीढा- पाती तक नहीं पूछ सकती, कोई बात नहीं मैं तो हूँ जब तक कि अम्मा ने जान बूझकर चाची को उस वक्त दाल पछोर ने ऊपर बिठा दिया होता।'5 ममता कालिया की 'जितना तुम्हारा हूँ' कहानी में भी स्त्री की घुटन की समस्या को रेखांकित किया गया है। मालती जोशी की 'महकते रिश्ते' कहानी में जमीन, जायदाद, मकान के कारण भाईयों में फूट पड़ी है। रिश्तों का टूटना किस प्रकार मन को बेचता है इसका चित्रण लेखिका ने इस प्रकार किया है - 'पापा मुकद्मा जीत गए थे। ताऊ जी को मजबूर होकर ऊपर वाला मकान गिरवी रखना पड़ा। तभी पापा को पैसे दे सके, उन पैसों से पापा ने नगर के दूसरे छोर पर बंगला खरीदा था उससे बाद हम लोगों ने खुलकर साँस ली थी। ताऊजी गृह प्रवेश पर भी नहीं आए थे, मरते दम तक उन्होंने पापा से बात नहीं की, औरों से भी धीरे-धीरे सम्पर्क करने लगा सड़कों की दूरी मन को व्याप्त हो गई। रिश्तों की डोर खिंचती ही चली गई।'6 परिवार प्रेम के धागे बँधा रहे इसके लिए सदस्यों का एक दूसरे से स्नेह-आत्मीय संबंध होने के साथ-साथ उनका एक दूसरे के प्रति समर्पण का भाव होना जरूरी है। आत्मकेन्द्रित वृत्ति से आत्मसंतुष्टि बढ़ती है। आज की पढ़ी-लिखी युवती पहले जैसी स्त्री के समान समर्पण-त्याग आदि मूल्यों पर विश्वास नहीं करती। उसे अपनी भावनाएँ महत्त्वपूर्ण लगती हैं। मालती जोशी की 'मातृदीप' कहानी की नई नवेली बहू अपनी इच्छाओं की अतृप्ति के कारण बहुत दुःखी रहती है। साथ-साथ ही परिवार के सदस्यों के विरोध में विद्रोह करने पर आमादा हो जाती है। 'अम्मा की हिम्मत देखकर हम सबने अपने आँसू सोख लिये थे पर वे सब बाद में काम आए। भाभी नेरू घर में आते ही विद्रोह का झण्डा गाड़ दिया, हम लोगों का परिवार बड़ा था, दो पढ़ने वाले भाई, एक ब्याह ने लायक मैं और बूढी बीमार अम्मा, भैया अकेले कमाने वाले, भैया यह सब नहीं दे सके जिसकी एक नवेली बहू को अपेक्षा होती हैं।'7

दीप्ति खण्डेलवाल की 'एक और सीता' की कहानी की बहू-सास द्वारा पीड़ित है। सास के कारण उसे पति और घर का त्याग करना पड़ता है। मेहरून्निसा परवेज की 'उसका घर' कहानी का पिता अपनी बीमारी के कारण बहू-बेटे तो क्या अपनी पत्नी से भी उपेक्षित है। पत्नी की जेब से गिरे पैसे के चने लेकर खाने के अपराध में बेटे तथा पत्नी द्वारा घोर अपमान सहना पड़ता है- 'शरम नहीं आती। यहाँ बैठकर खाते हो! मेरी इज्जत का भी ध्यान नहीं।'8 जिन्होंने पाला-पोसा उसी पिता के लिए बेटे कह रहें है। गुस्सा तो बाप को करना चाहिए। परन्तु नई पीढ़ी के संस्कारों एवं मूल्य में परिवर्तन आने के कारण पारिवारिक संस्था बदल रही है। यह अनादर- स्नेहहीनता नई पीढ़ी के पुत्रों को अपनी पुरानी पीढ़ी के पिता के प्रति है। जब कोई परिवार टूटने लगता है तब आत्मीय संबंध भी खत्म होने लगते हैं। भारत में चाहें पति - पत्नी अपने बच्चों के साथ रहते हों फिर भी वे मन से माता-पिता, भाई-बहन से जुड़े हुए होते हैं इस लिए उन रिश्तों में आया अंतराल स्मृतिदंश बनकर उन्हें डसता रहता है। शिवानी की 'दण्ड' कहानी का पुत्र भी पिता के अमर्यादित व्यवहार के कारण क्षुब्ध है। वह कहता है - 'जिस पति को अपनी पत्नी से सच्चा प्रेम होगा वह कम से कम अपनी कोठी, किसी कॉलेज या उद्यान पार्क का नाम अपनी पत्नी के नाम पर नहीं धरेगा।'9 आज समाज में केन्द्रित परिवारों में वर्णित रिश्तों में खटास पैदा हो रही है।

मन्नू भण्डारी की 'एखाने आकाश नाई' कहानी में संयुक्त परिवार व्यवस्था का स्वरूप चाची के माध्यम से वर्णित हुआ है। एक समय या संयुक्त परिवार में विधवा, अनाथ, परित्यक्ता, उपेक्षित व्यक्ति आदि को आश्रय मिलता था, उसे स्नेह भी प्राप्त होता था। परन्तु इस कहानी में जेठानी को देवरानी फूटी आँख नहीं सुहाती है। वह बहू से कहती है -'पहले ही मेरा सारा घर खाए बैठी है चुड़ैल। मुकद्मेबाजी कर रही है मरी उस तहसीलदार के साथ मिलकर, ऐसे लक्षण है तभी तो छोड़ रखा है खसम ने। मैं तो कहूँ, लाख रूपये के हैं लाला जी पर चुड़ैल ने उनकी जिन्दगी हराम कर दी है। हार कर उन्होंने भी दूसरी शादी कर ली, इत्ते पर भी चैन थोड़े ही है निगोड़ी को। यहाँ बैठी - बैठी मूँग दल रही है।'10 अपना हक प्राप्त न होने के कारण चाची के द्वारा किया गया मुकद्मा और बँटवारे द्वारा आर्थिक हानि की आशंका ने सभी के मन में चाची के प्रति घृणा और कड़वाहट भर दी। इसी कहानी की लेखा की जेठानी अपने आपको हमेशा कोसती रहती है, क्योंकि लेखा पति के साथ शहर में रहती है। उसे आर्थिक स्वतंत्रता होने के कारण सास, देवर, ननद उसके प्रति आदर व्यक्त करते हैं परन्तु जेठानी अर्थ की कमी और संयुक्त परिवार में रहने की पीड़ा से हर समय असंतुष्ट रहती है - 'भाभी ने अपना दिनभर का गुस्सा अकारण ही दोनों बच्चों पर निकाल डाला, और वे इतने रोए, इतने रोए कि हमेशा चुप रहने वाले पिता जी को भी डाँटना पड़ा और फिर भाभी रोयी, उन्होंने अपनी किस्मत को कोसा, अपने बच्चों को कोसा।'11

शिवानी की 'प्रतिशोध' कहानी की सौदा मिनी ने परिवार के सदस्यों की संख्या देखते ही पति को लेकर किनारा खींच लिया था 'ससुराल पहुँची तो तो सास-ससुर, जेठ-जिठानी को देखते ही उसे साँप सूँघ गया।'12 'पुत्री के जन्म पर एक ही बार उसके पास ससुर आए और सौदामिनी के हृदय हीन व्यवहार ने उन्हें तीसरे ही दिन लाठी लेकर ऐसा खदेड़ा कि जब तक जीवित रहे बेचारों ने कभी उधर झाँकने का भी दुस्साहस नहीं किया।'13 उषा प्रियवंदा की कहानियों पर

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव होने के कारण विघटन की समस्या विविध आयामों में सामने आती है। डॉ. मंजु शर्मा ने उषा प्रियवंदा की पारिवारिक कहानियों के संदर्भ में लिखा है- 'पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और नई परिस्थितियों ने पीढ़ियों के संघर्ष को जन्म दिया। नए को अपनानें की त्वरा में नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की हर बात से असहयोग कर उठी जिसका परिणाम पारिवारिक विघटन के रूप में सामने आया है।'14 उनकी प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' के गजोधर बाबू रिटायर्ड होने के बाद अच्छी आरामदायी एवं आनन्द की जिन्दगी बिताने के सपने संजोकर काफी सालों के बाद हमेशा के लिए पत्नी और बच्चों के साथ रहने के लिए आ गए थे परन्तु उन्हें अपनों से आत्मीयता एवं स्नेह मिलने की अपेक्षा में उपेक्षा मिलती है जिसकी परिणति उनकी वापसी में होती है। उनका बेटा अमर कहता है- 'बूढ़े आदमी हैं चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते है।'15 इससे स्पष्ट होता है कि नई पीढ़ी ने पुरानी पीढ़ी की धनोपार्जन की क्षमता की समाप्ति एवं बदलते परिवेश में उन्हें नकारा माना जिससे वृद्ध पिता अकेलेपन एवं टूटन के शिकार हो गए।

मालती जोशी की कहानियों में पारिवारिक समस्याओं का सूक्ष्म विवेचन हुआ है। पारिवारिक विघटन के समस्त पहलुओं को आँकने का प्रयास लेखिका ने किया है। उनकी 'एक घर सपनों का' कहानी में मध्यमवर्गीय परिवारों की समस्याएँ और उनसे उत्पन्न टूटन एवं बिखराव का स्वाभाविक वर्णन मिलता है। पति शराबी होने से पत्नी को भाई-भाभी के पास रहना पड़ा वहाँ उसे उपेक्षा के अलावा कुछ नहीं मिला, वहाँ अपमानित होने से वह पति के घर चली जाती तो वहाँ पति के अत्याचार के कारण रहना नामुमकिन हो जाता, मायके लौटने पर भाभियों के ताने सुनने पड़ते थे, 'पति से तिरस्कृत नारी की हर जगह दुर्गति होती है, चाहे वह ससुराल में हो, चाहे पीहर में। 'वह तो बिना पैंदे की लूटिया होती है, जिधर चाहा, लुढ़का दिया, बिना पैसे की नौकरानी होती है- जब चाहा, जैसा काम लिया और बस छुट्टी।'16

पति- पत्नी में अनबन, मनमुटाव हो तो उसका परिणाम बच्चों पर पड़ता है। माँ पति के साथ कटु सम्बन्धों के कारण बेटों या बेटियों से सहज व्यवहार नहीं कर पाती जिससे वे बच्चे बड़े होकर माँ के प्रति तटस्थ हो जाते हैं। दीप्ति खण्डेलवाल की 'क्षितिज' कहानी में माँ अपनी बेटी को इसीलिए प्यार नहीं करती क्योंकि उसके संबंध अपने पति से कटु से कटुत्तर होते जा रहे है। बेटी माँ को बहुत प्यार से फूल देती है तो माँ डपट देती है। 'फेंक दो फूल' बचपन में मिला यह कटु व्यवहार बड़े होकर बेटी को माँ के प्रति सहज नहीं होने देता। 'मूल्य' कहानी के बेटे पिताजी गरीब है, आर्थिक सम्पन्नता बच्चों को देने में असमर्थ हैं इसलिए उन पर व्यंग्य कसा जाता है। बच्चों को नित्य-प्रति फरमाइशों एवं तानों से वे दुखी होते हैं। 'विजय और मीरा' उनकी संताने - मात्र दो। पैदा तो आठ हुए थे, बचे केवल दो। अच्छा हुआ मर गए ससुरे सब।'17 परन्तु तुरन्त अपनी जीभ काट लेते हैं कि वे पिता होकर अपने पितृत्व को श्राप रहे हैं। लेकिन बच्चे बात-बात पर पिता को उनकी असमर्थता का अहसास दिलाते थे और उनके आदर्शों का मजाक उड़ाते थे। यह निश्चित ही बच्चों के लिए शर्मनाक है। लेखिका ने आज की युवा पीढ़ी को अंर्तमुख होकर सोचने के लिए बाध्य किया है कि जिस माता-पिता एवं बच्चों के सम्बन्धों में अनादर, असम्मान की भावना बढ़ती जाएगी वैसी ही पारिवारिक मूल संकल्पना, जो श्रृद्धा, आदर और मान-सम्मान पर आधारित है, वह नष्ट हो जाएगी।

निष्कर्षत: संयुक्त परिवार और एंकाकी परिवार की मूल नींव दाम्पत्य संबंध है। परिवार की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए दाम्पत्य सम्बन्धों की अविच्छन्नता आवश्यक उपकरण है। परिवार का सर्वाधिक विस्तृत रूप माता-पिता या पति-पत्नी में प्राप्त होता है। वर्तमान समय में भौतिकतावाद एवं स्वार्थ के कारण ही परिवार की समस्याएँ बढ़ी हैं। आधुनिकता बोध ने जहाँ एक तरफ जड़ता समाप्त की है वहीं दूसरी ओर मूल्यहीनता, मानवीय सम्बन्धों-संस्कारों को भी नष्ट कर दिया है। समाज में पश्चिम सम्पर्क में आने के कारण परम्परागत विश्वास-आदर्श हम से दूर होते जा रहे है। इनकी परिणति टूटते हुए दाम्पत्य सम्बन्धों में हुई है। आधुनिक स्त्री कहानीकारों ने भारतीय परिवारों में अपनी समस्याओं को आधुनिक परिवेश के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत किया है। उन्होंने परिवार में नारी भूमिका एवं पुरुष सत्ता का भी विवेचन सूक्ष्म रूप से करके एक सन्तुलित मानवीय विचारों की अभिव्यक्ति वर्णित की है।

000

संदर्भ-

1. समकालीन कहानी : युग बोध का सन्दर्भ- डॉ. पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1998, पृ.93, 2. जिन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,1991, पृ. 132, 3. कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2005, पृ. 73, 4. दो कहानियों के बीच - शशिप्रभा शास्त्री, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, 1997, पृ. 6, 5. थाली भर चाँद - सूर्यबाला, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 60, 6. महकते रिश्ते - मालती जोशी,हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2010, पृ. 29, 7. वही, पृ. 52, 8. आदम और हव्वा - मेहरून्निसा परवेज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1972, पृ. 69, 9. किशनुली - शिवानी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2015, पृ. 47, 10. श्रेष्ठ कहानियाँ - मन्नू भण्डारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ.98, 11. वही, पृ. 99, 12. रथ्या - शिवानी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2007, पृ. 111, 13. वही, पृ. 112, 14. साठोत्तरी महिला कहानीकार - डॉ. मंजू शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन्स, कबीर नगर, दिल्ली, 2003, पृ. 91, 15. जिन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ. 120, 16. एक घर हो सपनों का - मालती जोशी, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2012, पृ. 28, 17. कड़वे सच - दीप्ति खण्डेलवाल, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1989, पृ. 19

(शोध आलेख)

इलेक्ट्रानिक मीडिया और महिला सशक्तिकरण के अंत:संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

अंकिता द्रिवेदी, शोधार्थी
(जनसंचार और पत्रकारिता)
प्रो (डॉ.) मनीषकांत जैन,
शोध पर्यवेक्षक
एलएनसीटी यूनिवर्सिटी,
भोपाल (मप्र)

शोध सारांश

किसी भी समाज में महिला और पुरूष दोनों प्रकार की समान भूमिका होती है। समाज के विकास में दोनों के योगदान से इंकार नहीं किया जा सकता है। यह अलग बात है, कि महिला और पुरूषों के बीच इसी समाज मे असमान व्यवहार किया जाता है। असमान व्यवहार की प्रक्रिया सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि दुनियाभर के देशों में है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथों और बुद्धिजीवियों ने इस बात को रेखाकिंत किया है, कि महिलायें. मानव की अगली पीढ़ी की जन्मदाता है। महिलायें ही सौभाग्य में वृद्धि करती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, कि महिलाओं से ही समृद्धि होती है। आज के दौर सूचना क्रांति का दौर है। इस दौर में लगभग हर क्षेत्र में महिलायें बढ़-चढ़कर हिस्सी ले रही है। मीडिया खासकर इलेक्ट्रानिक मीडिया के क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी प्रतिभा के बूते पर अलग पहचान निर्मित की है। इसके अलावा महिलाओं को हक, अधिकार और कर्तव्य के प्रति बोध कराने में इलेक्ट्रानिक मीडिया की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। अब सवाल यह है, कि क्या मीडिया के आगमन के साथ ही महिला सशक्तिकरण को बल मिला है? दूसरा सवाल यह है, कि क्या इलेक्ट्रानिक मीडिया ने महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और सशक्तिकरण का मंच प्रदान किया है? प्रस्तुत अध्ययन के दौरान इलेक्ट्रानिक मीडिया और महिला सशक्तिकरण के बीच अंत:संबधों की व्याख्या की गयी है। अध्ययन के दौरान महिला सशक्तिकरण की दिशा में इलेक्ट्रानिक मीडिया की भूमिका को भी रेखाकिंत किया गया है।

बीज शब्द- सशक्तिकरण, कर्तव्य, हक, अधिकार, समृद्धि, बुद्धिजीवी, असमान आदि।

प्रस्तावना

भारत में सबसे तेज गति से महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन देखा गयी है। हालांकि यह परिवर्तन समय के अनुसार परिवर्तित हो रहा है। प्राचीन काल में ही महिलाओं को पुरूषों के बराबर अधिकार प्रदान किये गये है। प्राचीन ग्रंथों में इसका जिक्र भी मिलता है। पतंजलि और कात्यायन में महिलाओं को शिक्षा दिये जाने का जिक्र है। इसी प्रकार से ऋग्वेद में भी महिलाओं की शिक्षा और परिपक्व होने की उम्र में शादी करने के प्रमाण उपलब्ध है। वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के बराबर दर्जा और अधिकार प्राप्त थे। इसके बाद मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट देकने को मिलती है। इस दौरान सिर्फ एक खास वर्ग यानि सिर्फ इसाई धर्म में महिलाओं की स्वतंत्रता और अधिकारों को सीमित कर दिया गया है.। इस दौर में सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा विवाह जैसी कुरीतियों ने भी जन्म लिया। उधर मुस्लिम अनुयायियों ने पर्दा प्रथा का समर्थन किया। महिलाओं पर प्रतिबंध लगाये गये और बहुविवाह प्रथा का प्रचलन बढ़ा। इस दौर में महिलाओं की स्थिति इतनी खराब हो गयी कि महिलाओं को, पुरूषों की संपत्ति तक माना जाने लगा। हालांकि इसी दौर में कुछ महिलाओं ने इस सारे बंधनों को तोड़कर राजनीति, साहित्य, धर्म और शिक्षा के क्षेत्र में अपना योगदान भी दिया। जैसे रजिया सुल्तान दिल्ली की शासक बन गयी। गोंड रानी दुर्गावती ने पंद्रह साल तक शासन किया। चांद बीबी ने 1590 के दशक में अकबर की शक्तिशाली मुगल सेना के खिलाफ अहमदाबाद की रक्षा की

थी। इसके बाद आजादी के आंदोलन के दौरान भी महिलाओं की अहम भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित और श्रीमती अरुणा आसफ़ अली जैसी महिलाएँ स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बनीं। आजादी के बाद दो प्रकार की स्थिति निर्मित हुई। शहरी या शिक्षित समाज में महिलाओं को यथास्थिति सम्मान मिला और अशिक्षित, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। हालांकि इस दौर में भी प्रधानमंत्री से लेकर प्रशासनिक पदों तक महिलाओं ने पहुंचकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। इसी दौर में महिलाओं ने प्रशासन, खेल, राजनीति, विज्ञान और कला के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। आजादी के बाद लागू किये गये संविधान में स्त्री पुरूष को समान अधिकार दिये गये। समान अधिकार लागू होने के बाद भी महिलाओं की स्थिति में खास परिवर्तन देखने को नहीं मिला । 80 के दशक के बाद मीडिया का प्रभाव बढ़ने के बाद इस दिशा में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। खासकर इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रभाव बढ़ने के साथ ही महिलाओं ने भी घर की चारदिवारी को लांघ लिया है। महिलाओं की उड़ान को सोशल मीडिया में भी पंख लगा दिया। हालांकि अभी भी महिलाओं की स्थिति वैसी नहीं है, जैसा संविधान में जिक्र किया गया है, लेकिन प्राचीन काल जैसी भी नहीं है।

पूर्व साहित्य का अध्ययन

जेन्सन और ओस्टर (2003) के अनुसार केबल टेलीविजन महिलाओं के दृष्टिकोण को प्रभावित कर रहा था और लेखकों ने पाया कि महिला स्कूल नामांकन में वृद्धि और प्रजनन क्षमता में कमी आई है।

पांडे और चारु (2012) के अनुसार महिलाओं की स्थिति और समाज में उनकी स्थिति सभ्यता का एक सूचकांक है, जहाँ उन्हें विकास की प्रक्रिया में समान भागीदार माना जाता है।

मूर्ति और पद्मजा (2010) ने खुलासा किया कि टेलीविजन धारावाहिक जीवन शैली को प्रभावित करते हैं और पारिवारिक समारोहों के उत्सव, उनकी शादी में जोड़ों के कपड़े, शादी के स्थान की सजावट और सगाई की रस्म जैसे पारिवारिक रीति-रिवाजों को भी प्रभावित करते हैं।

मनोज (2010) ने रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, ई-पेपर और पोर्टल जैसे विभिन्न मीडिया की सामग्री का विश्लेषण किया। मीडिया के कुछ वर्गों ने शिक्षा के अधिकार अधिनियम को ऐतिहासिक बताते हुए इसका स्वागत किया है और इसे एक नई सुबह की शुरुआत बताया है।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के लिये निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये है, जो इस प्रकार से है।

1-इलेक्ट्रानिक मीडिया में महिलाओं की स्थिति का पता करना।

2-इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से महिला सशक्तिकरण पर पड़ रहे प्रभावों की समीक्षा करना।

3-इलेक्ट्रानिक मीडिया में कार्यस्थल पर महिलाओं की यथास्थिति की विवेचना करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक शोध प्रविधि से पूरा किया गया है। अध्ययन के दौरान इलेक्ट्रानिक मीडिया में कार्यरत महिलाओं के साक्षात्कार और अलग-अलग सरकारी और गैर सरकारी संगठनों की रिपोर्ट के आधार पर अध्ययन को पूरा किया गया है।

मीडिया में महिलाओं की स्थिति में स्थिति पर जारी की गयी विभिन्न रिपोर्ट

ईडे ग्लोबल मीडिया मॉनिटरिंग प्रोजेक्ट (जीएमएमपी) की 2022 की रिपोर्ट में कहा गया है, कि टीवी समाचार स्रोतों में केवल 40% महिलाएँ थीं, जबकि रेडियो में केवल 36% और समाचार पत्रों में बमुश्किल 28% महिलाएँ थीं। जिन महिलाओं को विशेषज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया गया, उनकी संख्या और भी कम थी।

जेंडर रिप्रेजेंटेशन इन इंडियन न्यूज़रूम नाम से रिपोर्ट जारी में कहा गया है, कि मीडिया में महिलाओं की संख्या काफी कम है और निर्णय लेने वाले पदों के लिए तो यह कमी और ज्यादा है। विस्तृत रिपोर्ट में कहा गया है, कि शीर्ष नेतृत्व में सबसे ज्यादा संख्या इंग्लिश न्यूज़ चैनलों में है। यहां महिलाओं की संख्या 42.62 प्रतिशत है वहीं पुरुषों की संख्या 57.38 प्रतिशत है. जबकि हिंदी टीवी चैनलों में महिलाओं की संख्या महज 22.58 प्रतिशत है। डिजिटल मीडिया में शीर्ष पदों पर महिलाओं की संख्या 38.89 प्रतिशत, अंग्रेजी अख़बारों में 14.71 प्रतिशत, वहीं हिंदी अखबारों में यह संख्या सिर्फ 9.68% है। अगर मैगजीन की बात करें तो यहां महिलाओं की भागीदारी सिर्फ 10.71 प्रतिशत है। रिपोर्ट में सामने आया है कि हिंदी और अंग्रेजी के कई अखबारों के शीर्ष नेतृत्व में एक भी महिला नहीं है।

मीडिया एडवोकेसी ग्रुप की रिपोर्ट "महिलाओं के खिलाफ हिंसा: मीडिया कवरेज और प्रतिनिधित्व (2005)" के अनुसार, मीडिया को महिलाओं के खिलाफ हिंसा के बारे में अत्यंत तथ्यात्मक/अनुभवजन्य, विस्तारित/व्यापक, संवेदनशील और सुरक्षात्मक दृष्टिकोण और उपाय अपनाने की आवश्यकता है। अध्ययन में यह भी कहा गया है कि इस मुद्दे पर संवेदनशील रिपोर्टिंग को नियंत्रित करने वाला एकमात्र विनियमन यह है कि बलात्कार पीड़िता का नाम प्रकट नहीं किया जाना चाहिए।

मीडिया में महिलाओं के चित्रण और भागीदारी पर 1978 में यूनेस्को द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया कि वैश्विक स्तर पर महिलाओं को खराब तरीके से चित्रित किया जाता है। मीडिया में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बिलकुल नहीं है और उनकी आय उनके पुरुष सहकर्मियों से कम है। कई कार्यक्रमों के विश्लेषण से यह साबित होता है कि प्राइम-टाइम धारावाहिक, नाटक, फिल्म-आधारित कार्यक्रम महिलाओं और उनके विषयों को खराब तरीके से चित्रित करते हैं। महिलाओं को ज़्यादातर विनम्र गृहिणी, देखभाल करने वाली, दयालु श्रोता और पुरुषों की इच्छा की वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया

जाता है। महिलाओं पर कार्यक्रम ज़्यादातर शहरी समाज के जीवन और रीति-रिवाजों पर आधारित होते हैं, जिस पर पुरुषवादी वर्चस्व है। जीवन में बराबर की भागीदार होने पर ज़ोर दिया जाता है, जैसे गाड़ी के दो पहिये। ज़्यादातर महिलाओं को धैर्यवान पीड़ित के रूप में चित्रित किया जाता है, जो हर समय सजी-धजी रहती हैं और अलग-अलग मानवीय भावनाओं से दूर रहती हैं; जबकि दूसरी आधी को अपनी पीड़ा और तकलीफ़ व्यक्त करने की अनुमति होती है। वासना के लिए सेक्स स्टीरियोटाइप के रूप में महिलाओं की छवि अच्छी तरह से केंद्रित है। मध्यम वर्ग की महिलाओं को ज़्यादातर आश्रित, बच्चों और घर के बड़े सदस्यों की देखभाल करने वाली गृहिणी, पति की बात सुनने वाली और बुढ़ापे में अपने बेटों के आदेशानुसार काम करने वाली के रूप में दिखाया जाता है।

भारत में मीडिया

भारत में मीडिया का प्रभाव और वर्चस्व लगातार बढ़ता जा रहा है। भारत में एक लाख से ज्यादा समाचार पत्र, 1000 से ज्यादा सैटेलाइट चैनलों का प्रसारण किया जा रहा है। आज की मीडिया में महिलाएँ हर विभाग में पुरुष सहकर्मियों के बराबर और उच्च पदों पर काम कर रही हैं। ऐसी महिलाएँ हैं जो मीडिया हाउस का नेतृत्व कर रही हैं। कई उभरती हुई महिला पत्रकार स्वर्गीय प्रभा दत्त, होमई व्यारावाला और बरखा दत्त जैसी बनना चाहती हैं जिन्होंने 1999 में कारगिल युद्ध को कवर करके अपने करियर में मील का पत्थर स्थापित किया। बरखा से पहले उनकी माँ प्रभा दत्त ने ही हिंदुस्तान टाइम्स में अपने संपादक को यह समझाया था कि महिला पत्रकार शहर में स्थानीय पुष्प प्रदर्शनी की रिपोर्टिंग से कहीं अधिक अच्छी होती हैं।इसके अलावा एनडीटीवी की माया मीरचंदानी, सीएनएन-आईबीएन की सुहासिनी हैदर और अमेरिका स्थित "डेमोक्रेसी नाउ" की अंजलि कामत भारतीय पत्रकारों के कुछ नाम हैं जो भारत में हर महिला पत्रकार के लिए प्रेरणा बन गए हैं।

दूसरी ओर, महिलाओं को मनोरंजन के विषय के रूप में पेश किया जा रहा है। विज्ञापन उद्योग ने महिलाओं को एक वस्तु बना दिया है। हर दूसरे विज्ञापन में महिलाएँ होती हैं, चाहे उनकी उपस्थिति ज़रूरी हो या न हो। ऐसे कई विज्ञापन हैं जो इस कथन को साबित करते हैं। सीमेंट और लोहे की छड़ों के विज्ञापन में महिलाएँ होती हैं, जबकि उनकी उपस्थिति ज़रूरी नहीं होती; यह सिर्फ़ ध्यान खींचने के लिए होता है।

महिला सशक्तिकरण में मीडिया की भूमिका

महिलाओं के विकास के लिए संचार अत्यंत महत्वपूर्ण है और मीडिया इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में चाहे जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना हो, साक्षरता का प्रसार करना हो या आम जनता के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना हो, मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। मीडिया महिलाओं में समाज में बदलाव लाने के लिए अपनी क्षमता को प्राप्त करने के लिए जागृति पैदा करता है।

विकास संचार तीसरी दुनिया के देशों में एक शब्द है जो जनसंचार के माध्यम से समाज के विकास की बात करता है। चूंकि महिलाएं समाज का अभिन्न अंग हैं, इसलिए महिलाओं के सशक्तीकरण में योगदान देना मीडिया की जिम्मेदारी बन गई है। प्रसिद्ध विद्वान रोजर एवर्ट (1948) का कहना है कि मीडिया समाज में 'ओपिनियन लीडर्स' तैयार करके विकास में मदद कर सकता है जो नीति निर्माताओं यानी सरकार और आम लोगों के बीच माध्यम का काम करते हैं। इस सिद्धांत का उपयोग करते हुए, यह कहा जा सकता है कि यदि मीडिया महिलाओं के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण वाले ओपिनियन लीडर्स तैयार करने में मदद करता है, तो इससे निश्चित रूप से जमीनी स्तर पर महिलाओं के सशक्तीकरण में मदद मिलेगी। साथ ही, मीडिया विशेष कार्यक्रमों और प्रासंगिक मुद्दों पर चर्चाओं के माध्यम से आम लोगों के बीच महिलाओं के अधिकारों और सम्मान के बारे में सीधे जागरूकता पैदा कर सकता है।

निष्कर्ष

महिलाओं का मीडिया के साथ 'महिला शरीर और कामुकता' के नकारात्मक प्रतीक के रूप में लंबे समय से रिश्ता रहा है।पुरुषों के बराबर महिलाओं की सकारात्मक छवि जनसंचार माध्यमों साखकर इलेक्ट्रानिक मीडिया में शायद ही कभी दर्शाई जाती है। महिलाओं का अभद्र चित्रण (निषेध) अधिनियम, 1986 सभी प्रकार के मीडिया (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, सोशल, डिजिटल और वैकल्पिक मीडिया) में महिलाओं के लिंग-रूढ़िवादी चित्रण के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करता है क्योंकि यह समाज की प्रगति के लिए हानिकारक है। मीडिया सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली एजेंट है और इसलिए इसे नैतिक और सामाजिक रूप से जिम्मेदार होना चाहिए। मीडिया में महिलाएं मीडिया उद्योग, समाज, समुदाय और परिवार को लैंगिक रूप से संवेदनशील बनाने के लिए आदर्श हैं। लिंग आधारित हिंसा और यौन उत्पीड़न के संदर्भ में मीडिया में महिलाओं की चुनौतियों को सभी प्रकार के सुरक्षात्मक सामाजिक उपायों और लिंग अनुकूल मीडिया नीतियों के माध्यम से समाप्त करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

चौधरी जी (2009) महिला सशक्तिकरण: एक समाजशास्त्रीय जांच। पीएचडी थीसिस, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, भारत

डेविस ए.सी. (2008) मीडिया भाषा-एक अध्ययन। पीएचडी थीसिस, कालीकट विश्वविद्यालय, त्रिशूर, भारत

देवी एल.एम. (2010) वैकल्पिक मीडिया के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाना। समावेशी विकास के लिए आर्थिक राजनीति और समाज के अंतर्संबंध पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन।

गुलेरिया एन (2012) प्रिंट मीडिया और महिला सशक्तिकरण। पीएचडी थीसिस, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, भारत

हरि एच (2014) महिला सशक्तिकरण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका। (ऑनलाइन उपलब्ध)

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

सपने मरते नहीं
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

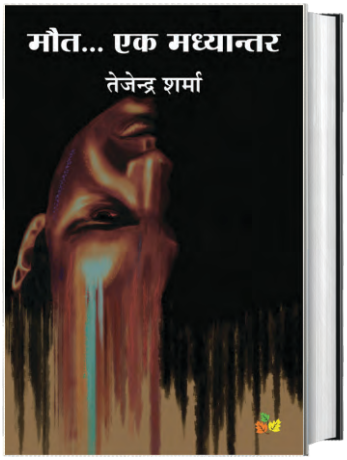

मौत... एक मध्यांतर
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

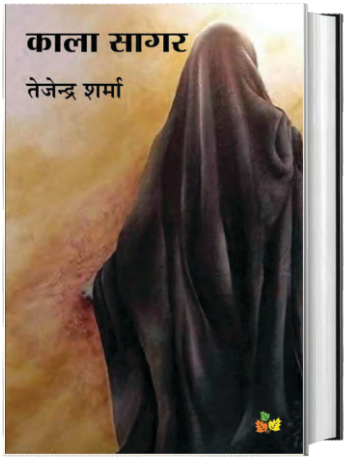

काला सागर
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

ढिबरी टाइट
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

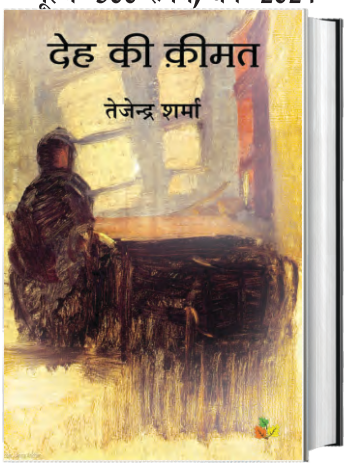

देह की क़ीमत
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

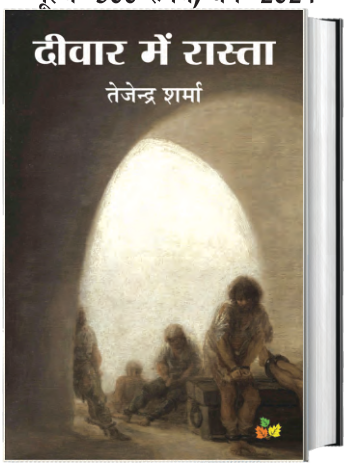

दीवार में रास्ता
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

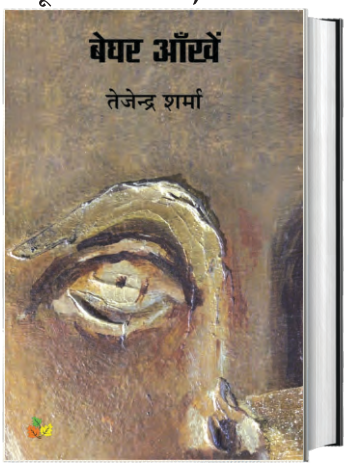

बेघर आँखें
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

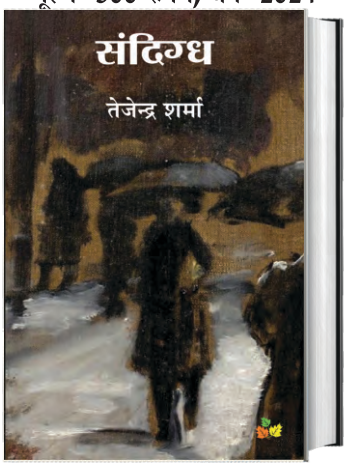

संदिग्ध
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

मेरे हिस्से का आकाश
कविता संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 220 रुपये, वर्ष- 2024

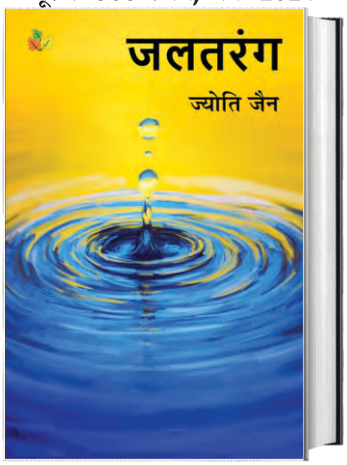

जलतरंग
लघुकथा संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

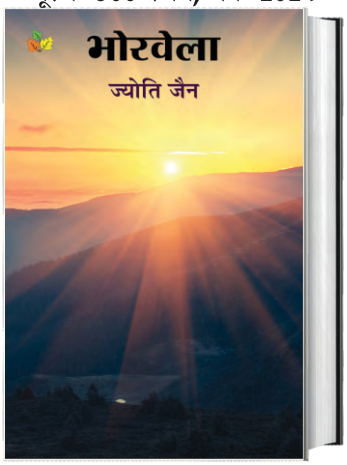

भोरवेला
कहानी संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

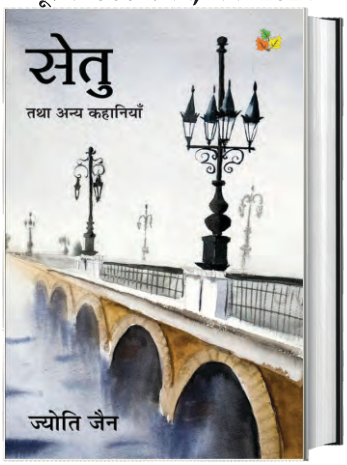

सेतु
कहानी संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

विमर्श - रूदादे-सफ़र
उपन्यास
संपादक - सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

उत्कृष्ट लघुकथा विमर्श
आलोचना
लेखक - दीपक गिरकर
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2024

तुम्हारे नाम
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - नरेश नदीम
मूल्य- 325 रुपये, वर्ष- 2024

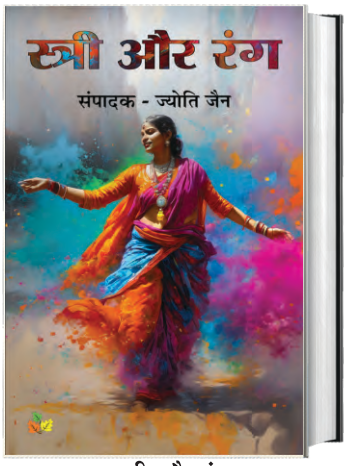

स्त्री और रंग
कविता संकलन
संपादक - ज्योति जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

शब्द चित्र माय क्लास रूम
काव्य-चित्र
लेखक - विश्वास सोनी
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

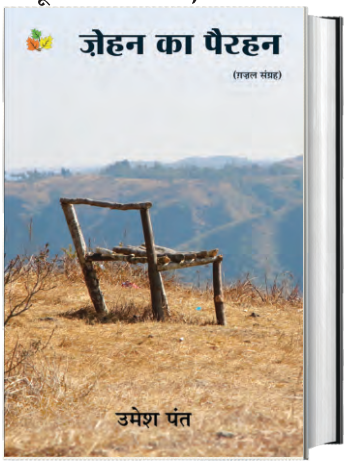

ज़ेहन का पैरहन
ग़ज़ल संग्रह
लेखक - उमेश पंत
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

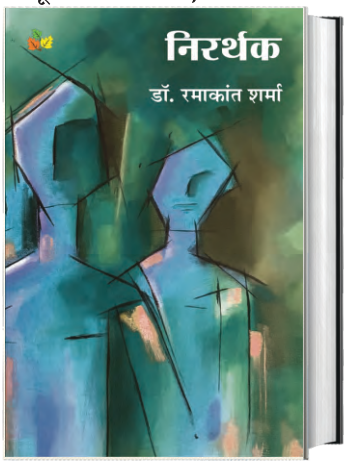

निरर्थक
उपन्यास
डॉ. रमाकांत शर्मा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

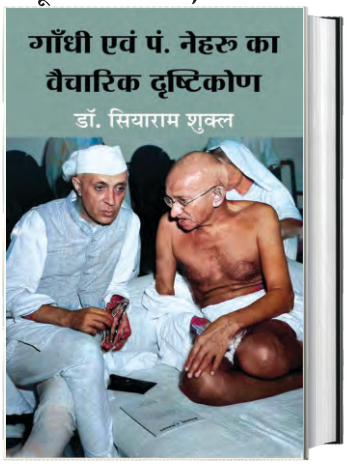

गांधी एवं पं. नेहरू का वैचारिक
दृष्टिकोण (इतिहास)
डॉ. सियाराम शुक्ल
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

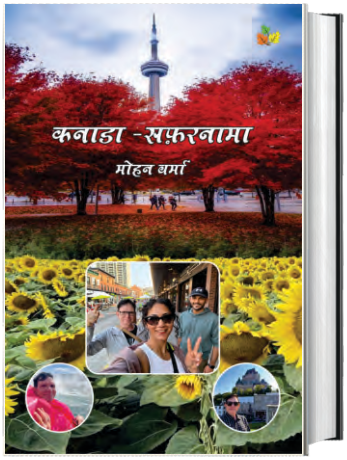

कनाडा - सफ़रनामा
यात्रा संस्मरण
लेखक - मोहन वर्मा
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

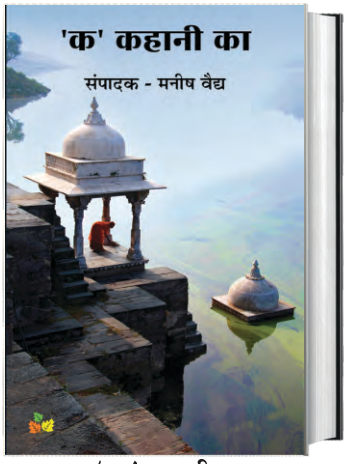

'क' कहानी का
कहानी संकलन
संपादक - मनीश वैद्य
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

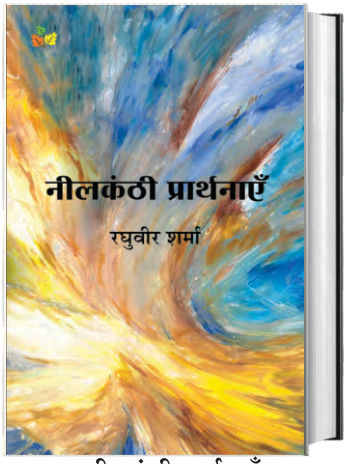

नीलकंठी प्रार्थनाएँ
गीत-नवगीत
लेखक - रघुवीर शर्मा
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

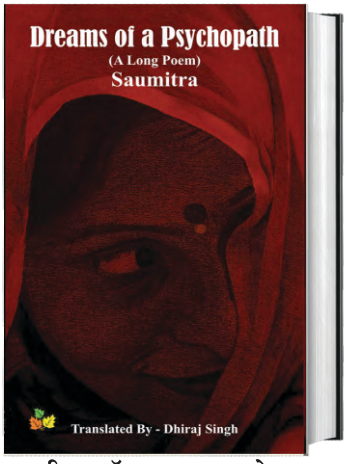

ड्रीम्स ऑफ एक सायकोपाथ
लम्बी कविता
लेखक - सौमित्र
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।